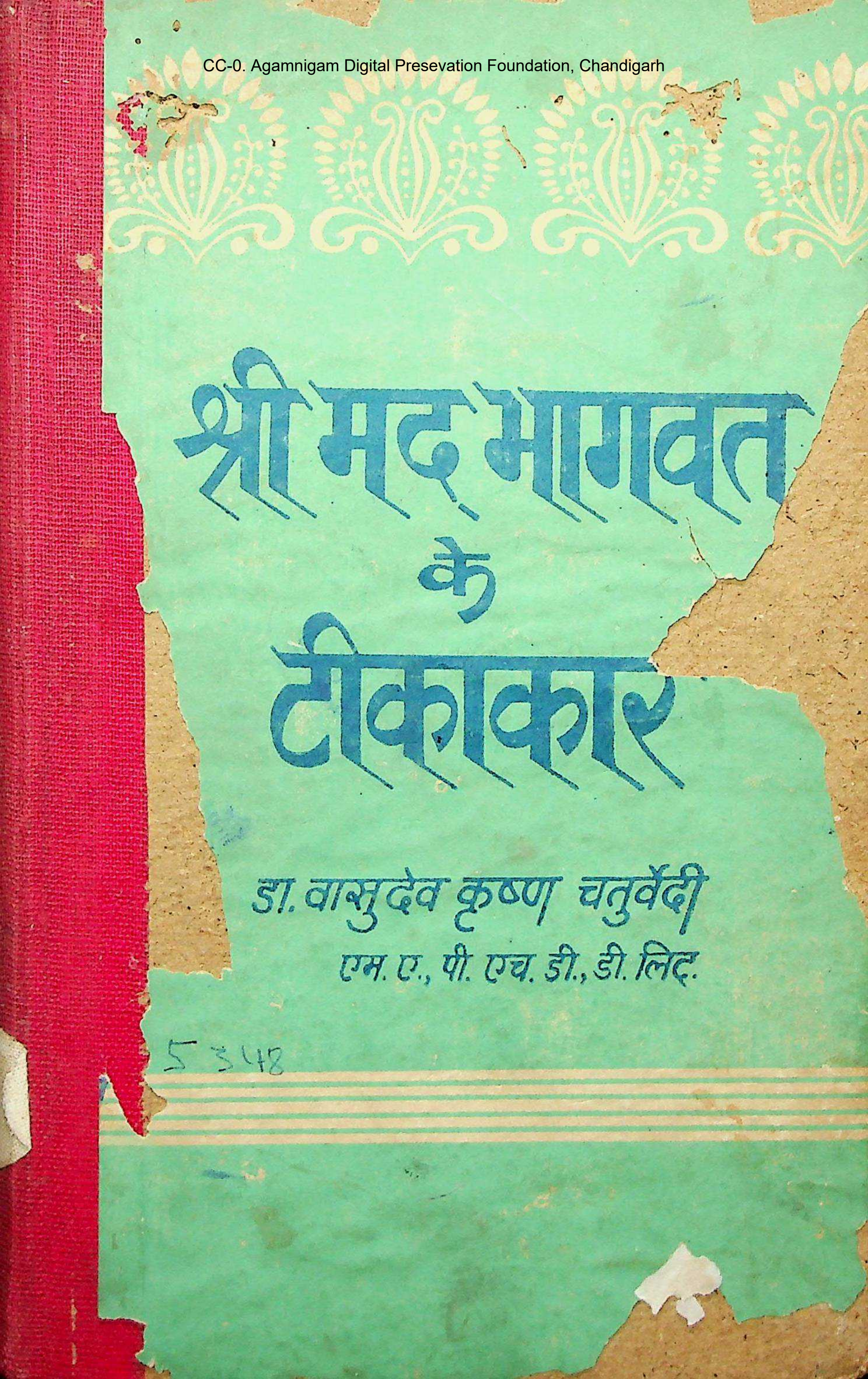

श्री मद् भागवत के टीकाकार

डा. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी
एम. ए., पी. एच. डी., डी. लिट.

5348

श्रीमद्भागवत

के

टीकाकार

[आगरा विश्व विद्यालय से पी-एच० डी० उपाधि के लिये स्वीकृत शोध प्रबन्ध
श्रीमद्भागवत के वैष्णव टीकाकार एवं उनकी टीकाओं का
विश्लेषणात्मक अध्ययन]

★

डॉ० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी
एम. ए., पी-एच. डी., डी-लिट्

★

राज्यश्री प्रकाशन
मथुरा
पिन कोड–२८१००१

Copy Right
डॉ० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी
१९७६-७७

मूल्य रुपये ४५-००
पुस्तकालय संस्करण

5348

State Museum Library Lucknow

मूल्य : रुपये पैंतालीस मात्र
प्रकाशक : प्रमोद बिहारी सक्सैना, बी० कॉम०
अध्यक्ष, राज्यश्री प्रकाशन,
दलपत स्ट्रीट, तिलक द्वार, मथुरा.
मुद्रक : आदर्श प्रिन्टिग प्रेस, बंगालीघाट, मथुरा. फोन : ११३६
नेशनल प्रेस, रामलीला मैदान, राया.
गिरीश प्रिंटिग प्रेस, चौक, मथुरा.

समर्पणम्

नित्यलीलास्थ प्रातः स्मरणीय १०८ श्री पितृचरण गुरुवर

श्री श्रीवर जी चतुर्वेद चरण कमलेषु सादरम्

श्री (१०८) मदाचार्यवर्याणां श्रीवराणां पदाब्जयोः ।
गुरूणां श्रद्धया भक्त्या शोध ग्रन्थोऽयमर्प्यते ।।

—तच्चरण नलिन मधुपेन वासुदेवकृष्णेन

प्राक्कथन

श्री मद्भागवत संस्कृत साहित्य का एक महनीय ग्रन्थ है। इसकी गरिमा 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' इस उक्ति से सुतरां सिद्ध है। अतएव श्रीमद्भागवत को लेकर अनेक ग्रंथ लिखे गये हैं। श्रीमद्भागवत की अन्य टीकाऐं भी हैं, उनके कर्ताओं में वैष्णव सम्प्रदायों के प्रवर्तक आचार्य भी हैं। इन सम्प्रदायों को लेकर स्वतंत्र रूप से ग्रंथों की रचना हुई है, किन्तु श्रीमद्भागवत के सभी टीकाकारों का या सम्प्रदाय विशेष के टीकाकारों का सम्यक् विवरण आज तक किसी ने प्रस्तुत नहीं किया है। श्रीमद्भागवत के ३० टीकाकार निश्चय रूप से ऐसे हैं जिनकी टीकाऐं सम्पूर्ण भागवत पर या उसके किसी महनीय खण्ड पर आज भी उपलब्ध है। जहां तक टीकाओं के अध्ययन अध्यापन का सम्बन्ध है वह तो श्रीधर कृत भावार्थ दीपिका, वल्लभाचार्यकृत सुबोधिनी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती की सारार्थ दर्शिनी तक ही अधिक सीमित है। अतः अन्य टीकाओं का सम्यक् अध्ययन कर उनके वैशिष्ट्य का ऊहापोह करना भी आज एकमात्र अनुसन्धान का विषय है। मेरे इस प्रबन्ध के विवेचन का यही मुख्य विषय है। साथ ही श्री मद्भागवत के प्रतिपाद्य मुख्य विषयों पर तथा उन स्थलों पर जिनकी व्याख्या प्रत्येक सम्प्रदाय अपने सिद्धान्तों के अनुसार भिन्न रूप में करता है। मैंने प्रायः सभी टीकाकारों के मत-मतान्तरों का एकत्र निरूपण किया है, जो श्रीमद्भागवत पर आज तक के किये हुये कार्यों से सर्वथा विलक्षणा तो है ही, उससे अनेक तथ्य प्रकाश में आये हैं।

टीकाकारों के व्यक्तिगत परिचय प्राप्त करने का कार्य जितना सरल प्रतीत होता है वस्तुतः उतना सरल है नहीं। मथुरा वासी होने से मथुरा और वृन्दावन की सभी सम्प्रदायों की संस्थाओं में अपेक्षित सामग्री जिस किसी रूप में मुझे सुविधा पूर्वक प्राप्त हो गई किन्तु उतने से काम चलता नहीं दीखा। यद्यपि मुझे तत्तत् सम्प्रदायों एवं उनकी संस्थाओं में काम करने वाले विद्वान् आचार्यों एवं अधिकारियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त था तथापि मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि इन संस्थाओं को अपने सम्प्रदाय के टीकाकारों के विषय में अपेक्षित जानकारी नहीं है। यही नहीं वीर राघवाचार्य के व्यक्तिगत परिचय की जानकारी के लिये विष्णुकांची के विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्यों को लिखा तो तीन चार बार पत्राचार होने के अनन्तर एकदम निराश होना पड़ा। इसी प्रकार विजय ध्वज तीर्थ जो मध्व सम्प्रदाय

के आचार्य एवं भागवत की 'पदरत्नावली' टीका के कर्ता हो चुके हैं। इनके सम्बन्ध में उडुपी से पत्र-व्यवहार करने पर असन्तोष-जनक उत्तर प्राप्त हुआ। उडुपी मध्व सम्प्रदाय का प्रमुख गढ़ है। इसके विपरीत कलकत्ते से स्वर्गीय महेशचन्द्र के बन्धुओं से श्रीधर स्वामी के सम्बन्ध में जो विवरण प्राप्त हुआ वह अपने में पर्याप्त तथा अत्यन्त उपादेय सिद्ध हुआ।

निम्बार्क सम्प्रदाय के एकमात्र टीकाकार सिद्धान्त प्रदीप के कर्ता शुकसुधी के विषय में जिनका हस्ताक्षर तक उपलब्ध है उनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कोई भी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त न हो सकी। फिर भी यथासम्भव मैंने श्रीमद्भागवत के सभी टीकाकारों के व्यक्तिगत जीवन के विषय में प्रकाश डालने का यथासम्भव प्रयास किया है तथा उनकी टीकाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। सफलता कितनी मिली है इसका निर्णय विद्वज्जन ही करेंगे।

प्रकृत प्रवन्ध में अध्यायों का विभाजन मैंने सम्प्रदायों के अनुसार किया है, एक सम्प्रदाय के टीकाकारों एवं उनकी टीकाओं के वैशिष्ट्य का निरूपण एक अध्याय में हुआ है। चित्सुख, श्रीधर और मधुसूदन ये श्रीमद्-भागवत के ऐसे टीकाकार हैं जिनको सम्प्रदाय विशेष की परिधि में नहीं रखा जा सकता, चूंकि उत्तरकालीन प्राय: सभी टीकाकारों ने इनको अपना उपजीव्य माना है- अतः इनको 'उपजीव्य टीकाकार' के नाम के निरूपित किया गया है।

प्रवन्ध के कुल नव अध्याय हैं। अध्याय प्रथम में भागवत के रचियता श्री वेदव्यास का प्रामाणिक परिचय, शिष्य परम्परा एवं कृतियों का विवेचन हैं। भागवत का स्वरूप, भागवत रचनाकाल, भागवत का परिमाण (अध्याय श्लोक संख्या विचार) का टीकाकारों की तालिका के साथ सामान्य टीकाओं की भी तालिका दी है एवं वैष्णव सम्प्रदायों के मूलभूत सिद्धान्त अति संक्षेप में प्रस्तुत किये हैं।

अध्याय द्वितीय में चित्सुख, श्रीधर स्वामी एवं मधुसूदन सरस्वती पर प्रकाश डाला है प्रत्येक का व्यक्तिगत परिचय, सम्प्रदाय, स्थित काल, कृतियां टीका वैशिष्ट्य दिया गया है। यह क्रम सात अध्याय पर्यन्त अन्य टीकाकारों का परिचय देते समय रखा गया है। श्रीधर स्वामी प्रसिद्ध टीकाकार हैं किन्तु इनके सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक वृत्तान्त उपलब्ध नहीं था। इनके सम्बन्ध में अनेक प्रामाणिक उल्लेख किये गये हैं। सम्प्रदाय चर्चा के अवसर पर इन्हें विष्णु स्वामी सम्प्रदाय का माना गया है।

अध्याय तृतीय में विशिष्टाद्वैत मत के टीकाकार—सुदर्शन सूरी, वीर राघवाचार्य, भगवत्प्रसाद, श्रीनिवास सूरी एवं रामानुज का परिचय द्वितीयाध्याय की शैली से प्रस्तुत किया है। भगवत्प्रसाद की टीका का सौराष्ट्र में उसी प्रकार सम्मान है जैसा गुर्जरादि प्रदेशों में आचार्य श्रीवल्लभ की सुबोधिनी टीका का है। स्वामीनारायण सम्प्रदाय का मूल विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय है. यह सिद्ध किया है।

अध्याय चतुर्थ में द्वैत सम्प्रदायाचार्य श्री मध्व एवं प्रसिद्ध भागवत टीका रचियता श्री विजयध्वज तीर्थ तथा अन्य टीकाकारों का भी परिचय दिया गया है। इनमे मध्वाचार्य, विजयध्वजतीर्थ, व्यासतत्वज्ञ, लिंघेरी श्रीनिवास तीर्थ, पांघरी श्रीनिसासाचार्य, सत्याभिनव, अनन्ततीर्थ, सत्यधर्मयति, छलारी नारायणाचार्य, चेट्टी वेंकटाचार्य, शेषाचार्य, धनपतिसूरी के नाम उल्लेखनीय हैं।

अध्याय पंचम में द्वैताद्वैत संप्रदाय के टीकाकार श्री केशव कश्मीरी भट्ट, शुकसुधी, वंशीधर का प्रामाणिक इतिवृत आदि प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भागवत पर शुकसुधी की ही एकमात्र टीका निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व निभाती है, किन्तु इनके जीवन परिचय के वारे में अभी उक्त सम्प्रदाय के अधिकारी विद्वान भी कुछ निर्णय नहीं कर सके हैं तथापि उपलब्ध सामग्री से कतिपय तथ्य प्रस्तुत किये हैं।

अध्याय षष्ठ में शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार श्री वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथजी, पुरुषोत्तमदासजी, गिरधरजी के साथ उक्त सम्प्रदाय से संबंधित श्री किशोरीप्रसादजी का परिचयादि प्रस्तुत किया है। यद्यपि किशोरीप्रसाद की सम्प्रदाय वंशीअली की सम्प्रदाय है जो वल्लभ सम्प्रदाय से सर्वतोभावेन पृथक है, तथापि विष्णुस्वामी की शाखा में वंशीअलीजी की स्थिति मानने से विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुगामी आचार्य वल्लभ एवं किशोरीप्रसाद को एक अध्याय में रखना अवरुद्ध ही है।

अध्याय सप्तम में चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी श्री सनातन गोस्वामी, जीवगोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, बलदेव विद्याभूषण एवं राधारमणदास पर प्रकाश डाला गया है। वृहत्तोषिणी एवं वैष्णवतोषिणी नामक भागवत टीका में अभेद माना जाता है, किन्तु दोनों टीकाओं के प्रकाशन आदि बाह्य साक्ष्य तथा दोनों के गद्य भाग की तुलना आदि आभ्यन्तर साक्ष्य के आधार पर उक्त भ्रान्ति का निराकरण किया गया है।

अध्याय अष्टम में लगभग १५० श्लोकों का अध्ययन टीकाकारों की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। उक्त अध्ययन में टीकाकारों के परस्पर विरोध या

अनुमोदन का उल्लेख तो किया है, साथ ही कतिपय शंकाओं का निराकरण भी किया है। यथा परीक्षित की मृत्युकालीन अवस्था का विचार वाराहावतार मत्स्यावतारकालीन प्रलय, कृष्ण के अंगन्यास-करन्यास आदि इस कोटि में रखे हैं। पूतना को देखकर कृष्ण के नेत्र जिमीलन की अनेक कल्पनाएं तथा रास में चन्द्रोदय की उत्प्रेक्षाएं, रास-प्रसंग में गोपियों के नीचे मुख करने के अनेक भाव एवं योगमाया के अनेक अर्थ पौराणिक मान्यताओं के साथ प्रस्तुत किये हैं। इस अध्याय में श्रीकृष्ण लीला समय विचार आदि कुछ स्थल बिना श्लोकों के भी प्रस्तुत किये हैं। एक भी श्लोक ऐसा नहीं रखा है जिस पर टीकाकारों का कोई अर्थ भेद आदि न हो।

अध्याय नवम में भगवत्तत्वों का निरूपण किया है। श्रीकृष्ण, श्रीराधा ब्रज, गोवर्धन, वेणु, रासलीला, भक्ति, ज्ञान, मुक्ति का विवेचन प्रस्तुत किया है। परिशिष्ट में सहायक ग्रंथ तालिका के साथ शोध प्रबन्ध पूर्ण हुआ है।

प्रबन्ध के पूरा होने का श्रेय निर्देशक डा० ब्रजमोहन चतुर्वेदी को हैं जिन्होंने आगरा कालेज से दिल्ली विश्वविद्यालय पहुँचकर भी न केवल इस प्रबन्ध का सम्यक् निर्देशन ही किया अपितु समय-समय पर अपनी प्रेरणा से मुझे निरन्तर प्रोत्साहित भी करते रहे हैं। मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूं जिनकी प्रेरणा के फलस्वरूप यह शोध प्रबन्ध इस रूप में लिखा जा सका है। इनके अतिरिक्त अपने संस्थान के निदेशक विद्वन्मूर्धन्य श्री भक्तिहृदय वन-महाराजजी रेक्टर इन्स्टीट्यूट आफ ओरियन्टल फिलासफी वृन्दावन का अत्यन्त आभारी हूं जिनकी प्रेरणा से मेरा शैथिल्य सर्वदा दूर होता रहा। यहां डा० हरिदत्त शास्त्री अध्यक्ष; संस्कृत विभाग, डी० ए० वी० कालेज कानपुर का स्मरण करना भी अत्यन्त आवश्यक है तथा श्री ब्रजवल्लभशरण, श्रीजी कुंज, वृन्दावन के प्रति भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। इन सबके अतिरिक्त मैं उन सबके प्रति कृतज्ञ हूं जिनकी अनन्त शुभकामनाएं इस प्रबन्ध की पूर्ति के साथ जुटी हुई हैं।

प्रकाशक महोदय श्री प्रमोदविहारी जी सक्सेना, राजश्री प्रकाशन, ने यदि लगन पूर्वक योग न दिया होता तो यह इतनी शीघ्रता में कभी प्रकाशित न होता अतः इन्हें साधुवाद देना परमावश्यक है। मुद्रण कर्ताओं को धन्यवाद देना भी आवश्यक है। इस शोध प्रबन्ध में जो प्रमाद वश त्रुटियां हुई हैं उन्हें विद्वज्जन सुधारकर पढ़ने की कृपा करें। पर्याप्त ध्यान देने पर भी मुद्रण संबन्धी विवशता में बाध्य होना पड़ा है उसके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूं और भविष्य में शीघ्र अति शीघ्र इसके अभिनव संस्करण में उनका परिमार्जन करने की पूर्ण चेष्टा करूंगा।

—वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

श्रीमद्भागवत—(क) कर्ता-वेद व्यास, व्यक्तिगत परिचय, समय, शिष्य परम्परा, कृतियां। (ख) निर्माण हेतु, रचना काल, परिमाण, स्कन्ध, अध्याय एवं श्लोक संख्या विमर्श। (ग) टीकाऐं एवं टीकाकार–विशिष्ट, सामान्य एवं वैष्णव सम्प्रदाय, रामानुज, माध्व, निम्बार्क, शुद्धाद्वैत तथा चैतन्य आदि मत तथा भागवत। ९–४८

द्वितीय अध्याय

उपजीव्य टीकाकार—(१) चित्सुखाचार्य : परिचय, सम्प्रदाय, स्थित काल कृतियां, टीका वैशिष्ट्य (२) श्रीधर स्वामी : परिचय, सम्प्रदाय, स्थित काल, कृतियां, टीका वैशिष्ट्य (३) मधुसूदन सरस्वती : परिचय, सम्प्रदाय, स्थित काल कृतियां, टीका वैशिष्ट्य। ४९–८४

तृतीय अध्याय

विशिष्टाद्वैत मत के टीकाकार—(१) सुदर्शन सूरि (२) वीरराघवाचार्य (३) भगवत्प्रसाद (४) श्रीनिवास सूरि (५) योगी रामानुजाचार्य। ८५–१०२

चतुर्थ अध्याय

द्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार—(१) मध्वाचार्य (२) विजयध्वज तीर्थ (३) व्यास तत्वज्ञ (४) लिंघेरी श्रीनिवास (५) श्रीनिवास तीर्थ (६) छलारि नारायणाचार्य (७) चेट्टी वैंकटाचार्य (८) शेषाचार्य (९) सत्याभिनव (१०) अनन्ततीर्थ (११) सत्यधर्मयति (१२) पांघरी निवासाचार्य (१३) धनपति मिश्र। १०३–१३८

पंचम अध्याय

द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार—(१) केशव कश्मीरी भट्ट (२) शुकसुधी (३) वंशीधर (४) गंगा सहाय १३९–१६४

षष्ठ अध्याय

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार—(१) वल्लभाचार्य (२) विट्ठल नाथ जी (३) पुरुषोत्तम जी (४) गिरधर लाल जी (५) किशोरी प्रसाद । १६५–२००

सप्तम अध्याय

मध्व गौड़ीय सम्प्रदाय के टीकाकार—(१) सनातन गोस्वामी (२) जीव गोस्वामी (३) विश्वनाथ चक्रवर्ती (४) बल्देव विद्याभूषण (५) राधारमण दास गोस्वामी (६) रामनारायण मिश्र । २०१–२४४

अष्टम अध्याय

टीकाकारों की दृष्टि में श्रीमद्भागवत के कतिपय विशिष्ट स्थल । २४५–३३६

नवम अध्याय

भगवत्तत्व—(१) श्रीकृष्ण (२) श्री राधा (३) व्रज (४) गोवर्धन (५) वेणु (६) रास (७) भक्ति (८) ज्ञान (९) मुक्ति । ३३७–३९०

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ सूची ३९१–३९६
शुद्धि पत्र ३९७

प्रथम अध्याय

श्रीमद्भागवत

(क) कर्त्ता-वेदव्यास, व्यक्तिगत परिचय, समय, शिष्य परम्परा, कृतियाँ ।

(ख) निर्माण हेतु, रचना काल, परिमाण-स्कन्ध, अध्याय एवम् श्लोक सँख्या विमर्श ।

(ग) टीकाएँ एवम् टीकाकार–विशिष्ट, सामान्य एवम् वैष्णव सम्प्रदाय, रामानुज, माध्व, निम्बार्क, शुद्धाद्वैत तथा चैतन्य आदि मत तथा भागवत ।

श्रीमद्भागवत

(क) कर्ता-व्यास

वैष्णव सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत पुराण अपौरुषेय माना जाता है। यह चार श्लोकों में ब्रह्मा ने नारायण से प्राप्त किया था। भागवत के द्वितीय स्कन्ध के नवमाध्याय में "अहमैवासमैवाग्रे" इत्यादि चार श्लोक "चतु:श्लोकी-भागवत" के नाम से प्रसिद्ध हैं। विश्वनाथ चक्रवर्ती ने स्पष्ट लिखा है :—

> "प्रश्नस्य प्रथमस्योक्ताद्वितीयस्योत्तरं वदन्
> चतु:श्लोकी भागवतप्रवृत्ति नवमेऽतनोत्।"[१]

तथा ३० वें श्लोक की व्याख्या में—"अत्र परावरे.......एतदेव भगवद्दत्तोत्तर चतुष्टयात्मकमेव श्रीभागवत शास्त्रं श्रीभगवत्प्रोक्तत्वेन प्रसिद्धम्" एवं ३५ वें श्लोक की टीका के अन्त में "इति चतु:श्लोकी भागवत विवृतिः सम्पूर्णा" लिखा गया है।

क्रम सन्दर्भकार ने भी इसका निर्देश किया है।[२] निम्बार्क टीकाकार शुकदेव ने इसे सूक्ष्म भागवत कहा है।[३] वर्तमान काल में उपलब्ध भागवत पुराण अष्टादश सहस्र श्लोकों का महाकाय ग्रन्थ है एवं इसके रचयिता कृष्ण-द्वैपायन व्यास हैं।

यद्यपि भागवत मूल में उनकी कृतित्व का पर्याप्त प्रमाण है यथा—नारद व्यास सम्वाद, तथापि टीकाकारों ने प्रथम श्लोक की टीका में मंगलाचरण की सार्थकता सिद्ध करने वाले हेतुओं के साथ कृष्णद्वैपायन व्यास के नाम का उल्लेख किया है।[४] इनके कर्त्तृत्व का सन्देह मैत्रैय की उस परम्परा

---

१. सारार्थ दर्शिनी २।९ प्रथम कारिका।

२. "अथतत्र परमभागवताय ब्रह्मणे श्रीमद्भागवताख्यं निजशास्त्रं उपदेष्टुं तत्प्रतिपाद्यतमं वस्तु चतुष्टयं प्रतिजानीते।" (क्रम सन्दर्भ २।९।३०)

३. अधुना राजप्रश्नोत्तरं श्रीमद्भागवताख्यानैनैव वक्तुं तन्मूलभूतं ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं सूक्ष्मं भागवतं विवक्षु: ....। (सिद्धान्त प्रदीप २।९।१)

४. (क) सत्यवत्यां भगवदंशेनावतीर्णो बादरायणो........। (भाग० चं० चं० १।१।१)
   (ख) सत्यवत्यां पराशरादवतीर्णो व्यासनामा। (पद रत्नावली)
   (ग) इह खलु वेदव्यासः ....। (सिद्धान्त प्रदीप)
   (घ) ....वेदव्यासो नारदोपदेशतः ....(राधामोहन तर्कवाचस्पति)

के द्वारा है जिसमें व्यास का नाम ही उल्लिखित नहीं है।[१]

भागवतकर्ता के चार नाम निम्नलिखित हैं—

(१) व्यास[२] (२) कृष्णद्वैपायन[३]
(३) बादरायण[४] (४) पराशरसूनु यापाराशर[५]

"व्यास" शब्द वेदव्यास का संक्षिप्त रूप है। पुराणों में अधिकाँश में यही नाम उपलब्ध होता है वेदों के विस्तार के कारण यह नाम पड़ा था— यह महाभारत में लिखा है।[६] एक वेद के चार वेद का प्रमाण श्रीमद्भागवत में प्राप्त है—

"व्यदधात् यज्ञ सन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम्" (भागवत १।४।१९)

द्वैपायन नाम द्वीप में रहने के कारण पड़ा था एवं कृष्ण वर्ण होने के कारण वे कृष्ण द्वैपायन कहलाये थे।[७]

बादरायण नाम बदरी वृक्षों के आश्रय लेकर निवास करने के कारण प्रसिद्ध हुआ। व्यास के आश्रम में बदरी वृक्ष बाहुल्य का वर्णन श्रीमद्भागवत में उल्लिखित है—

"तस्मिन् स्व आश्रमे व्यासो बदरीखण्डमण्डिते" (भागवत १।७।३)

रासपंचाध्यायी के टीकाकार ने 'बादरायण' की व्युत्पत्ति टीकारम्भ में की है।[८]

---

१. व्यास की कृति नारायण परम्परा की भागवत है। शुकदेवजी ने दोनों परम्पराओं को मिलाकर राजा को भागवत पुराण सुनाया था। अन्यथा मूल से विरोध पड़ेगा। (भागवत ३।८।३-७-८-९)

२. भागवत १।४।२४, २।४।६, ३।५।१०, ११।१६।२८, ११।२७।२, २९, १२।१३।१९, १२।६।३६।

३. भागवत २।७।१, २।२०।३।

४. भागवत ९।२२।२२, २५।

५. भागवत १०।८४।५७।

६. "विव्यास वैदान् यस्मात् स तस्मात् व्यास इति स्मृतः"
(महाभारत आदि पर्व ६३।८८)

७. "एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात्
न्यस्तो द्वीपे स यद्बालस्तस्माद् द्वैपायनः स्मृतः।"
(महाभारत, आदिपर्व, ६३।८६)

८. "बदराणां समूहो बादरम् तदयनमाश्रयोयस्यासौ बादरायणो व्यासः।"
(विशुद्ध रस दीपिका १०।२९।१)

बदरिकाश्रम भी कहाँ था ? यह निश्चित नहीं क्योंकि श्रीमद्भागवत के सर्व प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी के व्याख्यान "अनेनैव बदरिकाश्रम स्थानं सूचितम्"[1] की टिप्पणी करते हुए श्री वंशीधर ने स्पष्ट लिखा है कि यह 'गंधमादनस्थ' बदरिकाश्रम नहीं अपितु 'सिन्धुवन स्थित' बदरिकाश्रम है । उनके मत के अनुसार 'सरस्वती नदी' तथा 'बदरी खण्ड' भी सिन्धु देश में हैं ।[2]

कतिपय आधुनिक विद्वान् मथुरा स्थित कृष्णगंगा घाट पर 'व्यास चबूतरा' को ही व्यास की जन्म स्थली मानते हैं ।[3] ब्रज में स्थित आदिवद्री का सम्वन्ध भी वे वादरायण नाम से संयुक्त करते हैं ।[4] किन्तु वहुमत 'बदरिकाश्रम' पर्वतीय प्रदेश में ही मानता रहा है, यह ठीक भी है ।

पाराशर्य नाम पिता पराशर की प्रसिद्धि के कारण पड़ा था ।[5]

व्यास जन्म के प्रमुख तीन कारण उपलब्ध हैं—प्रथम तो यह कि परमेश्वर कारण विशेष से ही महान् विभूतियों में अंश या कला द्वारा अवतार ग्रहण करता है । भागवत में विभिन्न अवतारों के विभिन्न कारण निर्दिष्ट किये हैं उनमें वेद रूपी वृक्ष की शाखा का कार्य सत्रहवें अवतार में व्यास रूप से किया ।[6] यह अवतार प्रत्येक द्वापर में माना जाता है ।[7] उक्त श्लोक में भी वेद विस्तार हेतु स्पष्ट निर्दिष्ट है ।

द्वितीय कारण में महाभारत की घटना का उल्लेख किया जा सकता है जिसके अनुसार पराशर ने शिव की आराधना से पुराणकर्ता पुत्र की कामना की और वह पूर्ण हुई ।[8]

तृतीय कारण स्कन्द पुराण में वर्णित उपाख्यान है उसके अनुसार एक समय देवगण धर्म-मार्ग में किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये थे । तब वे नारायण की

---

[1] भावार्थ दीपिका १।४।१५ ।

[2] भावार्थ दीपिका प्रकाश १।४।१५ ।

[3] "वेदव्यास का आश्रम", लेखक बालमुकुन्द, २०२३ वि० ।

[4] गत आषाढ़ी पूर्णिमा को उत्तर प्रदेश के मन्त्री श्री जगनप्रसाद जी रावत ने व्यास स्थली जीर्णोद्धार कार्यसमिति का उद्घाटन भी किया है ।

[5] "पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना" (भागवत १।५।२)

[6] "ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वापुंसोऽल्पमेधसः ।। (भागवत १।३।२१)

[7] "आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां
वेदद्रुमं-विटपशो-विभजिष्यतिस्म ।। (भागवत २।७।३६)

[8] महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय १८ ।

शरण में गये और उनसे अपना कष्ट निवेदन किया, भगवान ने धर्म संशय निवारणार्थ उन्हें आश्वासन दिया तथा सत्यवती में उनके कार्य की सिद्धि के लिये जन्म ग्रहण किया।[१]

(अ) व्यक्तिगत परिचय :

महर्षि व्यास ईश्वर के सत्रहवें अवतार हैं, तथापि लोक-मर्याद के लिये मानव जाति से सम्बन्ध आवश्यक मानकर हा लोक-प्रवृत्ति मान्य होती है।

महर्षि व्यास की माता सत्यवती तथा पिता पराशर मुनि थे।

"जयति-पराशर सूनुः सत्यवती-हृदय-नन्दनो व्यासः"[२]

उक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है। इनके पूर्वजों का सम्बन्ध प्रजा स्रष्टा ब्रह्मा से सीधा था। ब्रह्मा के मानस पुत्र वसिष्ठ थे, वसिष्ठ के पुत्र शक्ति तथा शक्ति के पुत्र पराशर थे जो व्यास जी के पिता थे। इनकी माता के जन्म की विचित्र कथा मिलती है[३] :—

"चेदि देश में एक उपरिचर नामक वसु था, उनकी स्त्री का नाम 'गिरिका' था। गिरिका की सुन्दरता अप्सराओं की भी ईर्ष्या वन चुकी थी। एक समय उपरिचर मृगया करते हुए एक सघन वन में प्रविष्ट ही हुए थे कि कामदेव ने अपना लक्ष्य साधा और उन पर अपना पूर्ण प्रहार किया। उपरिचर कामवेग रोकने में असमर्थ सिद्ध हुए किन्तु वीर्य के सदुपयोग एवं पत्नी के रजोधर्म का काल लक्षित करते हुए उन्हें एक युक्ति सूझ पड़ी, वे उठे और वृक्ष के कोमल पत्रों का एक पुटक (दोना) बनाया उसमें वीर्य स्थापित कर अपनी पत्नी के समीप पहुँचाने के लिये अपने साथ में स्थित श्येन, पक्षी की

---

१. **एतस्मिन्नन्तरे मूढा धर्म मार्गे सुरर्षयः**
संकीर्ण बुद्धयो देवा ब्रह्म रुद्र पुरोगमाः ॥
शरण्यं शरणं जग्मुर्नारायण मनामयम्
तैर्विज्ञापितकार्यस्तु भगवान् पुरुषोत्तमः ॥
अवतीर्णो महायोगीसत्यवत्यां पराशरात् ॥

(स्कन्द पुराण, वैष्णव खंड, अध्याय ७, पृष्ठ ७८५)

श्रेय—भागवतांक पृष्ठ ६८

२. **महाभारत आदिपर्व के प्रारम्भ में—गीता प्रेस गोरखपुर हिन्दी टीका संस्करण, श्लोक १४।**

३. **महाभारत आदिपर्व, अध्याय ६३।**

चोंच में रखकर अपने देश की ओर भेज दिया। आकाश के सुदूर प्रान्त में उड़ते हुए श्येन को आकाशचारी 'चील' पक्षी ने देखा और उसके मुख में मांस खण्ड समझ कर वेगपूर्वक प्रहार किया, थोड़े संघर्ष के उपरान्त ही श्येन की चोंच से वह पुटक सरिता में जा पड़ा, एवं नदी में आते आते उसके दो भाग हो गये। उन दोनों भागों को एक मत्स्य ने आत्मसात कर लिया। द्विघा वीर्य ग्रहण करने के कारण उसके युगल सन्तति उत्पन्न हुई। धीमरों ने मत्स्य के उदर से युगल सन्तति ग्रहण कर पुत्र का मत्स्य एवं कन्या का मत्स्य गन्धा नाम रखा।''

यही मत्स्य गन्धा पराशर की गान्धर्व विवाह की पत्नी बनी और उसने विश्व विश्रुत व्यास को जन्म दिया।

महर्षि वेद व्यास का जन्म भागीरथी के तट पर माना जाता रहा है। पुराणों में गँगा के साथ कालिन्दी का भी उल्लेख है, वाराह पुराण में 'कृष्ण गंगा' स्थान व्यास की तपोभूमि कहा है।[1] यह तीर्थ अद्यावधि, सोमतीर्थ तथा वैकुण्ठ तीर्थ के मध्य में माना जाता है। यहाँ से थोड़ी दूर ही छांदेरी ग्राम है जो मछोदरी का निकटतम अपभ्रँश है। मत्स्योदरी यमुना में रहती थी और वही पराशर मुनि ने उसमें गर्भ स्थापित किया एवं उसके प्रतिक्षण निषेध करने पर भी यह कृत्य कर उसे पुनः कन्या अवस्था प्राप्त होने का तथा विश्व-विख्यात पुत्र प्राप्त होने का वरदान दिया।[2]

सत्यवती गर्भवती हो गई और उसने यमुना द्वीप में काम के समान सुन्दर पुत्र को जन्म दिया, जन्म लेते ही व्यास चल दिये, माता के आग्रह करने पर कहा कि तुम्हें जब भी कोई कार्य हो मेरा स्मरण करना।[3]

१- सोम वैकुण्ठयोर्मध्ये कृष्णगंगेति कथ्यते
तत्रातप्यत्तपो व्यासो मथुरायां स्थितोऽमलः॥
(वाराह पुराण, अध्याय १७५)

२- एकदा तीर्थयात्रायां व्रजन् पाराशरो मुनिः
आजगाम महातेजा कालिन्धास्तटमुत्तमम्॥
कामार्त्तस्तु मुनिर्जातो……………………
सापि सत्यवती जाता सद्यो गर्भवती सती
सुषुवे यमुना द्वीपे पुत्रं काममिवापरम्॥
(देवी भागवत, स्कन्द २, अ० २, श्लोक ३३-३७)

३- स्मर्त्तव्योऽहं तदाशीघ्रमागमिष्यामि भामिनि॥
इत्युक्त्वानिर्ययौ व्यासः साऽपिपित्रान्तिके गता॥
(उपर्युक्त श्लोक ३८)

(आ) व्यास का समय :

श्रीमद्भागवत के रचयिता वेदव्यास का जन्म कब हुआ यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता तथापि यह निश्चित है कि व्यास द्वापर युग में थे। इस द्वापर युग को व्यतीत हुए ५०६७ वर्ष हुए हैं इसके पूर्व व्यास का जन्म हुआ था। भागवत के टीकाकार भी द्वापर युग में व्यास का जन्म स्वीकार करते हैं तथापि कतिपय टीकाकार त्रेता युग में भी इनका जन्म सिद्ध करते हैं। त्रेता युग मानने वाले टीकाकार श्री राधारमणदास गोस्वामी हैं। इन्होंने 'भावार्थ दीपिका दीपनी' नामक टीका में त्रेता युग का अवसान काल व्यास जन्म माना हैं :—

"तृतीयत्वं कलिमादाय वैपरीत्येन गणनया त्रेता युगावसाने"[1]

बुधरंजनी टीकाकार ने त्रेता तथा द्वापर की सन्धि स्वीकार की है, इनका मत भी दीपिनीकार ने अपने पक्ष की पुष्टि के लिए उद्धृत किया है।[2]

रामानुज सम्प्रदाय के प्रसिद्ध टीकाकार श्री वीर राघव ने एवं मध्व सम्प्रदाय के आचार्य विजयध्वज ने द्वापर युग का अन्त व्यास का जन्मकाल माना है।

"द्वापरे समनुप्राप्ते तत्रापि तृतीयेऽस्य युगस्य पर्यायेऽवसाने पराशराद्दषेवसिव्यामुपरिचर वसु वीर्य जातायां सत्यवत्यां........व्यासः जातः ॥"[3]

यह निश्चय आचार्य वल्लभ, आचार्य विश्वनाथ, तथा आचार्य शुकदेव ने भी अपनी अपनी टीकाओं में किया है।

वस्तुतः व्यास का जन्म द्वापर में ही संगत है, क्योंकि धर्म की द्विपरता में व्यास का जन्म माना जाता है, धर्म की द्विपरता द्वापर में ही होती है।

---

[1] दीपनी १।४।१४.

[2] परिवर्तें समाप्ति काले सन्धावित्यर्थः। इति बुधरंजनी
(दीपनी—१।३।१४-२१)

[3] (क) भागवत चन्द्रचन्द्रिका-१।४।१६.
(ख) "कृतयुगापेक्षया तृतीये द्वापरे युते युग पर्यवसाने...........अतोद्वापरे युगपर्यवसाने भागवत प्रवृत्तिः। (पद रत्नावली १।४।१६)
(ग) ब्रह्म कल्पस्यप्रथममन्वन्तरस्य तृतीय युग पर्यावृत्तौ व्यासस्य जन्म........ कृते त्रेतायां न जन्म किन्तु धर्मस्यद्विपरतायां सन्देहे सर्वेषामेव सन्देहः।
(सुबोधिनी १।४।१६)

इस विभिन्न विवेचन का कारण भागवत का वह श्लोक है जिसमें समास द्वारा कई अर्थ निकाले गये हैं ।[१] देवी भागवत में भी द्वापर में व्यास जन्म का उल्लेख है ।[२]

त्रेता युग का अवसान मानने से महाभारत के वाक्य से विरोध आकर पड़ता है, क्योंकि ६०० वर्ष के व्यास के द्वारा धृतराष्ट्र का जन्म होना लिखा गया है । अतः द्वापर के ६०० वर्ष पूर्व एवं आज से (सं० २०२३ से—६०० +५०६७)=५६६७ वर्ष पूर्व आषाढ़ शुक्ल पक्ष पूर्णिमा को हुआ था, यह निश्चित है । व्रज में आषाढ़ी पूर्णिमा को व्यास का जन्म महोत्सव मनाया जाता है ।

(इ) शिष्य परम्परा :

महर्षि व्यास के अगणित शिष्य होंगे किन्तु उनके रचित श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार उनके वेद विभाग के शिष्य थे—१. पैल, २. जैमिनि, ३. वैशम्पायन, और ४. सुमन्तु । इनमें पैल ऋग्वेद के, जैमिनि सामवेद के, वैशम्पायन यजुर्वेद के, सुमन्तु अथर्ववेद के शिष्य थे । व्यास ने एक वेद की चार शाखाएँ कीं और उन्हें उक्त विद्वानों को पढ़ाईं ।[३]

इतिहास एवं पुराण के शिष्य रोमहर्षण सूत थे ।[४] द्वादश स्कन्ध में पौराणिक ६ शिष्यों का भी उल्लेख है[५] :—

१. त्रय्यारुणि २. काश्यप ३. सावर्णि ४. अकृतव्रण ५. वैशम्पायन ६. हारीत ।

---

[१] द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्ययै
जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः । (भागवत १।४।१६)

[२] द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपेण सर्वदा
वेदमेकं स बहुधा कुरुते हित काम्यया ॥ (देवी भागवत १।३।१८)

[३] तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कवि ।
वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥
अथर्वांगिरसामासीत् सुमन्तुर्दारुणो मुनिः ।
(भागवत १।४।२१-२३.)

[४] इतिहास पुराणानां पितामेरोमहर्षणः । (भागवत १।४।२३)

[५] त्रय्यारुणिः काश्यपश्चसावर्णिरकृतव्रणः ।
वैशम्पायनहारी तौषडवैपौराणिका इमे ॥ (भागवत १२।७।५)

(ई) कृतियां :

महर्षि व्यास ईश्वर के अवतार माने जाते हैं, अतः उनकी रचनाओं के परिमाण को एक व्यक्ति की कृति मानकर संशय करना निर्मूल है। ब्रह्मसूत्र, अष्टादश पुराण और महाभारत उनकी प्रसिद्ध कृति हैं।

"अष्टादश पुराणानां कर्ता सत्यवती सुतः ।"

वाक्य से एवं विभिन्न पुराणों में उपलब्ध उनके नाम से उनका कर्तृत्व सिद्ध है।[1] इनमें न केवल वेदव्यास के नाम अपितु उनके विषय में भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है।

देवी भागवत में २७ व्यासों के नामोल्लेख पूर्वक अट्ठाईसवें द्वापर के व्यास को ही १८ पुराण निर्माता लिखा है। यद्यपि कतिपय उपपुराण भी व्यास की रचना कहे गए हैं तथापि भागवत में अष्टादश पुराणों का ही उल्लेख है, उपपुराण या अविपुराणों का नहीं।

पुराणों के नाम निम्नलिखित हैं[2] :—

ब्रह्म, पद्म, वैष्णव, शैव, लिंग, गरुण, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मत्स्य, कौर्म, ब्रह्माण्ड।

इन पुराणों में पूर्वापर रचना किसी भी प्रकार निश्चित दिशा का संकेत नहीं देती क्योंकि सभी पुराण ग्रन्थ सभी पुराणों में उपलब्ध हैं। व्यास ने कई बार इनका संशोधन भी किया था।

१९–महाभारत—इसके बारे में प्रसिद्ध है कि यह 'महाभारत युद्ध'

---

[1] पद्मपुराण सृष्टि खण्ड भाग १, पृष्ठ ३,
ब्रह्म पुराण, अध्याय २६, ब्रह्म बैवर्त पुराण १।१०।६,
कूर्म पुराण, अध्याय ५१,
देवी भागवत १।४, सभी मोर प्रकाशन कलकत्ता।
विष्णु पुराण, अंश ३—गीता प्रेस गोरखपुर १६६० ई०।
शिव पुराण, अध्याय ६४–ज्ञान संहिता, मुम्बई।
भविष्य पुराण १।१।१—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ।

[2] भागवत १२।७।२३-२४
मद्वयं-भद्वयं-चैव-ब्र-त्रयं-व-चतुष्टयम्
अना-प-लिंग-कूस्कानि पुराणानिप्रचक्षते। (देवी भागवत १।३।२)

के पश्चात ३ वर्षों में लिखा गया था ।[1] इस महाभारत के विषय में भी मतैक्य नहीं है । 'जयनामेतिहासोऽयं'[2] से ज्ञात होता है कि प्रथम जय नामक ग्रन्थ लिखा गया था—

'नारायणं नमस्कृत्य·······जयमुदीरयेत्' (भागवत १।२।४)

भागवत भी जय की पुष्टि करता है । उसके उपरान्त 'भारत' का उल्लेख है तथा सर्वाधिक गौरवशाली होने के कारण इसका नाम महाभारत पड़ा—'महत्वाद्भारवत्वाच्चमहाभारतमुच्यते ।' महाभारत का एक अंश ही इतना प्रसिद्ध है कि जिसकी कोटि का भारत में कोई द्वितीय ग्रन्थ नहीं ठहरता, वह ग्रन्थ है—श्रीमद्भगवद्गीता, जो उपनिषदों का सार है एवं भगवान श्रीकृष्ण के मुख से निःसृत होने के कारण और भी गौरवशाली है ।

२०–ब्रह्मसूत्र —भारतीय वाङ्मय में ब्रह्मसूत्रों का अपना एक विशिष्ट स्थान है । समस्त संस्कृत साहित्य अध्यात्मपक्ष में तब तक प्रामाणिक कोटि में नगण्य है जब तक ब्रह्मसूत्रों से पुष्ट नहीं होता ।[3]

भारत के प्रसिद्ध सम्प्रदायाचार्य अपनी सम्प्रदाय का महत्व ब्रह्मसूत्र प्रमाण द्वारा ही स्वीकार करते हैं । समस्त दर्शन इनसे अनुप्रमाणित हैं । इनकी संख्या ५०० से अधिक है । आचार्य विजयध्वज ने वेदार्थ निर्णय के लिए इनकी रचना स्वीकार की है ।[4]

२१-व्यास स्मृति[5]—व्यास के नाम से एक स्मृति भी उपलब्ध है ।

(ख) श्रीमद्भागवत :

(अ) निर्माण हेतु :—

श्रीमद्भागवत वैष्णवों का परम धन है श्रीधर स्वामी इसमें ज्ञान की

---

१. त्रिभिर्वर्षे सदोत्थायीकृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
कृतवान् भारताख्यानं... ....।। (महाभारत १।६२।५२)

२. महाभारत उद्योगपर्व १३६।१८

३. वैदिक कौश–ले० भगवद्दत्त, प्रथम भाग (भूमिका) पृष्ठ २५ में व्यास को ब्रह्म सूत्र रचियता माना है ।

ब्रह्मसूत्रों का तुलनात्मक अध्यन, पृष्ठ १४ में ब्रह्मसूत्रकर्ता तथा पुराण कर्ता व्यास पृथक् लिखा है ।

४. "अय................वेदस्तदर्थं निर्णयेच्छुर्विरचित ब्रह्म सूत्रः ।
(पदरत्नावली १।१।१)

५. स्मृति सन्दर्भ—मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता ।

महत्ता भी स्वीकार करते हैं ।[1] इसकी रचना वेदव्यास की आत्मा को शान्ति प्राप्त करने के हेतु हुई थी ।[2] सत्रह पुराण एवं महाभारतादि की रचना करने से भी व्यास के चित्त में अशान्ति ही वनी रही तब उनके समीप देवर्षि नारद आये और उन्होंने श्रीकृष्ण की महिमा का प्रतिपादन किया ।[3] इससे यह स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत आत्म-शान्ति प्राप्त करने का एकमात्र साधन है ।

सांसारिक बन्धनों से निवृत्त करने वाले अन्य शास्त्र भी अपना महत्व रखते हैं किन्तु उनके अध्ययन का अधिकार अधिकारी विशेष को दिया गया है, एक भागवत शास्त्र ही सबके लिए समान भाव से सुलभ है, उत्तम, मध्यम अधम त्रिविध प्रकार के अधिकारी इसकी रसमयी, आनन्दमयी कथाओं का पान कर सकते हैं । इस विषय में नारद द्वारा अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त वर्णन का प्रसंग भी महत्व पूर्ण है, क्योंकि नारद स्वयं पूर्व जन्म में एक दासी के पुत्र थे केवल भगवान की कृपा के कारण ही वे द्वितीय जन्म में ब्रह्मा जी के पुत्र बने ।[4]

श्रीमद्भागवत के टीकाकार उपर्युक्त मूल प्रसंग की प्रमाणिकता स्वीकार करते हुए भी अन्य हेतुओं का उल्लेख करते हैं ।

जीवगोस्वामी श्रीमद्भागवत की रचना ब्रह्म सूत्रों का रहस्य स्फोटन के लिए मानते है और वे प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं—"श्री मद्भागवत ब्रह्म-सूत्रों का अर्थ है, भारत के अर्थ का निर्णायक है तथा गायत्री का भाष्य एवं वेदार्थ का विस्तार है—

"अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः
गायत्री भाष्यरूपोऽसौवेदार्थ परिवृंहितः ।"

ब्रह्मसूत्राणामर्थस्तेषामकृत्रिम भाष्य भूत इत्यर्थः। पूर्व सूक्ष्मत्वेन मनस्याविर्भूतं तदैव संक्षिप्य सूत्रत्वेन पुनः प्रकटितम् पश्चाद्विस्तीर्णत्वेन साक्षाच्छ्रीभागवतमिति ।[5]

श्री वीरराघवाचार्य ने वेदान्तार्थ उपवृंहणात्मक श्रीमद्भागवत को माना है ।[6]

---

१. भावार्थ दीपिका १।१।१ । २. भागवत १।४।२७–३१ ।
३. भागवत १।२।६ । ४. भागवत १।५।१०–२७.
५. तत्वसन्दर्भ, पृष्ठ ४८ ।
६. 'वेदान्तार्थोपवृंहणात्मकं श्रीमद्भागवताख्यपुराणमल चिकीर्षुः'
(भागवत चं० चं० १।१।१)

मध्व सम्प्रदाय के आचार्य विजयध्वज ने वेदान्तार्थ का विस्तार मानते हुए यह भी लिखा है कि ब्रह्म सूत्रों के अध्ययन का अधिकार सर्वसाधारण को सुलभ नहीं था, अतः इस भागवत पुराण की रचना की गई।[1]

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य वल्लभ एवं गौडीय सम्प्रदायाचार्य विश्वनाथ, निम्बार्क सम्प्रदायाचार्य शुकसुधी ने 'भक्ति की श्रेष्ठता' ज्ञापन हेतु इस ग्रन्थ रत्न की रचना स्वीकार की है। राधामोहन तर्कवाचस्पति ने श्रीमद्भागवत का निर्माण परमार्थ साधन सिद्धि के लिये लिखा है।[2]

श्रीमद्भागवत की रचना के हेतुओं में यह भी लिखा गया है कि सत्रह पुराण की रचना के उपरान्त भी व्यास महर्षि का चित्त अशान्त बना रहा, यहाँ यह संशय उत्पन्न होता है कि श्रीमद्भागवत में पुराणों की गणना में इसे दोनों प्रकार से उल्लिखित किया गया है, सत्रहवें के पश्चात् तथा पाँचवें एवं आठवें स्थान पर भी। अतः यह पुराण गणना क्रमानुसार किस संख्या पर है यह विचार आवश्यक है।

पद्मपुराण के अनुसार यह अठारहवां पुराण है क्योंकि वहाँ स्पष्ट निर्देश है कि 'सप्ताह पारायण' के समय वहाँ सत्रह पुराण भी आये थे—

वेदान्तानि च वेदाश्चमन्त्रास्तन्त्राणि संहिता
दशसप्त पुराणानि षट्शास्त्राणि समाययुः ॥[3]

श्रीमद्भागवत में इसके विभिन्न संख्याओं पर उल्लेख उपलब्ध हैं। इस प्रकार के उल्लेखों से शंका होना स्वाभाविक है, एक ही वक्ता के मुख से विभिन्न संख्याओं का निर्देश क्यों :—

"दश सप्त पुराणानि कृत्वासत्यवती सुतः।"

भागवत के उक्त श्लोक को अधिक महत्व दिया जाता है तथापि भागवत के ही द्वादश स्कन्ध में इसे पाँचवीं संख्या पर लिखा गया है—ब्रह्म, पद्म,

---

[1] "अथ कलिमलापनुत्तेय .... विभक्तवेदस्तदर्थनिर्णयेच्छुर्विरचित ब्रह्मसूत्रस्तदनधिकारि जनापवर्गायप्रकाशित पुराण संहितो।"
(पद रत्नावली १।१।१)

[2] दीपिका दीपनी १।१।१ में उद्धृत वाक्य।

[3] पद्मपुराण भागवत माहात्म्य, अध्याय ३, श्लोक १५।

5348

वैष्णव, शिव तथा भागवत ।[1] इसे आठवीं संख्या पर भी गिना गया है, अतः इसकी संख्या के बारे से निश्चित कहना कठिन है । यदि इसे पांचवां या आठवां पुराण मान भी लिया जाय तो अन्य उन पुराणों की संख्या जो इसके पश्चात् के हैं किस प्रकार उल्लिखित की गई । केवल ५ या ८ पुराणों की श्लोक संख्या ही इसमें उपलब्ध होती । यदि १८वां पुराण पद्म पुराण के आधार पर मानें तो भागवत के श्लोक प्रमाण से युक्त नहीं ।[2]

यदि भागवतोक्त द्वादश स्कन्ध में पुराण क्रम की उक्ति सूत की मान ली जाय तो द्वादश स्कन्ध एवं प्रथम स्कन्ध के शतशः श्लोक निकल जायगे, फलतः अष्टादश सहस्त्र संख्या की पूर्ति नितान्त कठिन हो जायगी ।

व्यास की रचनाओं में पूर्वापर निर्णय अत्यन्त क्लिष्ट है । सभी पुराणों में प्रायः सभी पुराणों के नाम प्राप्त होने से यह समस्या और भी कठिन बन जाती है ।

ज्ञात होता है कि व्यास एक के साथ अन्य रचना भी प्रारम्भ कर देते थे तथा एक के पश्चात् दूसरी कृति का संशोधन भी करते रहते थे । अतः प्रारम्भ में उन्होंने भागवत् निर्माण का विचार किया और उसे संक्षिप्त रूप से बना दिया तदनन्तर अन्य पुराणों में उसका उल्लेख किया एवं अन्य पुराण पूर्ण होने के उपरान्त अठारहवीं संख्या वाले इस विशालकाय ग्रन्थ का निर्माण किया हो । हम इसे व्यास की अन्तिम कृति कहें तो कोई विसंवाद नहीं होना चाहिये ।

(आ) रचना काल :

वर्तमान समय में उपलब्ध श्रीमद्भागवत पुराण अत्यन्त प्राचीन है तथापि कतिपय विद्वान् इसे १३वीं शताब्दी के आसपास की रचना मानते हैं । नीलकण्ठ शास्त्री ने इसे वोपदेव की कृति लिखा है ।[3]

---

[1] ब्राह्मं दश सहस्त्राणि पाद्मं पंचोनषष्टि च ।
श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विशति शैवकम् ।।
दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पंचविंशतिः ... .।। (भाग० १२।१३। ४-५)

[2] एशियाटिक रिसर्चेज, भाग ८, पृष्ठ ४६७ ।

[3] (क) देवीभागवत उपोद्घात में स्पष्ट लिखा है कि—
"द्वितीयैक पक्षेक देशिनोऽपि विष्णु भागवतं वोपदेव कृतमिति वदन्ति ।"
(ख) पुराण विमर्श, पृष्ठ ११६ ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रंथ में न केवल इसे आधुनिक माना है अपितु इसका रचियता भी प्रसिद्ध विद्वान् वोपदेव को स्वीकार किया है, यह स्पष्ट लिखा है कि यह ग्रन्थ व्यास की रचना नहीं है ।[1]

किन्तु यह निर्मूल है क्योंकि उस ग्रन्थ में वोपदेव को गीतगोविन्दकार जयदेव का भाई माना है । परन्तु वोपदेव के पिता का नाम केशव वैद्य था, जब कि जयदेव के पिता का नाम भोजदेव था । जयदेव बंगाली ब्राह्मण थे । धातु पाठ में वोपदेव ने केशव को वैद्य लिखा है ।[2] अतः वोपदेव तथा जयदेव कथमपि भाई नहीं थे । वोपदेव हेमाद्रि के समकालीन थे, हेमाद्रि महादेव के मंत्री थे, इनका राज्य समय १२६०-१२७१ ई० माना गया है ।

हेमाद्रि के लिये वोपदेव ने तीन ग्रंथ भी रचे थे :—

(१) परमहंस प्रिया (२) हरि लीला (३) मुक्ताफल ।
ये तीनों ग्रन्थ भागवत् पर लिखे गये हैं । हेमाद्रि ने वोपदेव कृत 'मुक्ताफल' नामक ग्रन्थ की टीका भी की थी जिसे 'कैवल्दीपिका' कहते हैं । हेमाद्रि ने वोपदेव को भागवत का कर्ता नहीं लिखा यदि इन्होंने भागवत का निर्माण किया होता तो अवश्य हेमाद्रि उल्लेख करता । हेमाद्रि ने वोपदेव के ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वोपदेव ने व्याकरण के १०, वैद्यक के ९ और तिथि निर्णय का १ तथा साहित्य के ३ एवं भागवत तत्व के ३ ग्रन्थ लिखे थे ।[3] उक्त प्रमाण से भागवत की प्राचीनता सिद्ध होती है, क्योंकि हेमाद्रि ने लिखा है कि वोपदेव ने भागवत तत्व बोधनार्थ तीन ग्रन्यों का प्रणयन किया था । अतः कोलब्रुक, विलसन आदि पाश्चात्य विद्वान् जो श्रीमद्भागवत पुराण को १३वीं

---

[1] सत्यार्थ प्रकाश, उल्लास ११, पृष्ठ ३३५ ।

[2] विद्वद्धनेशशिष्येण-भिषक् केशव-सूनुना ।
तेन वेद पदस्थेन बोपदेव द्विजेन यः ।। (पुराण विमर्श, पृष्ठ ११७)

[3] यस्य व्याकरणे वरेण्य घटना स्फीताः प्रबन्धादश
प्रख्याता नववैद्यकेऽपि तिथि निर्धारार्थं मेकोऽद्भुतः
साहित्ये त्रय एव भागवततत्वोक्तौ त्रयस्तस्य च
मूगीर्वाण शिरोमणेरिह गुणाः के के न लोकोत्तराः ।
(श्रेय भागवतांक संख्या २, पृष्ठ ११, वृन्दावन,संवत् १९९२)

शताब्दी की रचना मानते हैं, उनका मत निर्मूल सिद्ध हो जाता है।[1]

भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी का समय १२००-१३५० विक्रम के मध्य सर्वसम्मत है। इन्होंने श्री चित्सुखाचार्य का उल्लेख किया है। चित्सुखाचार्य का समय नवम शताब्दी माना जाता है। चित्सुखाचार्य ने श्रीमद्-भागवत की टीका भी की थी। चित्सुखाचार्य शंकर की परम्परा में थे एवं शंकराचार्य का समय सप्तम शती का उत्तरार्द्ध है।[2]

शंकराचार्य के कतिपय स्त्रोतों पर भागवत का स्पष्ट प्रभाव है, 'प्रबोध सुधाकर' आदि शंकराचार्य की कृतियाँ मानी जाती हैं, उसमें कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन उपलब्ध है जो भागवत से अनुप्रमाणित है।[3] शंकराचार्य ने इस लीला-वर्णन में व्यास का उल्लेख भी किया है :—

कापि च कृष्णायन्तीकस्याश्चित् पूतनायन्त्याः
अपिवत् स्तनमिति साक्षाद् व्यासो नारायणः प्राह।"[4] (प्रबोध सुधाकर)

फलतः भागवत शंकराचार्य से पूर्व रचित है, यह स्वतः सिद्ध है।

आचार्य शंकर के गुरु गोविन्द पाद थे और उनके गुरु गोडपादाचार्य। गोडपाद ने पंचीकरण व्याख्यान में 'जगृहे पौरुषं रूपं' इति भागवतमुपन्यस्तम् ऐसा लिखा है। उक्त श्लोक भागवत के १।३। का प्रथम श्लोक है।

गोडपाद ने उत्तर गीता में भागवत के
'श्रेयः सृति भक्तिमुदस्य ते विभो' भागवत १०।१४।४
के श्लोक को उद्धत किया है।[5]

अद्वैत सम्प्रदाय की किम्वदन्ती के अनुसार गोडपाद श्री शुकदेव मुनि के शिष्य थे।[6]

भागवत के अन्तः साक्ष्य के आधार पर इसका अन्तिम रूप आज से ५०३७ वर्ष पूर्व माना जा सकता है। भागवत के तीन संस्करण हुए हैं, भागवत में इन तीनों अधिवेशनों की चर्चा है।

शौनक ने सूत से इसकी चर्चा करते हुए तीन प्रश्न किए—

(१) यह भागवत गोकर्ण ने धुन्धकारी को कब सुनाई ?

---

[1] सरस्वती भवन पुस्तकालय (संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी) में बंगाक्षरों में लिखी हुई भागवत की प्रति विद्यमान है जो दशम शती में लिखी गई मानी जाती है, यह प्रति वोपदेव से ८०० वर्ष प्राचीन है।
(पुराण विमर्श, पृष्ठ ११९)

[2] पुराण विमर्श—बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ११९।

[3] वही। [4] वही। [5] उत्तर गीता, अध्याय ३, श्लोक ४८।

[6] वेदान्तांक—कल्याण, पृष्ठ ६३८ (भाग ११, अगस्त सन् १९३६)

(२) यह भागवत सनत्कुमार ने नारद को कब सुनाई ? तथा

(३) यह भागवत शुकदेव ने परीक्षित को कब सुनाई थी ?[1]

शुक परीक्षित सम्वाद—कृष्ण के भू-तल त्याग के ३० वर्ष उपरान्त गंगातट पर भाद्र पद नवमी से प्रारम्भ हुआ,[2] वर्तमान कलियुगाव्द ५०६७ है, यही कृष्ण के परम धाम प्रवेश करने की वर्ष संख्या है,[3] कृष्ण के ३० वर्ष उपरान्त यदि मानें तो ५०३७ वर्ष, भाद्रपद मास शुक्ल पक्ष नवमी (सं०२०३३ में) के दिवस पूर्ण होंगे ।[4]

कतिपय विद्वान् कृष्ण का २५ वर्ष कलि में निवास मानते हैं, उनके अनुसार ५०११ वर्ष हुए ।

श्रीमद्भागवत का द्वितीय संस्करण गोकर्ण द्वारा हुआ । यह संस्करण परीक्षित कथा श्रवण के २०० वर्ष उपरान्त हुआ था—

परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौवर्षशतद्वये
शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत् कथाम् ।
(भागवत माहात्म्य ६।९६)

अर्थात् आज से ४८३७ वर्ष पूर्व द्वितीय संस्करण हुआ, इसकी आरम्भ तिथि आषाढ़ शुक्ल नवमी थी ।

श्री सनत्कुमार ने गोकर्ण के प्रसंग के ३० वर्ष पश्चात् 'भागवत सप्ताह' नारद के लिए सुनाया था (अर्थात् आज से ४८०७ वर्ष पूर्व)[5]

चतुर्थ संस्करण सूतशौनक प्रसंग के कारण नैमिषारण्य में हुआ ।[6] यह प्रसंग अधिक से अधिक १० वर्ष पश्चात् भी मानें तो ४७९३ वर्ष पूर्व और इस कथानक को व्यास जी द्वारा पुनः उपनिवद्ध किया माना जाय और ५ वर्ष का समय अधिक मान लें तो ४७८८ वर्ष पूर्व भागवत का वह रूप निश्चित

---

[1] भागवत माहात्म्य ६।९४ ।

[2] आकृष्णनिर्गमात् त्रिशत्-वर्षाधिक गतेकलौ ।
नवमीतो नमस्ये च कथारम्मंशुकोऽकरोत् । (भागवत माहात्म्य ६।९४)

[3] यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगमितिप्राहुः पुराविदः ॥ (भागवत १२।२।३३)

[4] पुराण तत्व समीक्षा—पृष्ठ १६४ ।

[5] तस्मादपिकलोप्राप्ते त्रिशद्वर्षंगते सति
ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवभ्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ (भागवत माहात्म्य ६।९६)

[6] नैमिषे निमिशक्षेत्र ऋषयः शौनकादयः । (भागवत १।१।४)

हो चुका था जो अद्यावधि प्राप्त है, इसके आगे भागवत रचना काल कथमपि संगत नहीं बैठ सकता।

श्रीमद्भागवत में ही इस ग्रन्थ की दो परम्पराएं उपलब्ध होती हैं। द्वितीय स्कन्ध के अनुसार यह स्पष्ट है कि नारद ने व्यास को भागवत का उपदेश दिया था। एवं नारद को यह उपदेश ब्रह्मा से प्राप्त हुआ था, तथा ब्रह्मा को 'भगवान' से।[1]

तृतीय स्कन्ध के अष्टमाध्याय में संकर्षण ने सनत्कुमार को और उनसे सांख्यायन ने भागवत पुराण ग्रहण किया। सांख्यायन से पराशर ने और उनसे मैत्रेय ने, तब सूत ने। इस परम्परा में कृष्णद्वैपायन का नाम ही नहीं है।[2]

दोनों परम्पराओं का क्रम निम्नलिखित है :—

प्रथम परम्परा	**द्वितीय परम्परा**
परमेश्वर	संकर्षण
|	|
ब्रह्मा	सनत्कुमार
|	|
नारद	सांख्यायन
|	|
व्यास	पराशर-वृहस्पतिः
|	|
शुकदेव	मैत्रेय
|	|
सूत	सूत

---

१. देवर्षिः परिपप्रच्छ……पुराणं दश लक्षणम्।
प्रोक्तं भगवताप्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥
नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप
ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायाभित तेज से ॥ (भागवत २।१०।४४)

२. प्रवर्तये भागवतं पुराणं
आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं संकर्षणं देवमकुण्ठसत्वम् ॥ (भागवत ३।८।३)

सनत्कुमाराय स चाह पृष्ठः सांख्याययायांग धृतव्रताय
जगादसोऽस्मद्गुरुवेऽन्वितायपराशरायाय वृहस्पतेश्च ॥
प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तोमुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यं
सोऽहं तवैतत् कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥ (भागवत ३।८।६)

प्रथम परम्परा के वक्ता शुकदेव हैं। द्वितीय परम्परा के वक्ता–मैत्रेय।

दोनों परम्पराओं में सूत का उल्लेख आवश्यक है क्योंकि वे नेमिषारण्य में शौनकों के समक्ष भागवत-कथा कह रहे हैं।

(इ) परिमाण

(१) स्कन्ध विमर्श

यद्यपि श्रीमद्भागवत एक अलौकिक महाकाव्य अथवा साहित्य की सुन्दरता का सर्वोच्च आदर्श है, तथापि उसके परिणाम के विषय में विसंवाद है। "ग्रन्थोऽष्टादश साहस्रो द्वादश स्कन्ध सम्मितः" के अनुसार इसमें द्वादश स्कन्ध, ३३५ अध्याय एवं अष्टादश सहस्र श्लोक संख्या है। श्रीधर स्वामी ने एक श्लोक भागवत के परिमाण के लिये उद्धत किया है[1] :—

श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरूस्तारांकुरः सज्जनिः
स्कन्धैर्द्वादशभिस्ततः प्रविलसद्भक्त्यालवालोदयः
द्वात्रिंशत् त्रिशतंच यस्यविलसच्छाखाः सहस्राण्यलं
पर्णान्यष्टदशेष्टदोऽति सुलभो वर्गीति सर्वोपरि ॥ (भागवत १२।१३।६)

भी स्पष्ट इसके परिमाण का परिचायक है।

स्कन्ध विचार :—

वर्तमान श्रीमद्भागवत में द्वादश स्कन्ध हैं एवं उसके द्वादश स्कन्धों का ही उल्लेख सर्वत्र विसंवाद रहित है। उसके लिये न तो कोई नियम ही है कि एक स्कन्ध में कितने अध्याय हों और न यही कि एक महापुराण में कितने स्कन्ध हों। पद्म पुराण स्कन्द पुराण आदि में स्कन्धों का कोई महत्व नही वहाँ खण्डों में उनका विभाजन किया गया है। अतः स्कन्धों का क्रम निर्विरोध ही है। भागवत के स्कन्धों का अपना एक पृथक् वैशिष्ट्य है।

"पुराणर्को धुनोदितः"[2] से भागवत को सूर्य की उपमा दी है, सूर्य द्वादश राशियों में भ्रमण करता है, भागवत के द्वादश स्कन्ध ही द्वादश राशि है। भागवत में द्वादश स्कन्ध है और परम पुरुष द्वादशांग है। आचार्य वल्लभ ने द्वादशांग भागवत का पुरुषत्व सिद्ध करते हुए लिखा है कि भगवान की लीला

---

[1] भावार्थ दीपिका १।१।१ मंगलाचरण।

[2] भागवत १।३।४४।

दशविध है—भागवत में "अत्र सर्गो विसर्गश्च" द्वारा सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण ऊती, मन्वन्तरेशानुकथा-निरोध मुक्ति तथा आश्रय का निरूपण भी माना गया है।[2] प्रथम स्कन्ध में अधिकारी का निरूपण है एवं द्वितीय स्कन्ध में साधन का। ये भी लीलाओं में गिने गये हैं। तृतीय स्कन्ध से द्वादश स्कन्ध पर्यन्त सर्गादि लीलाएँ वर्णित की गई है। द्वादश स्कन्ध पुरुष के अङ्गों के कारण है—"द्वादशो वैपुरुषः" यह श्रुति प्रमाण है। भागवत के अवयव एवं पुरुष के अवयवों में भेद हैं, क्योंकि पाद,सक्थि,कटि,गुह्य, उदर, हृदय, कर, मुख, ललाट एवं मूर्धा के क्रम से स्कन्धों का क्रम भिन्न है।

प्रथम स्कन्ध	द्वितीय स्कन्ध	पाद
तृतीय	चतुर्थ	कर
पंचम	षष्ठ	सक्थि
सप्तम		एक कर
द्वादश		द्वितीय कर
अष्टम	नवम	स्तन
दशम		मध्य
एकादश		शिर – है।[1]

---

१. आनन्दस्यहरेर्लीला शास्त्रार्धो दशधाहिसा
अत्रसर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः
अधिकारी साधनानि द्वादशार्धास्ततोऽत्रहि
निरूप्य संख्या स्कन्धा हि द्वादशैव न चान्यथा ॥
(तत्वदीप निबन्ध, भागवतार्थ, कारिका ३)

२. 'पुरुषे द्वादशत्वंहिसक्थौ बाहू शिरोंतरम्
हस्तौपादो स्तनौ चैव पूर्वपादौ करौ ततः
सक्थौ हस्तस्ततश्चैको द्वादशश्चापरः स्मृतः ॥५॥

उत्क्षिप्त हस्तः पुरुषो भक्तमाकारयत्युत ।
तत्र भागवतं विकृत भिव भविष्यतोत्याशंक्य (दृष्टान्तेन प्रकृतोपयोगि रूप माह–उत्क्षिप्त हस्त इति)

स्तनौमध्यं शिरश्चैव द्वादशांग तनुर्हरिः ।
यादृशो भगवान् भागवत रूपो जातस्तादृशोऽयं वर्णितः ॥
(तत्व दीप, भागवतार्थ ५-७)

आचार्य वल्लभ ने ऊँचे हाथ किये पुरुष के, आकर से भागवत के स्कन्धों का सामंजस्य किया है। सुबोधिनी में आचार्य ने प्रथम स्कन्ध को पीठस्थानीय एवं द्वितीय-तृतीय स्कन्ध को चरणयुगल माना है।[१]

(२) अध्याय संख्या विमर्श :

श्रीमद्भागवत में ३३५ अध्याय हैं। किन्तु टीकाकारों में यह संख्या अनेक प्रकार से वर्णित है, कोई ३३२ अध्याय प्रामाणिक मानते हैं, कोई ३३१ कोई इससे भी अधिक।

श्रीधर स्वामी ने "द्वात्रिंशत् त्रिशतंचयस्य०" के व्याख्यान में अपना कुछ अभिमत प्रकाशित नहीं किया। फलतः कुछ टीकाकारों ने अपने अनुसार ३३२, कुछ ने ३२५ अध्याय भी इन्हीं वाक्यों से प्रमाणित किए हैं। श्रीधर स्वामी के पूर्व चित्सुखाचार्य ने भी पुराणार्णव का एक श्लोक उद्धृत किया है, उसमें भी 'द्वात्रिंशन् त्रिशतं' पद रखा है जो विवाद का विषय है।

स्कन्धा द्वादश एवात्र कृष्णेनविहिताः शुभाः।
द्वात्रिंशत् त्रिशतंपूर्णमध्यायाः परिकीर्तिताः॥[२]

रामानुज सम्प्रदाय के टीकाकार श्री सुदर्शन सूरी एवं श्री वीर राघवाचार्य ने तीन अध्यायों को प्रक्षिप्त माना है, किन्तु प्रचलित होने के कारण टीका की है। 'कैश्चित् व्याख्यातत्वाच्च व्याख्यायते' यह लिख दिया है।[३]

उक्त टीकाकारों ने इस विषय पर किसी संख्या विशेष का प्रतिपादन नहीं किया। किन्तु ३३२ अध्याय ही माने हैं।

वोपदेव ने तो प्रत्येक स्कन्ध के अध्यायों की एक तालिका भी दी है, उनके अनुसार भागवत में ३३१ अध्याय हैं :—

अष्टादश, दश, त्रिशतत्र्यधिका नव विंशतिः।
षड्विंशतिर्दश नव पंचभिर्विंशतिस्त्रिभिः

---

[१] प्रथमः पीठतां स्कन्ध द्वयं चरण युग्मताम्
चतुर्थादि कटी नाभि वक्षो दोर्युग कण्ठताम्॥
द्वादशैकादशं शीर्ष मालादित्वमगात् क्रमात्॥
(सुबोधिनी १०।१ कारिका १)

[२] चिन्मय जगत- मराठी, मई १९१५ई० भागवत कथा संग्रह का उद्धहरण।

[३] (क) श्रीरामानुजपादाब्ज कृपासमनुरंजितैः
पूर्वैः प्रक्षिप्तमध्यायत्रयमन्वर्थं मुच्यते॥
(शुक पक्षीया १०।१२ प्रारम्भ)

(ख) भागवत चं० चं० १०।१२।

चतुर्भिश्चाध नवतिरेकत्रिंशत् त्रयोदश
इति भागवतेऽध्याया एकत्रिंशच्छतत्रयम् ।।[1]

उक्त श्लोक के अनुसार अध्याय संख्या निम्न प्रकार है :

वोपदेव-स्कन्ध	अध्याय	अध्याय भागवतानुसरा	अध्याय श्रीनिवासानुसार
प्रथम	१८	१९	२०
द्वितीय	१०	१०	१०
तृतीय	३३	३३	३४
चतुर्थ	२९	३१	३१
पंचम	२६	२६	२४
षष्ठ	१९	१९	१९
सप्तम	१५	१५	१६
अष्टम	२३	२४	२२
नवम	२४	२४	२१
दशम	९०	९०	१०३
एकादश	३१	३१	३१
द्वादश	१३	१३	१३
	३३१	३३५	३४४

वोपदेव ने केवल प्रथम, चतुर्थ तथा अष्टम स्कन्ध में अध्याय कम माने हैं। योग में ४ अध्याय कम हैं। अतः ३३१ अध्याय इनके मतानुसार प्रमाणित हैं। किन्तु उक्त प्रमाण से यह तो असन्दिग्ध हैं कि उन्होंने दशम स्कन्ध में तीन अध्याय प्रक्षिप्त नहीं माने थे। तात्पर्य निर्णय में ३२५ अध्यायों का उल्लेख है।[2] आचार्य वल्लभ ३३२ अध्याय ही मानते हैं, उन्होंने अपनी सुबोधिनी टीका में 'शाखा द्वि वन्हि द्वयम्'[3] कारिका में स्पष्ट निर्देश किया है। न केवल निर्देश

---

[1] हरिलीला ६।

[2] तात्पर्य निर्णय-मध्वाचार्य।

[3] (क) सुबोधिनी १।१।१ कारिका सं०४

(ख) तथा-कथा मात्रं हरेर्वाच्यं सर्वज्ञैत्यत्रकेचन
कथां वक्तुं भागवतीं अवचित् सिद्धामलौकिकीम् ।।
योजयित्वात्वाधुनिका अध्यायत्रितयं जगुः ।
शब्दार्थ संगतीनां हि स्पष्टा तत्रविरुद्धता
लोक प्रसिद्धैस्तच्चापि कथंचिद्रूप्यते स्फुटम्

(सुबोधिनी १०।१२ भूमिका)

अपितु उन्होंने प्रक्षिप्तता के हेतु पर विचार किया है। उनकी प्रथम आपत्ति का विषय है—

"एवं विहारैः कौमारैः कुमारं जहतुर्व्रजे" (भागवत १०।११।५९)

इसकी कथा समाप्त होने पर अघासुर वध के तीन अध्यायों की कथा पश्चात् जोड़ दी गई तथा संगति नहीं बैठती थी, अतः तीन अध्यायों के पश्चात् "एवं विहारैः कौमारैः"[1] की पुनः आवृत्ति की गई है। आचार्य वल्लभ का कथन है कि भागवतकार ऐसी भूल नहीं कर सकते।[2]

गौणीय वैष्णवाचार्य श्री सनातन गोस्वामी ने एक मार्मिक युक्ति दी है, वह यह है कि आचार्य प्रक्षिप्ताध्याय के वाद की चर्चा इसलिए प्रारम्भ करते हैं कि कृष्ण ने समस्त गोपियों एवं गोओं का दुग्धपान कैसे किया ?[3]

उक्त त्रयाध्याय में जब ब्रह्माजी द्वारा वत्सहरण को मान्यता दी जायगी तो अवश्य ही कृष्ण के अनेक रूप और दुग्ध-पान की बात माननी परमावश्यक होगी। अतः आचार्यों ने इस पर खुल कर विवाद किया है। किन्तु मुक्ति को परम पुरुषार्थ मानने वाले वैष्णव ऋजु बुद्धी हैं और इसी भावना से कतिपय टीकाकारों ने—पूतना सद्गति प्रतिपादक छः श्लोक भी अप्रामाणिक माने थे। उक्त अध्यायत्रय प्रायः सभी पुस्तकों में उपलब्ध है तथा प्राक्तन एवं आधुनिक सत्सम्प्रदायानुयायी श्रीधर स्वामी प्रभृति महानुभावों ने भी इसकी व्याख्या की है, अतः प्रक्षिप्त मानना उचित नहीं है।

---

१. भागवत १०।१४।६१।

२. भागवत दर्शन के लेखक ने दशम स्कन्ध के ८८,८६,६० अध्याय वल्लभ मतानुसार प्रक्षिप्त लिखे हैं, किन्तु इसकी पुष्टि अन्यत्र उपलब्ध नही होती। (भागवत दर्शन, पृष्ठ ६४)

३. कैंचित्तत्ववादिनो वैष्णवाः मुक्तेरेव परम पुरुषार्थतां मन्यमाना ऋजुबुद्धयोऽत्रासु मुक्ति गोपीस्तन्य पानादिकंचासहमानाः पूतना सद्गति प्रतिपादकं 'पूतना लोकबालघ्नी' त्यादि श्लोक षटक्मिव, यएतत्पूतना मोक्षमिति-श्लोकमिव च विभीतमित्याहुः तच्चासंगतम्। बहु पुस्तकेषु दृश्यमानत्वात् तथा प्राक्तनैराधुनिकैश्च सत्साम्प्रदायिकैः श्रीधरस्वामिमिर्महद्भिराहत-त्वात्। तथा श्रीवृन्दावने अघासुरवध शाद्वलजेमन-ब्रह्म-स्तुत्यादिस्थान-प्रसिद्धेश्च, किंच पद्मपुराणादौ तद् व्याख्यानं व्यक्तं वर्तत एव, तथा वैष्णवप्रवरगण सिद्धान्तेनापि न विरुध्यत एव।

(बृहद्वैष्णव तोषिणी १०।१२ नंगा०)

जीव गोस्वामी ने अपने तर्क एवं शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा ३३५ अध्याय ही सिद्ध किये हैं ।

(१) सर्वत्र देश में ३३५ अध्याय प्रसिद्ध हैं ।

(२) वासनाभाष्य, सम्बन्धोक्ति, विद्धत्कामधेनु शुकमनोहरा, परमहंसप्रिया, आदि भागवत की टीकाओं में तथाकथित अध्यायत्रय की व्याख्या उपलब्ध है ।

(३) यदि किसी आचार्य की युक्ति सम्प्रदाय में रूढ़ होने के कारण ही इन्हें प्रक्षिप्त सिद्ध करती है तो वे अन्य सम्प्रदायों की स्वीकृति पर स्वीकार क्यों नहीं कर लेते ?

इस प्रकार जीवगोस्वामी ने प्रवल शब्दों में प्रक्षिप्त मानने वाले टीकाकारों की समालोचना की है ।[१] अतः भागवत में ३३५ अध्याय ही मानने चाहिए ।

श्री बलदेव विद्याभूषण ने भी अध्यायत्रय प्रक्षिप्त नहीं माने हैं । 'नवत्यामुनिनाध्यायैः साश्चर्य या प्रकीर्तिता'[२] यदि प्रक्षिप्त ही मानते तो ९० अध्यायों का उल्लेख न करते ।

(क) 'द्वात्रिंशत् त्रिशतं' पद की व्याख्या बड़े विस्तार के साथ राधारमणदास ने की है । उनकी टिप्पणी श्रीधर की कुन्जी कही जाती है । उन्होंने इस वाक्य की व्युत्पत्ति के द्वारा ३३५ अध्याय ही घोषित किये हैं ।

"द्वाम्यामधिका त्रिंशत् द्वात्रिंशत् शतंच शनंच शतंच शतानि द्वात्रिंशच्च त्रयश्च शतानि च तेषां समाहारः द्वात्रिंशत्त्रिशतम् एवं सति पंचत्रिंशदधिक शतत्रयाध्यायाः (३३५) भवन्तीति ।[३]

(ख) गोस्वामी राधारमणदास ने अपने अर्थ की पुष्टि के लिए महामहोपाध्याय गोपाल भट्टाचार्य कृत व्याख्या लेश टिप्पणी का उद्धहरण भी दिया है ।

---

१. तत्र कारणं न पश्यामः सर्वत्र देशे प्रसित्वात् वासनाभाष्य……व्याख्यातत्वात्……तदीय स्वसम्प्रदायानंगीकार प्रामाण्येन तस्याप्रामाण्यं चेत् अन्यसम्प्रदायांगीकार प्रामाण्येन विपरीतं कथं न स्यात ।।

(क्रमसन्दर्भ १०।१२)

२. वैष्णवानन्दिनी १०।१२ ।

- दीपिका दीपिनी १।१।१ ।

(ग) अघासुर वध कथा न मानने वालों को कूप मण्डूक की उपाधि दी है।

“अहोकिमेषां मनोराज्य विजृम्भकाणां कूपमण्डूकानां साहसः” शंकालुओं ने ऋग्वेदीय मन्त्रभागवत, तथा वोपदेव का मुक्ताफल एवं हरिलीला आदि ग्रन्थों का अवलोकन नही किया।

(घ) मधुसूदन सरस्वती ने—‘वत्सचोरब्रह्ममोहो ब्रह्मणास्तवनहरेः’ लिखा है। अतः अघासुर वध प्रक्षिप्त नहीं है।

(ङ) नीलकण्ठ विद्वान् ने—‘कृण्वति वसुपत्नी वसूनाम्’ (ऋग्वेद मन्त्र भागवत १०-१४) मन्त्रों की व्याख्या में दशम स्कन्ध के चतुर्दशाध्याय के ३०वें श्लोक के आगे के कई श्लोक लिखे हैं।

(च) ‘त्रिशतम्’ पद की सिद्धि व्याकरण द्वारा उचित नहीं बैठती। ‘त्रिशती’ प्रयोग वैसे बनेगा जैसे कि त्रिलोकी, पंचशूली आदि प्रयोग समाहार द्वारा बनाये गये हैं। ‘वस्तुतस्तु द्वात्रिंशत्त्रिशतमिति पदान्तर्गत त्रिशतपदमेव न सिद्ध्येत् शतत्रय वोधनाय समाहार द्वन्द्वातिरिक्तान्यसमासाप्राप्त्या……………
त्रिशतीति प्रयोगापतेः।’

(छ) श्रीधर स्वामी को यदि तीन अध्याय प्रक्षिप्त अभीष्ट होते तो दशम स्कन्धीय प्रथमाध्याय में ९० अध्यायों का उल्लेख न करते।

(ज) परमहंस प्रिया आदि प्राचीन टीकाकारों ने तीन अध्यायों को प्रक्षिप्त नही माना। अतः भागवत में ३३५ अध्याय हैं।

उक्त पक्ष में दीपनीकार ने अनेक सबल प्रमाण रखे हैं किन्तु आचार्य वल्लभ के तर्क का समाधान इसमें नहीं हो पाया।

(३) श्लोक संख्या विमर्श :

‘दशाष्टौ श्रीभागवतम्’[१] एवं ‘पर्णान्यष्ट दशेष्टदोऽति’[२] आदि प्रमाणों द्वारा भागवत में पूर्ण अष्टादश सहस्र श्लोकों की संख्या का निर्देश है। किन्तु वर्तमान भागवत पुराण में कई हजार श्लोक कम हैं। जिनकी पूर्ति अनेक युक्तियों द्वारा की जाती है। अन्वितार्थ प्रकाशिका टीकाकार के अनुसार भागवत में १४ हजार

---

१. भागवत १२।१३।५

२. भावार्थ दीपिका १।१।१

दो सौ चौंसठ गद्य-पद्य संख्या हैं ।[१] श्लोक शब्द से ३२ अक्षरों का अनुष्टुप छन्द ग्रहण किया जाता था । हस्तलिखित पुस्तक प्रचार के युग में लिपिकों का पारिश्रमिक इसी गणना द्वारा दिया जाता था । उक्त संख्या को ३२ अक्षर से विभक्त करने पर १६ सहस्र दो सौ उनसठ ।।। संख्या आती है, तथा गद्य में कहीं-कहीं शत से भी अधिक अक्षर हैं और उसकी संख्या एक है । इसी प्रकार बड़े-बड़े छन्द भी हैं पर सोलह सहस्र संख्या उनके अक्षरों के जोड़ एवं ३२ के भाग से उपलब्ध की गई है ।

श्रीमद्भागवत की सम्प्रदायानुसार गणना से उवाचों को एक एक श्लोक मानकर तथा प्रत्येक अध्याय समाप्ति के गद्य के अक्षरों को आनुमानिक डेढ़ श्लोक मानकर अठारह सहस्र संख्या पूर्ण की जाती है । कुल योग में उन्होंने डेढ़ श्लोक कम माना है :—

गद्य पद्य[२]	१४,२६४
गद्यपद्य से बने अनुष्टुपों की संख्या	१६,२५९।।।
उवाच संख्या	१,३२०
अध्यायान्त वाक्य (पुष्पिका)	४१८।।।
कुल योग	१७,९९८।।

आठ टीका संस्करण में—केवल राधारमणदास गोस्वामी ने श्लोक गणना प्रक्रिया के बारे में विचार किया है, उन्होंने लिखा है[३] कि "............ अष्टादश सहस्र श्लोक संख्या क्रमोऽयं प्रत्येकम् उवाचान्त एकैक श्लोक आर्यादि

---

[१] त्रिभूमिनागा, रसनन्दरामा, सार्द्धान् नृपेन्द्राः, भुजबाणशक्राः ।
सार्द्धांगरामादि, मितागजेषु नागोन्मिताः, सार्द्धंखतर्क शैलः ।।
गजाग्नि नन्दा, श्चतुरद्रिगाव, स्त्र्यग्रकं रामा, नगशैल विश्वे ।
सार्द्धाकं षटपंच च गद्य पद्य संख्यात् क्रमात् स्कन्धगतावगभ्या ।।

स्कन्ध	१	२	२	४	५	६
श्लोक	८१३	३९६	१४७६।।	१४५२	७३६।।	८५८
स्कन्ध	७	८	९	१०	११	१२
श्लोक	७६०।।	९३८	९७४	३९७३	१३७७	५६९।।

कुल योग १४२६४ (अन्वितार्थ प्रकाशिका–भूमिका)

[२] भागवत दर्शन, पृष्ठ ६४ में १४,६१५ श्लोक लिखे हैं ।

[३] दीपिका दीपनी १।१।१

नानाविधच्छन्दसां गद्यानां पुष्पिकाणांच········गणनया ये अनुष्टुप् श्लोका भवन्ति ते प्रसिद्धानुष्टुप् श्लोकाश्चेति । काशीनाथोपाध्यायेन चण्डी सप्तशती पाठ क्रमेणापि संख्याः परिगणिता इतितद् व्याख्याने स्पष्टम् ।

उक्त कथन द्वारा स्पष्ट होता है कि भागवत में अष्टादश सहस्र श्लोक संख्या पूर्ण नहीं है । परन्तु यदि विजयध्वजतीर्थ के पाठ को मिलाकर देखा जाय तो 'इति' पुष्पिका के श्लोक बनाने का विलष्ट भ्रम स्वतः दूर हो सकेगा । क्योंकि विजयध्वज के पाठ में लगभग ४५० श्लोक अधिक हैं ।[1]

(ग) टीकायें एवं टीकाकार

यद्यपि श्रीमद्भागवत की अनेक टीकायें हैं तथापि कुछ टीकायें अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं उनमें से कतिपय टीकाओं का अवलम्बन इस शोध प्रबन्ध के लिये किया गया है ।

(१) **विशिष्ट :**

उपजीव्य टीका	**टीकाकार**
१. भावार्थ दीपिका	श्रीधर स्वामी
विशिष्टाद्वैत मत की टीकायें :	
२. शुक पक्षीया	सुदर्शन सूरी
३. भागवत चन्द्रचन्द्रिका	वीरराघव
४. भक्त रंजनी	भगवत्प्रसाद
द्वैत मत की टीकायें :	
५. पदरत्नावली	विजयध्वज
६. मन्दनन्दिनी	व्यास तत्वज्ञ
७, पदमुक्तावली	लिंघेरी श्रीनिवास
८. तात्पर्य विवरण	श्रीनिवास तीर्थ
९. भा० ता० नि० प्रबोधिनी	छलारी नारायणाचार्य
१०. सज्जन हित	चेट्टी वेंकटाचार्य
११. मन्द बोधिनी	शेषाचार्य
१२. दुर्घट भाव दीपिका	सत्याभिनव
१३. भागवत तात्पर्य दीपिका	अनन्त तीर्थ
१४. भागवत तात्पर्य टिप्पणी	सत्यधर्मयति

---

[1] **परिशिष्ट में पाठान्तर तालिका में द्रष्टव्य ।**

१५. टि० विरोधोद्धार	पांधरी श्रीनिवास
१६. गूढार्थ दीपिका	धनपति सूरी

द्वैताद्वैतमत की टीकायें :

१७. (क) सिद्धान्त प्रदीपिका	शुकसुधी
(ख) भावार्थ दीपिका प्रकाश	वंशीधर
(ग) अनितार्थ प्रकाशिका	गंगासहाय

शुद्धाद्वैत मत की टीकायें :

१८. सुबोधिनी	वल्लभाचार्य
१९. टिप्पणी	गो० विट्ठलनाथ
२०. सुबोधिनी प्रकाश	गो० पुरुषोत्तम
२१. बाल प्रबोधिनी	गो० गिरिधरलाल
२२. विशुद्ध रसदीपिका	किशोरी प्रसाद

अचिन्त्य भेद—मत की टीकायें :

२३. वृहद्वैष्णवतोषिणी	सनातन गोस्वामी
२४. वैष्णवतोषिणी	जीव गोस्वामीं
२५. क्रमसन्दर्भ	,,
२६. वृहत्क्रमसन्दर्भ	,,
२७. सारार्थदर्शिनी	विश्वनाथ चक्रवर्ती
२८. वैष्णवानन्दिनी	बलदेव विद्याभूषण
२९. दीपिका दीपनी	गो० राधारमणदास
३०. भाव भाव विभाविका	रामनारायण मिश्र

उपर्युक्त टीकाओं के अतिरिक्त भी चित्सुख मधुसूदन, केशव काश्मीरी भट्ट आदि के परिचय आदि के बारे में लिखा गया है तथापि उनकी पृथक् टीका प्राप्त न होने के कारण उक्त तालिका में उनका निर्देश नहीं किया है।

(२) **सामान्य :**

श्रीमद्भागवत की टीकायें एवं टीकाकार।[1]

---

[1] उक्त तालिका में कतिपय टीका केवल नाम मात्र है, कतिपयों का उल्लेख कुछ टीकाओं में उपलब्ध है तथा कतिपय विशिष्ट स्थानों में सुरक्षित है। चित्सुखी-हनूमत-वासनाभाष्य सम्बन्धोक्ति, आदि टीकायें केवल नाम्ना ही निर्विष्ट होती हैं।

टीका	टीकाकार
१. अन्वय	अप्प जी पंडित
२. अन्वय	बुक्कन पण्डित
३. अन्वय	बेंकट कृष्णा
४. अन्वयबोधिनी	कवि चूड़ामणि चक्रवर्ती (१५८० शाके)
५. अमृत तरंगिणी	लक्ष्मीधर
६. अमृत तरंगिणी	ज्ञानपूर्णमति
७. आत्मप्रिया	नारायण
८. एकादश स्कन्ध सार	ब्रह्मानन्द भारती
९. एकादश स्कन्धसार संग्रह कान्तिमाला	विष्णुपुरी
१०. कृष्णपदी	राघवानन्द मुनि
११. कृष्णवल्लभा	आनन्द चट्टोपाध्याय
१२. केप्ल भाष्यव्याख्या क्रम संदर्भ	जीव गोस्वामी
१३. क्रोड पत्रराज	केशव भट्ट
१४. गणदीपिका	कृष्णदास
१५. चित्सुखी	चित्सुखाचार्य
१६. चूर्णिका	माधव
१७. चूर्णिका तात्पर्य	माधव
१८. चैतन्य चन्द्रिका	श्रीनाथ पंडित
१९. चैतन्य मत चन्द्रिका	”
२०. चैतन्य मत मंजूषा	श्रीनाथ चक्रवर्ती
२१. जय मंगला (रामानुजीय)	श्रीनिवासाचार्य
२२. जयोल्लास निधि	अप्पय दीक्षित
२३. टीकाकार संग्रह	उत्तम बोधपति
२४. तत्व प्रदीपिका	नारायण यति
२५. तत्व बोधिनी	
२६. तत्व बोधिनी तात्पर्य टिप्पणी	जनार्दन भट्ट (माधव)
२७. तामिल टीका	शंकर नारायण शास्त्री
२८. तोषिणी सार संग्रह	काशीनाथ
२९. न्याय मंजरी	श्रुतिगीता व्याख्या
३०. पदयोजना (वल्लभीय)	बालकृष्ण दीक्षित

३१. पदयोजना	भवदास या भागवतदास
३२. पद्यत्रयी व्याख्या	सदानन्द विद्वान्
३३. परमहंस प्रिया	बोपदेव
३४. प्रकाश	श्रीनिवास
३५. प्रतिपदार्थ प्रकाशिका	शोमनाद्रि
३६. प्रबोधिनी	प्रहर्षणी
३७. प्रहर्षणी	
३८. प्रेममंजरी	रामकृष्ण मिश्र
३९. भक्त मनोरंजनी (गौडीय)	भगवतप्रसाद आचार्य
४०. भक्त रामा	वेंकटाचार्य
४१. भक्ति दीपिका	जातवेद
४२. भक्तिमती	
४३. भागवत प्रसाद सार	श्रीहरि सूर
४४. भागवत कौमुदी	रामकृष्ण
४५. भागवत गूढार्थ रहस्य	भागवतानन्द गोस्वामी
४६. भग्गवत टिप्पणी (गौडीय)	राधामोहन शर्मा गोस्वामी
४७. भागवत तात्पर्य चन्द्रिका	वेंकट कृष्ण (माधव)
४८. भागवत तात्पर्य दीपिका	नृहरि (माधव)
४९. भागवत तात्पर्य निर्णय	श्री माधवाचार्य
५०. भागवत पुराण प्रकाश	प्रियादास
५१. भागवत पुराणार्क प्रभा	हरिभानु शुक्ला
५२. भागवत मंजरी	गौतम कुलचन्द्र शर्मा (मुद्रित)
५३. भागवत विवरण	
५४. भागवत विवृति	यदुपति आचार्य (माधव)
५५. भागवत व्याख्यालेश	गोपाल चक्रवर्ती
५६. भागवत सार	गोविन्दा विद्या विनोद
५७. भागवत सारोद्धार	जयतीर्थ अवधूत
५८. भागवतार्थ तत्व दीपिका	कौण्डिन्य भाष्यकार सूरि
५९. भागवतार्थ दीपिका	चक्रपाणि
६०. भागवतार्थ रत्नमाला	
६१. भावना मुकुट	शुक मुनि
६२. भाव प्रकाशिका	नरसिंहाचार्य
६३. भावभाविका	रामनारायण मिश्र

६४.	भावार्थ दीपिका	ब्रह्मानन्द किंकर
६५,	भावार्थ दीपिका टीका	चैतन्य वन
६६.	भावार्थ दीपिका प्रकाश	काशीनाथ उपाध्याय
६७.	भावार्थ दीपिका भाव	शिव रमण
६८.	भावार्थ दीपिका स्नेह पूखी	केशवदास
६९.	भावार्थ प्रदीपिका वा (श्री धरोक्तावशिष्टार्थ)	
७०.	मुनि प्रकाश (भागवतात्पर्य टीकार्थ संग्रह)	वेद गर्भ नारायण (माधव)
७१.	मुनिभाव प्रकाशिका	कृष्ण शुक (रामानु०)
७२	यादुपत्य विवृति	सत्य धर्मतीर्थ (माधव)
७३.	रस मंजरी (शेष पूरनी)	
७४.	रास क्रीड़ा व्याख्या	
७५.	रास पंचाध्यायी प्रकाश	पीताम्बर
७६.	वासनाभाष्य	
७७.	विद्वत्कामधेनु	
७८.	विवरणमणि मंजूषा	
७९.	विषमपद टीका	
८०.	बुधरंजिनी	वासुदेव
८१.	वोधसुधा	
८२.	वोधिनीसार	
८३.	शुक तात्पर्य रत्नावली	वीर राघव
८४.	शुक भाव प्रकाशिका	सुन्दर राज सूरि
८५.	शुक हृदया	श्रीक्रम सन्दर्भ
८६.	शुक हृदय रंजिनी	नरसिंह सुरि
८७	श्रुति श्रुति चन्द्रिका	बेंकट
८८.	समर्थ प्रकाशिका	शंकर
८९.	स्वार्थ प्रकाशिका	
९०.	सर्वोपकारिणी	
९१.	सार संग्रह	ब्रह्मानन्द भारती
९२.	सिद्धान्तार्थ दीपिका	वैष्णव शरण
९३.	हनुमद्भाष्य	

(३) वैष्णव सम्प्रदाय :

आधुनिक इतिहासज्ञों का कथन है कि भागवत धर्म नवीन है। परन्तु

यह कथन अयुक्त है। क्योंकि भारतवर्ष में यह धर्म गुरु शिष्य परम्परा के द्वारा अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। समस्त देश की जनता पर इसका व्यापक प्रभाव था और अब भी है। गौतम बुद्ध द्वारा प्रभावित भी इसे नहीं स्वीकार किया जा सकता क्योंकि बुद्ध पर उपरिचर वसु का प्रभाव था। यह भागवत धर्म का अनुयायी था।[1]

गीता जो आधुनिक मत से भी ई० पू० १४०० वर्ष बाद की नहीं में भागवत धर्म का ही प्रतिपादन किया है।

भागवत धर्म में नारायण और विष्णु उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो गये, इनकी उपासना के अनुरूप विशिष्ट आचार पद्धति का निर्माण किया, यही पद्धति महाभारत में सात्वत विधि के नाम से विख्यात हुई। इस विधि का प्रतिपादक शास्त्र पांचरात्र के नाम से प्रसिद्ध है।[2]

इस पद्धति ने वैदिक विष्णु को उक्त धर्म का उपास्य स्वीकार किया तथा उक्त धर्म वैष्णव मत के नाम से विख्यात हुआ एवं उसके अनुयायी वैष्णव कहलाये।

विष्णु परात्पर हैं, सर्व व्यापक एवं वैकुण्ठ लोकवासी हैं। मुक्त जीवों के द्वारा सेव्य हैं, उक्त रूपों में उनका वासुदेव या पर वासुदेव नाम भी स्वीकृत है, तथापि भागवत धर्म के संस्थापक वासुदेव कृष्ण उनके अवतार माने गये।

राम को भी विष्णु का अवतार माने जाने लगा। अवतारों के चरित्रों का भक्तों के द्वारा दिव्य लीला के रूप में अनुभव किया जाने लगा। अतएव राम-कृष्ण के वाल्य चरित्रों का विकास हुआ। 'कृष्ण' गोपाल तथा गोपीजन वल्लभ के रूप में प्रसिद्ध हुए। उक्त रूपों को न्यूनाधिक्य महत्व देने के कारण वैष्णव मत में अनेक भेद हो गये।

एक पक्ष विष्णु को ही परात्पर एवं विभिन्न अवतारों का मूल मानता मानता है तो द्वितीय पक्ष कृष्ण एवं राम को ही मूल मानते हैं। इस प्रकार कई अन्वान्तर भेद हो जाने के कारण वैष्णव मत के विभिन्न सम्प्रदायों का विकास हुआ, अतः सभी सम्प्रदायों के तत्वसम्बन्धी सिद्धान्त तथा भक्ति भाव, दीक्षा, मन्त्र, वेश, क्रिया और पूजा पद्धति आदि आचार एक दूसरे से पर्याप्त भेद रखते हैं।

---

[1] **महाभारत शान्ति अध्याय ३३६, श्लोक १०।११।**

[2] **'ब्रह्मसूत्र वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन'—आचार्य रामकृष्ण, पृ० २८।**

चार सम्प्रदाय—वैष्णवों की 'चतु:सम्प्रदाय, गद्दी प्रसिद्ध हैं'[१]।

(१) श्री सम्प्रदाय (२) ब्रह्म सम्प्रदाय
(३) रुद्र सम्प्रदाय (४) सनक सम्प्रदाय

श्री सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक रामानुज थे। ब्रह्म सम्प्रदाय के मुख्य मध्व हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायी विजयध्वज ने भागवत पर 'पदरत्नावली' नामक टीका की रचना की है। रुद्र सम्प्रदाय में श्री विष्णु स्वामी एवं उनके पश्चात् श्री वल्लभाचार्य का नाम उल्लेखनीय हैं। वर्तमान निम्बार्क संप्रदाय का सम्बन्ध सनक सम्प्रदाय से है। शुकसुधी ने सिद्धान्त प्रदीप नामक टीका लिखी है, जो निम्बार्क सम्प्रदाय के तत्वों का निरूपण करती है।

वैष्णव वेदान्तवाद का ऐक्य—वैष्णव धर्म में प्रचलित कुछ ऐसे सिद्धाँत हैं जिन्हें समस्त आचार्य स्वीकार करते हैं—

(१) जगत् की सत्यता और उसके उपादान की सत्यता।
(२) जीव का ज्ञानस्वरूप, जीव का नित्यत्व, अणुत्व, ज्ञातृत्व, कर्तृत्व, मोक्त्रत्व-ब्रह्मवश्यत्व एवं बहुत्व।
(३) ब्रह्म, सविशेष, निर्दोष, सर्वकल्याणगुण सम्पन्न, परमेश्वर सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, मोक्षप्रद, उपास्य, विशिष्ट दिव्यरूप सम्पन्न, दिव्यलोकाधिनायक रूप में वर्णित है।
(४) मोक्ष की प्राप्ति का उपाय भक्ति या शरणागति है, दिव्यलोक में भगवान् के नित्य दासत्व की प्राप्ति ही सर्वोत्तम मुक्ति है।
(५) कर्म, ज्ञान, योग आदि भक्ति के अंग हैं।
(६) माया ब्रह्म की शक्ति है।
(७) 'कार्यकारण सम्बन्ध' में 'परिणामवाद' की स्वीकृति है। 'विवर्त' को कोई स्थान नहीं है।
(८) उपाधि की स्वीकृति नहीं है।

मध्य के विना अन्य आचार्यों का सिद्धांत—

(१) 'ब्रह्म का अभिन्ननिमित्तोपादान कारणत्व'

वल्लभ को छोड़कर अन्य सिद्धान्त—

(२) ब्रह्मजीव और जड़त्व का परस्पर स्वरूपतः भेद।

रामानुज वेदान्त :

टीकाकारों के अभिप्राय को जानने के लिए उनके मूल सिद्धान्तों का ज्ञान परमावश्यक है। उनकी टीकाओं में अपनी सम्प्रदाय की छाप कहीं अस्पष्ट

---

[१] **ब्रह्मसूत्र वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ २८।**

कहीं अर्द्ध स्पष्ट प्रत्यक्ष भासित होती है। वीर राघवाचार्य ने अपनी टीका में चिदचिद्विशिष्टवाद की स्थापना की है। रामानुज का वाद विशिष्टाद्वैत है। इस का शाब्दिक अर्थ है 'विशिष्टयोरद्वैतं' अर्थात् विशिष्टकारक और विशिष्टकार्य का ऐक्य। 'सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म' कारण है 'स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म' कार्य है। यह वाद 'सत्कार्यवाद' को मानता है तथा तदनुसार कारणावस्थ ब्रह्म तथा कार्यावस्थ ब्रह्म के अद्वैत का प्रतिपादन करता है। ब्रह्म, जीव, जड़ जगत स्वरूपतः परस्पर पृथक् हैं किन्तु जड़ चेतनात्मक वस्तु का अस्तित्व स्वतन्त्र नहीं, वह सर्वदा ब्रह्मायत है। ब्रह्म से पृथक् स्थित न मानकर उसे अपृथक् माना गया है, जड़ जगत ब्रह्म के द्वारा नियम्य धार्य और उनका शेष होने के कारण उसका शरीर है एवं ब्रह्म उसकी आत्मा है। विशिष्ट ब्रह्म एक ही है, जब यह विशिष्ट ब्रह्म संसार रूप में परिणित हो जाता है तब विशेषण स्थानीय जड़ और चेतन में विकार आ जाता है, विकार चेतन में नहीं जड़ में आ जाता है। चेतन में आने वाला विकार स्वरूप से नहीं गुण से है। परन्तु विशेष्य या ब्रह्म में स्वरूपतः विकार आता है और न गुणतः।

भिन्न भिन्न कार्य कारणावस्थाओं को धारण करने वाला ब्रह्म ही जो कि सर्वदा चिदचिद्विशिष्ट है कारण और कार्य है। फलतः दोनों अवस्थाओं में एक होने के कारण 'विशिष्टाद्वैत' है। कारणावस्थ ब्रह्म स्वयं इच्छा से ही कार्यावस्था को प्राप्य करता है, अतः वह 'अभिन्ननिमित्तोपादान कारण' कहा जाता है।

रामानुजमत और भागवत :

स्वयं श्री रामानुजाचार्य कृत भागवत टीका का क्वचित् उल्लेख नहीं मिलता। सम्भव है कि भागवत में उनके उपास्य विष्णु या लक्ष्मी के स्थान पर श्रीकृष्ण की अतिशयिता के कारण वे टीका न कर सके हों।

भागवत भक्ति साधना की स्पष्ट छाप रामानुजाचार्य के सभी ग्रन्थों पर है। गद्यत्रय, गीताभाष्य तथा श्री भाष्य की शैली भागवत के अनुकूल हैं। उनके शिष्यों की रचनाओं में श्रीमद्भागवत का महत्व प्रतिपादन हुआ है। वीरराघवाचार्य कृत टीका में इस पुराण की अनेक टीकाओं का अस्तित्व स्वीकार किया है।[1]

---

१. **श्रीमद्भागवतंपुराणम खिलंव्याख्यातृभिर्व्याकृतम् ।**
व्यासार्यैर्यतिराजभाष्यवचसामर्हंबुधानां मुदे ॥
मन्दानामपिदृशामवगमाच्चार्हतया दर्शितं ।
पन्थानं समुपाश्रितो विवृणुयां मत्साहसं क्षम्यताम् ॥
(भागवत चं० चं० १।१।१)

मध्व वेदान्त :

इस सम्प्रदाय के मूलभूत सिद्धांत निम्नलिखित हैं[1] :—

(१) ब्रह्म निमित्तकारण है, उपादान कारण नहीं है।
(२) इस वेदान्त का वाद 'द्वैत' है।
(३) स्वभावत: ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध में किसी प्रकार का अद्वैत उक्त सिद्धान्त में मान्य नहीं है।
(४) ब्रह्म, जीव और जगत् परस्पर भिन्न हैं।
(५) जीवों का परस्पर भेद है।
(६) इस सम्प्रदाय का विशिष्ट सिद्धान्त यह है कि मोक्ष में भी जीवों में परस्पर तारतम्य रहता है। क्योंकि साधन तारतम्य से मोक्षानन्द के अनुभव में तारतम्य आवश्यक है।

मध्वाचार्य ने जगत् को स्पष्टतया प्रपंच माना है। जगत् के पांच भेद एवं उनकी सत्यता भी प्रमाणित की है। पदार्थों की संख्या दस—(द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशिष्ट, विशेष, अंशी, शक्ति, सादृश्य तथा अभाव) तथा द्रव्य पदार्थों की संख्या बीस—(परमात्मालक्ष्मी, जीव, आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्व, अहंकार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, तन्मात्रा, भूत, ब्रह्माणु, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल, और प्रतिविम्ब) मानी है।[2]

भगवान की चार शक्ति हैं—अचिन्त्य शक्ति, आधेय शक्ति, पद शक्ति। अचिन्त्य शक्ति पर अधिक बल दिया है। पदरत्नावली टीका में मध्व सम्प्रदाय के तत्वों का ही विवेचन किया है।

माध्व मत और भागवत :

यह विशुद्ध भक्तिवादी मत है। भागवत तात्पर्य निर्णय ग्रन्थ में श्री मध्वाचार्य ने भागवत पुराण के रहस्यों का उद्घाटन किया है। मध्वाचार्य ने भागवत की महत्ता सिद्ध की है। इस पुराण को ब्रह्मसूत्र, महाभारत, गायत्री एवं वेद से सम्बन्ध बतलाया है।

मध्व कृत—यह 'तात्पर्य निर्णय' भागवत महत्व का परिचायक संभवत: प्रथम ग्रन्थ है। इसमें भागवत के अधिकारी, विषय, प्रयोजन और फल विवेचन के अतिरिक्त उसके वर्ण्य विषय को श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, तथा तन्त्र से

---

[1] **'ब्रह्मसूत्रों का तुलनात्मक अध्ययन'—आचार्य रामकृष्ण, पृष्ठ २८**

[2] **भागवत दर्शन, पृष्ठ १७८**

सम्मत माना है ।[१] इसी सम्प्रदाय के आचार्य विजयध्वज ने 'पदरत्नावली' नामक टीका में भागवत धर्म का गौरव बढ़ाने का श्लाघनीय प्रयत्न किया । भागवत वेदान्तार्थ प्रकाशिका है, यह सिद्ध किया है ।[२]

निम्बार्क मत—

निम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्धान्त संक्षेप में निम्नलिखित हैं :—

(१) इस सम्प्रदाय के वाद का नाम 'द्वैताद्वैत' या स्वाभाविक भेदाभेद है ।

(२) ब्रह्म, जीव, जड़ की स्वरूपतः विभिन्नता है ।

(३) ब्रह्म से जीव का भेद-अभेद स्वाभाविक है ।

(४) ब्रह्म से जड़ का भेद-अभेद स्वाभाविक है ।

(५) 'कार्य-कारण' का अद्वैत नहीं· अपितु स्वाभाविक भेदाभेद है ।

(६) कारण से कार्य भिन्न है तदायत स्वरूपस्थिति प्रवृत्तिक होने से वह कारण से अभिन्न है ।

(७) ब्रह्म कारण है और चिद्चिद्‌ात्मक जगत् कार्य हैं । दोनों का स्वाभाविक भेदाभेद है । ब्रह्म अनन्त शक्ति युक्ति है, चित् और अचित् उसकी शक्तियाँ हैं । ब्रह्म चिद्चित् शक्तियों का विक्षेप या प्रसार कर अपने को चिद्चिदात्मक जगत् के रूप में परिणत करता है । इस प्रकार वह जगत का निमित्त कारण होने के साथ उपादान कारण भी है । शक्ति विक्षेप लक्षण परिणाम के फल-स्वरूप जो चिदचिदात्मक जगत् रूप कार्य निष्पन्न होता है वह अपने उपादान कारण ब्रह्म से भिन्न भी है और अभिन्न भी है । अतः स्वाभाविक भेदाभेद है । सारांश यह है कि निम्बार्क जड़ के समान जीव का भी ब्रह्म से स्वाभाविक भेदाभेद मानते हैं ।

---

१. अर्थोऽयं ब्रह्मसुत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः
गायत्रीभाष्य रूपोऽसौ वेदार्थ परिवृंहितः
पुराणानां सार रूपः साक्षाद् भगदतोदितः
ग्रन्थोऽष्टादश साहस्रः श्रीमद्भागवतामिधः ।।
(भागवत तात्पर्य निर्णय, पृष्ठ ७८६)

२. अथ कलि मलापनुत्तये·········वेदान्तार्थ प्रकाशिकां द्वादश स्कन्ध सम्मिताम् अष्टादश सहस्रसंख्योपेतां भागवत पुराण संहितां चिकीर्षुः कालदोषेण पिहितान् भागवत धर्मानाविश्चिकीर्षुर्निरन्तरापरोहित ब्रह्मस्वरूपो निरन्तरायो पि······ नारायणाख्याम् अनुस्मरति ।। (पद रत्नावली १।१।१)

निम्बार्क के सिद्धान्तों का विवेचन उनकी दश श्लोकी में हुआ है, उन का सारांश यह है[1]:—

(१) जीवात्मा विभिन्न शरीरों में पृथक है, ज्ञानस्वरूप एवं हरि पर आश्रित है।

(२) यह त्रिगुण युक्त तथा मायावद्ध है, ईश्वर की कृपा से उसे प्रकृति का ज्ञान होता है।

(३) अप्राकृत, प्राकृत, काल ये तीन भेद अचेतन पदार्थों के हैं।

(४) कृष्ण सर्वदोष विनिमुक्त सर्वगुण सम्पन्न है।

(५) वृषभानुनन्दिनी कामनापूर्ण करने वाली हैं।

(६) अज्ञान से मुक्ति पाने के लिए भगवान की उपासना करनी चाहिए।

(७) ब्रह्म सत्य हैं, उसके त्रिविध रूप भी सत्य हैं।

(८) शिव आदि भी कृष्ण के चरणारविन्दों की उपासना करते हैं, कृष्ण की शक्ति अचिन्त्य है।

(९) कृष्ण की कृपा का अत्यन्त महत्व है। दैन्य भाव से प्रेम रूप भक्ति मिलती है, यह दो प्रकार की है—परा तथा साधनरूपा।

(१०) उपास्य का रूप, उपासक का रूप, कृपाफल, भक्तिफल, तथा फल प्राप्ति के विरोधी ये ५ पदार्थ भक्तों को जानने चाहिए।

निम्बार्क मत तथा भागवत :

रामानुज सिद्धांत को इस सिद्धाँत का मूलाधार नहीं माना जा सकता, रामानुजाचार्य ने प्रपति की विशेषता का निरूपण किया हैं, निम्बार्क ने परमात्मा की कृपा तथा उसके प्रेम का प्राधान्य स्वीकार किया है।

रामानुज की भक्ति, नारायण, लक्ष्मी एवं भू और लीला तक ही सीमित है।[2]

निम्बार्क ने कृष्ण और सखियों द्वारा परिवेष्ठित राधा को ही प्रधानता दी हैं। अतः दोनों के सिद्धान्त में पर्याप्त भेद है। इस सम्प्रदाय के भागवत टीकाकार शुकसुधी ने उक्त निम्बार्क के सिद्धान्तों को यथावसर भागवत टीका में व्यक्त किया है तथा श्रीमद्भागवत की महत्ता का गान भक्ति भाव से प्रेरित होकर किया है।[3]

---

१. दशश्लोकी— निम्बार्काचार्य ।   २. भागवतदर्शन, पृष्ठ १८० ।

२. अथ वेदान्तोपबृंहणार्थं ······ परब्रह्म परमात्मादि पदवाच्यस्य भगवतो मंगलाचरण व्याजेन लक्षणं वदन् परपक्षान् निराकरोति जन्माद्यस्येति ।

(सिद्धान्त प्रदीप १।१।१)

शुद्धाद्वैत मत :

श्री वल्लभाचार्य कृत सुबोधिनी टीका के परिपूर्ण ज्ञान प्राप्ति के लिए उनके सिद्धान्तों का ज्ञान परमावश्यक है। यद्यपि उनके सिद्धान्तों का विश्लेषण अणुभाष्य में उपलब्ध है किन्तु सुबोधिनी टीका में वे इतस्तत: निरूपित किए गये हैं। वल्लभ का मत शंकराचार्य के मत से नितान्त भिन्न है तथा मध्व से अधिक साम्य रखता है। इनके मत जीव अणुरूप एवं भगवान का सेवक है।

ब्रह्म सगुण है, तथा ब्रह्म ही जगत् का निमित्त कारण एवं उपादान कारण है। गोलोकाधिपति कृष्ण ही परब्रह्म हैं एवं वही जीव के सेव्य हैं। जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों ही शुद्ध हैं। इनके मतानुसार धर्म के दो पक्ष माने जा सकते हैं—(१) सिद्धान्त तथा (२) आचरण।

सिद्धान्त पक्ष में वल्लभ-शुद्धाद्वैत वादी, ब्रह्मवादी, अविकृत परिणामवादी कहे जाते हैं। आचरण पक्ष में उनका मार्ग कहलाता है।

"माया सम्बन्ध रहितम् शुद्धमित्युच्यते वुधः'

यह उनके शुद्ध शव्द की व्याख्या है, इस वाक्य द्वारा ब्रह्म को माया सम्बन्ध रहित कहा है।

'कार्यकारण रूपंहि शुद्धं बृह्म नमायिकम्'

की विस्तृत व्याख्या में गिरिधर जी ने शुद्ध का निरूपण किया है।[1] ब्रह्म से ही पदार्थों का आविर्भाव और तिरोभाव होता है, आविर्भाव-तिरोभाव की क्रिया वल्लभ सम्प्रदाय की अपनी विशेषता है।[2] जड़तत्व में चित् और आनन्द दो धर्म तिरोभूत हैं, केवल सद्धर्म प्रकट है।

जीव—जीव में सत् और चित् धर्म प्रकट हैं, 'आनन्द' तिरोभूत है। इस बृह्म का आनन्दांश अन्तरात्मा रूप से प्रत्येक जीव में है।[3]

कृष्ण ही सच्चिदानन्दात्मक है—

'परब्रह्म तु कृष्णोहिसच्चिदानन्दकं वृहत्'[4]

भगवान की इच्छा से ही 'जीव' के ६ ऐश्वर्यादि गुण हो जाते हैं—

---

१. शुद्धाद्वैतमार्तण्ड, श्लोक २८।

२. 'आविर्भावतिरोभावैः.........' (तत्वदीप निबन्ध, शास्त्रा० प्रकरण ७२)

३. अत एव निराकारौ पूर्णावानन्द लोपतः
जड़ो जीवोऽन्तरात्मेति व्यवहारस्त्रिधामतः ॥ (उपयुक्त कारिका ३०)

४. सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक ३।

"अस्य जीवस्यैश्वर्यादितिरोहितम्"[1]

जगत्—जगत् की उत्पत्ति अक्षर ब्रह्म के सत् अंश से है, अक्षर ब्रह्म एवं परब्रह्म में भी उन्होंने भेद माना है। परब्रह्म केवल श्रीकृष्ण ही हैं। सच्चिद् गणितानन्द अक्षर ब्रह्म है।[2] अक्षर ब्रह्म के सदंश से उत्पन्न जगत् अविनाशी है किन्तु संसार नाशवान् है, क्योंकि—अहन्ता ममतात्मक कल्पना का नाम ही संसार है। संसार की रचना जीव करता है, उसका उपादान कारण अविद्या तथा निमित्त कारण जीव होता है।[3] श्रीमद्भागवत में इसी संसार को चक्र कहा है, यह संसार गुणों और कर्मों को होने वाला जन्म मरण का चक्र है। यद्यपि यह अज्ञान मूलक एवं मिथ्या है तथापि जीव को इसकी प्रतीति स्वप्न के समान होती है। विद्या के द्वारा जब अविद्या का नाश हो जाता है तब जीव संसार के दुःख से छूट जाता है।[4] भक्ति के द्वारा ही मुक्ति सरलता से प्राप्त हो सकती है। सालोक्यादि चतुर्विद्य मुक्ति के अतिरिक्त स्वरूपानन्द की एक और अवस्था मानी है। इस अवस्था में मुक्त जीव भगवान् की लीला का साक्षात् रूप से अनुभव करता है। वल्लभ सम्प्रदाय में इसे अत्यधिक महत्व दिया गया है और गोकुल को वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ माना है।

भागवत की द्विविध मुक्ति सद्योमुक्ति क्रम मुक्ति को भी आचार्य ने स्वीकार किया है। पुष्टिपुष्ट भक्तों की सद्योमुक्ति तथा ज्ञानमार्गियों को क्रम मुक्ति प्राप्त होती है, यह विवेचन अणुभाष्य में चतुर्थाध्याय में विस्तार के साथ किया है। भगवान का अनुग्रह ही जीव की मुक्ति में विशेष कारण बनता है। 'पोषणं तदनुग्रहः'[5] भागवत श्लोक के आधार पर उनके सम्प्रदाय का नाम भी 'पुष्टि सम्प्रदाय' प्रसिद्ध हुआ है। अतः वल्लभ सम्प्रदाय भागवत से ही अनुप्रमाणित है।

चैतन्य मत

चैतन्य का सम्बन्ध मध्व सम्प्रदाय से है। किन्तु उनके द्वारा एक पृथक सम्प्रदाय का श्री गणेश हुआ। अन्याचार्यों की भांति उन्होंने अपने सम्प्रदाय को व्यवस्थित नही किया और न प्रस्थानत्रयी पर ही कोई भाष्य लिखा।

---

१. अणुभाष्य ३।२।५। २. सिद्धान्त मुक्तावली ३।४।५।

३. प्रपंचो भगवत्कार्यं स्तद्रपोमाययाऽभवत्
तच्छतया विद्ययात्वस्य जीवसंसार उच्यते।
(तत्व दीप निबन्ध, कारिका २६)

४. विद्यया विद्यानाशेतु जीवा मुक्तो भविष्यतीति। (उपर्युक्त कारिका ३६)

ये उच्चकोटि के भक्त थे। उनके जीवन की घटनाओं का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में प्राप्त होता है। उनके अनुयायियों ने सम्प्रदाय का रूप व्यवस्थित किया था। इस सम्प्रदाय के अनुसार कृष्ण ही परम तत्व हैं, वे अनन्त शक्ति सम्पन्न एवं अनादि हैं, उपासना भेद से उनके अलग-अलग नाम हो गये हैं। उनकी शक्ति अचिन्त्य है। परबृहम् के त्रिविध रूप हैं—स्वयंरूप, तदेकात्म्य रूप और आवेशरूप। स्वयं रूप कृष्ण हैं। स्वयं रूप के—द्वारिका रूप, मथुरा रूप, बृजलीला रूप त्रिविध हैं, इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। भगवान के अवतार भी तीन हैं—

(१) पुरुषावतार (२) गुणावतार (३) लीलावतार

परबृहम् श्रीकृष्ण का आदि पुरुषावतार 'वासुदेव' कहलाता है जो तीन प्रकार का माना गया है—संकर्षण, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न। सृष्टि का कारण पुरुषावतार है,गुणावतार में ही वह विष्णु, बृहम् और रुद्र का रूप धारण करता है। लीलावतार में परबृह्म का तदेकात्मक रूप और आवेश रूप प्रकट होता है।

भगवान की तीन शक्तियां हैं—

(१) अन्तरङ्गा शक्ति (२) बहिरङ्गा शक्ति (३) तटस्था शक्ति

अन्तरङ्गा शक्ति ही स्वरूप शक्ति है जिसे सन्धि शक्ति भी कहते हैं। बहिरङ्गा शक्ति का नाम माया है। इसके दो भेद हैं—द्रव्यमाया, गुणमाया। द्रव्यमाया जगत् का उपादान कारण है, गुणमाया निमित्त कारण। तटस्था शक्ति जीवों की उत्पत्ति का हेतु है।

जीव—अणुरूप तथा नित्य है, यह जड़माया से मुक्त रहता है, उससे मुक्त होने पर ही सायुज्य केवल्य मुक्ति होती है। मुक्ति की प्राप्ति भक्ति द्वारा सम्भव है। भक्ति भी दो प्रकार की है—(१) वैधी, (२) रागानुगा। इस सम्प्रदाय में तीन प्रभु हैं—(१) कृष्ण चैतन्य, (२) नित्यानन्द, (३) अद्वैतानन्द।

इस सम्प्रदाय में भागवत का अत्यधिक सम्मान है एवं अनेक टीकाएँ की गई हैं।

* * *

---

१. भागवत २।१०।४। २. भागवतदर्शन, पृष्ठ १६३।

द्वितीय अध्याय

उपजीव्य टीकाकार

१. चित्सुखाचार्य —परिचय, सम्प्रदाय, स्थितिकाल, कृतियां, टीका वैशिष्ट्य ।
२. श्रीधर स्वामी—परिचय, सम्प्रदाय, स्थितिकाल, कृतियां, टीका वैशिष्ट्य ।
३. मधुसूदन सरस्वती—परिचय, सम्प्रदाय, स्थितिकाल, कृतियाँ, टीका वैशिष्ट्य ।

उपजीव्य टीकाकार

१. चित्सुखाचार्य :

(क) परिचय—'चित्सुखी' टीका के कर्ता चित्सुखाचार्य वेदान्त शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे, इनका 'तत्वप्रदीपिका' नामक ग्रन्थ अद्यावधि इनके नाम से 'चित्सुखी' शब्द द्वारा व्यवहृत होता है। यह ग्रन्थ विद्वानों के अध्ययन अध्यापन का प्रिय विषय एवं वेदान्त शास्त्र का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

चित्सुखाचार्य ने भागवत पर टीका की थी किन्तु वह अब उपलब्ध नहीं है। उसकी पंक्तियों का यत्र तत्र उल्लेख जीवगोस्वामी ने किया है[1] एवं टीकाकारों ने उनके स्वीकृत पाठ की चर्चा की है। इससे ज्ञात होता है कि इन की टीका सम्पूर्ण भागवत पर अवश्य रही होगी। चित्सुख ने विष्णु पुराण पर भी टीका की थी। इसकी पुष्टि श्रीधरस्वामी के वाक्यों द्वारा की जाती है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

"श्रीमत् चित्सुखयोगि मुख्यरचिते........"[2]

श्री चित्सुख कहाँ उत्पन्न हुए ? यह यद्यपि विश्वस्त रूप से नही कहा जा सकता तथापि विद्वानों का मत है कि ये उत्तर भारत में पर्याप्त रहे थे।[3]

(ख) सम्प्रदाय—इनके गुरु के बारे में कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि तत्व दीपिका के मंगलाचरण में इन्होंने 'ज्ञानोत्तम' नामक गुरु का उल्लेख किया है। 'चित्सुखी' ग्रन्थ से इन्हें अद्वैत सम्प्रदाय का माना जाना उपयुक्त है।

---

१. **क्रमसन्दर्भ ४।१।३६**

२. **विष्णु पुराण टीका–आत्मप्रकाश १।१ मंगलाचरण।**

३. **(क) 'ज्ञानोत्तमाख्यं तं वन्दे' (तत्व प्रदीपिका, मंगलाचरण)**
   (ख) न्यायमत का खण्ड़न अधिकांश उत्तर भारती विद्वानों ने किया है।
   (ग) योगीन्द्रनाथ तीर्थ के कथनानुसार चित्सुख काम कोटि मठ के अध्यक्ष थे। एवं इनके गुरु ज्ञानोत्तम गौड़ देश के थे। चित्सुख के सतीर्थ का नाम विज्ञानात्म था।

(ग) **स्थितिकाल**—यद्यपि चित्सुखाचार्य का समय संदिग्ध है, क्योंकि एस० एन० दास ने इनका समय १२२० ई० (सं० १२७७ विक्रम) लिखा है[१]। बलदेव उपाध्याय का भी यही मत है।[२] किन्तु कतिपय विद्वानों का नवम् शताब्दी का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[३] परन्तु इतना निश्चित है कि श्रीधर स्वामी ने इनका उल्लेख विष्णु पुराण की टीका में किया है। अतः ये श्रीधर के पूर्व उत्पन्न हुए थे, यह निर्विवाद है। श्रीधर का समय आगे १३५०–१४५० विक्रम के मध्य स्वीकृत किया जायेगा अतः उससे पूर्व इनका होना सिद्ध है। चित्सुखाचार्य ने 'न्याय लीलावती' ग्रन्थ का खण्डन किया था। इस ग्रन्थ के रचयिता वल्लभ १२ वीं शताब्दी में उत्पन्न हुए थे साथ ही चित्सुख ने हर्ष के मतों का उल्लेख किया है। हर्ष १२ वीं शताब्दी में हुए थे, अतः हर्ष एवं वल्लभ के पश्चात् एवं श्रीधर स्वामी के पूर्व का समय चित्सुख का निर्विरोध स्वीकार किया जा सकता है। जयतीर्थ ने अपनी वादावली में चित्सुख का उल्लेख किया है। इनका समय १३६५–१३८८ ई० माना गया है।

(घ) **कृतियां**—'अच्युत' वाराणसी के अनुसार १० ग्रन्थ थे—

१. भाव प्रकाशिका
२. अभिप्राय प्रकाशिका
३. भगवत्तत्व प्रकाशिका
४. अधिकरण संगति
५. अधिकरण मंजरी
६. न्यायमकरन्द टीका
७. प्रमाण रत्नमाला टीका
८. विष्णु पुराण टीका
९. भागवत टीका
१०. खण्डन खण्ड खाद्य-व्याख्यान

तत्व प्रदीपिका भूमिका में—

१. शंकर दिग्विजय
२. विवरण व्याख्या
३. षट्दर्शन संग्रह
४. ब्रह्मस्तुति का उल्लेख है।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य—नाम**—टीकाकारों ने 'इतिचित्सुख' शब्द का उल्लेख ही अधिक किया है, अतः इनकी टीका का नाम अप्रसिद्ध हो गया है। 'चित्सुखी' शब्द का प्रयोग ही इनकी टीका के लिए प्रसिद्ध है।

परिमाण—यह टीका समस्त भागवत पर रची गई थी।

प्रकाशन—यह टीका अप्राप्य है, इसका प्रकाशन नहीं हुआ।

---

[१] ए हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी, पृष्ठ १४७।

[२] पुराण विमर्श, पृष्ठ ५७०।

[३] संस्कृत साहित्य का इतिहास-बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ १७२।

उद्देश्य—इस टीका का उद्देश्य अद्वैत सिद्धि रहा होगा, क्योंकि चित्सुख को अद्वैत सम्प्रदाय का स्तम्भ माना जाता है।

इस टीका का सर्वाधिक वैशिष्ट्य यह है कि भागवत के प्राचीन पाठ का निर्धारण चाहने वाले विद्वानों को सन्तुष्टि प्रदान करेगा। जीव गोस्वामी ने कहीं-कहीं केवल चित्सुख के पाठ का ही समादर किया है भले ही वह श्रीधर स्वामी के पाठ से असम्बद्ध हो, जैसे–'तप्यमानं त्रिभुवनम् प्राणायामेधसाग्निना'[1] यहाँ श्रीधर के इस पाठ का चित्सुख से वैमत्य है, चित्सुख ने 'प्राणायामेन' पाठ माना है। जहाँ श्रीधर ने 'सप्तर्षयः' पाठ माना है–चित्सुख ने 'सप्तब्रह्मर्षयः'। जीवगोस्वामी ने दोनों पाठों को शुद्ध माना है–सप्त ब्रह्मर्षय इति पाठश्चित्सुख सम्मतः। सप्तर्षय इति क्वचित्। टीकातूभयथा लगति।'[2] इसी प्रकार–'सुहृद्दिदृक्षुः परिशंकिताभवान्' में परिशंकिता पाठ श्रीधर ने एवं परिशंकिनी पाठ चित्सुख ने माना है। जीवगोस्वामी ने लिखा है—परिशंकिनीति चित्सुखः।[3]

चित्सुख का वैशिष्ट्य उनके पाठ के कारण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसकी पुष्टि का एक यह भी प्रमाण है कि जीव गोस्वामी ने कहीं-कहीं केवल उनके पाठ का उल्लेख ही किया है, अपनी ओर से एक वर्ण भी नहीं लिखा है। यथा, 'न यस्यलोके' (भागवत ४।४।११) की टीका में 'प्रतीपयेत्' के स्थान में 'प्रतीयत' पाठ चित्सुख का लिखा है।[4]

चित्सुख की भाषा अत्यन्त परिमार्जित प्रौढ़ तथा गम्भीरता लिए थी।

"नाश्चर्यमेतृयदसत्सुसर्वदा महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु"
(भागवत ४।४।१३)

'सोपहासमाह। तेजोन्तर रहितेषु मृतकेषु भीषणत्वमिव तदेवतेजस्त्वख्यापनात् शोभनं गौरवापादकं नान्यत् किमन्दस्तीति तैः किमन्यत् कर्त्तव्यमिति भावः, पादपांशुशब्देनात्रप्रभाव लेशो लक्ष्यते लक्षणा चेयं तेषामतितुच्छत्व व्यंजनार्था सेर्ष्या इति चित्सुखः।' (क्र० सन्द०)

यहाँ प्रायः सभी टीकाकार 'सेर्ष्यं' पाठ मानते हैं, जब कि चित्सुख ने सेर्ष्या पाठ माना है। यह निश्चय है कि यदि चित्सुख की भागवत टीका कहीं उपलब्ध हुई तो अवश्य एक नवीन तथ्य आगे आयेगा। अद्वैत का अत्यधिक प्रतिपादन होने के कारण वैष्णवों ने उसकी उपेक्षा की होगी, अतः वह अधिक प्रचलित नहीं हो सकी, अन्यथा श्रीधर की टीका की भांति वह भी गौरवान्वित होती।

---

[1] **क्रम० सन्दर्भ** ४।१।२१, [2] **वही** ४।१।४०, [3] **वही** ४।४।१

[4] **'प्रतीयत इति चित्सुखः' (क्रम० सन्दर्भ ४।४।१३)**

२. श्रीधर स्वामी

(क) परिचय—श्रीधर स्वामो भागवत की प्राप्त सर्वप्राचीन टीका 'भावार्थ दीपिका' के रचयिता हैं। भारत में जितनी ख्याति उक्त टीका की हुई उतनी अन्य किसी टीका की नहीं। समस्त विद्या क्षेत्रों में इसका पठन पाठन बड़े आदर पूर्वक किया जाता रहा है। किन्तु इतने प्रतिभाशाली टीकाकार का विश्वसनीय परिचय उपलब्ध नहीं होता। यहाँ तक कि उनके माता-पिता एवं वंश तथा शिष्य परम्परा विषयक ज्ञान भी घोर अन्धकार में है। यहाँ हम यत्र-तत्र से लब्ध सामग्री के आधार पर श्रीधर स्वामी के जीवन वृत के विषय पर प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रहे हैं।

श्रीधर नामक अनेक व्यक्ति साहित्य के क्षेत्र में आये थे, उनमें कतिपय के नाम एक विश्वकोश में उपलब्ध हैं जो बंगभाषा में मुद्रित है[1] एवं गौणीय वैष्णव समाज में आदर प्राप्त है। इस ग्रन्थ में—

१, श्रीधर कोशकार, २. श्रीधर ज्योतिर्विद ३. श्रीधर आचार्य
४. श्रीधर कवि ५. श्रीधर यति ६. श्रीधर सरस्वती

के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें केवल श्रीधर यति का उल्लेख भागवत टीकाकार के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है किन्तु एक कोशकार ने इन्हें 'दान चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ का रचयिता लिखा है तथा इनका समय ९८९ई० (सम्वत् १०४६) लिखा है। प्रसिद्ध भागवत टीकाकार का न तो १०४६ विक्रम समय ही माना जा सकता है और न 'दान चन्द्रिका' का रचयिता। प्रसिद्ध श्रीधर स्वामी ने चित्सुखाचार्य का उल्लेख किया है जो शंकराचार्य की शिष्य परम्परा के महान् स्तम्भ थे एवं उनका समय १२वीं शताब्दी के समीप माना जाता है। अतः श्रीधर स्वामी, उक्त श्रीधर यति से भिन्न हैं। विख्यात श्रीधर स्वामी के परिचय के सम्बन्ध में यह भी निश्चित नहीं कहा जा सकता कि ये किस देश के निवासी थे। उसका कारण है कि गुर्जर देशीय विद्वान् एवं बंग देशीय विद्वानों के विभिन्न वाद जो श्रीधर स्वामी के सम्बन्ध में प्रचलित किए गए हैं।

श्रीधर महाराष्ट्र निवासी तथा गुजरात प्रवासी ब्राह्मण थे एवं काशी में अधिक समय पर्यन्त परमानन्द नामक गुरु के समीप रहे थे। 'वेणी माधव का धरहरा' उनकी निवास स्थली था। यह गुजरात प्रदेश के विद्वानों का कथन

---

[1] **विश्व कोश (बंगाक्षर) अतीन्द्रिय वेदान्त वाचस्पति, खण्ड २०पृष्ठ, ६६९, माध्व गौड़ीय प्रकाशन, कलकत्ता।**

है। इस पक्ष की पुष्टि गुजराती भाषा भागवत में सशक्त रूप से की गई है।[१]

वंग देशीय विद्वान् इन्हें सुरेश्वर के वंश में उत्पन्न बंगदेशीय गौड़ ब्राह्मण मानते हैं, उनका समर्थन है कि संस्कृत कालेज कालिकाता के अध्यक्ष स्व० महेशचन्द्र न्यायरत्न श्रीधर स्वामी की चौदहवीं अधस्तन पीढ़ी में थे।[२] इस पत्रिका में इन्हें बंगाल के नन्दा ग्राम का निवासी माना है। किन्तु इसी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कोश में इन्हें महाराष्ट्र निवासी माना है।[३]

श्रीधर गुजरात प्रवासी महाराष्ट्र निवासी थे या बंगदेश निवासी यह तो निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता तथापि यह तो निश्चित है कि ये काशी में निवास करते थे—'माधवो माधवावीशौ' मंगलाचरण में उमामाधव का उल्लेख 'वेणीमाधव के धुरैरा' से सम्बन्धित है।[४]

गुजरात प्रदेशीय किम्वदन्ती के अनुसार श्रीधर स्वामी के एक पत्नी एवं एक पुत्र भी था, राजाश्रय प्राप्त होने के कारण ये गृहस्थ की आर्थिक चिन्ताओं से भी मुक्त थे।[५]

श्रीधर स्वामी की चित्त वृत्ति गृहस्थ में नहीं रमी। वे विरक्त होने का स्वप्न देखा करते थे। दैवयोग से उनकी कल्पना मूर्तिमती बनी, उनकी पत्नी की अकाल मृत्यु हो गई। यद्यपि वे इस घटना से प्रसन्न हुए तथापि शिशु की ममता उन्हें गृहस्थ में और भी अधिक जकड़ बैठी। गीता के पाठक होने के कारण उन्हें सन्यास ग्रहण की प्रेरणा प्रवल वेग से उठती किन्तु शिशु के मोह बन्धन से वे छूट नहीं सकते, उनका अन्तर्द्वन्द्व उत्तरोत्तर वृद्धि पर था। एक दिन उनकी दृष्टि गीता के—

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते
तेषांनित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्।'[६]

'अनन्य भाव से मेरा चिंतन करने वाला मेरे आधीन है उसका योग क्षेम मैं वहन करता हूँ।' श्रीधर ने मन में विचार कर दृढ़ निश्चिय किया कि मैं प्रभु की वाणी पर दृढ़ विश्वास नहीं करता अन्यथा मुझे योग क्षेम की चिन्ता क्यों ?

---

१. **गुजराती भाषा भागवत-इच्छाराम, भूमिका, बम्बई, पृष्ठ १६।**

२. **प्रवासी पत्रिका माघ १३५८ बंगाब्द, पृष्ठ ४११।**

३. **गौड़ीय वैष्णव अभिधान कोश (बंगाक्षर), पृष्ठ १३६०।**

४. **भागवत १।१।१ मंगलाचरण पद्य २।**

५. **भागवत गुजराती भाषा, पृष्ठ १६।** ६. **गीता ९।२२**

इस चिन्तवन के प्रवाह में प्रवाहित श्रीधर स्वामी अपने घर आ पहुँचे, देहली में प्रवेश किया ही था कि सामने छत पर से एक अंग पृथ्वी पर गिर पड़ा। गिरते ही एक पक्षी शावक निकला। वह क्षुधार्त्तथा किन्तु दैवयोग से उस द्रव पर एक भक्षिका बैठी, उसे पक्षि शावक ने आत्मसात कर लिया और चेतना प्राप्त की।

श्रीधर स्वामी बड़े ध्यान से देख रहे थे कि इसकी रक्षा प्रभु किस प्रकार करेंगे। किन्तु यह घटना देखकर उन्हें भगवान पर पूर्ण विश्वास हो गया था। ईश्वर एक क्षुद्र जीव का पोषण करता है तो क्या मेरे पुत्र का नहीं करेगा? श्रीधर ने विचार किया कि मैं विद्वानों की कोटि में गिना जाता हूँ एवं ईश्वर ज्ञान के सम्बन्ध में अभिमान करता हूँ, उनका यशोगान भी करता हूँ, तथापि ईश्वर की कर्तृत्व शक्ति पर विश्वासहीन हूँ। गीता के श्लोकों का अर्थ अनेक व्यक्तियों को सुनाता हूँ पर उन पर मेरा कितना विश्वास हैं? मुझे केवल अपने शिशु की चिन्ता है पर दीनबन्धु जगतरक्षक को सब जीवों की चिन्ता है। श्रीधर स्वामी के मन का समाधान हो गया और वह गृहस्थ को त्यागकर काशी में आकर रहने लगे।

सन्यास ग्रहण के उपरान्त श्रीधर के पुत्र का पोषण राजा ने किया।[1] गीता की निम्नलिखित पंक्तियाँ उक्त किम्वदन्ती का आधार कही जा सकती है–

'नमे भक्तः प्रणश्यति' (गीता ९।३१)

"पटहादि घोषपूर्वकं विवद मानानां सतांगत्वावाहुमुत्क्षिप्प्त निःशंक प्रति जानीहि प्रतिज्ञां कुरुकथं मे परमेश्वरस्य भक्तः सुदुराचारोऽपि न प्रणश्यति अपितु कृतार्थं एव भवतीति। सुबोधिनी टीका गीता ९।३१

'पटह घोषपूर्वक विवादशील विद्वानों के मध्य में बाहु उठाकर प्रतिज्ञा कर कि मुझ परमेश्वर का भक्त दुराचारी होने पर भी कृतार्थ हो जाता है।

द्वितीय किम्बदन्ती के आधार पर श्रीधर बाल्यावस्था में महान मूर्ख थे।[2] एक सयय एक नृपति और उनके मन्त्री वर्ग भ्रमण के लिए निकले, उनकी दृष्टि अपवित्र पात्र में तेल लेकर आने वाले श्रीधर पर पड़ी। उस समय राजा और मन्त्री दोनों में ईश्वर की सामर्थ्य को लेकर विवाद चल रहा था। मन्त्री का कथन था कि कि ईश्धर की उपासना से मूर्ख व्यक्ति भी विद्वान बन सकता है। राजा ने श्रीधर को लक्ष्य करते हुए एवं इनकी चेष्टा तथा आकृति आदि से महामूर्ख समझकर कहा कि यदि यह व्यक्ति योग्य बने तो तुम्हारे कथन की

---

[1] गुजराती भाषा भागवत, पृष्ठ १६ (भूमिका)

[2] कल्याण, सप्त अंक, पृष्ठ ४७३।

पुष्टि सम्भव है, मन्त्री ने उक्त कथन सिद्ध करने की प्रतिज्ञा की और श्रीधर को अपने साथ में लाकर देवालय में ठहरा दिया तथा दैनिक शिक्षा एवं ईश्वर की आराधना प्रारम्भ करवा दी गई। यही श्रीधर कालान्तर में अनेक शास्त्रों के ज्ञाता एवं भागवत की भावार्थ दीपिका टीका के निर्माता बन गए।

तृतीय किम्बदन्ती है कि श्रीधर स्वामी गोवर्द्धन मठ के अधिपति थे। किन्तु अनेक प्रमाणों से यह निर्णय किया जा चुका है कि गोवर्द्धन पीठ के अधिपति का नाम श्रीधरारण्य था। श्रीधरारण्य का उल्लेख—भागवत टीका गीता टीका एवं विष्णु पुराण टीका आदि में कहीं उपलब्ध नहीं है, इन दोनों व्यक्तियों के गुरु नाम स्पष्ट हैं, श्रीधरारण्य के गुरु का नाम गोविन्दारण्य था, किन्तु भागवत टीकाकार श्रीधर स्वामी के गुरु का नाम 'परमानन्द' था।[1]

'यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्'

अतः श्रीधर स्वामी को गोवर्द्धन पीठ का अधिपति नहीं माना जा सकता।[2]

चतुर्थ किम्बदन्ती बंगदेशस्थ कतिपय विद्वानों द्वारा प्रसारित की गई है, उसके अनुसार श्रीधर स्वामी का जन्म नान्दा ग्राम में सुरेश्वर के वंश में हुआ था, ये शाण्डिल्य गोत्री ब्राह्मण थे एवं इनके संन्यास पूर्व का नाम श्रीधराचार्य था। श्रीधर के पुत्र का नाम श्रीकर विद्यार्णव था, महेशचन्द्र न्याय रत्न इनके १४वें वंशज थे।

'जनमेजय घटक'[3], 'प्रवासी पत्रिका'[4] एवं 'हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष श्री सिद्धेश्वर भट्टाचार्य'[5] इस पक्ष के प्रबल समर्थकों में हैं। श्री भट्टाचार्य ने प्रमाणित किया है कि—'नारायणाय' में आय पदच्छेद का अर्थ बंगदेश की मान्यता का द्योतक है।

उक्त मत से श्रीधर को बँगदेश निवासी मानने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। किन्तु बहुधा विद्वान् इस मत के समर्थक नहीं। ब्रजदेश की मान्यता के अनुसार तो महाराष्ट्र ब्राह्मण ही थे और वहीं इनका जन्म—स्वाध्याय आदि हुआ था।

१, भावार्थ दीपिका १।१।१ मंगलाचरण श्लोक ३।

२. गौड़ियार तिन ठाकुर (बंगाक्षर) ८ माधुरी, पृष्ठ २४५।

३. कुलतत्व दर्शन—ले० जनमेयजघटक (बंगाक्षर) यशोहर, १२६५ बंगाब्द।

४. प्रवासी पत्रिका माघ १३५८ बंगाब्द (बंगाक्षर) श्री दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य लिखित-"श्रीधर स्वामीर कुल परिचय और कालनिर्णय", पृष्ठ ४११-४१४

५. पत्र द्वारा प्राप्त मत दिनांक १३-१-६६, हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी।

श्रीमद्भागवत में भावार्थ दीपिका में द्वादश स्कन्ध में एक कल्पित चित्र—श्रीधर स्वामी का बनाया गया है, यह चित्र प्रायः सभी संस्करणों में एक-सा ही है जिसमें महाराष्ट्र की पगड़ी एवं 'अँगरखा' पहने हुए उन्हें चित्रित किया है, इससे यह विचार किया जा सकता है कि आज से ८० वर्ष पूर्व की प्रति में उपस्थित यह चित्र अवश्य ही कुछ विचार धाराओं के साथ बनाया गया होगा[१] एवं अन्य प्रतियों में भी इसका अन्वेषण किया जा सकता है। अतः श्रीधर स्वामी को महाराष्ट्र देश का निवासी मानना उचित है।

श्रीधर अनेक शास्त्रों के पारंगत विद्वान थे जैसा कि उनकी टीका परिशीलन द्वारा प्रमाणित होता है तथापि उनकी इस अनुपम विद्या का स्रोत कौन है यह ज्ञात नहीं। अन्तः साक्ष्य के आधार पर यह निश्चित है कि इनके गुरु परमानन्द थे। गीता के प्रत्येक अध्याय एवं भागवत के प्रत्येक स्कन्ध में एवं अधिकांश अध्यायों में परमानन्द का उल्लेख किया गया है।
सुबोधिनी टीका में—

'दधानमद्भुतं वन्दे परमानन्द माधवम्'[२]।
'तं कृष्णं परमानन्दं तोषयेत् सर्व कर्मभिः'[३]।
'तं वन्दे परमानन्दं माधवं भक्तशेवधिम्'[४]।
'तं वन्दे परमानन्दं नन्दनन्दनमीश्वरम्'[५]।

गीता के अठारहवें अध्याय में इन्होंने अपने गुरु के साथ अपना भी उल्लेख किया है।[६] श्रीमद्भागवत की भावार्थ दीपिका टीका की रचना भी अपने गुरु परमानन्द की प्रीति के लिये ही की गयी थी, जैसा कि उनके वाक्य द्वारा सिद्ध है :—

'श्री परमानन्दसम्प्रीत्यै गुह्यं भागवतं मया
तन्मेतेनेदमाख्यातं न तु मन्मति वैभवात्।'[७]

---

[१] भावार्थ दीपिका, सम्वत् १९५८ विक्रम, मुम्बई प्रकाशन।

[२] सुबोधिनी टीका गीता १।१।१ मंग० १।

[३] वही अध्याय ३ मंग० १।

[४] वही अध्याय ६ अन्त।

[५] वही अध्याय १३ अन्त।

[६] परमानन्द श्रीपाद रजः श्रीधारिणा धुना।
श्रीधर स्वामियतिना कृतागीता सुबोधिनी।
(सुबो० गीता अध्याय १८ - अन्त में)

[७] भावार्थ दीपिका १२।१३ मंगलाचरण अन्तिम श्लोक।

प्रथम स्कन्ध में परमानन्द के 'चरण कमलों का भृंग' अपने को लिखा है :—

'परमानन्द पादाब्जः भृंगः श्री श्रीधरोऽकरोत् ।'[1]

ज्ञात होता है कि श्रीधर स्वामी के दीक्षा गुरु और शिक्षा गुरु दोनों एक ही थे अन्यथा वे शिक्षा गुरु का भी कहीं पृथक् उल्लेख अवश्य करते ।

(ख) **सम्प्रदाय**—श्रीधर स्वामी नाम से ही सन्यास आश्रम एवं अद्वैत सम्प्रदाय का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि स्वामी नाम सन्यासश्रमी शिष्यों का दिया जाता था। किन्तु अद्वैत सम्प्रदाय से—शंकराचार्य अनुमोदित अद्वैत नहीं अपितु प्राचीन अद्वैत सम्प्रदाय 'जिसमें प्रतिबिम्बवाद या उपाधिवाद की रूढ़ता नहीं थी' मानना उपयुक्त होगा। इसकी मान्यता का प्रथम हेतु तो यह है श्रीधर ने अपने पूर्ववर्ती मान्य श्री शंकराचार्य का या उनके ग्रन्थों का उल्लेख नहीं किया, द्वितीय यह कि वे भक्ति क्षेत्र में अग्रसर थे और वैष्णव सिद्धान्तों का अनुसरण करते थे ।

श्रीधर स्वामी की अन्य अद्वैतवादी आचार्यों की भाँति अद्वैत सम्प्रदाय के किसी ग्रन्थ की टीका आलोचना आदि भी उपलब्ध नहीं होती केवल–सात्विक ग्रन्थ–विष्णु पुराण, भागवत पुराण की टीका तथा गीता की टीकाएँ उपलब्ध हैं। वेदान्त के विद्वान् के नाते इनका 'हृदय'[२] भक्त तथा मस्तिष्क वेदान्त रस में परिपक्व था। उनके मंगलाचरण–राम कृष्ण–शिव–नृसिंह की भक्ति से परिपूर्ण हैं। राम का स्मरण भागवत टीका के प्रारम्भ में है :—

श्रीमत्परम हंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय
भक्तजनमानस–निवासाय–श्रीरामचन्द्राय ।'

उक्त मङ्गलाचरण के परमहंस की व्याख्या करते हुए पं० वंशीधर ने उसके तीन भेद किये हैं—हंस, परमहंस, श्री परमहंस। हंस का कार्य है दुग्ध को और जल को पृथक् करना । परमहंस-चित्-जड़ भेद में निपुण होता है। श्री परमहंस-चैतन्यैक निष्ठ परमात्मा ध्यान में मग्न होता है। यहाँ श्रीपरमहंस विशेष उनके स्वत्व के सम्बन्ध में माना है।[२] इससे अद्वैत अवस्था का बोध होता है :—

'भक्त जनमानस निवासाय'

---

१. वही १२।१३। उप०

२. भावार्थ दीपिका प्रकाश १।१।१ उपक्रम ।

इस विशेषण से श्रीधर के भक्त हृदय का भान सम्यक् परिलक्षित है। अद्वैत वेदान्त के 'विद्वान्' मङ्गलाचरणों में प्रायः सच्चिदानन्द घन ब्रह्म की वन्दना करते हैं। किन्तु श्रीधर स्वामी ने जो रामकृष्णपरक मङ्गलाचरण किये हैं उनसे उनके भक्ति क्षेत्र के रसरूप की सत्ता सिद्ध होती है।

श्रीधर नृसिंहोपासक थे, उन्होंने नृसिंह की वन्दना बड़ी तन्मयता के साथ की है :—

> वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य चवक्षसि
> यस्यास्ते हृदयें संवित्त नृसिंहमहंभजे ॥
> (भावार्थ दी० १।१।१ मङ्गला०)

'अहं भजे' पद उनकी इस गाढानुरागिता के द्योतक हैं। कतिपय विद्वान् तो उक्त मङ्गलाचरण के आधार पर एवं भगवान् रामचन्द्र का प्रत्येक स्कन्ध में ध्यान करने के कारण उन्हें विशिष्टाद्वैतवाद का अनुयायी सिद्ध करते है।[1] किन्तु मध्य सम्प्रदाय में भी नृसिंह की स्तुति की गई है,[2] अतः रामानुज में इन्हें किस प्रकार माना जाय साथ ही वे कहीं श्रीरामानुजाचार्य यामुनाचार्य आदि का उल्लेख अवश्य करते, जैसा कि अन्य सम्प्रदायानुगामी टीकाकारों ने किया है। किन्तु रामानुज सम्प्रदाय के विद्वान् ने इनकी टीका का खण्डन किया है।[3] गौड़ीय चैतन्य मत की झलक देखकर उन्हें कुछ विद्वान् उक्त सम्प्रदाय का मान्य विद्वान् मानते हैं। चैतन्य सम्प्रदाय में श्रीधर स्वामी का अत्यधिक मान है, श्रीधर की वाणी न मानने वाले को चैतन्य ने वेश्या पुत्र जैसे शब्दों से अभिहित किया है :—

> 'श्रीधर न माने तेहि वेश्याकरि जान'[4]
> श्रीधरेर अनुगत ये करे लिखन
> सब लोक मान्य करि करिवे ग्रहन ।

श्रीधर को इस सम्प्रदाय का कथन करने के लिये एक और युक्ति कही गई है वह है—विष्णु पुराण की टीका में—'अर्थापति प्रमाणमूलक' अचिन्त्य शब्द का प्रयोग किया है। जीवगोस्वामी ने इसे अचिन्त्य भेदाभेद की सूचना के रूप में माना है।[5] एकादश स्कन्ध में श्रीधर ने जीव को अल्पज्ञ एवं परमेश्वर को

---

[1] १. १०८ श्री कमलनयनाचार्य जी, वृन्दावन।

[2] २. मध्व तात्पर्य निर्णय मंगलाचरण।

[3] ३. भागवतचन्द्र चन्द्रिका ४।२।१६.

[4] ४. चैतन्य चरितामृत १।१२६-१३७.

[5] ५. गौड़ियेर तिन ठाकुर (बंगा०) पृष्ठ २५२।

सर्वज्ञ लिखकर यह भी लिखा है कि 'जीव, परमेश्वर के आधीन है, परमेश्वर की सर्वज्ञता नित्य सिद्ध है, चिद्रूपत्व में दोनों अभिन्न हैं। अतएव जीव और परमेश्वर के मध्य अत्यन्त भेद नहीं अपितु भेदाभेद है।'[1]

'जीवेश्वरयोस्तुकथं भेदाभेदविवक्षया अत आह अनादि इति वैलक्षण्यं विसदृशत्वं नास्ति द्वयोरपि चिद्रूपत्वात्।'

'अतस्तयोरत्यन्तमन्यत्वकल्पना अपार्था व्यर्था'।

गीता में यह भाव देखा जाता है—परमेश्वर रूपी समुद्र से जीव रूपी फेन पृथक् नही कहा जा सकता, जैसे फेन का पृथक् नाम रूप कल्पित भी है और वस्तुतः वह समुद्र ही है। इसी प्रकार जीव का भेद भी है और वस्तुतः वह परमेश्वर से अभिन्न है।

'भूतेषु स्थावर जङ्गमात्मकेष्वविभक्तं कारणात्मनाभिन्नं कार्यात्मना भिन्नमिव-स्थितं च विभक्तम्, समुद्राज्जातं फेनादि समुद्रादन्यन्न भवति'।[2]

श्री धर स्वामी के उपर्युक्त 'पद' कदम्ब को व्याकरण व्युत्पत्ति के आधार पर इस सम्प्रदाय की ओर मान भी लिया जाय तो भी यह तो निर्विवाद है कि श्रीधर स्वामी के समय में इस सम्प्रदाय का उल्लेख कहीं भी उपलब्ध नहीं था, यह अचिन्त्य भेदवाद चैतन्य स्वामी के पश्चात् प्रचलित हुआ।

अद्वैतवाद—श्रीधर स्वामी मायावाद के प्रबल समर्थक थे, शुद्धाद्वैत जगत् की किम्वदन्ती के अनुसार श्री वल्लभाचार्य ने अपनी सुबोधिनी टीका का प्रणयन श्री स्वामी कृत भावार्थ दीपिका के खण्डन के लिये ही किया था। यदि श्रीधर स्वामी ने वैष्णव अभिमत पक्ष ग्रहण किया होता तो वल्लभाचार्य उनके खण्डन की चर्चा क्यों करते। अन्य किम्वदन्ती है कि श्री वल्लभाचार्य एवं चैतन्य महाप्रभु की भेंट जब श्री जगन्नाथ क्षेत्र में हुई तो वल्लभाचार्य ने अपनी सुबोधिनी टीका प्रदर्शित करते हुए चैतन्य महाप्रभु से कहा कि मैंने इस टीका में श्रीधर स्वामी की टीका का खण्डन किया है—इस पर चैतन्य क्षुब्ध हुए और उन्होंने श्रीधर को न मानने वाले को उचित नहीं ठहराया। इससे यह तो सिद्ध होता है कि वल्लभाचार्य ने मायावाद की गन्ध के कारण ही श्रीधर स्वामी की टीका के खण्डन की चर्चा कही थी। परन्तु महाप्रभु चैतन्य ने श्रीधर स्वामी की इतनी प्रशंसा क्यों की ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। एक चैतन्य महाप्रभु वे ही नहीं अपितु उनके अनुगामी सभी विद्वान् श्रीधर का गुणगान

---

[1] भा० दी० ११।२२।१०.

[2] सुबोधिनी गीता १३।१६.

करते हैं। सनातन गोस्वामी, जीवगोस्वामी एवं विश्वनाथ चक्रवर्ती जैसे भागवत के टीकाकारों ने न केवल उन्हें 'स्वामिचरणाः' शब्द से अभिहित किया अपितु उनका उच्छिष्ट ग्रहण हमने किया है—यह स्पष्ट लिखा है।[1]

यदि उक्त 'आचार्य' श्रीधर स्वामी को मायावाद का प्रबल समर्थक मानते तो अपनी टीकाओं में अवश्य उनका खण्डन प्रस्तुत करते, उच्छिष्ट ग्रहण करने वाला व्यक्ति किस प्रकार अपने श्रद्धेय के मत का खण्डन कर सकता है, साथ ही उनके उपास्य चैतन्य ने जिसे प्रामाणिक माना है वह निन्दित नहीं कहा जा सकता। अतः श्रीधर में कोई ऐसा गुण विशेष अवश्य था जिसके कारण उन्हें भारतीय सम्प्रदायाचार्यों ने सम्मान दिया। श्रीविष्णु स्वामि सम्प्रदाय में श्रीधर स्वामी का अत्यन्त गुणगान किया गया है एवं उन्हें सिद्ध किया है कि वे विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के थे, उन्होंने मध्व, रामानुज, शंकर प्रभृति आचार्यों का कहीं उल्लेख भी नहीं किया केवल 'विष्णु स्वामी' का बहुवचन में प्रयोग किया है, उनके ग्रन्थ का भी उल्लेख किया हैं। अतः इस सम्प्रदाय का वैष्णव मानना उपयुक्त है, वेदान्त के मर्मज्ञ विद्वान् एवं परमानन्द के शिष्यत्व के कारण उनका अद्वैत पक्ष अत्यधिक सबल रूप में दृष्टिगोचर होता है किन्तु वे इसका निर्देश 'स्वीयनिर्वन्धयन्त्रित' तथा 'परमानन्द सम्प्रीत्यै' आदि शब्दों के द्वारा स्पष्ट कर चुके हैं, अतः अद्वैत का उल्लेख प्राप्त भी हो तो उसे उनके गुरु के आग्रह का सूचक माना जा सकता है, उनका नहीं। वे तो परम वैष्णव एवं भावुक भक्त थे यह उनकी टीका रचना से स्पष्ट है। श्रीधर स्वामी केवल मायावादी नहीं थे फलतः उनका समस्त वैष्णवों ने समादर किया। मायावादी पथ केवलाद्वैतवादी माना जाता है, इसके अनुसार निर्विशेष ब्रह्म ही परतत्व है, जबकि श्रीधर स्वामी ने श्रीकृष्ण को ही घनीभूत ब्रह्म नित्य मुक्त अव्यय माना है।

'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहम्' की व्याख्या में स्पष्ट लिखा है :—

'प्रतिष्ठा प्रतिमाघनी भूतं ब्रह्मैवाहम्'[2]

श्रीधर स्वामी ने भगवद्विग्रह, नाम, रूप, गुण,विभूति,धाम तथा परिकर को नित्य

---

[1] **पीत श्री गोपिका गीत सुधासार महात्मनाम्**
श्रीधर स्वामिनां किंचिदवशिष्टंविचीयते ।।
(सनातन, जीवगो० विश्व० १०।३३।३)

[2] **सुबोधिनी टीका - गीता १८।२७.**

माना है।[1] जबकि मायावाद में सब कुछ माया ही माया है। मायावाद में उपाधि विशिष्ट सगुण ब्रह्म ईश्वर है, किन्तु श्रीधर प्राकृत गुण अनभिभूत को ईश्वर मानते हैं। ब्रह्मज्ञान मात्र ही नहीं अपितु ज्ञाता एवं सम्पूर्ण कल्याण गुणों का आश्रय स्थान है :—

'प्रभुरितीश्वरस्योपाधिवशता भावेन नित्यमुक्ततां दर्शयति' अयमभिप्राय:—सगुणमेव गुणैरनभिभूतम् सर्वज्ञः सर्वशक्तिं सर्वेश्वरं सर्व नियन्तारं सर्वोपास्यम् सर्व कर्मफलप्रदातारम् समस्त कल्याणगुण निलयं सच्चिदानन्दं भगवन्तं श्रुतयः प्रतिपादयन्ति'।[2]

माया के सम्बन्ध में श्रीधर स्वामी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि माया ब्रह्म की स्वरूपानुबन्धिनी स्वभाव सिद्धा शक्ति है— परमेश्वरस्य शक्तिर्माया सत्व गुणविकारात्मिका सत्वादि गुणरहितस्य ब्रह्मणोऽपि स्वभाव सिद्धाः शक्तयः सन्त्येवपावकस्य दाहकत्वादि शक्तिवत्।[3]

मायावाद में मायाअविर्वचनीय है।[4] वह न सत् है न असत्।

'सन्नाप्यसन्नाप्युमयात्मिकानो'

मायावाद में मुक्ति का परत्व तथा भक्ति का नित्यत्व नहीं माना जाता— किन्तु श्रीधर स्वामी ने स्पष्ट भक्ति की श्रेष्ठता मुक्ति से भी बढ़कर मानी हैं–

'श्रुतिश्च मुक्तेख्याधिक्यं भक्तेर्दर्शयति 'यथाह'—यं सर्व देवानमन्ति' इति भाष्य कृद्भिः मुक्ता अपि लीलयाविग्रहं कृत्वा भगवतं ब्रजन्त इति।' वे चतुवर्ग को भी भक्ति के समान मानते हैं।[5] पद्यावली में श्रीधर स्वामी का एक पथ है जिसमें स्पष्ट लिखा है कि—यदि श्रवण-कीर्तन तथा श्रीकृष्ण की

---

१. तन्मूर्तः सनातनत्वमपरिमेयत्वमुपयादयति रूपमिति।

(भावार्थ दी० ८।६।७-६.)

२. भा० दी० १०।८७।२ एवं विष्णु० टीका ३।१-२.

३. सुबोधिनी टीका (गीता) ७।१८.

४. वेदान्द सार-ले० सदानन्द, पृष्ठ १७। **५. भा० दी० १०।८१।२१.**

६. त्वत्कथामृत पाथोघोचिहरन्तो महापुदः।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वगं तृणोपमम्।"

(भा० दी० १०।८१।२१)

सन्निधि प्राप्त है तो मुक्ति का प्रयोजन ही क्या ?[1] अतः श्रीधर स्वामी को अद्वैतवाद की कतिपय मान्यताओं को समकोटि में रखने के साथ उनको वैष्णव कोटि में रखना उचित ही होगा। कतिपय मङ्गलाचरण के श्लोकों के आधार पर उन्हें किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध करना उचित नहीं। क्योंकि उन्होंने हरिहर की भी वन्दना की है तो शैव पन्थी अपना कहें तो अत्युक्ति न होगी।[2]

विष्णु पुराण की टीका में विन्दु माधव का स्पष्ट निर्देश है—

> 'अथातः पंचमांशे श्रीकृष्णलीला महोदयः
> बिन्दु माधवतोषाय यथामति वितन्यते ॥'[3]

स्पष्ट रूपेण यदि किसी सम्प्रदायाचार्य का उल्लेख किया है तो वे विष्णु स्वामी हैं, इनके नाम निर्देश में श्रीधर ने संकोच नहीं किया। इतना ही नहीं श्रीधर स्वामी ने विष्णु स्वामी के वचन भी उद्धृत किये हैं[4] और उनका नाम निर्देश भी किया है। अतः उन्हें विष्णु स्वामी सम्प्रदायानुवर्ति मानना चाहिये।

(ग) स्थितिकाल—श्रीधर स्वामी के समय का अभी तक कोई प्रामाणिक निर्णय नहीं है। उसका मूल कारण यह है कि इन्होंने अपने जन्म सम्वत् आदि के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। बाह्य साक्ष्य एवं अन्तः साक्ष्य के आधार पर साथ ही टीकाकारों को प्राधान्य देते हुए हम इनका काल निर्णय करने का प्रयत्न करेंगे।

आठ टीकाओं के साथ मुद्रित टीकाओं में सिद्धान्त प्रदीप के टीकाकार अर्वाचीन हैं। इस टीका के रचयिता 'शुक सुधी' सम्वत् १६२६ में विद्यमान थे—इन्होंने श्रीधर की टीका की, अक्षर सम्पत्ति के ग्रहण के साथ उनका उल्लेख भी किया है।[5] शुक सुधी ने भागवत टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्ती

---

१. पद्यावली - रूपगो० १५-२८-४३ संख्या।

२. माधवो माधवावीशौसर्वसिद्धि विधायिनौ
वन्दे परस्परात्मानौ परस्पर नुति प्रियौ ॥

(भावा० दी० १।१।१ मंग०)

३ आत्मप्रकाश टीका (विष्णु पु०) टीकारम्भ मंगला०।

४. (क) भा० दी० १।७।६ 'तदुक्तं विष्णु स्वामिभिः'
(ख) भा० दी० ३।१२।२ 'तदुक्तं विष्णु स्वामिभिः'

५. सिद्धान्त प्रदीप ३।५।३८

का उल्लेख भी किया है ।[1] विश्वनाथ चक्रवर्ती ने सम्वत् १७६३ (ई० १७०६) में सारार्थदर्शिनी टीका लिखी । इन्होंने श्रीधर स्वामी का अनेक स्थलों पर नाम्ना निर्देश किया है ।[2]

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने श्री जीवगोस्वामी का एवं सनातन गोस्वामी का उल्लेख किया है ।[3] जीवगोस्वामी ने भागवत पर क्रम सन्दर्भ नामक ग्रन्थ रचा । इसके आरम्भ में उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है :—

> ‘श्रीधरस्वामिभिर्व्यक्तं
> यद्व्यक्तं चास्फुटं क्वचित्
> तत्रतत्रैव विज्ञेयः
> सन्दर्भः क्रम संज्ञकः ।।’[4]

जीवगोस्वामी ने सनातन गोस्वामी का उल्लेख किया है । ये समकालीन थे एवं सनातन के भ्राता वल्लभ के पुत्र थे । सनातन गोस्वामी ने अपनी टीका ‘वृहद्वैष्णवतोषिणी’ में श्रीधर स्वामी के उच्छिष्ट ग्रहण का संकेत दिया है ।[5] सनातन १६४३ में हुए थे । सनातन गोस्वामी ने चैतन्य महाप्रभु को अपने इष्टदेव के रूप में मानकर वन्दन किया है । चैतन्य महाप्रभु ने स्पष्ट श्रीधर स्वामी की टीका की महत्ता प्रकाशित करते हुए एक स्थल पर कहा था—

> श्रीधरेर अनुगत ये करेलिखन
> सब लोक मान्य करि करिवे ग्रहन ।[6]

चैतन्य महाप्रभु का जन्म समय १५४२ माना जाता है, इन्हीं के समकालीन आचार्य वल्लभ थे । आचार्य वल्लभ ने भी श्रीधर स्वामी की टीका का अवलोकन एवं खण्डन किया था ।

मध्व सम्प्रदाय के टीकाकार श्री विजयध्वज ने भी श्रीधरी टीका का अनुसरण किया किन्तु स्पष्ट नाम निर्देश नहीं किया । विजयध्वज से पूर्व रामानुज सम्प्रदाय के टीकाकार वीर राघव का नामोल्लेख किया जा सकता है, वीर राघवाचार्य ने श्रीधर स्वामी का स्पष्ट निर्देश तो नहीं किया तथापि चतुर्थ स्कन्ध में वर्णित दक्ष यज्ञ विध्वंस प्रसङ्ग में श्रीधर स्वामी ने शिव के स्तुति पक्ष

---

[1] **सिद्धान्त प्रदीप २।५।३८ ।**

[2] **सा० द० में १।१।१, ३।२५।३५, १०।१।१ ।**

[3] **सा० द० ३।२५।३५ ।**

[4] **क्र० स० १।१।१ मंगलाचरण ।**

[5] **वृहद्वैष्णवतो० १०।१।१ मंगला० ४ श्लोक ।**

[6] **चैतन्य चरितामृत २४।६६ ।**

सन्निधि प्राप्त है तो मुक्ति का प्रयोजन ही क्या ?[1] अतः श्रीधर स्वामी को अद्वैतवाद की कतिपय मान्यताओं को समकोटि में रखने के साथ उनको वैष्णव कोटि में रखना उचित ही होगा। कतिपय मङ्गलाचरण के श्लोकों के आधार पर उन्हें किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध करना उचित नहीं। क्योंकि उन्होंने हरिहर की भी वन्दना की है तो शैव पन्थी अपना कहें तो अत्युक्ति न होगी।[2]

विष्णु पुराण की टीका में बिन्दु माधव का स्पष्ट निर्देश है—

'अथातः पंचमांशे श्रीकृष्णलीला महोदयः
बिन्दु माधवतोषाय यथामति वितन्यते ॥'[3]

स्पष्ट रूपेण यदि किसी सम्प्रदायाचार्य का उल्लेख किया है तो वे विष्णु स्वामी हैं, इनके नाम निर्देश में श्रीधर ने संकोच नहीं किया। इतना ही नहीं श्रीधर स्वामी ने विष्णु स्वामी के वचन भी उद्धृत किये हैं[4] और उनका नाम निर्देश भी किया है। अतः उन्हें विष्णु स्वामी सम्प्रदायानुवर्ति मानना चाहिये।

(ग) स्थितिकाल—श्रीधर स्वामी के समय का अभी तक कोई प्रामाणिक निर्णय नहीं है। उसका मूल कारण यह है कि इन्होंने अपने जन्म सम्वत् आदि के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। बाह्य साक्ष्य एवं अन्तः साक्ष्य के आधार पर साथ ही टीकाकारों को प्राधान्य देते हुए हम इनका काल निर्णय करने का प्रयत्न करेंगे।

आठ टीकाओं के साथ मुद्रित टीकाओं में सिद्धान्त प्रदीप के टीकाकार अर्वाचीन हैं। इस टीका के रचयिता 'शुक सुधी' सम्वत् १९२६ में विद्यमान थे—इन्होंने श्रीधर की टीका की, अक्षर सम्पत्ति के ग्रहण के साथ उनका उल्लेख भी किया है।[5] शुक सुधी ने भागवत टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्ती

---

[1] पद्यावली - रूपगो० १५-२८-४३ संख्या।

[2] माधवो माधवावीशौसर्वसिद्धि विधायिनौ
वन्दे परस्परात्मानौ परस्पर नुति प्रियौ ॥
(भावा० दी० १।१।१ मंग०)

[3] आत्मप्रकाश टीका (विष्णु पु०) टीकारम्भ मंगला०।

[4] (क) भा० दी० १।७।६ 'तदुक्तं विष्णु स्वामिभिः'
(ख) भा० दी० ३।१२।२ 'तदुक्तं विष्णु स्वामिभिः'

[5] सिद्धान्त प्रदीप ३।५।३८

का उल्लेख भी किया है ।[1] विश्वनाथ चक्रवर्ती ने सम्वत् १७६३ (ई० १७०६) में सारार्थदर्शिनी टीका लिखी । इन्होंने श्रीधर स्वामी का अनेक स्थलों पर नाम्ना निर्देश किया है ।[2]

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने श्री जीवगोस्वामी का एवं सनातन गोस्वामी का उल्लेख किया है ।[3] जीवगोस्वामी ने भागवत पर क्रम सन्दर्भ नामक ग्रन्थ रचा । इसके आरम्भ में उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है :—

'श्रीधरस्वामिभिर्व्यक्तं
यद्व्यक्तं चास्फुटं क्वचित्
तत्रतत्रैव विज्ञेयः
सन्दर्भः क्रम संज्ञकः ।।'[4]

जीवगोस्वामी ने सनातन गोस्वामी का उल्लेख किया है । ये समकालीन थे एवं सनातन के भ्राता वल्लभ के पुत्र थे । सनातन गोस्वामी ने अपनी टीका 'वृहद्वैष्णवतोषिणी' में श्रीधर स्वामी के उच्छिष्ट ग्रहण का संकेत दिया है ।[5] सनातन १९४३ में हुए थे । सनातन गोस्वामी ने चैतन्य महाप्रभु को अपने इष्टदेव के रूप में मानकर वन्दन किया है । चैतन्य महाप्रभु ने स्पष्ट श्रीधर स्वामी की टीका की महत्ता प्रकाशित करते हुए एक स्थल पर कहा था—

श्रीधरेर अनुगत ये करेलिखन
सब लोक मान्य करि करिवे ग्रहन ।[6]

चैतन्य महाप्रभु का जन्म समय १५४२ माना जाता है, इन्हीं के समकालीन आचार्य वल्लभ थे । आचार्य वल्लभ ने भी श्रीधर स्वामी की टीका का अवलोकन एवं खण्डन किया था ।

मध्व सम्प्रदाय के टीकाकार श्री विजयध्वज ने भी श्रीधरी टीका का अनुसरण किया किन्तु स्पष्ट नाम निर्देश नहीं किया । विजयध्वज से पूर्व रामानुज सम्प्रदाय के टीकाकार वीर राघव का नामोल्लेख किया जा सकता है, वीर राघवाचार्य ने श्रीधर स्वामी का स्पष्ट निर्देश तो नहीं किया तथापि चतुर्थ स्कन्ध में वर्णित दक्ष यज्ञ विध्वंस प्रसङ्ग में श्रीधर स्वामी ने शिव के स्तुति पक्ष

---

१. **सिद्धान्त प्रदीप** २।५।३८ ।
२. **सा० द० में** १।१।१, ३।२५।३५, १०।१।१ ।
३. **सा० द०** ३।२५।३५ ।
४. **क्र० स०** १।१।१ **मंगलाचरण** ।
५. **वृहद्वैष्णवतो०** १०।१।१ **मंगला०** ४ **श्लोक** ।
६. **चैतन्य चरितामृत** २४।९६ ।

पर विशेष बल दिया है, उस अंश को पूर्व पक्ष में रखकर उसका अक्षरशः खण्डन अपनी भागवतचन्द्रचन्द्रिका में प्रस्तुत किया है।[1] यह टीकावलोकन से स्पष्ट ज्ञात होता है। वीर राघव का समय १४वीं शताब्दी माना जाता है, उन्होंने श्री रामानुजाचार्य का उल्लेख किया है :—

'श्रीरामानुजयोगिपूर्णकरुणापात्रं महान्तं गतम्।'[2]

वीर राघव के पूर्व अन्य ऐसे टीकाकार का उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ जिसने श्रीधर स्वामी का उल्लेख किया हो, अतः श्रीधर के परवर्ती टीकाकारों में सर्वप्रथम वीर राघव का उल्लेख किया जा सकता है। इनका समय १४वीं शती का उत्तरार्ध है, यह इनके परिचय में स्पष्ट देखा जा सकता है। अतः श्रीधर १४५० के पूर्व विद्यमान थे यह निश्चित है।

एक अन्य विद्वान् ने जो भाण्डारकर प्राच्य गवेषणा अधिष्ठान के क्यूरेटर थे उन्होंने भी श्रीधर स्वामी का समय १३५०-१४५०ई० के मध्य (सम्वत् १४०७-१५०७) माना है।[3]

अन्तःसाक्ष्य—श्रीधर स्वामी ने अनेक विद्वानों का, ग्रन्थकारों का उल्लेख अपनी भावार्थ दीपिका टीका में किया है, उनमें कतिपय तो अत्यन्त प्राचीन हैं अतः उनका तो केवल नाम संकेत देना ही पर्याप्त है, शेष विद्वानों एवं ग्रन्थों पर संक्षेप में विवेचन करना श्रीधर स्वामी के काल निर्णय में एक प्रमाण कोटि निर्धारित कर सकेगा। प्राचीन विद्वानों में—मनु[4], याज्ञवल्क्य[5], आश्वलायन[6], पातंजल[7], अक्षपाद[8], जैमिनि[9], शबर स्वामी[10], लौकायतिक[11], वृहस्पति[12], यास्क[13]—तो निश्चित रूपेण विक्रमादित्य से पूर्व उत्पन्न हुए थे। श्रीधर स्वामी ने 'मूल प्रकृति' वाली जिस कारिका का उल्लेख किया है[14] वह ईश्वर कृष्ण विरचित सांख्य कारिका में तृतीय संख्या की है। ईश्वर कृष्ण छठी शताब्दी के आसपास हुए थे, यह माना गया है। अमरसिंह[15], भट्ट[16],

---

[1] भाग० चं० चं० ४।२।१६। [2] वही १।१।१ मंगलाचरण।

[3] 'डेट आफ श्रीधर स्वामी' (इंगलिश) पब्लिशड बी० ओ० आर० इन्स्टी०, वाल्यूम ३०, पार्ट ३, ४ पेज २७७, पूना १९५०।

[4] भा० दी० ७।११।७। [5] वही १।११।३१। [6] वही ३।१३।४४।

[7] वही ४।२९।६३। [8] वही ४।२०।६३। [9] वही ४।२७।१७।

[10] वही १:१७।१९। [11] वही १।१७।१९। [12] वही ४।१८।३१।

[13] वही १।७।६। [14] वही ११।१६।३७।

[15] वही ४।१९।१२, ६।३।२४। [16] वही ६।१।४०।

त्रिकाण्ड कोश[1], सर्वज्ञ सूक्त[2], वाचः कूट संग्रह[3] के उल्लेख भी टीका में उपलब्ध हैं। अमरसिंह का अमरकोश एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। किम्वदन्ती है कि ये विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे। विक्रमादित्य भी अनेक हुए हैं, अतः यह अभी विवादपूर्ण है कि ये किस विक्रमादित्य के समकालीन थे। किन्तु ये विक्रम के आसपास हुए होंगे, यह निश्चय है।

सर्वज्ञ सूक्त के रचयिता विष्णु स्वामी थे, किन्तु विष्णु स्वामी नामक अनेक व्यक्ति हुए हैं, इनमें आदि विष्णु स्वामी ही सर्वज्ञ सूक्त के रचयिता थे, यह बहुधा कहा जाता है। किम्वदन्ती के अनुसार रुद्र ने बालखिल्य ऋषियों को उपदेश दिया था, वही उपदेश शिष्य परम्परा द्वारा विष्णु स्वामी को प्राप्त हुआ था।[4] यह विष्णु स्वामी पाण्ड्य विजय राज्य के गुरु देवेश्वर के पुत्र थे, इनका पूर्वाश्रम का नाम देवतनु था।

द्वितीय विष्णु स्वामी ८वीं शताब्दी में हुए थे। इन्होंने कांची में भगवान वरद राज और राजगोपाल देव की प्रतिष्ठा की थी एवं द्वारकापुरी स्थित रणछोड़ जी की स्थापना भी इनके सान्निध्य में हुई थी। बिल्वमंगल इन्हीं के प्रशिष्यों में थे।

तृतीय विष्णु स्वामी आन्ध्र प्रदेश में हुए थे। वल्लभाचार्य के पिता लक्ष्मण भट्ट इन्हीं की शिष्य परम्परा में थे। सर्वदर्शन रचयिता 'माधव' ने विष्णु स्वामी को अपना गुरु माना है।[5]

'सर्वज्ञ विष्णुगुरुमन्वहमाश्रयेऽहम्'

माधव का समय १२२८-१३३३ ई० के मध्य था, उन्हें शृंगेरी मठ का अध्यक्ष भी कहा जाता है।

मेधातिथि ने कोवर विष्णु स्वामी का उल्लेख किया है, मेधातिथि का

---

[1] वही ७।१४।२२। [2] वही ७।१५।६। [3] वही ६।१५।२०।

[4] कल्याण, वेदान्तांक, पृष्ठ ७००।

[5] "विष्णुस्वामिमतानुयायिभिः नृपंचास्यशरीरस्य-
नित्यत्वोपपादनात्"—तदुक्तं साकार सिद्धौ-
"सच्चिन्नित्यनिजाचिन्त्यपूर्णानन्दैक विग्रहम्
नृपंचास्यमहं वन्दे श्रीविष्णुस्वामिसम्मतम् ॥"
(सर्वदर्शन संग्रह, रसेश्वर० पृष्ठ २५)

समय ८०५-६०० ई० का मध्य भाग है[1], अतः विष्णु स्वामी इससे प्राचीन हैं, यह निश्चित है। श्रीधर स्वामी ने 'भट्ट' के नाम से कतिपय वाक्य उद्धत किये हैं 'तदुक्तं भट्टैः'। किन्तु उनका पूर्ण निर्देश न होने से निश्चित नहीं कि ये कौन भट्ट हैं। प्रसिद्धि है कि कुमारिल भट्ट ही भट्ट नाम से अभिहित किये जाते थे, इनका समय १००० ई० के आसपास माना जाता है।

अतः यह श्रीधर की पूर्व सीमा मानी जा सकती है, किन्तु अधिक प्रामाणिक न होने के कारण उक्त आचार्यों की अवधि की अनिश्चितता है। केवल एक ऐसा प्रमाण उपलब्ध है जिसके आधार पर श्रीधर स्वामी की पूर्व अवधि का निश्चय किया जा सकता है, वह है—चित्सुख का उल्लेख। श्रीधर ने अपनी टीका में अनेक स्थानों पर चित्सुख का नाम निर्देश किया है,[2] उन्हें अपना निर्देशक माना है।

चित्सुख (१२२० ई०) सम्वत १२७७ विक्रम में हुए थे, यह डा० एम० एन० दास गुप्ता का मत है।[3] इस मत की पुष्टि प्रसिद्ध भारतीय प्राच्य प्रतीच्य विद्याओं के मर्मज्ञ बलदेव उपाध्याय ने की है।[4]

स्वयं चित्सुख ने अपने ग्रन्थ 'तत्वप्रदीपिका' में न्याय लीलावतीकार वल्लभ के मत का खण्डन किया है। वल्लभ ने श्री हर्ष के मत का खण्डन किया था। हर्ष १२ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए थे। अतः इस आधार पर भी चित्सुख १३ वीं शताब्दी में माने जाते हैं। चित्सुखाचार्य शंकराचार्य के प्रशिष्यों में प्रमुख थे। शंकराचार्य के जन्म सम्वत् को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। केरलोत्पत्ति के अनुसार इनका समय चतुर्थ शताब्दी है, वर्नेल ने छठी शताब्दी लिखी है।[5] लिवेल ने 'शंकर' को ७ वीं शताब्दी का माना है।[6] आचार्य बल्देव उपाध्याय ने "आचार्य शंकर" नामक ग्रन्थ में बड़े श्रम एवं विद्वत्ता से शंकर का समय ७वीं शताब्दी निर्धारित किया है।[7]

---

१. **धर्मशास्त्र का इतिहास—पी० वी० काने, पृष्ठ ६८, राजकीय प्रकाशन, उ० प्र०।**
२. **'श्रीमत्चित्सुखयोगिमुख्यरचिते' (आत्म० विष्णु टीका १।१)**
३. **हिस्ट्री आफ इन्डियन फिलासफी, पृष्ठ १४७-४८ (कॅम्ब्रिज, १६३२ ई०)।**
४. **पुराण विमर्श—बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५७० (चौखम्बा १६६५)।**
५. **साउथ इण्डिया पॅलेकोग्राफी, पृष्ठ ३७, १११।**
६. **लिस्ट आफ एन्टी क्यूटिस्फ मद्रास, पृष्ठ १७१।**
७. **आचार्य शंकर—बलदेव उपाध्याय।**

राजेन्द्रनाथ घोष ने शंकर का जन्म ६८६ ई० लिखा है।[1] चतुर्थ शतक से नवम् शतक तक के उल्लेखों से यह सिद्ध है कि चित्सुख इनके उपरान्त हुए थे। चित्सुख ने श्रीमद्भागवत पुराण की टीका की थी।[2] श्रीधर स्वामी ने उनका स्मरण किया है। अतः उनका समय १२७७ सम्वत् माना जाय तो 'श्रीधर का समय' वीर राघव (१४वीं शताब्दी) एवं चित्सुख का (१३ वीं शताब्दी) के मध्य भाग में है, यह निश्चित है। श्रीधर ने वोपदेव का उल्लेख भी किया है। वोपदेव का समय १२६० ई० माना है[3]। अतः वोपदेव भी इनकी पूर्व सीमा माना जा सकता है। श्रीधर ने ब्रह्म सम्वोधिनी-टीका में परिचयात्मक एक श्लोक दिया है जिसके आधार पर विद्वानों ने उस कृति को १४३२ विक्रम की रचना कहा है।[4] वह श्लोक है—

'संसारेऽस्मिन् तत्व तात्पर्य तृप्त्यै-टीका ख्याता ब्रह्म सम्बोधिनीयम्
आचार्येण श्रीधरेण त्रिवेणी सङ्ग स्नान क्षालितान्तर्मलेन
रागाविष्टे विक्रमादित्य शोके, माघे श्लिष्टे सोमवारेण दर्शे
सिद्धे योगे विष्णु नक्षत्र कृष्टे सिद्धक्षेत्रे माधवास्था विशिष्टे ॥'

इसमें टीका का नाम, अपना नाम, त्रिवेणी माघमास, सोमवार, अमावस्या, सिद्धयोग, विष्णु नक्षत्र, सिद्ध क्षेत्र तथा 'रागाविष्ट' से अंकानां वामतोगतिः के आधार पर 'क ट प' आदि वर्णों के संकेत से १४३२ संख्या का निर्देश है। यदि यह श्लोक भागवत टीकाकार श्रीधर स्वामी का है तब निःसन्देह उनके बारे में बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है तथा इससे एक निश्चित दिशा का बोध होता है।

संशय का कारण यह है कि—इस प्रकार विष्णु पुराण, भागवत पुराण, सुबोधिनी गीता टीका आदि में परिचयात्मक श्लोक नहीं हैं और न उनमें किसी संख्या का उल्लेख है जिससे यह ज्ञात हो सके कि यह कृति किस सम्वत् की है। द्वितीय यह कि श्रीधर ने अपने लिये उक्त कृतियों में आचार्य शब्द का प्रयोग नहीं किया और न अन्य परवर्ती किसी टीकाकार ने ही इस विषय में कुछ लिखा। केवल 'स्वामी' या 'यति' शब्द के प्रयोग ही उक्त ग्रन्थों में प्राप्त हैं। सम्भव है यह कृति सन्यास ग्रहण के पूर्व बन चुकी हो। यदि यह प्रामाणिक है तो उनका काल भी स्पष्ट है, क्योंकि १४३२ वि० में इसकी रचना

---

[1] आचार्य शंकर और रामानुज (बंगाक्षर), पृष्ठ ७८७।

[2] अच्युत, पृष्ठ १०।

[3] ध्येय—ले० उदयनारायण, पृष्ठ १०५।

[4] गीतासार ब्रह्म सम्बोधिनी—पी० के० गोभे।

५ वर्ष की अवस्था में भी मान ली जाय तो १३८२ वि० के आसपास उनका जन्म समय मानना उपयुक्त होगा। अतः सर्वसम्मति से इन्हें १३५०–१४०० विक्रम के मध्य का माना जा सकता है।

(घ) **कृतियाँ** :—निम्नलिखित ग्रन्थ एवं टीकाएँ श्रीधर कृत मानी गयी हैं—

१. ब्रह्म सम्बोधिनी—गीता टीका
२. सुबोधिनी टीका—गीता टीका
३. भावार्थ दीपिका टीका—भा० पु०
४. बालबोधिनी टीका—सनत्सुजातीय
५. आत्मप्रकाश टीका—विष्णु पुराण
६. श्री ब्रजविहार काव्य

(१) 'ब्रह्मसम्बोधिनी' गीता का सार है। यह कृति सन्यास पूर्व काल में लिखी गई थी, क्योंकि इसके अन्तिम भाग में एक श्लोक प्राप्त हुआ है जिसमें 'श्रीधराचार्य' नाम लिखा है,[1] अन्य ग्रन्थों में श्रीधराचार्य नाम नहीं मिलता। सन्यास ग्रहण के पश्चात् पूर्व प्रसिद्ध नाम लिखने का कोई प्रश्न भी नहीं ? अतः वे कृति जिनमें स्वामी शब्द या यति शब्द का उल्लेख है, उनके सन्यास ग्रहण की अवस्था की कृतियाँ हैं। इसे सन्यास पूर्व की अवस्था की कृति तो माना जा सकता है किन्तु सुबोधिनी टीका का सार नहीं। क्योंकि सुबोधिनी टीका प्रणयन के समय श्रीधर सन्यास ग्रहण कर चुके थे, जैसा कि सुबोधिनी टीका के निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है :—

परमानन्दपादाब्जरजः श्रीधारिणाधुना
श्रीधरस्वामि यतिना कृतागीता सुबोधिनी ॥[2]

गोभे महोदय ने परमानन्द गुरु का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया, अतः अभी इस पर इतना ही कहा जा सकता है कि यदि यह श्रीधर स्वामी की कृति है तो निश्चित उनके सन्यास ग्रहण के पूर्व की है। यह टीका अनुद्रित है।[3]

(२) सुबोधिनी टीका—यह श्रीमद्भगवतगीता की प्रसिद्ध टीका है।[4] श्रीधर की शैली 'गागर में सागर' वाली उक्ति को चरितार्थ करती है। विशेष

---

१. 'आचार्येण श्रीधरेण त्रिवेणी संगस्नान शालितान्तर्मलेन।'
(ब्रह्मसम्बोधिनी गीता सार, उप० - पी० के० गोभे)

२. सुबोधिनी टीका-गीता, अध्याय १८ अन्तिम पद्य।

३. गौड़ियेर तिन ठाकुर (बंगाक्षर)–ले० सुन्दरानन्द।

४. 'श्रीधरस्वामियतिना कृता गीता सुबोधिनी'
(सुबोधिनी टीका--उपसंहार)।

विस्तार की भावना श्रीधर स्वामी की नहीं थी, अपना मन्तव्य स्वल्पातिस्वल्प शब्दों में व्यक्त कर देना उचित समझते थे। गीता की यह टीका उसके गूढ़ स्थलों का रहस्योद्घाटन करने में पूर्ण सफल हुई है। इसमें भी भक्ति की श्रेष्ठता का पक्ष ही अनुमोदित किया है।[१] 'यमेवैषवृणुते' श्रुति का अर्थ है जिसे परमेश्वर चाहे वही उसे प्राप्त कर सकता है। इसका उल्लेख करते हुए भक्ति ही मोक्ष हेतु है यह स्पष्ट लिखा है :—

'यस्य देवे पराभक्तिः', 'देहान्ते देवः परं ब्रह्म तारकं व्याचष्टे' 'यमेवैषवृणुते' 'इत्यादि श्रुति–स्मृति–पुराणवचनान्येवं सतिसमंजसानि भवन्ति तस्माद्भक्तिरेव मोक्षहेतुरिति सिद्धम्'[२]

(३) आत्मप्रकाश टीका—यह टीका श्री विष्णु पुराण पर लिखी गई है।[३]

(४) ब्रजविहार काव्य—यह संस्कृत छन्दों में ब्रजलीला विषयक २० श्लोकों का काव्य है।[४] भागवत टीका के कृष्णपरक पद्य भी १०० से अधिक बैठेंगे, अतः विश्वास नहीं होता कि इतने बड़े विद्वान् श्रीधर ने केवल २० श्लोकों का ही काव्य बनाया हो। यह सम्भव है कि इस काव्य की रचना के पूर्व ही श्रीधर चल बसे हों या यह काव्य कालान्तर में नष्ट हो गया हो ?

(५) बालबोधिनी टीका—यह सनत्सुजातीय ग्रन्थ की टीका है।

(६) भावार्थ दीपिका—श्रीधर स्वामी को उच्च साहित्यिकों एवं मूर्धन्य टीकाकारों की कोटि में पहुँचाने का श्रेय इस भावार्थ दीपिका नामक भागवत की टीका को दिया जाना उचित है। इस टीका को भागवत मन्दिर के जीर्णोद्धार की आधार शिला भी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। श्रीधर स्वामी का पाण्डित्य भी इस टीका में विकसित हो उठा है। यह टीका उनके विद्या-जीवन का सार है, व्यास रचित मूल भागवत को भी एक प्रकार से इस

---

१. 'भक्त्यद्वान्तर व्यापारत्वाज्ज्ञानस्य' (सुबोधिनी १८।७८)

२ सुबोधिनी टीका, १८।७८।

३. आत्म प्रकाश (विष्णु पुराण) मंगलाचरण।

४. (क) ब्रजविहार काव्य––'जीवानन्द विद्यासागर' द्वारा सम्पादित काव्य संग्रह में प्रकाशित है, पृष्ठ ५९-६३।

(ख) 'रूप कृत पद्यावली में इसके ३ श्लोक प्राप्त नहीं हैं।'

(गौड़ीय वैष्णव अभिधान कोश, पृष्ठ ७९५)

टीका ने अपनी गरिमा से तिरोहित किया है। क्योंकि पिछली शताब्दियों में और वर्तमान युग में भी जितनी विवादपूर्ण यह टीका रही है उतना मूल ग्रन्थ में नहीं। यह इसकी सर्वाधिक महत्ता का द्योतक है। श्रीमद्भागवत पर शतशः टीकायें निर्मित हुईं उनमें अधिकांश टीकाओं की जीवनदायिनी सरिता भावार्थ दीपिका टीका ही रही है। आश्चर्य तो यह है कि जिन विद्वानों ने इस टीका का खण्डन अपना लक्ष्य बनाया था वे भी इसके भावों के ही नहीं अपितु इसकी अक्षर सम्पत्ति के भी ऋणी बने हैं।[1] अनेक टीकाकारों ने यदि इस टीका का नाम्ना निर्देश कर आदर भाव प्रदर्शित किया है तो अनेक इसकी पद व्युत्पत्ति से खीज कर अपना पक्ष समर्थन करते हैं, फलतः दोनों के ही श्रीधर उपजीव्य रहे हैं। यह निश्चित कहा जा सकता है। इसका विशेष पर्यालोचन टीका वैशिष्ट्य में किया गया है।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य** :—नाम—श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्री श्रीधर स्वामी कृत भागवत टीका का नाम 'भावार्थ दीपिका' है।[2] अध्यायारम्भ में एवं स्कन्ध एवं अध्याय की पुष्पिकाओं में भी यह नाम लिखा गया है।[3] इन पुष्पिकाओं में उनका नाम भी लिखा गया है :—

'इति श्रीमद्भागवते ज्ञानार्थदीपिकाया श्रीधर स्वामि विरचितायां प्रथमस्कन्ध टीकायां प्रथमोऽध्यायः।'

'भावार्थ दीपिका' नाम लोक में इतना प्रसिद्ध नहीं जितना लेखक के नाम से यह टीका श्रीधरी नाम से विख्यात है। पदों के भावार्थ दीपन के उद्देश्य से इस टीका का नामकरण हुआ है, जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है—

द्वितीय स्कन्धसम्बन्धि पद भावार्थ दीपिका
उद्दीप्यतामियं सद्भिर्यथा स्यात्तत्वदीपिकम्।[4]

---

१. **भागवत चं० चं०कार वीर राघव ने श्रीधर द्वारा लिखित पंक्तियां निम्नलिखित श्लोकों में ज्यों की त्यों ली हैं :--**
२।६।२५, २६ ; २।६।२९ ; ३।६।१८ ; ३।२६।२१, २२ **आदि।**

२. **'श्री भागवतभावार्थदीपिकेयं वितन्यते।' (भा० दी० १।१)**

३. **'श्रीमद्भागवतभावार्थदीपिकोयेत प्रथमस्कन्धः प्रथमाध्यायः।'**
(भा० दी० १।१ पुष्पिका)

४. **भावा० दी० २।१।१ मंगलाचरण।**

वस्तुतः भागवत के पद और भाव दोनों ही अति गूढ़ हैं, उनका अर्थ स्पष्ट करना साधारण कार्य नहीं है, अतः यह नाम सार्थक ही रखा गया है। उक्त श्लोक के अन्तिम चरण का 'तत्वदीपकम्' पद एक विशेष दिशा की ओर संकेत देता है। 'भागवत' केवल कथाओं का भण्डार नहीं है अपितु–उसमें आध्यात्मिक तत्व भरे पड़े हैं, ब्रह्म-जीव माया जैसे जटिल विषयों का भी रूपकमय वर्णन भागवत में उपलब्ध है। ऐसी परिस्थिति में यहाँ 'तत्व दीपक' द्वारा यह सूचना दी गई है कि उन जटिल तत्व सम्बन्धी विषयों का यहां स्पष्ट अर्थ देखने को मिलेगा। श्रीधर स्वामी का विश्वास है कि भागवत पाठ से अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है—

'स्वाज्ञानाध्यान्न भीतेन श्रीधरेण प्रकाशिता'।[1]

परिमाण—भावार्थ दीपिका टीका सम्पूर्ण भागवत पर उपलब्ध है, टीका सूत्र शैली में लिखी गई है तथापि आवश्यक स्थलों पर विस्तृत विचार किये गये हैं, यही स्थल वे हैं जिनके अर्थ प्रथम श्रीधर ने स्पष्ट किये अन्यथा उनकी संगति भी बड़ी दुष्कर थी एक प्रकार से श्रीधर ने भागवत की दुर्भेद्य भित्ति में ऐसा द्वार स्थापित किया है जिससे भावी भागवत रस लुब्धक सरलता पूर्वक प्रवेश कर सके।

उद्देश्य—एक स्थल पर उन्होंने अपने गुरु परमानन्द की सन्तुष्टि के लिये टीका निर्माण का प्रयोजन लिखा है :—

'श्री परानन्द सम्प्रीत्यै गुह्यं भागवतंमया
तन्मतेनेदमाख्यातं न तु मन्मति वैभवात्।'[2]
'ईक्षन्तामिच्छयासन्तः क्षमन्तां मम साहसम्' (भा० दी० २।१०)

उक्त श्लोक के 'साहसम्' पद द्वारा भागवत पर टीका करना वे अपना साहस मानते हैं। साहस अनुचित कर्म की परिधि में माना जाता था। यहाँ श्रीधर ने अपने को अति विनम्र दिखलाया है, क्योंकि भागवत शास्त्र अतिनिगूढ़ है, उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि मेरी सामर्थ्य नहीं थी किन्तु प्रेम बड़ी वस्तु है उसी की प्रेरणा से यह कार्य पूर्ण हुआ है :—

'क्वेदं नानानिगूढ़ार्थं श्रीमद्भागवतं क्व नु
मन्द बुद्धिरहं कृष्ण प्रेम किंकिन कारयेत्॥' (भा० टी० १२।१३)

---

१. भावा० दी० ११।३१ अन्त में। २. भावा० १२।१३ मंगल पद्य सं० ३।

प्रकाशन—यह टीका देश के विभिन्न भागों में विभिन्न लिपियों में प्रकाशित होती रही है, अपने शोध प्रवन्ध में आठ टीका संस्करण एवं खेमराज वम्बई संस्करण से सहायता ली है, तथापि इसके कतिपय विभिन्न संस्करणों की तालिका दी जाती है :—

ईस्वी सन्	स्थान	सम्पादक
१८२७	कलकत्ता	भवानी चरण
१८४५	कलकत्ता	नन्दकुमार कृत व्याख्या के साथ
१८५८	कलकत्ता	सुव्वा शास्त्री
१८६०	मुम्बई	हरिजोत महादेव
१८६२	मन्द्राज़	तेलगु टीका
१८६२	मुम्बई	काशीनाथ कृत वेदस्तुति टीका सहित
१८७०	कलकत्ता	दुर्गाचरण बन्धोपाध्याय
१८७१	वरहमपुर	रामनारायण विद्यारत्न
१८७२	मुर्शिदावाद	रामनारायण विद्यारत्न
१८७७	कलकत्ता	व्रह्मव्रत भट्टाचार्य
१८८०	कलकत्ता	ब्रह्मव्रत भट्टाचार्य (बङ्गला)
१८९२	व्रम्बई	मराठी व्याख्या सहित
१९०१	वम्बई	गुजराती प्रिन्टिग प्रेस
१९०२	कलकत्ता	पंचानन तर्करत्न (बंगाक्षर)
१९०७	कलकत्ता	पंचानन तर्करत्न (बंगाक्षर)
१९०८	वृन्दावन	नित्यस्वरूप (आठ टीको पेत)
१९०८	ब्रम्बई	पंचानन तर्करत्न
१९०९	मद्रास	द्राविणी भाष्य
१९०८	वम्बई	जी० पी० वंशीधर शर्मा
१९१०	मद्रास	तामिल
१९१०	मुम्बई	वासुदेव शर्मा
१९११	कलकत्ता	राजेन्द्रनाथ
१९१२	कलकत्ता	शीतलप्रसाद
१९१४	मुम्बई	निर्णय सागर प्रेस
१९२०	कलकत्ता	पंचानन तर्क रत्न
१९२१	कलकत्ता	नीलकान्त कृत रास पंचाध्यायी सहित

१९२५	कलकत्ता	हरीगद चट्टोपाध्याय
१९४०	मुम्बई	निर्णयसागर प्रेस

शैली—भावार्थ दीपिका अन्वय मुख टीका है, किन्तु भूमिका की शैली का प्राधान्य है । यथा—

'व्यत्यस्तवस्त्राभरणा:'

श्लोक की व्याख्या में भूमिका—

'कृष्ण तुष्ट्यर्थं कर्म तदासक्तमनसामन्यथा कृतमपि फलत्येवेति-द्योतयन्नाहव्यत्यस्तेति' ।[1]

शंकराचार्य की भी यही प्रणाली थी—

'इदं तु ते गुह्यतमम्' (गीता ९।१)

की व्याख्या में--'अष्टमे नाडी द्वारेण धारणायोग: सगुण उक्त:………………… तत्रानेनैव प्रकारेण मोक्ष प्राप्तिफलमधिगम्यते नान्यथेति तदाशङ्का व्याविवृत्सया भगवानुवाच—इदमिति ।'[2]

इस टीका में कहीं-कहीं कुछ चुने हुए शब्दों की व्याख्या मात्र की गई है ।[3] यह टीका समास शैली के गद्य में लिखी गई है । प्रकृति प्रत्यय के विवेचन पर अधिक ध्यान दिया है, आवश्यकतानुसार पाणिनीय सूत्रों का भी उल्लेख किया है । किन्तु १५ बार से अधिक सूत्रावृत्ति नहीं है, केवल सूत्रानुसारी विवेचन ही लिखा गया है । उन्होंने अपनी व्याख्यापद्धति के विषय में नवम् स्कन्ध में लिखा है कि तत: शब्द अनन्तर का वाची है, मूल में जहाँ भी आधिक्य हो वहाँ अनन्तर जहाँ न्यून हो वहाँ पूर्व या पर से भी सम्बन्धित किया जाय । यथा 'अजस्ततो महाराज' में तत: का अर्थ बतलाता है, अर्थात् अज के पश्चात् दशरथ ।[4]

श्रीधर ने अन्वय योजना में बड़ी सावधानी से कार्य किया है, क्योंकि भागवत में श्लोकों का अन्वय कभी आगे वाले श्लोकों से कभी पूर्व श्लोकों से सम्बद्ध होता है । उन्हें श्रीधर ने प्रथम ही निर्दिष्ट किया है पश्चात् टीका की

---

[1] भावा० दी० १०।२९।७ ।

[2] शांकर भाष्य गीता ९।१ ।

[3] 'अनुक्रम्यचात्मजम्' की व्याख्या में अनुक्रम का अर्थ शोधयित्वा मात्र लिखा गया है । (भा० दी० १।७।८)

[4] 'तत इत्यादेर्यत्राधिक्यं स्यात्तत्रानन्तर्ये तत इत्यादि पदं व्याख्येयं यत्र तु न्यूनत्वं तत्रपूर्वस्य परस्यवानुषंगादिति व्याख्येयम् ।' (भा० दी० ९।२।१९)

है। अन्वय प्रसङ्ग में इन्होंने लिखा है कि 'पूर्वेणैवान्वयः'[1] कहीं उत्तरेणैवान्वयः'[2]। भागवत में ऐसे किसी स्थल को श्रीधर स्वामी ने नहीं छोड़ा जिसका अन्वय पूर्वापर श्लोकों से सम्बद्ध हो। उपमा वाक्यों को प्रायः पृथक् रखा है। यथा—'निष्कृपत्वे दृष्टान्तः—पशु यथा'[3] शङ्का का द्योतन ननु शब्द से किया गया है—

'ननुत्वगष्ट्यादिकं विहाय फलाद्रसः पीयते……………तत्राह रसरूपम्।'[4]

'स्वर्ण धर्मानुवाक' आदि स्थलों पर मन्त्रों के संकेत लिखे हैं जो अत्यन्त उपादेय हैं[5]। अथर्ववेद की श्रुति का दो बार उल्लेख किया है।[6] उपनिषद् वाक्यों द्वारा अपने पक्ष का प्रतिपादन विशेषतः किया हैं। श्रुतियों व उपनिषदों के वाक्यों का ५०० बार से अधिक उपयोग किया है, केवल वेदस्तुति में ९० श्रुत्यंश रखे गये हैं। ये इनके वेद सम्बन्धी मान्यता के परिचायक हैं। ब्रह्म सूत्रों का उल्लेख २० बार से अधिक नहीं हुआ है। स्मृतियों में सर्वाधिक गीता के वाक्यों को उद्धृत किया है। लगभग ३० स्थलों पर गीता के वचनों द्वारा स्वपक्ष का समर्थन किया है।[7] यथा—

'सपदि सखि वचो निशम्य' (भाग० १।९।३५)

के साथ 'सेनयोरुभयोर्मध्ये' गीता के श्योक को रखा है, यह गीता द्वारा भागवत कथन की पुष्टि के लिए है।

'आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धः' (भाग० ७।७।१९)

की टीका में 'त्रैगुण्य विषया वेदानिस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' गीता का श्लोक अपने पक्ष की पुष्टि के लिये उद्धृत किया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति का लगभग ८ बार उल्लेख धर्मशास्त्र प्रसङ्गों पर किया है।[8] वृहस्पति[9], भृगु[10] तथा मनु[11], पराशर[12], व्यास[13] के उल्लेख भी किये

---

[1] भा० दी० १।१५।१४। [2] वही १।९।२६, १०।२६।२९।
[3] वही १।७।३३। [4] वही १।१।३। [5] वही ११।२७।३१।
[6] वही २।२।१८, ७।९।१८। [7] वही १।५।१४, १।९।३५. २।१।६।
[8] वही १।११।३१, ७।१।१७, ७।११।२४, ७।१५।२४, ८।१९।४३, ८।२०।४३, १०।५६।३८, ११।११।४०।
[9] वही ४।१८।३१। [10] वही १।६।१७, ६।३।१९।
[11] वही ६।५।३७, ७।११।७–१४, १०।८४।३९।
[12] वही ९।२४।१९, २६ ; ९।२४।२७, १०।५९।३३, १०।६०।९-३८ ; १२।१।१४।
[13] वही १।८।४८।

गये हैं, आश्वलायन का उल्लेख ३।१३।४५ में है। अन्तर्कथाओं के प्रसङ्ग में पुराणों के नाम भी उद्धृत किये हैं, उनमें वायुपुराण[1], वराह पुराण[2], कौर्मपुराण[3], विष्णु पुराण[4], वैष्णव पुराण[5], विष्णु धर्म[6], मार्कण्डेय पुराण[7], पद्म पुराण[8], वामन पुराण[9], नारद पुराण[10] के नाम उल्लेखनीय हैं। भारत[11] तथा महाभारत[12] एवं इतिहास समुच्य[13] का भी उल्लेख प्राप्त है। शैवतन्त्र का उल्लेख २ बार हुआ है। ५।२०।३५ में तथा १०।४५।३६ में ६४ कलाओं के नाम हैं।

तन्त्र का उल्लेख ३।२०।१२, ११।३।३६ ; तन्त्रवार्तिक का ११।४।१७ सात्वत तन्त्र का ३।५।२७ में एवं तन्त्र वार्तिककार भट्ट का ७।५।६१ में उल्लेख है। सनत्सुजातोक्त—धर्मश्चसत्यंच दमस्तपश्च की व्याख्या ७।९।१८ में व्याख्या भी की है। यास्क-निरुक्त का ८।१६।३१, ६।९।४५ में एवं साख्य-कारिका की मूल प्रकृति कारिका का उल्लेख ११।१६।३७ में किया है। संग्रह का १।१।१२ वाचः कूट संग्रह का ६।५।३० में उल्लेख है। कोशों में त्रिकाण्ड का ७।१४।२२ में, अभिधान का ६।१०।२३ में, अमरसिंह का ४।१९।१२, ४।२२।२८, ६।३।२४ में उल्लेख है। भाषाबन्ध समय का ३।२२।१९ में एवं अभियुक्त श्लोक का ११।१२।१७ में है। शिक्षा का उल्लेख ३।१।३३, ६।९।१२ में है। यह पाणिनीय शिक्षा है। क्योंकि प्रथम में पाणिनीय शिक्षा के आत्मा बुद्ध या समेत्पार्थान०।[14] को द्वितीय में मन्त्रोहीनः स्वरतोवर्णतोवा’[15] को रखा है।

इनके अतिरिक्त १०।८।५ में जातक का, १०।४०।३ में हंस गुह्य का ३।१७।१८ में पिण्डसिद्धि का, १।७।६, ३।१२।२, ७।१५।१९ में सर्वज्ञसूक्त का, ६।१६।४१ में शबरभाष्य का उल्लेख है। १।२।३३ में पाणिनीय भुजोऽनवने[16] का ४।२८।४५ में उपोऽधिकेच[17], ६।९।१२ में बहुब्रीहौ प्रकृत्यापूर्वपदम् का[18] उल्लेख किया गया है। १।३।२६ में दसु उपकेय तथा, दशत्तमः में वश कान्तौ धातु का भी उल्लेख किया है। आर्ष प्रयोगों की सिद्धि नहीं की गई केवल आर्षः लिखा गया है।

---

[1] भा० दी० १।१।४, ५।१६।३६। [2] वही १।१।४। [3] वही १।६।३०,१२
[4] वही २।७।२६, ५।१६।८। [5] वही ५।२१।८ [6] वही ६।२।१९।
[7] वही ३।३१।५। [8] वही १।१।१ [9] वही १।७।१८।
[10] वही ११।१८।१९ [11] वही २।७।२६। [12] वही ३।२९।२८।
[13] वही ३।१५।१२। [14] पाणिनीय शिक्षा, श्लोक ६। [15] वही, श्लोक ५२
[16] अष्टाध्यायी १।३।६६। [17] वही १।४।२८७। [18] वही ६।२।१।

'य प्रव्रजन्तमनुपेत·······पुत्रेति ।' (भा० टीका १।२।१)
श्लोक में पुत्रेति में आर्षत्वात् सन्धि है ।[1]

टीकाकार का ज्योतिष विषयक ज्ञान पंचम स्कन्ध के विवेचन से स्पष्ट है। शकुन शास्त्र की भी चर्चा की गई है—

गज वाजि रथास्त्रेषु निधि मालाम्वरद्रुमा
शक्तिपाश मणिच्छत्र विमानानि चतुर्दश ।[2]

ये विशिष्ट चिन्ह विभिन्न आकृति एवं अवस्याओं के परिचायक हैं। इसी प्रकार गणित के प्रसङ्ग में भी वे उतनी ही रुचि लेते हैं जितनी अन्य प्रकरणों में।

भगवान श्रीकृष्ण प्रतिदिन बद्व संख्या गौ दान किया करते थे, बद्व का अर्थ स्पष्ट लिखते हुए उसका प्रमाण भी लिखा है :—"चौदह लक्ष त्रयोदश सहस्र चौरासी" संख्या को बद्व कहते हैं।[3]

छन्दःशास्त्र का यथावसर निरूपण किया है, भागवत में ऐसे श्लोक हैं जिन्हें पथ की मान्यताओं के कारण व्याकरण से पुष्ट होने पर भी स्वीकार किया है। यथा 'विंशतिमे' का प्रयोग। किन्तु व्याकरणानुसार शुद्ध रूप 'विंशतितमे' ही रखा जाय तो श्लोक का उच्चारण ढङ्ग से न होगा—'स्कोनविंशे विंशति तमे' के स्थान पर 'स्कोनविंशेविंशतिमे' पाठ उच्चारण में सौकर्य स्पष्ट है। श्लोकों का अन्वय ५-५ ११-११ श्लोकों से जहाँ सम्बधित है वहाँ २ के साथ होने से युग्मक, कुलक आदि का उलेख किया है जिससे भागवत के अन्वय में पर्याप्त साहाय्य मिलता है, ये भी छन्दोविधान के अन्तर्गत आते हैं जिन्हें श्रीधर ने सर्वत्र बड़े सूक्ष्म निरीक्षण से देखा है। इस प्रसङ्ग में श्रीधर स्वामी ने कहीं प्रमाद नहीं किया। एक स्थल पर श्रीधर स्वामी वैशेषिक मत का खण्डन करते देखे गये हैं।

'वास्तवं परमार्थ भूतं वस्तुवेधं नतु वैशेषिकाणामिव द्रव्यगुणादि रूपम् ।'
इससे उनका उक्त शास्त्र का ज्ञान सिद्ध है।

---

[1] यहां सन्धि होना व्याकरण विरुद्ध है। पुत्र शब्द दूर से उच्चरित हैं अतः लुप्त होना चाहिये।

[2] भावा० ६।२१।२५।

[3] चतुर्दशानां लक्षाणां सप्ताधिक शतांशकः
बद्वं चतुरशीत्यग्रसहस्त्राणि त्रयोदशः। (भा० दी० १०।१०।८)

[4] वही १।१।२

मीमांसा—अपनी शैली की प्रौढ़ता के लिए वे मीमाँसा को नहीं अपनाते किन्तु वेद स्तुति के प्रकरण में इसके ज्ञान के अभाव में वह प्रसंग ही सम्बद्ध नहीं बैठ सकेगा, इस विचार से मीमाँसा पर विचार किया है। वैश्वदेवी आमिक्षा की भाँति सामानाधिकरण्य का खण्डन किया है।[1]

वेदान्त—ब्रह्म जीव, जगत्, माया आदि के सरल व्याख्यान इस टीका में देखने को उपलब्ध होंगे। जहां भी वेदान्त की परिधि है वहां अनेक श्रुत्यंशों से अपने वक्तव्य को स्पष्ट किया गया है। वस्तु (ब्रह्म) की प्रधानता वतलाते हुए उन्होंने लिखा है—

"वस्तुनोंऽशो जीवो वस्तुनः शक्तिर्माया।
वस्तुनः कार्यं जगत् तत्सर्वं वस्त्वेव नततः पृथक्"।[2]

जीव परतन्त्र है ईश्वर स्वतन्त्र है—'स्वातन्त्र्यमेव विशेषः' तत्वमसि में भाग लक्षणा द्वारा अभिन्नार्थ है।[3] भक्ति का निरूपण भी बड़े सुन्दर शब्दों में करते हैं। भक्ति के विना मोक्ष भी नहीं तथा सत्संग विना भक्ति नहीं मिलती, अतः दास्ययोग ही प्राप्त करना चाहिए—

"एवं भक्ति बिना न मोक्षो न च भक्तिः संसेवया विनाऽतः प्राक्प्रार्थितं स्वद्दास्ययोग मेव देहीति"।[4]

स्कन्ध टीकारम्भ में लिखित मंगल पद्य स्तोत्र साहित्य में अपना उच्च स्थान रखने योग्य हैं। इन स्त्रोतगत श्लोकों द्वारा उनके साहित्य क्षेत्र के गम्भीर अध्ययन का ज्ञान होता है, लक्षण ग्रन्थों की आलोचना से उन्हें प्रयोजन नहीं था वे तो रचनात्मक वस्तु के पक्षपाती थे सुन्दर श्लोक इसके प्रमाण हैं[5]—

---

१. 'तथाहि न तावद्वैश्वदेव्यामिक्षेतिवदुभयो रेकार्थाभिधानेन सामानाधिकरण्यं यथोक्तं आमिक्षां देवता युक्तां वदत्येवैष तद्धितः।'
(भा० दी० १०।८७ उपक्रम)

२. वही० १।१।१

३. 'तत्वंपदयोः सामानाधिकरण्यं प्रतीयते तच्च प्रकारान्तरेणाघटमानं ब्रह्माणि पर्यवसानं गमयति अतो जहदजहत् स्वार्थ लक्षणया सोऽयं देवदत्त इतिवद्विरुद्धांशत्यागेनानुगत चिदंशेनैकार्थेन सामानाधिकरण्येन निर्गुणे पर्यवसानाम्।"
(भा० दी० १०।८७)

४. भा० दी० १०'१४।४

५. मुंचन्नंग तरंग संगमनिशं त्वामेव संचिन्तयन्
संतः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन्
नित्यं तन्मुख पंकजाद्विगलितस्वत्पुण्यगाथामृत-
स्रोतः संप्लव संप्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत्। (भा० दी० १०।८७।२२)

प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में साररूप में एक श्लोक रचा है, लगभग ५०० श्लोक समग्र भागवत में उपलब्ध हैं। वेद स्तुति के प्रत्येक श्लोक पर अपना एक श्लोक बना कर रखा है, ये श्लोक शब्द अर्थ दोनों दृष्टियों से भाव भक्ति से पूर्ण हैं।

टीका में शंका समाधान भी सरल ढंग से रखे हैं, मत्स्यावतार के समय प्रलय का निरूपण, दक्षिणायत्र भाई बहिन का विवाह। शिव के प्रति श्रीधर स्वामी ने अपनी विनम्रता सर्वत्र प्रकट की है। जहाँ मूल में शिव-निन्दा भी है वहां पदच्छेद पूर्वक स्तुति पक्ष निकाला है। 'माधवोमाधवावीक्षौ' में भी शिव वन्दना का संकेत है।

महत्व—भावार्थ दीपिका में मूल के विवेचन पर अधिक बल दिया गया है, मूलानुसारी अर्थ निष्पक्ष भाव से करना उनका उद्देश्य है।

'यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै'

की व्याख्या में केवल ७ विभक्तियों के अर्थ मात्र दिखलाये हैं, अन्य टीकाकारों ने स्व-सम्प्रदायानुसारी व्याख्या में खींचातानी की है।

श्रीधर भागवतकार की आत्मा को पहचानते थे, यह कहा जा सकता है। टीकाकार रूपी नक्षत्र पुंज के हैं तो श्रीधर ताराधिप हैं। यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। ऐसा कोई टीकाकार नहीं जिसने प्रथम श्रीधर की कृति का मनन न किया हो। अतः लोकप्रचलित उक्ति की चरितार्थता सिद्ध होती है कि, व्यास तथा शुक भागवत का मर्म जानते हैं, राजा भी सम्भवतः जानता है किन्तु नृसिंह के प्रसाद से श्रीधर सम्पूर्ण रूप से भागवत का अर्थ जानते हैं—

'व्यासो वेत्ति शुकोवेत्ति राजा वेत्ति नवेत्तिवा
श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंह-प्रसादतः।''[1]

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में श्रीधर कृत टीका में अनेक सम्वतों में अनेक भाषाओं के संस्करण उसकी गरिमा के द्योतक हैं। भक्तिमाल में श्रीधर की प्रशंसा अन्वर्थ की है।

छप्पय— 'तीन काण्ड एकत्व लानि कोउ अज्ञ बखानत

श्रीधर श्रीभागौत में परम धर्म निरनै कियौ॥[2]

---

[1] पुराण विमर्श, पृष्ठ ५७१।

[2] नाभादास कृत, 'भक्तमाल'—छप्पय ४४०।

३. मधुसूदन सरस्वती

(क) **परिचय**—अद्वैत वेदान्त का पाठक जब तक सरस्वती के ग्रन्थों का पठन पाठन नहीं करता तब तक उसका अद्वैत शास्त्र का स्वाध्याय पूर्ण नहीं कहा जा सकता। सरस्वती के पिता का नाम प्रमोदन पुरन्दराचार्य था। यवनाक्रान्त काल में इनके पूर्वज कन्नौज परित्याग कर बंगाल की ओर भाग गये थे। सरस्वती के ज्येष्ठ बन्धु श्रीनाथ चूड़ामणि तथा यादवानन्द थे, लघु भ्राता का नाम वागीश था। उच्चकोटि के अद्वैत वेदान्त के विद्वान् होते हुए भी भगवत्प्रेम की धारा नैसर्गिक रूप से इनके जीवन में प्रवाहित हुई थी। एक प्रसंग में श्रीकृष्ण को परमतत्व लिखकर उन्होंने अपने मृदुभावों को व्यक्त किया है।

वंशी विभूषित करान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुण बिम्ब फलाधरोष्ठात्
पूर्णेन्दु सुन्दर मुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने ।।[१]

जिसकी भक्ति के बिना मुक्ति ही नहीं होती, उन नन्द नन्दन को प्रणाम करते हुए लिखा है कि—

यद् भक्तिं न विना मुक्तिर्यः सेव्यः सर्वयोगिनाम् ।
तं वन्देपरमानन्दघनं श्री नन्दनन्दनम् ।।[२]

मधुसूदन सरस्वती ने अपने पिता के चरणों में बैठकर व्याकरण, काव्य-कोश आदि शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन किया था। नवद्वीप में इन्होंने वल्लभाचार्य कृत 'न्याय लीलावती' का तथा गंगेशोपाध्याय कृत 'न्याय तत्त्व चिन्तामणि' का स्वाध्याय भी किया था।

(ख) **सम्प्रदाय**—'सरस्वती' ने काशी में श्री रामतीर्थ जी से अद्वैत-शास्त्र का तथा 'माधव सरस्वती' से मीमांसा शास्त्र का अध्ययन किया था, तत्पश्चात् इन्होंने सुप्रसिद्ध विद्वान विश्वेश्वर सरस्वती के निर्देश से गीता की 'गूढ़ार्थ दीपिका' नामक टीका की रचना की थी। यह टीका सरस्वती ने एक वर्ष में पूर्ण की थी। 'मधुसूदन सरस्वती' अद्वैतवाद के अनुयायी मात्र ही नही अपितु अद्वैतवाद रूपी प्रासाद के महान स्तम्भ थे। ग्रन्थ के अन्त में इन्होने अपने गुरु वर्ग का स्मरण किया है :—

---

१. मधुसूदनी गीता–भूमिका, पृष्ठ ५ ।   २. वही ७।१ मंगलाचरण ।

श्री राम विश्वेश्वर माधवानां
प्रसादमासाद्य मया गुरुणाम्
व्याख्यानमेतद् विहितं सुबोधं
समर्पितं तच्चरणाम्बुजेषु ।।[1]

मधूसूदन सरस्वती शास्त्रार्थ में सर्वत्र विजयी होते थे किन्तु इनके चित्त में शान्ति प्राप्त न हुई, एक बार एक परमहंस से इनकी भेंट हो गई, उनके उपदेश से ये कृष्णोपासना में प्रवृत्त हुए, इन्हें कृष्ण के दर्शन का साक्षात् अनुभव भी हुआ था। तत्वनिष्ठा और भगवत्प्रेम का सामंजस्य जैसा सरस्वती में है अन्यत्र दुर्लभ है।[2]

(ग) **स्थितिकाल**—मधुसूदन सरस्वती दीर्घजीवी थे, किम्वदन्ती के अनुसार इन्होंने १०७ वर्ष भूतल पर निवास किया था। सम्वत् १५९० से १६९७ पर्यन्त इनका इस लोक में निवास माना जाता है।[3] गोस्वामी जी इनके समकालीन थे, उन्होंने एक दोहा उनके समीप भेजा था—

हरि हर यश सुर नर गिरा बरनहिं सन्त समाज।
हांड़ी हाटक चारु रुचि रांधे स्वाद समान।।

उत्तर में मधुसूदन सरस्वती ने निम्न श्लोक लिखा—

आनन्द कानने ह्ययस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कविता मंजरीयस्य रामभ्रमर भूषिता।।

गोस्वामी तुलसीदास जी का समय १५९० विक्रम से १६८० माना जाता है। अतः इन दोनों का समय भी एक था, यह कथन उचित ही है। अकबर सम्राट के दरबार में इन्होंने टोडरमल का क्षत्रियत्व सिद्ध किया था। अकबर का शासन १६१३ विक्रम से १६६२ विक्रम माना जाता है। अतः इससे भी इनका होना सिद्ध है। मधुसूदन वस्तुतः सरस्वती थे। मधुसूदन सरस्वती के बारे में निम्न श्लोक है :—

---

[1] गूढ़ार्थ दीपिका गीता टीका, उपसंहार।

[2] अद्वैत वीथी पथिकैरुपास्या
स्वाराज्य सिंहासन लब्ध दीक्षाः
शठेन केनापि दयं हठेन
दासी कृता गोपवधू विटेन।। (गूढ़ार्थ दीपिका)

[3] गूढ़ार्थ दीपिका (भूमिका), पृष्ठ ५।

मधुसूदन सरस्वत्याः पारं वेत्ति सरस्वती ।
पारं वेत्ति सरस्वत्याः मधुसूदन सरस्वती ।।

एक बार मधुसूदन के नवद्वीप पहुँचने पर पण्डितों में भगदड़ मच गई थी ।

नवद्वीपे समायाते मधुसूदन वाक्पतौ ।
चकम्पे तर्क वागीशः कातरोऽभूद् गदाधरः ।।

यदि सम्पूर्ण भागवत पर मधुसूदन सरस्वती की टीका होती तो टीका जगत् में एक गौरव वृद्धि होती ।

(घ) **कृतियां** —१. अद्वैत रक्षण, २. गूढ़ार्थ दीग्का, ३. भागवत आद्य पद्य व्याख्या, ४. भक्ति रसायन ।[1]

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य**—श्री मधुसूदन सरस्वती कृत आद्य पद्य व्याख्या बड़े विस्तार के साथ आठ टीका संस्करण में मुद्रित हुई है । अतः इसका नामकरण सम्पूर्ण टीका पर न होने के कारण नहीं किया होगा । इस संस्करण के पूर्ण साढ़े चार पृष्ठों में यह टीका उपलब्ध हैं ।

उद्देश्य—इस टीका की रचना का उद्देश्य अपनी आयु की सफलता प्राप्त करना है । इन्होंने स्पष्ट लिखा है —

अनुदिनमिदमायुः सर्वदासतप्रसंगै····

क्षणमपि सफलं स्यादित्ययं मे श्रमोऽत्र ।।[2]

शैली—मधुसूदन सरस्वती सकल शास्त्रों के उद्भट विद्वान् थे । श्लोक का सम्बन्ध पहले लिखा है, इसके उपरान्त टीका भाग रखा है, यथा—

‘तं परं सत्यं वयं धीमहि’ इति सम्बन्धः ।

तदुपरान्त प्रत्येक पद की व्याख्या की है—‘तत् किंस्विद् व्यावहारमात्राबाध्यं तद्व्यावर्त्तनायाह परमिति’ । प्रथम पक्ष अद्वैतवादी सिद्धान्तों के आधार पर लिखा है—‘मुमुक्षवो ध्यायेम निदिध्यासेम’ । निदिध्यासन आदि की विस्तृत व्याख्या भी की है । ‘पूर्वार्द्ध’ से ‘जन्माद्यस्ययतः’, अन्वयात् पद से ‘तत्तु समन्वयात्’, ‘अर्थेष्वभिज्ञ’, से ‘ईक्षतेर्नाशब्दम्’, ‘तेने ब्रह्म हृदा’ से ‘शास्त्र योनित्वात्’, ‘मुह्यन्तियत्सूरयः’ से ‘ऐतेनसर्वे व्याख्याता व्याख्याता’ पर्यन्त का न्यायकलाप सूचित किया है, तथा समन्वयाध्याय व्याख्यात है । ‘तेजो वारि मृदां’ से ‘अविरोधाध्याय’, ‘धीमहि’ से ‘साधनाध्यायार्थ’, ‘धाम्ना स्वेन’ से ‘फलाध्यायार्थं’ की प्रतीति करायी गई है । भागवत के पारमहंसी नामकरण का हेतु भी लिखा है —

---

[1] ‘भक्तिरसानुभवश्च सर्वोप्यस्माभिर्भक्तिरसायने-अभिहितः’
(भाग० आद्य पद्य व्याख्या १।१।१)

[2] भाग०—आद्य पद्य व्याख्या १।१।१ मंगलाचरण कारिका २ ।

'अविद्या तत् कार्य निवृत्युपलक्षितपरमानन्दरूपा विशेषात्। एवं–सति पारमहंसीसंहितेति समाख्योपपद्यते परमहंसानां वेदान्तवाक्यार्थ निदिध्यासन रूपत्वात् अत्रत्योपाख्यानानां तत्रात्पर्यकत्वात् ।'[1]

मधुसूदन सरस्वती ने टीकारम्भ में श्रीकृष्ण को नमस्कार किया है—

श्रीकृष्णं परमं तत्वं नत्वा तस्य प्रसादतः
श्री भागवतपद्यानां कश्चिद् भावः प्रकाश्यते ।[2]

इससे यह स्पष्ट है कि ये भागवत के पद्यों का भाव प्रकाशित करना चाहने थे, अवश्य ही इन्होंने विभिन्न स्थलों की टीका की होगी, परन्तु अब वह अप्राप्य है। विशालकाय पृष्ठ की २५० पंक्तियों में आद्य पद्य की व्याख्या द्वारा इनके भागवत के गम्भीर अध्ययन का पता लगता है। इन्होंने देख लिया था कि आयु अनुदित व्यतीत हो रही है किन्तु सत्प्रसङ्ग विचार का अवसर ही नहीं मिलता। अतः हरि चरित सुधा से मेरा जीवन सफल होगा।[3] 'सात्वतास्तु वर्णयन्ति' से पांचरात्रागम के प्रभाव का निरूपण तथा उसके अनुसार जन्माद्यस्य श्लोक की व्याख्या की है।

केवल भक्तिरसिकास्तु—से 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' आदि वाक्य द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के पक्ष में जन्माद्यस्य का अर्थ घटित किया है। इस प्रकार मधुसूदन सरस्वती ने प्रत्येक पक्ष की व्याख्या में सकल श्रुति-पुराण-व्याकरण-मीमांसा आदि शास्त्रों का निर्वाह किया है। अन्तिम पक्ष का विशेष विस्तार से यहां नही कर सके, उसके लिये अपने ग्रन्थ 'हरभक्ति रसायन' का उल्लेख किया है। इस भक्तिरस पक्ष में उनकी विशेष रुचि थी, इसमें उन्होंने सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण हैं, यह सिद्ध किया है।[4]

*

---

१. आद्य पद्य व्याख्या १।१।१ । २. मधु० सरस्वती १।१।१ मंग० १ ।

३. अनुदिनमिदमायुः सर्वदाऽसत् प्रसंगै–
बहुविध परितापैः क्षीयते व्यर्थमेव
हरि चरित सुधाभिः सिच्यमानं तदेतत्
क्षणमपि सफलं स्यादित्ययं मे श्रमोऽत्र ॥
(भाग० आद्य पद्य व्याख्या, मंगलाचरण, कारिका २)

४. एवं च सर्व प्रियत्वेन परमानन्द रूपः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः सर्वमोहनः सर्वसुखप्रदः सर्वापराध सहिष्णुः परम कारुणि को विदग्धतरश्च श्रीकृष्णो भक्तिरसालम्बनत्वेन सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रतिपाद्य इति ध्वनितम् ।
(भागवत आद्य पद्य व्याख्या १।१।१)

तृतीय अध्याय

विशिष्टाद्वैत मत के टीकाकार

१. सुदर्शन सूरि
२. वीर राघवाचार्य
३. भगवत्प्रसाद
४. श्रीनिवास सूरि
५. योगी रामानुजाचार्य

विशिष्टाद्वैत मत के टीकाकार

१. सुदर्शन सूरि

(क) **परिचय**—रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य सुदर्शन सूरी प्रतिभाशाली विद्वान एवं भगवद्भक्तों में मूर्धन्य थे, अपना अमूल्य जीवन भारती की सेवा में व्यतीत करने वाले सुदर्शन को भट्टाचार्य के नाम से भी अभिहित किया जाता था। ये तामिल देश के निवासी थे एवं हारीत गोत्र के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। जैसा कि श्रीमद्भागवत की पुष्पिका द्वारा ज्ञात होता है—

इति श्री हारीतकुलतिलक वाग्विजयसूनुना श्रीरंगराजदिव्याज्ञा लब्ध वेद व्यासापरनामधेय श्रीसुदर्शन सूरिणाभिहिते श्रीमद्भागवत पुराणे व्याख्याने श्री शुक पक्षीये दशम स्कन्धे नवतितमोऽध्यायः। (शुक पक्षीया १०।९०)

इस पुष्पिका से यह भी ज्ञात होता है इनके पिता का नाम 'वग्विजय' या विश्वजयी था एवं इनके गुरु का वरदार्य या वरदाचार्य था। सुदर्शन के पितामह रामपिल्लाई एवं प्रपितामह का नाम कुरेश था।[1]

(ख) **सम्प्रदाय**—'वेदव्यासापरनामधेय' से स्पष्ट है कि श्री रंगराज की आज्ञा से इन्हें यह उपाधि प्राप्त हुई थी। प्रसिद्ध रामानुजाचार्य के ये भागिनेय एवं शिष्य थे। सुदर्शन ने अपने गुरु श्री वरदाचार्य से श्री भाष्य की व्याख्या सुनकर 'श्रुति प्रकाशिका' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। श्रीरामानुज भाष्य के समझने के लिये 'श्रुति प्रकाशिका' का पठन अत्यन्त आवश्यक है। श्री रामानुज के वेदार्थ संग्रह की 'तात्पर्य दीपिका' लिखी थी एवं ब्रह्म सूत्र पर 'श्रुति प्रदीपिका' नामक टीका लिखी। सम्प्रदाय के प्रति यह भाव मातुल श्रीरामानुज के स्नेह की प्रेरणा से और भी पल्लवित हुआ था।[2] अतः ये विशिष्टाद्वैतवादी थे।

---

[1] श्रीरंगाचार्य-रंग मंदिर, वृन्दावनस्थ।

[2] कल्याण-वेदान्तांक-गीताप्रेस, पृष्ठ ६७८।

(ग) स्थिति काल—सुदर्शन सूरी का मृत्यु समय निश्चित माना जाता है, इनकी मृत्यु के बारे में यह निश्चयपूर्वक कहा जाता है कि दिल्ली सम्राट अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर ने सन् १३६७ में मदुरा पर आक्रमण के समय श्रीरंगम् पर भी आक्रमण किया, उस समय सुदर्शन सूरी भी यवनों के चंगुल में फंस कर मारे गए।[1] अतः १३६७ में इनकी मृत्यु यदि मानी जाय तो १२५०–१२७० ई० के मध्य इनका जन्मकाल माना जा सकता है।

विशिष्टाद्वैत के अनुयायी उनकी मृत्यु का यह समय नहीं मानते। वे आक्रमण के १०-१२ वर्ष पश्चात् उनका परम पद स्वीकार करते हैं।[2]

(घ) कृतियां—१. श्रुति प्रकाशिका, २. तात्पर्य दीपिका
३. श्रुति प्रदीपिका, ४. शुक पक्षीया

शुक पक्षीया श्रीमद्भागवत की टीका है।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—विशिष्टाद्वैत के प्रथम भागवत टीकाकार श्री सुदर्शनाचार्य सूरी की टीका शुक पक्षीया नाम से विख्यात है।[3]

परिमाण—शुक पक्षीया नामक टीका सम्पूर्ण भागवत पर उपलब्ध है।

उद्देश्य—यह टीका शुकदेव के भी अभीष्ट को लेकर लिखी गई है अथवा शुकदेव का मन्तव्य इस टीका में ही खोला गया है, अतः यह नामकरण किया गया प्रतीत होता है।

प्रकाशन—यह टीका आठ टीका के साथ वृन्दावन से प्रकाशित हुई है।

शैली—यह टीका महत्वपूर्ण होने पर भी स्वल्प परिमाण में है, न तो इसमें अन्वय मुख शैली को प्राधान्य दिया है न भूमिका शैली को। मूल के कतिपय पद उठाकर उनकी व्याख्या ही अधिकतर की गई है। साहित्य की छटा कहीं देखने को भी नहीं मिलेगी।

मूल श्लोक लगाने में भी इस टीका का कोई उपयोग नहीं किया जा सकता। यथा—

---

[1] (क) पुराण विमर्श–बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५७३।
(ख) कल्याण–वेदान्तांक, पृष्ठ ६७८।

[2] श्रीरंगाचार्य (रंग मन्दिर, वृन्दावनस्थ)

[3] इति श्री…… सुदर्शनसूरि कृत व्याख्याने शुक पक्षीये प्रथमः।

तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्त दृष्टये
गुण प्रवाहोऽयमविधयाकृतः । (भागवत १०।४०।१२)

टीका—यदविद्यया यदीयया प्रकृत्या मम मायादुरत्ययेति ।[1]

'अप्यंङघ्रिमूले' की टीका में 'वीतशंकः का अर्थ 'गत शंकः' इतना ही लिखा गया है । यद्यपि इस प्रकार की शैली अन्य टीकाकारों की भी है, पर वह कहीं कहीं है, इनकी टीका में यह शैली सर्वत्र है । सम्प्रदाय के तत्व निरूपण प्रसंग अवश्य संकेत के रूप में हैं जिनके कारण इसका अत्यधिक सम्मान है । प्राचीन उपलब्ध टीकाओं में श्रीधर स्वामी की टीका के पश्चात् सुदर्शन सूरी की टीका प्राप्त है । सम्भव है इस टीका में किसी परिस्थिति वश इतना संकोच किया गया हो । अन्यथा टीका में उनका अपना व्यक्तित्व भी दिखलाई देता ।

२. वीरराघवाचार्य

(क) परिचय—विशिष्टाद्वैतवादी वीर राघवाचार्य अपने समय के विद्वान् थे । उनके समय श्रीमद्भागवत शास्त्र का अनुशीलन एवं प्रामाण्य वृद्धि पथ पर था । प्रत्येक आचार्य अपने मन्तव्य की पुष्टि के लिये भागवत के प्रमाण उद्धत किया करते थे । रामानुज सम्प्रदाय के श्री सुदर्शन सूरी ने 'शुक पक्षीया' टीका की रचना की थी । किन्तु यह संक्षिप्त होने के कारण विद्वत्ता पूर्ण होने पर भी सर्वसाधारण की पिपासा तृप्त करने में असमर्थ थी । साथ ही स्व-सम्प्रदायानुसार तत्वों का निरूपण भी बड़े संकोच के साथ किया गया था, इसे ध्यान में रखते हुए वीर राघवाचार्य ने भागवत पर टीका करना आवश्यक माना तथा 'भागवत चन्द्र चन्द्रिका' नामक टीका का प्रणयन किया ।

वीरराघव दक्षिण देश के निवासी थे, इनका जन्मस्थान 'वद्दिवेलिलक्ष्मक्कपाल्यम्' कहा जाता है, टीका में ऐसा कोई संकेत नही है । इनके पिता का नाम श्री शैल गुरु था । इनका जन्म वत्स गोत्र में हुआ था । यह तो निश्चित नहीं कहा जा सकता। तथापि प्रौढ़ ग्रन्थों का अध्ययन इन्होंने अपने पिता से ही पूर्ण किया था । ये अपने पिता के अनन्य भक्त थे । इन्होंने प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में उनका तथा अपने गोत्र का उल्लेख किया है ।[2] इन्होंने

---

[1] शुक पक्षिया १०।२८।१६.

[2] इति श्रीवत्सान्वय पयः पारावारराकासुधाकरस्य श्रीशैलगुरोस्तनयेन तच्चरण परिचर्या प्रसन्न तत्सूक्तिसमधिगत श्रीमद्भागवतार्थहृदयेन श्रीवैष्णव दासेन श्री वीरराघव विदुषा विलिखतायां श्रीमद्भागवत चन्द्र चन्द्रिकायां प्रथम स्कन्धे प्रथमोऽध्यायः । (भाग० चं०चं० १।१)

श्री शैल को शैलदैशिक के नाम से अभिहित किया है उनकी महिमा का भाव भरे शब्दों में उल्लेख उनकी स्नेह भावना का द्योतक है—

चिकीर्षा मोघा सा निरवधि कृपा लोक कलिता
यया यस्यास्यान्तं विवृति रचनायाः समगमम् ।
स एष श्री शैलो गुरुरखिल विद्या जलनिधिः
ममस्यातां स्वान्तश्चरण कमलं संम्प्रकटयन् ।।

अवेदं गभीर निगमान्तरहस्य सारं
क्वाहं सुमन्द मतिरत्रपरं निदानम् ।
वीक्षा यदीय करुणा कलिता तमेव
श्री शैल दैशिक वरं शरणं गतोऽस्मि ।।

इनके पितामह का नाम अहोवल था—

वन्दे वात्स्यमहोवलार्य तनयं वात्सल्य वारांनिधि
श्री शैलेश गुरुं त्रियःपतिमपि प्राचार्य पारंपरीम् ।
तुर्यं व्यूहमशेषहेतुमजितस्याजंतदुस्संगजम्
देवर्षि प्रवरं पराशरसुतं व्यासं च वैयासकिम्[1] ।।

श्रीमद्भागवत शास्त्र का अध्ययन इन्हें पिता शैल गुरु ने ही कराया था ।

श्री शैलपूर्णादखिलेतिहास पुराण जालं समवाप्ययेन ।
प्रार्वति सन्दर्शयतेव शिष्यं भावं मुनिं लक्ष्मणमाश्रयेऽहम् ।[2]

इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि इन्होंने पुराणों का एवं महाभारत का अध्ययन भी उनसे किया था ।

(ख) सम्प्रदाय—'श्री विष्णु चितं गुरुं से ज्ञात होता कि वे इनके गुरु थे । एक श्लोक में श्री रामानुजाचार्य-कुरुकेश्वर, गुणनिधि, वात्स्य (शैल) वरदाचार्य, वाग्विजयज (सुदर्शनाचार्य) व्यास आदि को नमस्कार किया है–

श्री रामानुज योगि पूर्ण करुणा पात्रं महान्तं ततः
सम्प्राप्ताखिल वेदविद्यमखिलान् योद्राविडान् व्याकरोत् ।

---

[1] भाग० चं० चं० १.१ मंगलाचरण । **[2] वही १.१ मंगलाचरण ।**

वेदान्तान् कुरुकेश्वरं गुणनिधि श्रीविष्णु चितं गुरुं
वात्स्यं तं वरदं च वाग्विजयजं व्यासार्यमीडीमहि ॥[1]

अतः ये विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

वीरराघव ने लिखा है कि "श्रीमद्भागवत एक अपूर्व ग्रन्थ है, यह पुराण तिलक कहा जाता है, अनेक विद्वानों ने इसकी व्याख्या की है, इस पर टीका करने का साहस गुरुजनों के आर्शीवाद से कर रहा हूँ, विद्वान् मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

श्रीमद्भागवतं पुराण तिलकं व्याख्यातृभिर्व्याकृतम्
व्यासार्यैर्यतिराजभाष्यवचसामर्हंबुघानां मुदे।
मन्दानामपिमादृशामवगमाच्चाहंतया दर्शितम्
पन्थानं समुपाश्रितो विवृणुयां मत्साहसं क्षम्यताम् ॥[2]

वीर राघव का विश्वास है कि इस प्रकार की सुन्दर टीका भगवत्कृपा बिना सम्भव नहीं है।

योऽसौ तुरंग वदनो हृदि सन्निविष्टः
संचोथ बुद्धिमसकृत् कृपया स्वया में।
आलीलिखत् करतलेन्द्रिय दैवतेन्द्र
मूर्तिस्तमेनमनघं मनवै परशम् ॥[3]

(ग) स्थितिकाल—वीरराघव के जन्म के समय के बारे में प्रामाणिकता के प्रभाव में प्रमाणों के आधार पर उनका समय निर्धारित किया जा रहा है। इन्होंने 'श्रीरामानुज योगि' श्लोक द्वारा रामानुज का उल्लेख किया है, इससे इन्हें रामानुजाचार्य के पश्चात् ही मानना होगा। श्री रामानुजाचार्य का समय सम्वत् १०७४ विक्रम माना गया है। 'तत्रत्यश्रुत प्रकाशिकायां च' इस पद द्वारा इन्होंने सुदर्शन सूरी के ग्रन्थ का निर्देश किया है, सुदर्शन सूरी १३६७ ई० [सम्वत् १४२४] में विद्यमान थे। अतः ये उनके पश्चात् उत्पन्न हुए होंगे। श्रीधर स्वामी कृत भावार्थ दीपिका टीका में चतुर्थ स्कन्ध के द्वितीयाध्याय में शिव की स्तुति की गई है, जबकि मूल भागवत में उनकी निन्दा का पक्ष स्पष्ट दिखलाई देता है। इन पंक्तियों को वीर राघवाचार्य ने 'केचित्' कहकर पूर्व पक्ष में रखकर उनका खण्डन किया है एवं 'त्वादृश' का प्रयोग भी श्रीधर के लिये किया है। अतः ये श्रीधर स्वामी के पश्चात् हुए थे श्रीधर का समय

---

१. भाग० चं० चं० १।१।१. २. वही १।१।१. ३. वही १२।१३ उपसंहार।

१४५० विक्रम पर्यन्त माना गया है । सप्तम स्कन्ध में वीर राघवाचार्य ने वरद गुरु का उल्लेख किया है । वरद गुरु रामानुजाचार्य के भागिनेय थे एवं शिष्य भी । सुदर्शनाचार्य भी वरद गुरु के शिष्य थे, वरद गुरु का समय १२वीं शताब्दी के अन्त से तथा तेरहवीं का प्रारम्भ माना गया है ।[1] इससे भी वीर राघवाचार्य का समय १४वीं शताब्दी के पश्चात् सिद्ध होता है । चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी विश्वनाथ चक्रवर्ती आदि की टीकाओं में वीर राघवके मत की समालोचना है, अतः श्रीधर से पश्चात् तथा विश्वनाथ से पूर्व इनका स्थितिकाल माना जा सकता है ।श्री बलदेव उपाध्याय ने इनका समय १४वीं शती लिखा है ।[2]

वरदाचार्य के प्रधान शिष्य—वाधूलवंशीय वीरराघवदासाचार्य का भी यही समय है, भ्रान्तिवश इन दोनों को एक ही समझा जाने लगा है, किन्तु यह भारी भूल है । भागवत टीकाकार के पिता शैल गुरु थे तथा वीर राघवदास के पिता का नाम नरसिंह गुरु था ।

(घ) **कृतियां**—वीरराघवाचार्य बहुश्रुत विद्वान् एवं षट्शास्त्र के मर्मज्ञ पण्डित थे, इनकी एक कृति से ही इनके अगाध पाण्डित्य का प्रकाश हो जाता है, वह कृति है—'भागवत चन्द्र चन्द्रिका' ।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य नाम**—भागवत चन्द्र चन्द्रिका । इस टीका के रचयिता श्री वीर राघवाचार्य हैं । पुष्पिका में स्पष्ट लिखा है—

'इति श्री वीरराघवाचार्य कृत भागवत चन्द्र चन्द्रिकायां प्रथम स्कन्धे प्रथमोऽध्यायः । (भाग० चं०चं०१।१)

यह टीका भागवत को चन्द्र मानकर लिखी गई है, अतः इसका अन्वर्थ नाम है ।

परिमाण—यह टीका सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पर लिखी गई है । परिणाम में यह मूल से द्विगुणित ही होगी कम नहीं ।

उद्देश्य—विशिष्टाद्वैत पक्ष का प्राधान्यत्व सिद्ध करना ।

प्रकाशन—इसका प्रकाशन आठ टीकाओं के साथ वृन्दावन से सं०१९६४ में हुआ था तब से उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत में अनेक संस्करण हो चुके हैं ।

---

[1] **कल्याण—वेदान्तांक, पृष्ठ ६७८ ।** [2] **पुराण विमर्श, पृष्ठ ५७३ ।**

शैली–यह टीका अन्वय-मुखी व्याख्या है। भूमिका वांधने का उपक्रम किया गया है किन्तु उनकी अभिरुचि अन्वय योजना के साथ विस्तृत व्याख्या में लगी है। टीका के वैशिष्ट्य द्योतन के लिए ब्रह्मसूत्रों को कहीं मूल रूप में रखा है, कहीं तदनुसारी प्रक्रिया द्वारा पक्ष की सिद्धि की है। साथ में पुराण एवं स्मृति के वाक्यों को भी रखा है। अन्तर्कथाएँ मूल श्लोकों के साथ रखी हैं। जिन वाक्यों को अद्वैत परक समझा जाता है उन्हें भी विशिष्टाद्वैत के अनुसार सिद्ध किया है। यह इनका टीकाकारों में प्रथम प्रयास परिलक्षित होता है, इस शैली से परवर्ती टीकाकारों को एक दिशा मिली एवं उन्होंने उसी प्रकार अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार उन वाक्यों का अर्थ प्रकट किया। जैसे–सर्वं खल्विदं ब्रह्म, सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं, रसौ वैसः आदि वाक्यों का अर्थ टीका में अद्वैतपरक नहीं किया।[1]

व्याकरण में टीकाकार ने अत्यधिक रुचि ली है, जहाँ भी व्याकरण की कोई वात उन्हें विचार योग्य दिखलाई देती है वे नव्य न्याय की शैली में उसके समाधान की ओर सचेष्ट देखे जाते हैं।[2]

"स प्रकारक षट्करूपः सम्वन्धिरूपः कालरूपश्च यो पदार्थः पृथक् स्वभाव प्रविभक्तः स्वभावो यस्य स कर्त्तृ कर्म द्वारा तन्निष्ठ क्रियाश्रयत्वमधिकरणत्व द्रव्यगुण क्रियान्वितमनि रूपितत्वैतत्कारणत्वे च सति स व्यापार निर्व्यापार निष्ठत्वं हेतुत्वम्। धातूपात्त व्यापार जन्य फलाव्यवहित पूर्व व्यापाराश्रयत्वं करणत्वम्।"

साहित्य की ओर इनकी अधिक रुचि नहीं, शब्दानुप्रास की छटा इनकी टीका में न के तुल्य है, अर्थालंकारों में ध्वनि के विवेचन एवं अलंकारों के निरूपण में भी इनकी चित्तवृत्ति नहीं रमी है। भाषा में क्लिष्टता है, व्याकरण, कोश के अप्रचलित शब्दों तथा वेदान्त मीमांसा आदि के प्रौढ़ विवेचन के कारण इस टीका का स्वारस्य सहज बुद्धिगम्य नहीं है। सम्प्रदाय की भावना के कारण वे अन्य आवश्यक तथ्यों पर मौलिकता से विचार नहीं कर सके। षष्ठ स्कन्ध के नवमाध्याय में साधारण बात कही गई है कि "परमात्मा ही जगदाकार रूप में परिणित है।" इसकी टीका में आत्मा को चित् तथा अचित् लिखते हुए जगत् को भी चिदचिद् विशिष्ट अवस्था में लिखा है जो इन पर अतिशय युक्त सम्प्रदाय भावना का प्रमाण है –

---

[1] भा० चं० चां० १०।८७।१.   [2] वही ६।६।१२.

"सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टमात्मानमेव स्थूल चिदचिद्विशिष्टावस्थविश्वाकारेण परिणमसीत्यर्थः ।"[1]

"श्री निवासः श्रिया सह"[2] की व्याख्या रामानुज सम्प्रदाय की सम्पत्ति है । उक्त श्लोक में श्रियासह-श्रीनिवास इन दोनों पदों पर विचार व्यक्त करते हुए टीकाकार ने लिखा है कि ये पुनरुक्तवत् प्रतीत होने वाले पद विशिष्टाद्वैत की मान्यता के परिचायक हैं अन्यथा एक श्री से ही कार्य चल सकता था । "श्रीविशिष्ट-श्रीनिवास भगवान्" चिदचिद्वशिष्ट ईश्वर कहे जा सकते हैं ।

यह टीका टीकाकारों की कसौटी है क्योंकि इस पर निष्पक्ष टाकाकार जिनमें श्रीधर का नाम ग्रहण किया जाता है आदि ने इस श्लोक पर न तो अपने विचार ही व्यक्त किये और न कुछ अन्वयार्थ आदि ही लिखा । उक्त श्लोक को सभी आचार्यों ने प्रामाणिक मानते हुए भी एक अक्षर भी नहीं लिखा । अतः इसे विशिष्टाद्वैतवाद का मूल श्लोक कहा जा सकता है ।

भागवत के प्रत्येक श्लोक को भगवत्स्वरूप मानकर उस पर टीका लिखने वाले आचार्यों का इस श्लोक पर मौन ग्रहण उचित नहीं दिखलाई देता । यह श्लोक उस प्रकरण में आया है जबकि दुर्वासा भक्तवर अम्बरीष का अपमान कर लोकों में दौड़ लगा रहे थे तब वे भगवान् के वैकुण्ठ धाम में गये जहाँ श्रीनिवास श्री लक्ष्मी के साथ सदा रहते हैं ।[3] इसके अतिरिक्त जहाँ भी क्षेत्र शब्द का मूल में प्रयोग है, टीका में उसका अर्थ चित्रकूट ही लिखा गया है ।[4] भक्ति के स्थान पर प्रपत्ति शब्द का प्रयोग भी अधिक किया है ।[5] रामानुज सम्प्रदाय में राम को परब्रह्म माना गया है । वीर राघव ने लिखा है "जिसमें" योगी रमण करते हैं वह राम है और उससे परब्रह्म का बोध होता है :—

"रमन्ते योगिनोऽनन्तेनित्यानन्दे चिदात्मनि
इति राम पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ।"[6]

श्रीधर स्वामी को जहाँ उच्च पद पर स्थित किया है, उसके साथ ही उसकी अद्वैत भावना से भड़ककर उनके पक्ष का खण्डन भी किया है । वीर राघवाचार्य ही ऐसे टीकाकार हैं जिन्होंने श्रीधर स्वामी को त्वादृश='तुझ जैसे'

---

[1] भाग० चं० चं० ६।९।३३. [2] वही ९।४।६०.

[3] ततोनिराशो दुर्वासाः पदं भगवतोययौ
वैकुण्ठाख्यंयदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया संह ।। (भाग० चं० चं० ९।४।६०)

[4] भाग० चं०चं० ७।१४।३३. [5] वही ७।९:१०. [6] वही ५।१९।४०.

का प्रयोग किया है। यह खण्डन श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में दक्षकृत शिवनिन्दा के पक्ष का स्तुतिपरक अर्थ करने के कारण किया है। यद्यपि श्रीधर स्वामी ने निन्दा पक्ष तथा स्तुति पक्ष दोनों ही लिखे हैं किन्तु वीरराघव केवल निन्दा अर्थ ही उचित मानते हैं, क्योंकि अग्रिम प्रसंग मे निन्दा की पुष्टि ही होती है, स्तुति पक्ष की नहीं। उन्होंने 'लुप्त क्रियायाऽशुचये' भावार्थ दीपिका की पंक्तियों को उद्धत करते हुए लिखा है कि—

'केचिदत्र लुप्तक्रियाया शुचये इत्यादि ग्रन्थं रुद्रनिन्दापरं यथा श्रुतं व्याख्याय वास्तवस्त्वयमर्थ इत्युपक्रम्य लुप्त क्रिया यस्मिन् परब्रह्मरूपत्वात् अत एव शुचिर्यस्मात्, इत्यादि।[१]

इस प्रकार इन्होंने श्रीधर स्वामी को आड़े हाथों लिया है, इतना ही नहीं 'आत्मा नित्योऽव्ययः' श्लोक की व्याख्या में श्रीधर ने जिन श्रुति वाक्यों को उद्धत करते हुए अद्वैत सम्प्रदाय की पुष्टि की है वहां वीर राघवाचार्य ने उनका अर्थ विशिष्टाद्वैतपरक किया है।[२] निर्गुणवाद के प्रति उन्हें अति घृणा है, वे स्पष्ट लिखते हैं कि यह वाद भ्रममूलक ही है क्योंकि भिन्न वस्तुओं के अधिकरण भी भिन्न होंगे। अतः–'निर्गुणवादों निरीश्वर वादश्च भ्रममूलक एव'।[३] वीर राघव की टीका में ब्रज के एवं भागवत के प्रमुख अंश राधा-कृष्ण-मुरली आदि की कोई चर्चा नहीं की गई है। ग्रन्थों में महाभाष्य[४], अष्टाध्यायी[५] विष्णु पुराण[६] आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ग्रन्थकारों में श्री वत्साकंमिश्र[७], वरंद गुरु[८], रामानुज[९] आदि के उल्लेख प्राप्त होते है।

३. श्रीभगवत्प्रसाद

(क) **परिचय**–श्री भगवत्प्रसाद ने भागवत की भक्तरंजनी नामक टीका का प्रणयन किया था। ये छुप्पय ग्राम (कौशल देश) के निवासी थे। इनका जन्म सामवेदीय सारव जातीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री रघुवीराचार्य था एवं पितामह का सहजानन्द[१०]—

'इति श्री धर्म धुरन्धर श्री धर्मात्मज प्रत्यक्ष पुरुषोत्तम सहजानन्द स्वामि सुत श्री रघुवीराचार्य सूनू भगवत्प्रसाद विरचितायामन्वर्य वोधिन्यां भक्तमनोरंजन्याख्यायां श्रीमद्भागवत टीकायां प्रथम स्कन्धः।'

---

[१] भाग० चां० चं ४।१।१२–२९. [२] वही ७।७।१९. [३] वही ६।४।३२.
[४] वही १।२।२. [५] वही १।२।४. [६] वही ५।२१।५.
[७] वही ५।१४।२७. [८] वही ७।३।८. [९] वही १।१।१.
[१०] भक्तरंजनी, प्रथमस्कन्धान्त,, पु०

इनके पितामह हरिप्रसाद जी उद्धवावतार माने जाते थे। इनका जन्म सौराष्ट्र देश के लोज नामक ग्राम में हुआ था। हरिप्रसाद ने रामानन्द स्वामी से दीक्षा ली, दीक्षा के उपरान्त इनका नाम सहजानन्द रखा गया और इसी नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई। भगवत्प्रसाद स्वामी नारायण सम्प्रदाय के अनुयायी थे। स्वामी नारायण के सम्बन्ध में एक और उल्लेख मिलता है :—"अहमदाबाद में एक नारायण नाम का चर्मकार रहता था, एक वैष्णव साधु उसके पास आकर कुछ दिवस विश्राम कर परलोक सिधार गया। उस साधु के पास एक धर्मग्रन्थ था। चर्मकार ने उसे सम्हाल कर रखा। किन्तु उसका मर्म वह कुछ भी न समझ सका। छापिया (गोंडा यू. पी.) का निवासी स्वामी नामक ब्राह्मण तीर्थयात्रा प्रसंग से अहमदाबाद आया, वहाँ उस चर्मकार से उसका समागम हुआ। नारायण ने वार्ता प्रसंग में उस साधु का वृतान्त भी सुनाया एवं उसका ग्रन्थ भी दिखलाया। स्वामी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने उस ग्रन्थ को भलीभाँति समझा और अपना पंथ चला दिया। दोनों के नाम से यह पंथ "स्वामी नारायण" के नाम से प्रसिद्ध हो गया।"[१]

उक्त कथन जनश्रुति के आधार पर ही कहा जा सकता है, अन्य प्रमाण अभी इस विषय की पुष्टि नहीं करते। इस मत में ग्रन्थ की पूजा प्रधान धर्म है। इसमें देवमूर्ति उपासना की विधि को प्राधान्य नहीं दिया गया। ग्रन्थ पूजा से ही भगवान की प्राप्ति हो जाती है। अहमदाबाद-जामनगर-जूनागढ़-भावनगर, इन चार स्थानों में इनके देवालय हैं। वर्णाश्रम का प्रभाव इन पर पड़ ही गया जब कि ये वर्णाश्रम के पक्षपाती नहीं थे। उक्त जनश्रुति में जो कुछ सत्य हो किन्तु भक्तरंजनी के अनुसार सहजानन्द ने ११ वर्ष की अवस्था से ही सिद्धियों के चमत्कार दिखलाना प्रारम्भ कर दिया था। रामानन्द के देह त्याग के पश्चात् इन्होंने उस स्थान को सम्हाला एवं अपनी तपश्चर्या द्वारा जनता पर प्रभाव भी डाला। शतानन्द एवं मुक्तानन्द नामक दो शिष्य इनके समीप ही रहते थे। कालान्तर में सहजानन्द ने अपने ज्येष्ठ भ्रातृ पुत्र अयोध्या प्रसाद एवं कनिष्ठ भ्रातृ पुत्र रघुवीर को धर्माचार्य का कार्य सोंप कर १८८६ विक्रम में दुर्गपुर में शरीर त्याग दिया था।

वीरराघव ने अपने भाई रघुवीराचार्य के पुत्र भगवत्प्रसाद को अपना शिष्य बनाया एवं गद्दी का अधिकार भी दिया। वीरराघव ने विशिष्टाद्वैत मतोद्भवीय सम्प्रदायानुसारिणी भागवत की टीका लिखने के लिये भगवत्प्रसाद

---

[१] धर्मकल्पद्रुम, षष्ठ खण्ड—ले० स्वामी दयानन्द, पृष्ठ २४७।

को प्रोत्साहित भी किया एवं भगवत्प्रसाद ने उनके लक्ष्य की पूर्ति टीका रचना कर पूर्ण की ।

(ख) **सम्प्रदाय**—भगवत्प्रसाद यद्यपि स्वामिनारायण सम्प्रदाय के वंश-क्रम में थे किन्तु इस सम्प्रदाय का विकास विशिष्टाद्वैत की धारा से ही है । चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का निरूपण ही उक्त सम्प्रदाय का परम लक्ष्य है । सामान्य रूपेण इस सम्प्रदाय की अनेक बातें विशिष्टाद्वैत मत से भिन्न हैं तथापि विशिष्टाद्वैत-मतोद्धवीय सम्प्रदायानुसारिणी भागवत टीका लिखने के लिये वीर राघव ने भगवत प्रसाद को प्रोत्साहित किया था, ऐसा भागवत भूमिका में स्पष्ट निर्देश उपलब्ध होता है, अतः इन्हें विशिष्टाद्वैत मत में माना गया है ।[1]

(ग) **स्थितिकाल** – सहजानन्द जी का जन्म १८३७ विक्रम माघ मास शुक्ल पक्ष नवमी को एवं परलोक गमन १८८६ वि० में हुआ था । इन्होंने अपने भ्रातृ पुत्र रघुवीर को अपनी गद्दी का अधिकारी बनाया था । और उनके पुत्र श्रीभगवत प्रसाद जी थे, अतः उनका जन्म १८८६ के उपरान्त एवं १९०० के मध्य मानना उपयुक्त होगा । १९४५ **विक्रम** में भगवत प्रसाद के पुत्र विहारीलाल ने इस टीका के प्रकाशित करने की आज्ञा दी थी । इस घटना से यह निश्चित है कि भगवत प्रसाद उस समय नहीं रहे थे । १९४० के पूर्व ही भगवत प्रसाद जी का देह त्याग मानें तो इनकी लघु अवस्था में ही मृत्यु माननी होगी ।[2]

(घ) **कृतियां**--भगवत प्रसाद की सुप्रसिद्ध कृति 'भक्त रंजनी' टीका ही उपलब्ध है, अनुमान है कि इन्होंने अन्य ग्रन्थ भी रचे होंगे ।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य : नाम**[3]—भक्त रंजनी टीका के रचयिता भगवत प्रसाद अपनी सम्प्रदाय के प्रथम टीकाकार हैं, क्योंकि उनका मत विशिष्टाद्वैत में भी विशेषता लिये हुए है । अतः इसे विशिष्ट विशिष्टाद्वैत के नाम से भी अभिहित करने में कोई दोष नहीं है । क्योंकि विशिष्टाद्वैत मत के साथ उद्धवीय शब्द भी संयुक्त है, अतः यह स्वामी नारायण पंथ की प्रथम टीका कही जा सकती है ।

परिमाण—यह टीका सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पर लिखी गई है । इसमें विस्तार शैली को अपनाया है प्रत्येक श्लोक का अन्वयार्थ तो किया ही है उसका

---

[1] १. भक्तरंजनी (भूमिका) ।

[2] २. भक्तरंजनी उपक्रम ।

[3] ३. श्रीमद्भागयत भक्तरंजनी टीकयायुतम् । (भक्तरंजनी १२।१३)

भावार्थ एवं अनेकार्थ करने की भी शैली रही है, फ़लतः प्राप्त टीकाओं में आकार में समकोटि की एवं कतिपय टीकाओं से आकार में वृहद् भी कही जा सकती है।

उद्देश्य—टीका रचना का हेतु उपक्रम में लिख दिया है कि हरि (सहजानन्द) ने आठ सत् शास्त्र माने है, उनमें एकान्तिक धर्म जानने के लिये भागवत पुराण का प्रतिपादन किया है। अतः विशिष्टाद्वैत मतोद्भवीय सम्प्रदायानुसारिणी टीका की आवश्यकता की पूर्ति के लिये इसका प्रयास और भी सराहनीय कहा जा सकता है।

प्रकाशन—मूल सहित यह टीका १९४५ विक्रम में गणपति कृष्णा जी ने मुम्बई से प्रकाशित की।

वैशिष्ट्य—टीका की प्रथम विशेषता यह है कि इसमें अन्वयपूर्वक समस्त पदों का अर्थ सरल संस्कृत में लिखा गया है। इससे भागवत के कठिन स्थलों का भय दूर हो गया है। द्वितीय वैशिष्ट्य यह है कि इसमें एक एक श्लोक के अनेकानेक अर्थ किये हैं, पाठक का चित्त उन स्थलों से आगे ही नहीं बढ़ता और टीकाकार की विद्वता से वह प्रतिक्षण प्रभावित रहता है। तृतीय विशेषता यह है कि व्याकरण के प्रत्येक पद की व्युत्पत्ति एवं शास्त्रों का विवेचन प्रस्तुत किया। व्याकरणलभ्य अर्थ को प्रधानता दी है साथ ही 'कोशों' के आधार पर भी अनेकार्थ प्रस्तुत किये हैं। भाषा में प्रवाह, लालित्य एवं सजीवता है। अन्तर्कथायें विस्तार के साथ लिखी गई हैं। श्रुतियों के उद्धरणों को स्वसम्प्रदाय मत के अनुसार व्याख्या में उपनिबद्ध किया है। मूलार्थ संगति नाना शंकासमाधान एवं गूढ़ तात्पर्य खोलने में टीकाकार का परिश्रम देखते ही बनता है। टीकाकार का कथन है कि [उस समय भागवत की अन्वर्थ बोध कराने वाली कोई टीका प्राप्त नहीं थी और जो टीकाएं थीं वे ब्रह्म के विषय में अनेक मतवादों में व्यस्त थीं। भक्त जनता को उनसे सन्तोष लाभ न देखकर मैंने इस टीका का प्रणयन किया—

व्यासार्यैः प्रकटी कृतं वुधजनैर्व्याख्यातृभिर्व्याकृतम्
श्रीमद्भागवतं पुराणमखिलं श्रीकृष्णलीलापरम्।
द्वैताद्वैतमतानुगैरपि यथा बुद्धिप्रवादान्वितैः
स्वीकृत्या च यमत्र भक्तजन संतोषाय न व्याकृतम्॥'

---

१. भक्तरंजनी १।१।१ मंगलाचरण।

भगवत प्रसाद के समय में अनेक टीकायें थीं परन्तु वे अन्वर्थ बोध कराने में असमर्थ थीं। उन्होंने अपनी टीका में इसकी स्पष्ट घोषणा की है :—

टीका सन्ति यदप्यमुष्य सुधियां बोधायनानाविधा
नैकार्था: प्रति शब्दमेव विगुण ब्रह्म प्रतिष्ठापिका: ।
विद्वत्तागमकां विदां च सगुण ब्रह्म प्रवादैर्युता
नैकास्वन्वय वोधिकास्ति तत एषाप्यस्तु तद्वृद्धये ।।[१]

टीकारम्भ में स्वामी नारायण की वन्दना भी की है—

स्वामिनारायणं नत्वा धर्म पुत्रं मुनीश्वरम्
स्वभक्तानन्द कृन्मूर्ति स्वान्तेध्यायामि सिद्धये ।[२]
हरे: सतां च सम्प्रीत्यै टीका तेषां प्रसादत:
सान्वयार्थेन संयुक्ता क्रियते भक्तरंजनी ।।[३]

तत्व विवेचन में विशिष्टाद्वैत मत को ही स्वीकार किया है। चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ही जगत् का रचयिता है। सौराष्ट्र देश में इस टीका का अत्यधिक आदर है। भगवत प्रसाद के पुत्र बिहारीलाल ने प्रथम स्कन्ध के आद्य दो पद्यों की टीका भी की है। यह टीका स्वामी नारायण के पक्ष में लिखी गई है। इन्होंने अर्थ करते हुए स्पष्ट लिख दिया है कि यह टीका स्थानपूर्ति हेतु लिखी है :--

अथ रामकृष्णयो: पक्षे प्रसिद्धार्थत्वातृतीयस्य श्री सहजानन्दस्वामिन:
पक्षेऽनयो: श्लोकयोर्व्याख्या केवलमंत्रस्थानपूर्त्यर्थं प्रदर्शयामि ।[४]

४–श्री निवास सूरि

(क) **परिचय**--ये गोवर्द्धन पीठ (जिला मथुरा) के प्रमुख महन्त थे। वृन्दावनस्थ रंगमन्दिर के प्रधान महन्त श्री रंगदेशिक के ये गुरू थे। उत्तर भारत में श्रीनिवास सूरि ने दक्षिण की परम्परा एवं शिष्टाचार का प्रसार किया था। गोबर्द्धन में प्रथम श्रीवेंकटाचार्य ने अपना प्रभुत्व संस्थापित किया था, वेंकटाचार्य के शिष्य का नाम कृष्णाचार्य था। कृष्णाचार्य के शिष्य का नाम शेषाचार्य था। श्रीनिवास सूरि इन्हीं शेषाचार्य के प्रधान शिष्य थे। अपनी टीका में श्रीनिवास ने वेंकट का उल्लेख किया है—

श्रीगोबर्द्धन वासिनो गुणनिघेर्मूर्तिर्हि साक्षाद्धरे:
श्रीमद्वेंकटदेशिकस्यकरूणापीयूषतत्वार्थवित् ।

---

१. भक्त रंजनी १।१ मंगलाचरण । २. वही ३. वही ४. भक्त रंजनी उपक्रम ।

श्रीरंगाधिक-पाद-पद्म-मधुपः त्रयावासदासाभिधः
तेनैयं रचिता हरेर्गुण-युता व्याख्या-हि वेद-स्तुतेः ॥ (**भा०च०च० १०।८७**)

वेंकटाचार्य वाथूल गोत्री थे :—

वाथूलान्वयक्षीराब्धि चन्द्रमा निष्कलंककः
सोऽयं श्रीवेंकटाचार्यः सन्निधत्तां सदा हृदि ॥ (**वही**)

वेंकटाचार्य के दासदास का उल्लेख भी अपने लिए किया है—इति श्रीगोवर्द्धन कृतवास श्रीवेंकटाचार्य दास दासेन श्रीनिवास दासेन विरचितायां····

श्रीनिवास सूरि के जन्म स्थान व माता-पिता आदि का विवरण इस टीका में उपलब्ध नहीं है।

(ख) **सम्प्रदाय**—श्रीनिवास सूरि विशिष्टाद्वैत मत के अनुयायी थे, रामानुज की परम्परा में इनके गुरू एवं शिष्य का सम्बन्ध भी रहा है, तथा इनके मंगल पद्य से भी इनका रामानुज मत का अनुयायी होना सिद्ध है :—

श्री श्रीनिवासदासाख्यो नत्वा श्री यति शेखरम् ।
रामानुजं करोत्याढ्यां व्याख्यां वेदस्तुतेर्गुणेः ॥[१]

(ग) **स्थिति काल**—रंगदेशिक गोवर्द्धन स्थित मठ के अधिपति थे; इनके आदेश से सेठ राधाकृष्ण ने वृन्दावन में रंग मन्दिर का निर्माण करवाया था। इस मन्दिर का आरम्भ सं० १९०२ में हुआ था, अतः १९०२ से पूर्व तथा १८५० के पश्चात् श्रीनिवास की स्थिति मानी जा सकती है[२] क्योंकि रंगदेशिक श्रीनिवास की गद्दी पर बैठे थे।

(घ) **कृतियां**—तत्वदीपिका (भागवत टीका)

(ङ) **टीका वैशिष्टय—नाम**—श्रीनिवास रचित भागवत की टीका का नाम 'तत्व दीपिका' है। वेदस्तुति के प्रारम्भ में स्पष्ट लिखा है—'श्री श्रीनिवास सूरि कृत तत्व दीपिका'[३]।

परिमाण—यह टीका ब्रह्म स्तुति एवं वेद स्तुति (१०।८७) अध्याय पर है, किन्तु बड़े विस्तार के साथ लिखी गयी है।

उद्देश्य—विशिष्टाद्वैत मतानुसारी व्याख्या करना।

प्रकाशन—आठ टीका संस्करण वृन्दावन में प्रकाशित।

शैली—भूमिका प्रणाली से यह टीका लिखी गयी है—तत्र एवं स्वभक्तयो राजन्···· ····मन्वानः···· ····पृच्छति ब्रह्मन्निति'। (८७।१)

---

[१] तत्व दीपिका १०।८७।१। [२] कांकरौली का इतिहास, प्रकरण८, पृष्ठ ३८।
[३] तत्व दीपिका १०।८७ प्रारम्भ।

टीका में श्रुतिवाक्य–'अणो रणीयान्' आदि एवं 'सर्वभूतान्तरात्मा' आदि स्मृति वाक्यों के उदाहरण दिये हैं। निर्विशेष ब्रह्म का खण्डन किया है। भाषा में प्रवाह है तथा प्रौढ़ता से पुष्ट है—

·········पुनः कीदृशे सदसतः परे चिदचिद्विलक्षणे तयोर्यन्तरीत्यर्थः तदनप्रविश्य। सच्चत्यच्चाभवत्। (तत्वदीपिका ८७।१)

सुदर्शन सूरि ने भागवत की व्याख्या संक्षेप में की थी, उसका विस्तार श्रीनिवास ने किया है—

वेदवेदान्त तत्वज्ञैः श्री सुदर्शन सूरिभिः
शुक्र पक्षानुसारेण कृतंव्याख्यान मुत्तमम्।
तद्वाक्यान्येव संगृह्य मया तत्करूणेक्षणात्
अन्यायापि प्रमाणानि क्रियते तत्सविस्तरम् (तत्व दी० १०।८७।१)

५. योगि रामानुजाचार्य

(क) परिचय—रामानुजाचार्य वृन्दावन वास्तव्य थे, इन्होंने अपने माता-पिता, देश आदि के बारे में कोई संकेत नहीं दिया। वृन्दावनवास का प्रमाण इनके विरचित एक श्लोक से किया जाता है– (सरला १०।८७।१ से)

श्रीवृन्दावनमाधवांघ्रि सुरजः कुंजालि संसेविना–
रम्या योगि समाह्वयेन रचिता रामानुजार्येण सा।
सद् गूढ़ार्थ विबोधिनी सुललिता वेद स्तुतेर्भावुक
श्रीकृष्णस्य समर्पितांघ्रि कमले व्याख्योत्तमाराजते॥ (मंगलाचरण)

वृन्दावनस्थ श्रीरंग मन्दिर के ट्रस्टी एवं प्रसिद्ध विद्वान् १०८ श्री कमलनयनाचार्य जी के कथनानुसार 'योगी रामानुज' दाक्षिणात्य विद्वान् थे।

(ख) सम्प्रदाय—ये विशिष्टाद्वैत मत के अनुयायी थे, इनके नाम से ही इनके सम्प्रदाय का पता लग जाता है।

(ग) स्थिति काल—रामानुजाचार्य रंगदेशिक के उपरान्त वृन्दावन में आकर निवास करने लगे थे। रंगदेशिक के सं० १९०२ में विद्यमान थे। अतः उसके पश्चात् १९०२-१९५० सं० के मध्य इनकी स्थिति मानी जा सकती है।

(घ) कृतियां—सरला टीका (भागवत)

(ङ) टीका वैशिष्ट्य-नाम—रामानुज कृत टीका का नाम 'सरला' है। पुष्पिका में इसका स्पष्ट निर्देश है :–

'इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे गोगिरामानुजाचार्य कृत सरला व्याख्यायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः'। (सरला १०।८७ पुष्पिका)

परिमाण—यह टीका वेदस्तुति १०।८७ अध्याय पर एवं ब्रह्म स्तुति पर उपलब्ध है।

उद्देश्य—रामानुज के छिपे हुए भावों को भागवत के इस वेदस्तुति के अंश से प्रकाशित करना।

प्रकाशन—आठ टीका संस्करण—वृन्दावन।

शैली—प्रथम टीकाकार ने श्रीकृष्ण की वन्दना की है। यद्यपि श्री रामानुज मत के अन्य टीकाकारों ने भी श्रीकृष्ण के वन्दन में आलस्य प्रकट नहीं किया तथापि रामानुज योगि ने प्रारम्भ में भागवत के प्रतिपाद्य की वन्दना भावपूर्ण शब्दों में की है –

श्रीकृष्णं शिरसा नत्वा व्याख्यां वेदस्तुतेरिमाम्
योगिरामानुजार्योयं तनोति महताम्मुदे ॥[1]

यह टीका सद् गूढ़ार्थ बोधिनी एवं ललित है। अनेक श्रुति-स्मृति वाक्यों द्वारा विशिष्टाद्वैत के अनुकूल व्याख्या की गयी है। श्लोकों के अन्वय में अधिक ध्यान दिया है, यथा—

ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये……………। (सरला १०।८७।१)

'हे ब्रह्मन्। गुणवृत्तयः श्रुतयः सदसतः परे निर्गुणे अनिर्देश्ये ब्रह्मणि साक्षात् कथं चरन्तीत्यन्वयः।'

यह अन्वय श्लोक के प्रारम्भ में होने से अधिक उपयुक्त होता है जैसा कि चूड़ामणि ने अपनी टीका में रखा हैं, इन्होंने अन्वय विवेचन के पश्चात् लिखा है। प्रत्येक श्लोक के पूर्व विशाल भूमिका बांधी गयी है तथा विस्तार-पूर्वक प्रौढ़ भाषा में टीका की रचना की है।

इस सम्प्रदाय में अन्य अनेक टीकायें भागवत पर लिखी गयीं हैं उनमें भारद्वाज कृष्ण गुरु कृत 'मुनिभावप्रकाशिका' टीका भी महत्वपूर्ण है। यह टीका दशम स्कन्ध पर लिखी गयी है, कृष्ण गुरु रामदेशिक के शिष्य तथा नृसिंह गुरु के पुत्र थे। इनकी टीका वेंकटेश्वर (मद्रास) से १९१० ई० में प्रकाशित हुई है।

—*—

---

[1] **सरला १०।८७।१।**

अध्याय चतुर्थ

द्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१. मध्वाचार्य
२. विजयध्वजतीर्थ
३. व्यास तत्वज्ञ
४. लिंघेरी श्रीनिवास
५. श्रीनिवास तीर्थ
६. छलारि नारायणाचार्य
७. चेट्टी वेंकटाचार्य
८. शेषाचार्य
९. सत्याभिनव
१०. अनन्त तीर्थ
११. सत्यधर्म यति
१२. पाधरी श्रीनिवासाचार्य
१३. धनपति मिश्र

द्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१. मध्वाचार्य

(क) **परिचय**—द्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री मध्वाचार्य का परिचय श्रीनारायण कृत 'मध्वाचार्य विजय' में वर्णित है, इसके अनुसार इनका जन्म दक्षिण में तुलुव्र देश के वेलिग्राम में हुआ था ।[1] इनके पिता का नाम मधि जी भट् एवं माता का नाम वेदवती था । दम्पति ने अपने दो पुत्रों के नष्ट होने के पश्चात् नारायण की उपासना की । फलतः एक बालक का जन्म हुआ, उस बालक का नाम 'वासुदेव' रखा गया । यही आगे मध्वाचार्य के नाम से विख्यात हुआ । ग्राम पाठशाला में बालक वासुदेव अध्ययन करने के लिये भेजा गया किन्तु व्यायाम में अभिरुचि होने के कारण ये मल्लों को परास्त करने लगा, अतः इसका नाम 'भीम' पड़ गया था । किम्वदन्ती के अनुसार मध्वाचार्य के रूप में वायु देवता ही प्रकट हुए थे । ११ वर्ष की अवस्था में वैराग्य की तीव्र भावना से प्रेरित होकर इन्होंने सन्यास ग्रहण किया ।[2] इनके दीक्षा गुरू का नाम अच्युत पक्षाचार्य (शुद्धानन्द) था । सन्यासावस्था में इन्हें पूर्ण प्रज्ञ नाम दिया गया । शास्त्र में पारंगत होने के पश्चात् गुरू ने आनन्द तीर्थ नाम दिया, साथ ही आनन्द ज्ञान, आनन्दगिरि, ज्ञानानन्द नाम भी प्रसिद्ध हुए ।

मध्वाचार्य ने त्रिवेन्द्रम् आदि स्थानों में शास्त्रार्थ किये । उडुपी में बैठकर गीता तात्पर्य की रचना की । वेदान्त सूत्र की व्याख्या करके आचार्य बदरिकाश्रम गये और श्री व्यासदेव के प्रत्यक्ष दर्शन करने के पश्चात् उक्त ग्रन्थ उन्हें समर्पित भी किया । व्यास जी ने इन्हें शालग्राम की तीन मूर्तियाँ दीं, जिन्हें आचार्य ने सुब्रह्मण्य, उदीपि, और मध्यतल में प्रतिष्ठित किया । चालुक्य साम्राज्य की राजधानी कल्याण में शोभन भट्ट ने दीक्षा ग्रहण की, यही शोमन भट्ट अपने गुरू के पश्चात् मठाधीश हुए और उन्हें पद्मनाथ तीर्थ नाम मिला । उदीपि में कृष्ण मन्दिर के अतिरिक्त श्रीराम-सीता, लक्ष्मण-सीता, द्विभुजकालिय दमन, चतुर्भुज कालिय दमन, विट्ठल-इन आठ मूर्तियों की

---

[1] **सर्वेश्वर वृन्दावनांक, पृष्ठ २५५ में कल्याणपुर का उल्लेख है ।**

[2] **कल्याण–वेदान्तांक, भाग ११, पृष्ठ ६६० ।**

प्रतिष्ठा की। पण्डित त्रिविक्रम ने मध्वाचार्य से दीक्षा ग्रहण की एवं एक कृष्ण-मूर्ति गुरू को भेंट दी जो अद्यापि कोचीन में विद्यमान है। 'सरिदन्तर' स्थान में मध्व ने अपनी इह लीला का संवरण किया था।

(ख) **सम्प्रदाय**—मध्वाचार्य ने द्वैतवाद का समर्थन किया, ये स्वयं उसके प्रधानाचार्य एवं सम्प्रदाय प्रवर्तक हुए। इनके सम्प्रदाय का नाम 'मध्व' सम्प्रदाय पड़ गया। द्वैत सम्प्रदाय के नाम से भी इसकी सर्वत्र ख्याति है। प्रकृति तथा जड़ जगत् में भेदाभेद स्वीकार किया गया है।[1]

(ग) **स्थिति काल**—सम्प्रदाय के अनुसार इनका समय सम्वत् १०४० से १११९ पर्यन्त माना जाता है। भागवतदर्शनकार ने भाण्डारकर के अनुसार १२५४ विक्रम से १३३३ सम्वत् पर्यन्त समय भी लिखा है।[2] यह तो निश्चित है कि मध्वाचार्य ने रामानुज के विशिष्टाद्वैत के विरोध में अपने मतवाद की प्रतिष्ठा की थी।

(घ) **कृतियां** श्रीमध्वाचार्य ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया, उनमें कतिपय के नाम उल्लेखनीय हैं—

१. गीताभाष्य २. ब्रह्मसूत्र भाष्य ३. अनुभाष्य ४. दशोपनिषद् ५. यमक भारत ६. भारत तात्पर्यनिर्णय[3] ७. भागवत तात्पर्य निर्णय ८. तन्त्रसार संग्रह ९. द्वादश स्तोत्र १०. सदाचार स्मृति आदि।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य-नाम**--मध्वाचार्य कृत भागवत की टीका का नाम 'भागवत तात्पर्य निर्णय' है।

परिमाण--यह टीका समस्त भागवत पर उपलब्ध है।

उद्देश्य—भागवतकार के अभिप्राय का द्वैतपरक अर्थ करना ही उद्देश्य है।

---

१. वेदान्त सिद्धान्त संग्रह–वनमाली मिश्र, पृष्ठ ९२, श्लोक ५।१४

२. (क) भागवत दर्शन, पृष्ठ १७७।

(ख) वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म–आर०जी० भाण्डारकर, पृष्ठ ८२, ८३।

(ग) कल्याण वेदान्तांक पृष्ठ ६९० में ११९९ ई० आश्विन शुक्ल दशमी लिखा है जिसके अनुसार सम्वत् १२५६ विक्रम आता है।

(घ) भक्ति अंक, पृष्ठ १८८ में सं० १२९५ का उल्लेख है।

३. व्यासाज्ञया भाष्यवरंविधाय
पृथक् पृथक् चोपनिषत्सु भाष्यं
कृत्वाखिलान्यं पुरुषोत्तमंच
हरिं वदन्तीति समर्थयित्वा। (भारत तात्पर्य निर्णय ७।३२)

प्रकाशन—निर्णय सागर प्रेस वम्बई, शाके १८३२ ।

शैली—भागवत के श्लोकों की संख्या क्वचित् क्वचित् देते हुए अपनी भाषा में उनका अर्थ किया है । कहीं मूल श्लोक भी दिये गये हैं । जैसे — 'जन्माद्यस्य' श्लोक की व्याख्या—जन्माद्यस्येत्यादि । तं परं धीमहि । अन्वयात् । यतो वा० । इतरतः । तर्कतः चेतनाद्धीति ।[1] व्यास का राम से पूर्व अस्तिष्व सिद्ध करते हुए लिखा है—'रामात्पूर्वमप्यस्ति व्यासवतारः तृतीययुगमारम्य व्यासो बहुषु जज्ञिवानिति कौर्मे ।[2] अन्य टीकाकारों ने व्यास को द्वापर के अन्त में स्वीकार किया है, मध्व ने अनेक व्यासों का अस्तित्व स्वीकार किया है ।

तात्पर्य निर्णय में प्रथम स्कन्ध में २० अध्याय माने हैं । इस प्रकार एक विचित्र संख्या भागवत के अध्यायों की सर्वप्रथम इनकी टीका में दर्शित होती है ।[3] मध्व सम्प्रदाय के अन्य टीकाकारों ने इस सारणी का पालन किया किन्तु अध्याय संख्या के विषय में उनमें मतैक्य नहीं पाया जाता, किसी-किसी टीकाकार ने दशमस्कन्ध में १०४ अध्याय भी माने हैं । इस सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य किसी सम्प्रदाय के टीकाकारों ने भागवत के अध्यायों कीं संख्या में इतना भेद नहीं माना । तात्पर्य निर्णय से मूल भागवत के श्लोक की टीका का प्रयोजन सिद्ध नहीं, तथापि सम्प्रदाय की अन्य टीकाओं का ज्ञान समुचित रूपेण तात्पर्य निर्णय के अनुशीलन सें अधिक सरल सिद्ध हो सकता है ।

२. विजयध्वजतीर्थ

(क) परिचय—मध्व सम्प्रदाय के अनेक आचार्यों ने श्रीमद्भागवत पर टीकाएं लिखी हैं जिनमें अनेक अपूर्ण टीकाएं आज भी उपलब्ध हैं । किन्तु विजयध्वजाचार्य कृत पद रत्नावली नामक टीका सम्पूर्ण भागवतपर उपलब्ध है एवं सम्प्रदाय की टीकाओं का प्रतिनिधित्व करती है । अपने जीवन के विषय में कुछ नहीं लिखा है । सम्प्रदायज्ञों के कथनानुसार ये पेजावर मठ के अध्यक्ष

---

[1] भागवत तात्पर्य निर्णय १।१।१

[2] वही १।१।३७

[3]

स्कन्ध –	१	२	३	४	५	६
अध्याय–	२०	१०	३४	३१	२३	१९
स्कन्ध –	७	८	९	१०	११	१२
अध्याय–	१६	२३	१९	९४	३१	५=३२५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थे । माध्व सम्प्रदाय के मठों में यह सातवीं संख्या का मठ कहा जाता है ।[१] विजयध्वजतीर्थ व्याकरण, साहित्य एवं वेदान्तशास्त्र के पारंगत थे । पुराण एवं भक्तिशास्त्र के महान् स्तम्भ थे । महेन्द्र तीर्थ नामक विद्वान् के ये शिष्य थे । यह इनकी पुष्पिका से पुष्ट होता है—

'इति श्रीमन्महेन्द्रतीर्थ पूज्यपाद शिष्यविजयध्वज तीर्थ भट्टारकस्य कृतौश्रीभागवत टीकायां पद रत्नावल्याम् प्रथमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः । (१।१।१)

(ख) **सम्प्रदाय**— महेन्द्र तीर्थ इनके दीक्षा गुरु अवश्य रहे होंगे क्योंकि वे मठ के महन्त पद पर आसीन थे, टीकाकार ने मंगलाचरण में उनका उल्लेख किया है:-

चरणनलिने दैत्यारातेर्भवार्णवसतरीम्
दिशतु विशदां भक्तिं मह्यं महेन्द्रतीर्थयतीश्वरः ।। (१।१।१)

महेन्द्रतीर्थ द्वैतवादी आचार्य थे अतः ये भी इस सम्प्रदाय के सिद्ध होते हैं । श्रीमद्भागवत एक अत्यन्त गौरवपूर्ण ग्रन्थ है, इसके शब्दार्थ का ज्ञान भी अत्यन्त क्लिष्ट है, केवल गुरू की अनुकम्पा द्वारा उसे समझा जा सकता है । पद रत्नावली के मंगलाचरण में वे लिखते हैं—

क्व शब्दः क्वाभ्यासः श्रुतिरपि गुरोः क्वाग्रसरणी
समीक्षा पौराणी क्व खलु विबुधामत्सरधियः ।
तथापिव्यामोहाद् गुरू गुरू कटाक्षेक शरणो
मनाग् व्याकुर्वेहं भागवत पुराणं प्रगहनम् ।।

आनन्दतीर्थ एवं विजयतीर्थ कृत भागवत टीकाओं का इन्होंने स्वाध्याय किया था । एवं उनके अवलम्बन पर ही अपनी टीका निर्माण किया था, इस विषय में उन्होंने लिखा है—

आनन्दतीर्था विजयतीर्थोप्रणम्य मस्करि वरवन्थो
तयोः कृति स्फुटमुपजीव्यप्रवच्पि भागवत पुराणम् ।।

माध्वाचार्य का नाम आनन्दतीर्थ था, प्रायः उनका सर्वत्र यह नाम ही इन्होंने लिखा है । इनकी कृति 'भागवत तात्पर्य' है, किन्तु विजयतीर्थ की टीका का कहीं पता नहीं लगता । उक्त मंगलाचरण से यह स्पष्ट है कि विजयतीर्थ ने भी भागवत पर अवश्य कोई टीका लिखी होगी, किन्तु अब वह उपलब्ध

---

[१] **मध्व सम्प्रदायाचार्य विद्यामान्य का पत्र, उडुपी मैसूर, १९६६ ई० ।**

नहीं है । आद्य पद्य व्याख्या में लिखित वृतान्त के अनुसार विजयध्वज ने भागवत टीका की रचना समुद्र के मध्य किसी स्थल विशेष पर की थी[1]—

इह हि नाना विघ-व्यसन-सागर-मग्नान्-अज्ञानुद्दिघीर्षु: करूणा करो भगवान्वादरायणानुग्रह–मुख्यपात्रश्रीमत्सुख तीर्थान्तर्हृदय कृपा पात्र भूतो विजयध्वज भट्टारकः कैश्चिद्रजत पीठ पुर वासिभिः स्व समान संस्थानाधिपतिभिः कैश्चिद्भिक्षुभिर्ग्रहस्थाश्रमिभिः सहसूर्योपराग महापर्वणिस्नात्वा सिन्धु-समीपे तपश्चरण समये केनचित्सार्थेनबहुजनैः सह बलात्कारेण नाविकायामारोपित धर्म ह्लासप्रयुक्त किंचिद्दोषपरिशोघनव्यायाजेनगुर्वज्ञया पूर्वजन्माचरित पुण्यफल परिमाक वशात्–श्रीमद्भागवत-व्याख्यार्थमाज्ञप्तो बहुश्रुत्यादिसम्मततया-तात्पर्यानुरोधेनापि बहु प्रौढेकतयैकवारं व्याख्यांचकार । तद् दृष्ट्वैतत्-व्याख्यानं नर लोक योग्यं नेति नारदादिभिर्नीतमित्यैतिह्यम् । पुनरेकवारमृष्यादि मण्डलं प्रतिनीतम् । पुनरप्येक वारं कर्त्तव्यमित्याज्ञप्तस्तृतीय वारं भूलोके स्थापितमिति पूर्वाचार्य्यैः श्रुतमिति ।

उक्त गद्य में विजयध्वज के विषय में पर्याप्त लिखा है । आशय यह है कि श्री विजयध्वज श्रीसुखतीर्थ के कृपापात्र शिष्य थे । एक समय रजतपीठ पुरवासी एवं अपने समान अन्य संस्थानों के अधिपतियों के साथ ये सूर्योपराग में स्नान करने गये । इस यात्रा में इनके साथ गृहस्थी जनवर्ग एवं कतिपय भिक्षुक गण भी थे । समुद्र में स्नान करने के उपरान्त वहां से थोड़ी दूर चलकर ये एकान्त स्थल में तपस्या करने के विचार से बैठ गये । थोड़े समय उपरान्त किसी सामुद्रिक व्यापारी की दृष्टि इन पर पड़ी और इन्हें अपने सहयोगी नाविकों के सहयोग से बलपूर्वक पकड़कर अपनी नौका में चढ़ा लिया । थोड़ी देर में वह नौका समुद्र के एक द्वीप में पहुँच गई । वहां उस व्यापारी ने इन्हें उसी द्वीप में रख दिया । इस स्थल पर विजयध्वजाचार्य ने भागवत की टीका लिखी । इस व्याख्या में श्रुति प्रमाण तथा माध्व कृत तात्पर्य की संगति बैठाकर ग्रन्थ का मर्म बड़ी विद्वता से प्रकाशित किया था । उस व्याख्यान की महत्ता देखकर एवं उसे नरलोक के उचित न मानकर नारदादि मुनि उसे दिव्य लोकों को ले गये । द्वितीय बार बड़े प्रयत्न पूर्वक रची गयी कृति को इसी प्रकार ऋषि-मुनि अपने साथ ले गये । तृतीय बार गुरू की आज्ञा से इन्होंने पुनः टीका लिखी जो 'पदरत्नावली' नाम से प्रसिद्ध है ।

---

[1] आद्यपद्य व्याख्या–सत्यधर्म कृत टिप्पणी के साथ प्रकाशित–धारवाड़ ग्राम, गोविन्द वण्णूर ।

इस वृत्तान्त का उल्लेख आद्यपद्य व्याख्या में वेंकटाचार्य के शिष्य अहोबल नृसिंह ने किया है। उन्हें यह वृत्तान्त अपने पूर्वाचार्यों के मुख से सुनने को मिला था। इस वृत्तान्त के लेखक नृसिंहाचार्य एक प्रामाणिक विद्वान् हैं। वे वेंकटाचार्य के पौत्र तथा वासुदेवाचार्य के पुत्र थे।[1]

इससे यह ज्ञात होता है कि आचार्य विजयध्वज एक उच्चकोटि के विद्वान् थे एवं दैवी आज्ञा से इस ग्रन्थ की टीका में संलग्न हुए थे। विजयध्वज के उपास्य श्री विठ्ठल ही परमतत्व हैं, सृष्टि स्थिति एवं संहारकर्ता भी वही हैं—

यल्लीला जलराशि लोल लहरी स्नान क्षमाणां नृणां
संसारोदधिराघुशुष्यतितरामग्न्युप्तशुष्कैधवत्।
यस्माद्विश्वमशेषमुद्भवतियस्तत्वं परं योगिनाम्
श्रीमन्तं तमुपास्महे सुमनसामिष्टप्रदं विट्ठलम्॥ (प. र. ३।१।१)

सुनील नीरद श्यामं सच्चिदानन्द विग्रहम्
रमारमणमशेषं विट्ठलं समुपास्महे॥ (प. र. उप. कारिका १)

विजयध्वज के अक्षर संश्लिष्ट एवं विद्वता पूर्ण हैं, कविता पर इनका अधिकार है, प्रायः दीर्घाक्षर छन्द ही इन्हें सुन्दर लगते हैं–

अगाध श्रीमद्भागवत जलराशौ मणिगणं
तृतीयस्कन्धोदभ्रमनवगाहं मृगयति।
निमज्योन्मज्यार्धेऽनप्रदमनुरक्तैऽमलधियः
कृपा लेशं संतः खलु विदधतां मय्यनुपदम्॥ (प. र. ३।१ कारिका ३)

अद्वैतवाद से इन्हें चिढ़ थी। फलतः भागवत टीका में वे अद्वैतपरक पक्ष का प्रबल शब्दों में खण्डन करते थे।[2] अद्वैत को वे 'पाखण्ड वाद' शब्द का प्रयोग भी कर गये हैं।[3]

---

[1] श्रीमद्वेंकटवर्याणां पौत्रेणाल्प बुद्धिना
अहोबल नृसिंहेन वासुदेवार्यसूनुना॥ (आद्य पद्य व्याख्या)

[2] अत्र अद्वैत वादिनो निर्गुणं वाङमनसागोचरं जगत्कारणं सगुणमिति द्विविधं कल्पयन्ति तन्मत निराकरणायाह। (प०र० ६।४।४७)

[3] पाखण्डाशास्त्रेण अद्वैत विषयेण विभिन्न चेतसः व्यामोहिम चित्ताः। (पदरत्नावली १०।८७।१)

(ग) स्थिति काल—विषय में कहीं कुछ नहीं लिखा तथापि बाह्य साक्ष्य एवं अन्त: साक्ष्य के आधार पर इनका काल १५०० विक्रम के पूर्व सिद्ध होता है क्योंकि मध्य सम्प्रदाय के पाँधरी श्री निवास ने, सत्यधर्म-शेषाचार्य, चेट्टी-वेंकटाद्रि लिंघेरी श्रीनिवास एवं व्यास तत्वज्ञ ने विजयध्वज का उल्लेख किया है। उक्त विद्वानों का समय 'गौड़ीय दर्शनेर इतिहास' के पृष्ठ १६८ के अनुसार निम्नलिखित हैं—

शेषाचार्य[1] — १६१० ई० चेट्टीवेंकटाद्रि[2] — १६१० ई०
लिंघेरी श्रीनिवास[3]—१४८० ई० व्यासतत्वज्ञ[4] — १४६० ई०

अत: विजयध्वज की स्थिति बाह् साक्ष्य के आधार पर १४६० ई० से पूर्व मानी जा सकती है। विजयध्वज ने जयतीर्थ १४वीं शताब्दी के हैं विजय-ध्वज का समय ई० १४०० से १४५० या विक्रम सम्वत् १४५७ से १५०७ के मध्य माना जा सकता है।

(घ) कृतियां—विजयध्वज कृत ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१. यमक भारत टीका
२. पदरत्नावली
३. दशावतार हरिगाथा स्तोत्र
४. श्रीकृष्णाष्टक।

यमक भारत–महाभारत का सार मात्र है। दशावतार में भगवान् के प्रमुख दशावतारों की स्तुति है। श्रीकृष्णाष्टक में ८ श्लोक कृष्ण की महिमा के हैं। पदरत्नावली भागवत की टीका है इस ग्रन्थ में बड़ी विद्वता-पूर्वक अन्य सम्प्रदायों से अपनी सम्प्रदाय की उत्कृष्टता एवं वेद सम्मत। दिखलाने का यत्न किया है।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य नाम—विजयध्वज कृत भागवत टीका का नाम पदरत्नावली है। यद्यपि इसे तात्पर्य व्याख्या के नाम से भी सम्प्रदाय में पुकारा जाता है किन्तु इसका नाम भागवत टीका में पदरत्नावली ही है—

'श्रीमद्भागवत टीकायां पदरत्नावल्यां प्रथमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः।

---

[1] ....विजयध्वज पूर्वकान्। (मन्दबोधिनी, अष्टम स्कन्ध, मंगलाचरण)

[2] विजयध्वज तीर्थादीन् गुल्न........। (सजजनहित टीका – षष्ठ स्कन्ध, मंगलाचरण)।

[3] '........विजयध्वज पूर्वकान्।' (पदमुक्तावली, मंगलाचरण)

[4] 'विजयध्वज तीर्थानां कृते रनुकृतिमंम।' (मन्दनन्दनी, उपसंहार)

[5] 'आनन्दतीर्थं विजयतीर्थोप्रणम्य।' (पदरत्नावली १।१।१ मंगलाचरण)

परिमाण—यह टीका समस्त भागवत पर की गई है, यह टीका न तो सुवोधिनी जैसी विस्तृत शैली में लिखी गई है न शुक पक्षीया जैसी संक्षिप्त शैली में ।

उद्देश्य—टीकाकार का मुख्य उद्देश्य द्वैत सम्प्रदाय के तत्वों का भागवत में अन्वेषण एवं उनका प्रतिपादन है ।

प्रकाशन—यह टीका वृन्दावन से आठ टीकाओं के साथ प्रकाशित हुई हैं एवं इसके विभिन्न संस्करण भी विभिन्न स्थानों से हो चुके हैं ।

शैली—विजयध्वजकृत पदरत्नावली की भाषा सुसंस्कृत, सानुप्रास एवं सौष्ठव युक्त है । जहां तक मूल स्पष्ट करना आवश्यक है ये शब्द सृष्टि में संकोचशील नहीं हैं किन्तु अनावश्यक शब्दावली का प्रयोग नहीं करते । भूमिका भी कतिपय शब्दों में वे बांध देते हैं—

'अत्राद्वैत वादिनो निर्गुणं वाङ्मनसागोचरं जगत्कारणं सगुणमिति द्विविधं कल्पयन्तितन्यमतनिराकरणायाह ।' (प. र. ६।४।४७)

उनकी शैली में कहीं कहीं व्यंग्य भी देखा गया है । यथा,

'देहीति वचनं श्रुत्वा देहस्था पंचदेवता········ । वही ७।१०।४)

'देही' अर्थात् 'दो' इस शब्द को सुनते ही कृपण व्यक्ति के घी, श्री, ह्री आदि ५ देवता निकल जाते हैं, तथा कहीं कहीं सरस उक्तियां भी लिखी हैं, जिससे टीका में एक विशेष सौन्दर्य दिखलाई पड़ता है । यथा लक्ष्मी का स्वयंवर होने जा रहा है, सरस्वती उनके साथ है, वह परिचय करा रही है । लक्ष्मी ने सोचा यह ब्रह्मा अति वृद्ध है, सूर्य में अत्यधिक ताप है, पवन चंचल है, शिव नग्न हैं, इन्द्र महाअभिमानी है, चन्द्रमा क्षीणता दोष से युक्त है, अतः निर्गुण विष्णु भगवान के गले में वरमाला डालना उचित है—

'एवं प्रह्मातिवृद्धस्तपति दिनपतिश्चचलोमातरिश्वा
दिग्वासानीलकण्ठ स्त्रिदशपतिरसौ गर्वितः क्षीयतेऽब्जः ।
इत्यं देप्या विचिन्त्य भ्रमर कुल कलागीत शब्दप्रफुल्ला
दत्ता माला मुरारेः सुरतरु कुसुमालंकृता पातु युष्मान् ।। (८।८।२३)

सम्प्रदाय का पक्ष कहीं-कहीं अखरने वाला भी है । गोपीगण कृत कृष्ण रक्षार्थन्यास में मूल में अज आदि भगवान के नामों का 'न्यास' श्रीकृष्ण के अंग में करने का विधान है, वहाँ टीकाकार ने 'ओंनमोनारायणाय' अष्टाक्षर का न्यास विधान किया है— (प. र. १०।६।२१)

'तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि' (वही २।५।१२)

उक्त श्लोक मध्व सम्प्रदाय का मन्त्र है।

'एकाऽयनो सो द्विफलस्त्रिमूलः (वही १०।२।२७)

उक्त श्लोक में द्वैतवाद का निरूपण स्पष्ट शब्दों में किया है तथा एकादश स्कन्ध के–'सुपर्णावितौ…………' (वही ११।११।६) श्लोक में भी जीवात्मा तथा परमात्मा का भेद स्पष्ट लिखा है। टीकाकार ने कहीं अपनी सूझबूझ का भी परिचय दिया है, यथा चतुर्थ स्कन्ध में विष्णु भगवान् के आठ आयुधों में पद्म भी गिनाया गया है—

'अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रैः' (भागवत ४।३०।७)

परन्तु विजयध्वज का कथन है कि पद्म से किसी प्रकार किसी पर प्रहार नहीं किया जा सकता, अतः यह आयुधों में रखना उचित नहीं है। यहाँ अष्टायुधों में पद्म के स्थान पर परशु पाश अंकुश में से कोई एक मानना उपयुक्त है। श्रीधर स्वामी की टीका का कहीं खण्डन है और कहीं समादर। इस टीका का सर्वाधिक वैशिष्ट्य है भागवत का पाठ भेद प्रस्तुत करना। न केवल श्लोक संख्या में अपितु अध्याय संख्या में भी पर्याप्त भेद है, यथा दशम स्कन्ध में ही इनके अनुसार १०४ अध्याय हैं जबकि वर्तमान पाठ के अनुसार ९० अध्याय हैं। कतिपय ऐसे अध्याय हैं जो भागवत कथा से सम्बद्ध हैं किन्तु उन्हें अन्य किसी टीकाकार ने नहीं ढूंढ़ा। विजयध्वज ने शतशः श्लोक प्रचलित भागवत से भिन्न लिखे हैं, अतः भागवत पुराण के स्वरूप का विचार तब तक अपूर्ण ही रह जायगा जब तक विजयध्वज की टीका न देखी जाय। ग्रन्थादि के अधिक उल्लेख इस टीका में नहीं हैं, विशेषतः गौतम सूत्र,[1] यादव,[2] वागुरी,[3] तथा वायु पुराण[4] आदि के उल्लेख अधिक संख्या में किये हैं। वायु पुराण के अधिक उल्लेख देने का कारण यह है कि विजयध्वज के पूर्व गुरू श्रीमध्वाचार्य वायु के अवतार माने गये हैं।

विजयध्वज ने भागवत में समागत मूल श्लोकों को श्रुतियों से सम्बंधित किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भागवतकार ने किन-किन उपनिषद् वाक्यों का अधिक समादर किया था। श्रुतिव्याख्यारम्भ में इन्होंने यह स्पष्ट लिखा है कि यह मूल श्रुतियों से सम्बन्धित श्लोक हैं, जैसे 'जय जय जह्यजा' श्लोक 'अस्यसृजतो हित' इस मूल श्रुति से सम्बद्ध है। इन श्रुतियों में पूर्वापर सम्बन्ध नहीं है[5]—

---

[1] पदरत्नावली १।२।२. [2] वही १।६।१२. [3] वही ५।६।२

[4] वही ५।२१।५. [5] वही १०।८७।१.

हन् हिंसायामिति धातुः पृथक् श्रुतित्वान्न पूर्वापर सम्बन्धः उपलक्षणत्वादनन्तत्वाच्छ्रुतीनां सर्व श्रुत्यर्थोपवृंहितत्वाच्च तेषां श्लोकाना न सर्व श्रुतीनांपृथगुक्ति––

> सर्व श्रूत्यर्थसम्पन्नान् श्लोकान् सत्यवती सुतः
> एकैक शाखा श्रुत्यर्थान् जगौ सर्वौपलक्षणान् ।
> वबन्धतान् भागवते प्रतिश्लोकं पृथक् श्रुती ।।
> 'इत्याचार्यैरेव उक्तत्वात् नास्माभिर्मिथः सम्बन्धार्थ' प्रपंच्यते ।
> (प० र० १०।८७।१४)

भागवतकार ने प्रतिशाखा की श्रुतियां पृथक्-पृथक् श्लोकों में उपनिबद्ध की है—

'वृहदुपलव्ध मेतवशेषतया·······।' (भाग १०।८७।१५)

इस श्लोक को औद्दालकायन श्रुति का अर्थ लिखा है, जिसका स्वरूप है—

'बृहद्विदृष्टमशेषितं यत्स्वरूपमीशस्य···· ···· ····विवुधा यथाऽगुः ।'

वेदस्तुति के–इतितव सूरयः	श्लोक १६ में इन्द्रद्युम्न श्रुति का अर्थ है ।
द्रतय इव०–	श्लोक १७ में पैंगी श्रुति है ।
उदर मुपासते०–	श्लोक १८ में हिरण्यनाम श्रुति है ।
स्वकृत विचित्र०	श्लोक १९ में कमठ श्रुति है ।
स्वकृत पुरेषु०–	श्लोक २० में निषुसीदगणपते श्रुति है ।
दुरव गमात्म०–	श्लोक २१ में कुशिक श्रुति है ।
क इह नु वेद०–	श्लोक २४ में सांकृति श्रुति है ।
नघटत०–	श्लोक ३२ में कलाप श्रुति है ।

इन श्रुतियों में न केवल नाम ही लिखे हैं अपितु उनके पूर्ण उल्लेख किये हैं । वैष्णव टीकाओं में यह शैली अन्य किसी टीका में प्राप्त नहीं ।

३. व्यास तत्वज्ञ

(क) परिचय–श्रीमद्भागवत की 'मन्दनन्दिनी' टीका के रचियता व्यास तत्वज्ञ का विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता, इन्होंने भुवेन्द्र की आज्ञा से भागवत के सप्तम स्कन्ध की टीका की थी ।

> सप्तमस्कन्ध पद्यानां श्रीमद्भागवते शुभे
> भुवनेन्द्राज्ञया कुर्वे योजनां मन्दमन्दिनीम् ।। (मंगलाचरण)

(ख) **सम्प्रदाय**—व्यास तत्वज्ञ सम्प्रदाय के स्तम्भ माने गये हैं। वे नृसिहोपासक थे, जैसा कि इनके मंगल पद्य से स्पष्ट होता है—

चरण स्मरणात्सर्वं दुरितस्य विदारणम्
शरणं नृ हरिं वन्दे करुणा वरुणालयम् ॥ (वही)

'चरण स्मरण से दुरितों का नाश करने वाले करुणा के शेवधि रक्षक नृसिंह की वन्दना करता हूँ' तत्वज्ञ मुनि का स्मरण भी परमावश्यक है—

आपाततोऽन्यथा भात भागं भागवतं सताम्
तात्पर्यतोऽजित पद्यः तं तत्वज्ञमुनिं भजे ॥ (वही)

जय मुनि का समाश्रय बुद्धि के लिये परमावश्यक है। इस श्लोक का अर्द्ध भाग अशुद्ध है जो लिपिकर्त्ता अथवा मुद्रण कर्त्ता का प्रमाद प्रतीत होता है।

............जयमुनीन् गुरून्
अस्मद्देशिकपर्यन्तान् बुद्धि शुद्धये समाश्रये ॥ (मंगलाचरण।३)

विना आचार्य की कृपा से हृदयान्धकार नहीं मिटता। सप्तम् स्कन्ध के उपसंहार में स्पष्ट है—

योऽतनोत्प्रभया विष्णु तत्व कर्म विनिर्णयौ
तमो निरास्यच्च तमाचार्यं सूर्यमहं भजे ॥

भुवनेन्द्र ने इनका अत्यन्त उपकार किया था। इसका उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं—

सृष्टि कूपे निपतितं द्विजमुद्धत्युमापतेः
पदाम्बुजे जिहसन्तं भुवनेन्द्रमहं भजे ॥ (७।उपसंहार)

(ग) **स्थितिकाल**—गौड़ीदर्शनेर इतिहास के लेखक सुन्दरानन्द ने इनका समय १४६०-१५३८ ई० लिखा है।

(घ) **कृतियां**—मन्द नन्दिनी (भागवत टीका)

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य—नाम**—व्यास तत्वज्ञ कृत टीका का नाम 'मन्दनन्दिनी' है। मन्द बुद्धि व्यक्तियों को आनन्ददायनी होने के कारण इसका नाम 'मन्दनन्दिनी' रखा गया प्रतीत होता है। सप्तम स्कन्ध में रसमयी भगवद्भक्त प्रहलाद की कथा का वर्णन है।

परिमाण—सप्तम स्कन्ध पर ही यह टीका रची गयी है—

सप्तमस्कन्धगफले अतिस्वादयिष्टे रसं
शुकानुकम्पया व्यासस्तत्वज्ञः कश्चन द्विज ।

उद्‌देश्य— केवल भुवनेन्द्र की इच्छापूर्ति ही इनका उद्देश्य है।

प्रकाशन—मध्व गौडीय पर साहित्य, कलकत्ता

टीका—अनुमान प्रकारश्च तट्टीकायां न्यायामृते च व्यक्तः।

अनुमान प्रकार टीका में एवं न्यायामृत में स्पष्ट है, विजयध्वज कृत 'पदरत्नावली' का प्रभाव इनकी टीका पर स्पष्ट है, विजयध्वज का उल्लेख भी इस टीका के उपसंहार श्लोक ७ में किया गया है—

'विजयध्वज तीर्थानां कृतेरनुकृतिर्मम
शिशोरिच कृतिः पित्रोर्हास हर्षावहासिताम् ।।'

व्यासदेव कृत भागवत का प्रकाशन श्रीमध्वाचार्य ने किया मेरी टीका भी भगवान्‌पर दूर्वा की भांति शोभित होवे—

'व्यास प्रोक्तं भागवतं पूर्ण प्रज्ञप्रकाशितम्
अत्र टीका मदीयापि तुष्ट्यै दूर्वेव मापतौ ।।' (मं।श्लोक १)

ग्रन्थ में अनेक प्रमाद हो जाते हैं किन्तु गुणान्वेषण ही करना चाहिये, शतशः पाषाणों से व्याप्त पर्वत में हीरक का अन्वेषक उसे ढूंढ़ ही लेता है। इसी प्रकार गुणग्राही मेरी टीका में भी गुण ग्रहण कर ही लेते हैं—

प्रमाद बहुले ग्रन्थे गुणानेवान्ववेषयेत्
ग्रावग्रामयुतेह्यद्रावन्वेषयति हीरकः ।। (वही।श्लो. ३)

नभः कृष्णभवाष्टभ्यां
दृष्ट्वै वामंद नन्दिनी
स्मयन्नानन्द सान्द्रोऽयं
नन्दयेन्नन्द नन्दनः ।। (उपसंहार पद्य)

४. लिंघेरी श्रीनिवास

(क) परिचय--लिंघेरी श्रीनिवासाचार्य व्यास तत्वज्ञ के प्रधान शिष्य थे। श्रीनिवासाचार्य के पिता का नाम 'रुग्मिणीश' था जैसा कि निम्न श्लोक से स्पष्ट है—

'लिंघेरी श्रीनिवासेन रुग्मिणीशार्यसूनुना'

रुग्मिणीशार्य का अन्य कोई वैशिष्ट्य प्रसिद्ध नहीं है। पुष्पिका में उनके वैशिष्ट्य का थोड़ा संकेत विशेषणों द्वारा ज्ञात होता है।[1] लिंघेरी इनका

---

[1] **इति कवि मुक्ता मालनायकरत्नायितंशभार पुर रुग्मिणीशाचार्य सुत लिंघेरी श्रीनिवास कृतायां पद मुक्तावल्यां अष्टम स्कन्धः।**

उपनाम था ये दक्षिण प्रदेश के निवासी थे ।[1]

(ख) **सम्प्रदाय**—ये मध्व सम्प्रदाय के अनुयायी थे जैसा कि मंगल पद्य से स्पष्ट है–

'प्रणम्य मध्व हृत्कंज संस्थव्यास तथा गुरुन्
पूर्व टीका कृतांश्चाथ विजयध्वजपूर्वकान् ।।

उक्त श्लोक में श्रीमध्वाचार्य व्यास तथा विजयध्वज का उल्लेख किया है ।

(ग) **स्थितिकाल**—इनके समय का कोई निश्चित उल्लेख नहीं है, यदि व्यासतत्वज्ञ के शिष्य माने जाते हैं तो इनका समय १४८० ई० के लगभग माना जा सकता है ।

(घ) **कृतियां**--इनकी भागवत की अष्टमस्कन्ध की टीका उपलब्ध है जिसका नाम 'पदमुक्तावली' है ।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य—नाम**—श्री निवासाचार्य कृत भागवत टीका का नाम 'पदमुक्तावली' है ।

'पदमुक्तावली भूयात्…………प्रीत्यैहरेः'

पुष्पिका में भी इसका उल्लेख है—

'इति कवि मुक्तामालानायक रत्नायितैशमार…………………श्रीनिवास कृतायां पदमुक्तावल्या…………।'

इससे पदमुक्तावली नाम सुस्पष्ट है । आचार्य विजयध्वज इसके पूर्व अपनी 'पदरत्नावली' टीका का प्रणयन कर चुके थे, सम्भव है उसी साम्य पर इन्होंने अपनी टीका का नाम 'पदमुक्तावली' रखा हो ।

परिमाण—यह टीका भागवत के अष्टम स्कन्ध पर ही उपलब्ध है ।[2]

उद्देश्य—भगवान की सन्तुष्टि ही एकमात्र प्रयोज्य है, 'हरितुष्टये' द्वारा यह स्पष्ट है ।

प्रकाशन—मध्व गौड़ीय पर साहित्य मन्दिर, कलकत्ता ।

शैली--इस टीका से मन्द बुद्धियों को अधिक लाभ होगा, यह उन्हें विश्वास है–

---

[1] १. कन्नड़ भाषा के विशेष शब्द यह सिद्ध करते हैं कि ये कन्नड़ प्रान्तीय थे ।

[2] २. 'अष्टम स्कन्ध सद्व्याख्या क्रियते हरि तुष्टये' । (पदमुक्तावली उपक्रम)

'लिघेरी श्रीनिवासेन कृता मन्दोपकारिणी ।'

उक्त पद्य के 'मन्दोपकारिणी' पद से स्पष्ट है, कि इस स्कन्ध के मर्म का अवगाहन सहज नहीं था, अतः इन्होंने टीका रूपी सोपान से उसे सहज गम्य बनाने का प्रयत्न किया है । सम्भव है इन्होंने अन्य स्कन्धों पर भी टीका की होगी । कन्नड़ के अनेक शब्दों को पर्यायवाची शब्दों के स्थान पर सन्निविष्ट किया है जिससे इनकी मातृभाषा-प्रेम का दिग्दर्शन होता है, यथा–

बीजापुर	दार्लिग (कन्नड़ भाषितैः)
सालैः	कन्संतोति (कन्नड़ भाषितैः)
कंटक वृक्ष	पोकल्लविदरु (कन्नड़ भाषितैः)

न केवल वृक्ष अपितु पशुओं के नाम भी कन्नड़ भाषा में हैं–

वृका—तोव्वा, हरिणा—परव्वा (प० मु. ८।२)

श्रीनिवासतीर्थ

(क) परिचय—'भागवत मूल तात्पर्य विवरण' के रचयिता श्रीनिवासतीर्थ मध्व सम्प्रदाय के महादेशिक श्री 'यदुपति' आचार्य के पुत्र थे ।[1] यदुपति से ही समग्र शास्त्रों का स्वाध्याय करने के कारण यदुपति श्रीनिवास तीर्थ के गुरु भी थे ।

(ख) सम्प्रदाय—मध्व सम्प्रदाय के अनुगामित्व की पुष्टि इनके मंगलाचरण द्वारा की जा सकती है–

श्रीरामं हनुमत्सेव्यं मध्वेष्टं बादरायणम्
श्रीकृष्णं भीमसेनेष्टं भजेऽहं बुद्धि शुद्धये ।
प्रणम्य यादवाचार्यं गुरुणां पादपंकजे
एकादशस्कन्धमूल तात्पर्यं विवृणोऽम्यहम् ।।

मंगलाचरण में श्रीराम, हनूमान, बादरायण, श्रीकृष्ण आदि की वन्दना की है । श्रीनिवास को तीर्थ की उपाधि श्री राघवेन्द्र ने इनकी विद्वता पर मुग्ध होकर दी थी । यह गौड़ीय दर्शनेर इतिहास में लिखा है ।

(ग) स्थितिकाल—गौड़ीयदर्शनेर इतिहास के अनुसार इनका आचार्यत्व

---

[1] 'इति श्रीमद्भागवत मूल तात्पर्य विवरणे श्रीमद्यपृपत्याचार्य पूज्य पादाराघकेन श्रीनिवासतीर्थेन विरचित........ ।' (टिप्पणी ११ उपसंहार)

१५९०-१६४० ई० माना है, अतः १५७० ई० के आस-पास इनका जन्म माना जा सकता है।[1]

(घ) **कृतियां**---१. तात्पर्य विवरण (भागवत टीका) २. न्यायामृत[2] ३. न्यायामृत प्रकाश ४. तत्वोद्योत टीका की वृत्ति ५. कृष्णामृत महार्णव की टीका ६. तैत्तिरीय, माण्डूक्योपनिषद् वृत्ति।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य-नाम**—'तात्पर्य विवरण' के रचयिता श्रीनिवास-तीर्थ की टीका के नाम का उल्लेख एकादश स्कन्ध के प्रारम्भ में उपलब्ध है—

'एकादशस्कन्ध मूलतात्पर्यं विवृणोऽम्यहम्

परिमाण--यह टीका केवल एकादश स्कन्ध पर उपलब्ध है।

उद्देश्य—मध्व सम्प्रदाय के अनुसार भागवत की व्याख्या करना।

प्रकाशन—मध्य गौड़ीय पर साहित्य, कलकत्ता।

शैली—एकादशस्कन्ध भागवत का गूढ़तम स्कन्ध है, इसका विवेचन विद्वता की कसोटी माना जाता है। इसी कारण इस स्कन्ध पर टीका की गई। अपनी टीका में विशेषतः तात्पर्य निर्णय का उल्लेख किया है,[3] भूमिका नाममात्र है। भाषा सरल है तथा विशिष्ट स्थलों पर स्वसम्प्रदाय के अनुसार विवरण प्रस्तुत किया है।

६. छलारि नारायणाचार्य

(क) **परिचय**—भागवत तात्पर्य निर्णय प्रबोधिनी के निर्माता छलारि नारायाणाचार्य थे।[4] इनके माता-पिता आदि के बारे में कुछ ज्ञात नहीं होता, किन्तु ये मध्व सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने मंगलाचरण के श्लोक ३ में मध्वाचार्य को आदि गुरू लिखा है—

योऽकरोद्ब्रह्म सूत्रादि भाष्यं तात्पर्य निर्णयं
भारतादेश्च तं मध्वं भजाम्यादि गुरू मम॥ (भा. ता. टि.)

(ख) **सम्प्रदाय**—इन्होंने मध्व सम्प्रदाय के उद्भट्विद्वान् जयतीर्थ को नमस्कार किया है—

---

[1] कल्याण वेदान्तांक, पृष्ठ ६९४ में इन्हें १८ वीं शताब्दी का लिखा है।

[2] वही।

[3] यथोक्तं निर्णये-विवरण ११।१

[4] 'इति श्रीमत्भगवत्पादाचार्य विरचित............तात्पर्यस्य टीकायां प्रबोधिन्यां छलारी नारायणाचार्य विरचितायां प्रथम स्कन्धः।'

अनुव्याख्यामृताघेर्यो बुद्धमद्रिमथतं भजे
निष्कास्यापाययं न्याय सुधां तं जय संज्ञकम् ।। (वही)

इन्हें विश्वास है कि गुरूजनों की वाणी रूपी गंगा में मेरी वाणी भी पवित्र हो जायगी–

गंगा संगेन नैर्मल्यं रथ्यापैर्लभ्यते यथा
तथा मद्वाग्विशुद्धयर्थं संगम्यंते गुरोर्गिरः ।। (वही)

इससे इन्हें मध्व सम्प्रदाय का अनुयायी माना जाता है ।

(ग) स्थिति काल—इनकी न तो अन्य कृतियों का पता लगा है और न निश्चिय समय का किन्तु जयतीर्थ के उल्लेख से ये निश्चित ही उनके पश्चात् हुए हैं । छलारि नृसिंहाचार्य इनके पुत्र थे, इनका उत्तरादि मठ स्थितिकाल सत्यनाथ तीर्थ (१६४८-१६७४ ई०) के समय माना जाता है ।[१] १६४८ यदि पुत्र आचार्यसीन काल माना है तो इनका समय १६०० ई० के आसपास मानना उपयुक्त है ।

(घ) कृतियां—भागवत तात्पर्य निर्णय प्रबोधिनी ।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य-नाम––भागवत का प्रबोध कराने के कारण इसका नाम भागवत तात्पर्य निर्णय प्रबोधिनी रक्खा गया है, जैसा कि मंगलाचरण से स्पष्ट है—

'श्रीभागवत तात्पर्य निर्णयस्यप्रबोधिनीम्'

परिमाण—मध्वाचार्य कृत तात्पर्य में भागवत के अध्याओं का सार है, यह उस पर लिखी गई निर्णय की भी प्रबोधिनी नामक टिप्पणी है । इसमें मूल श्लोक के स्थान पर तात्पर्य के प्रतीक शब्द रखे हैं ।

उद्देश्य—मध्व कृत तात्पर्य का बोध कराना एवं माध्व सिद्धान्तों की भागवत द्वारा पुष्टि करना ही उद्देश्य है ।

प्रकाशन––मध्व गौड़ीय पर साहित्य, कलकत्ता ।

शैली––भाषा में प्रवाह है । समास लम्बे हैं । यथा 'इष्टानिष्ट प्राप्ति परिहार साधनाज्ञेषु कृपालुभिः ब्रह्म रुद्रेद्रादिभिः प्रार्थितो नारायणो व्यासरूपेणाविर्भूय तेषां सज्जनानाभिष्टप्राप्त्यनिष्ट परिहार साधन ज्ञापनाय वेद विभाग पूर्वकं ब्रह्म सूत्रादिकं कृत्वा भागवत संहितां चकार ।'

मंगलाचरण के श्लोक २ में वेद व्यास को ब्रह्मसूत्र, महाभारत, वेद एवं भागवत पुराण का रचयिता लिखा है—

---

[१] गौड़ीय दर्शनेर इतिहास (बंगाक्षर), पृष्ठ १७० ।

'वेदान् यो व्यभजद्विष्णुर्भारत ब्रह्म सूत्रकृत्
कर्ता भागवतादेश्च वेदव्यासं नमामितत् ॥'

जीव एवं ईश्वर में वास्तविक भेद को छाया-आतप के दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया है–'छायातपाविति वाक्यं जीवेश्वरयोरज्ञानाश्रयत्वानाश्रयत्वाभ्यां भेद-प्रतिपादकं शाखान्तरस्थं ज्ञेयम् ।' (१।१।२)

केवल वसुदेव सुत ही विष्णु स्वरूपांश हैं नन्द सुत नहीं ।[1] नन्द सुत को गौड़ीय समाज में विष्णु स्वरूपांश माना गया है । व्यास और व्यासाचार्य में भेद है, किन्तु २८वें युग में व्यास और आचार्य दोनों रूप प्रकट हुआ था ।

'पूर्वेषु तृतीयादि चतुर्महायुगेषुव्यासाचार्यस्तु व्यासानां द्रोणादीनामाचार्य एवं भविष्यति न तु व्यासः । चरमेतु अष्टाविंशे महायुगे तु व्यासश्चाचार्यश्च भविष्यतिनत्वन्यव्यास नामा आचार्यः ।' (२।७।३६)

ये प्रतिकल्प में अवतार मानते हैं । श्रीमद्भागवत वाराहकल्पानुसारी है—'तत्र भागवतं तु वाराह कल्पानुसारेण प्रवृत्तम्।' (५।१७।१)

दशम स्कन्ध का प्रारम्भ 'स्वप्ने यथापश्यति' श्लोक से है । दशम स्कन्ध के ६४ अध्यायों की व्याख्या की है । इससे यह स्पष्ट है कि इसका पर्याप्त अंश नष्ट हो गया । एकादश स्कन्ध में कृष्ण की पत्नियों के दग्ध होने का उल्लेख किया है । मध्वाचार्य कृत संकेतों का विशद व्याख्यान इस टीका द्वारा किया गया है, स्थल विशिष्ट पर उनका स्मरण भी किया है, एकादश स्कन्ध के अन्त में लिखा है कि दशम एकादश स्कन्ध की टीका मध्व की तुष्टि करे–

'दशैकादश तात्पर्य प्रबोधिन्यल्पचित्प्राया
छलारि नारायणजा भूयान्मध्वेश तुष्टये ॥'

उक्त श्लोक में 'चित्प्राया' शब्द अशुद्ध है । यह मुद्रण दोष है, ऐसा प्रतीत होता है । अनुष्टुप् में द्वितीय पाद का सप्तम अक्षर ह्रस्व होना चाहिये, यहाँ दीर्घ है ।

७. चैट्टी वेंकटाचार्य

(क) परिचय—चेट्टी वेंकटाचार्य मध्व सम्प्रदाय के मान्यतम विद्वान थे ।[2] सुप्रसिद्ध श्री नरसिंहाचार्य नामक विद्वान इनके पितृव्य थे । मध्वशास्त्र,

---

१. इत्येकस्य वसुदेव सुतस्य कृष्णस्यैव विष्णुस्वरूपांशत्वमुच्यते ।' (१।३।२७)

२. वाकप्रसून कृता चेट्टी वेंकटाद्रि विपश्चिता
ध्रियतां हृदये माला सदये प्रभुणाश्रितः ॥ (सज्जन हित स्कन्ध ६ उप.)

क्षीर पयोधि हैं, उसमें से श्री निवास शास्त्री ने रत्नों का अन्वेषण किया है, यह उनके मंगल पद्य से स्पष्ट है—

'श्री मध्व शास्त्र दुग्धाब्धिविक्रीडनविशारदान्
नरसिंहाचार्य संज्ञांश्च पितृव्यानदनिशं मजे ।।' (स. हि. मंगला. ४)

(ख) **सम्प्रदाय**—वेंकटाचार्य इनके गुरु थे, समस्त शास्त्रों की शिक्षा एवं मध्व शास्त्रों का परिपूर्णतन ज्ञान इन्हीं वेंकटाचार्य जी से इन्हें उपलब्ध हुआ था, निम्नलिखित मंगलाचरण पद्य में वेंकटाचार्य का उल्लेख उपलब्ध है–

'नत्वा श्रीमद्वेंकटाचार्य संज्ञान् विद्यागुरुननिशं बुद्धि शुद्धयै ।
कुर्वे चेट्टी वेकटाह्‍वयोऽहं सदय्यः षष्ठः स्कन्ध टीकां हिताय ।।

इस पद्य के अतिरिक्त स्कन्ध की अन्तिम पुष्पिका में भी गुरु श्री वेंकटाचार्य के नाम का उल्लेख है—

'इति श्री…………वेंकटाचार्याणां शिष्येण चेट्टी वेंकटाद्रिणा विरचितायां षष्ठः स्कन्धः ।'

सम्प्रदाय का उल्लेख 'मध्व शास्त्र' के कथन से स्पष्ट है तथापि अन्य टीकाकारों की भाँति चेट्टी वेंकटाचार्य ने भी आनन्द तीर्थ की वन्दना सज्जनहित के मंगलाचरण में की है–

'आनन्द तीर्थ गुरुमादरतो मजामि
स्वानन्ददं स्व चरणौ भजतां जनानाम् ।
यद्वक्त्र निर्गलितवागमृतप्रपूरै-
स्तापत्रयं शममुपैतिविनाति यत्नात् ।।

'मैं आनन्द तीर्थ के चरणों की वन्दना करता हूँ जिनके वदनार विन्द से निःसृत वाग् लहरी मनुष्यो के तापत्रय का विनाश करती है ।' इसी प्रसंग में वे कहते हैं मध्व सम्प्रदाय के जयतीर्थ नामक विद्वान् का एवं इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भागवत टीकाकार विजयध्वज का निर्देश भी उपलब्ध होता है–

'जयतीर्थं गुरुन् वन्दे सर्वाभीष्ट प्रदान्मम
विजयध्वज तीर्थादीन् गुरुनन्यांश्च भक्तितः ।:

(ग) **स्थितिकाल**—नरसिंहाचार्य चेट्टी वेंकटाचार्य के पितृव्य थे, इनका आवार्य पद १६४८ ई० में था, अतः चेट्टी वैकटाचार्य का समय १६१० के आसपास मामा जा सकता है ।

(घ) **कृतियां**—सज्जनहित (भागवत टिप्पणी)

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य—नाम**—चेट्टी वेंकटाचार्य कृत भागवत टीका का नाम 'सज्जनहित' है, जैसाकि स्कन्धान्त की पुष्पिका से ज्ञात होता है–

'इति भागवत टिप्पणियां 'सज्जनहिताख्तायां'········षष्ट स्कन्धः'

सज्जनों को हितदायिनी हो, अतः सज्जनहित नाम रखा गया है।

परिमाण—यह टीका केवल षष्ठ स्कन्ध पर है। कहीं-कहीं व्याख्यान अति विस्तृत है, अधिकांश भाग में मूल के शब्दों का अर्थ मात्र लिखा गया है।

उद्देश्य––मध्व सम्प्रदाय के अनेक विद्वानों ने भागवत का गम्भीर अध्ययन किया और उनमें विभिन्न स्कन्धों की व्याख्या भी अनेकों ने की, अतः षष्ठ स्कन्ध की पूर्ति चेट्टी वेंकटाचार्य ने की।

प्रकाशनः–मध्व गौड़ीय पर साहित्य मन्दिर, कलकत्ता।

शैली–'निवृत्ति मार्गः कथितः' (भागवत ६।१।१)

इसकी व्याख्या में विवृत्ति धर्म से प्राप्य मार्ग अर्चिरादि मार्ग है। यह लिखा गया है–

'निवृत्ति धर्मेण प्राप्यो मार्गोऽर्चिरादि मार्गः'

भूमिका शैली इस टीका में न के बराबर है, अन्वय रूपेण भी श्लोक की सम्पूर्णता पर ध्यान नहीं रखा गया, भाषा सरल है। यथा सज्जनहित में यह श्लोक है–

'ज्ञानिनो द्विविधाः यमादि योग प्रचुराः भक्ति प्रचुराश्च' (६।१।१५)

षष्ठ स्कन्ध में नारायण कवच का विशेष विधान है, नारायण इस सम्प्रदाय के उपास्य हैं। अतः वेंकटाचार्य ने इसकी व्याख्या की है। करन्यास विधि में विद्वानों का मतैक्य नहीं है अतः उसे वे अपने शब्दों में स्पष्ट करते हुए लिखते हैं–'दश अंगुलि तथा दो अंगुष्ठ पर्व' इन द्वादश स्थानों पर भगवान के द्वादशाक्षर 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' का न्यास करे। एक एक अक्षर दक्षिणांगुष्ठ से न्यास करता हुआ वामांगुष्ठ पर्यन्त अंगुलियों पर अवशिष्ठ दो अंगुष्ठ पर्व में न्यास करे। यह सज्जनहित में उन्होंने लिखा है–

'प्रणवादिति,अंगुल्योर्दश,अंगुष्ठयोः पर्वणि द्वे, एवं द्वादशस्थानानि। तत्र प्रणव संपुटितमैकैकाक्षरं दक्षिणांगुष्ठ मारम्यवामांगुष्ठ पर्यन्तमंगुलिषु। अवशिष्टं त्रर्णद्वयमंगुष्ठ पर्वणोश्च क्रमेण न्यसेदित्यर्थः। केचित्तु-एकैकमक्षरं दक्षिणतर्जनीमारम्य वामतर्जनीं पर्यन्त मंगुलिषु परिशिष्टमक्षर चतुष्टयं अगुष्ठयोराद्यन्तपर्वसुन्यसेदिति।'

चेट्टी के समक्ष अन्य विधि भी प्रचलित थी जिसके अनुसार दक्षिण

तर्जनी से वाम तर्जनी पर्यन्त ८ एवं ४ अक्षर अंगुष्ठद्वय के आद्यन्त पर्व में न्यास किये जाते थे। अपने पक्ष की पुष्टि के लिए कहीं कहीं श्रीधर स्वामी का उल्लेख भी किया है–

'सायंकाले चरम मुहूर्तत्रयात्मकोऽवतु यतु श्रीधरेण व्याख्यातम्।'

८. शेषाचार्य

(क) **परिचय**—भागवत की मन्दबोधिनी टीका के रचयिता श्री शेषाचार्य छलारी नरसिंहाचार्य के निज शिष्य थे स्वयं शेषाचार्य ने अपने लिए 'निज शिष्य' शब्द का प्रयोग भी किया है—

'इति श्रीमत्पद वाक्य प्रमाण धुरीणानां श्रीमच्छलारी नरसिंहाचार्याणां निज शिष्येण शेषेण विरचितायां मन्द बोधिन्यामष्टमः स्कन्धः।'

इस पुष्पिका के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इनकी गुरु में अपार निष्ठा थी। टीका की समाप्ति के पद्य में भी नरसिंहाचार्य की वन्दना है—

'छलारी नरसिंहाचार्य शिष्यशेष विनिर्मिता
अष्टमस्कन्ध टीका स्यात् प्रीत्यै माधव मध्वयोः॥'

(ख) **सम्प्रदाय**—मंगल पद्य से इन्हें मध्व सम्प्रदाय का ही मानना होगा। अभेद्य मध्व वाक्यों को जिन्होंने सज्जनों के हितार्थ सुस्पष्ट किया, उन जयतीर्थ को मैं नमस्कार करता हूँ।

'अभेद्य मध्व वाक्यानिव्याख्यातानि सतांधिये।
येनतं जयतीर्थार्यं लोकोपकृतिकारणम्॥'

इनका सत्यनिधि नामक आचार्य से भी विशेष सम्बन्ध रहा था, जैसा कि निम्नलिखित पद्य से स्पष्ट है—

'विद्यापत्यातिसंपतीर्यद्वृन्दावन सेवया
लभते सद् गुरुं मर्त्यो तं श्री सत्यनिधिं भजे॥'

छलारी संकर्षणाचार्य इनके पुत्र थे।

(ग) **स्थितिकाल**—शेषाचार्य के गुरु नरसिंहाचार्य थे। नरसिंहाचार्य का आचार्य पद गौड़ीय दर्शनेर इतिहास में १६४८-१६७४ ई० माना गया है। अतः १६१० ई० के आसपास इनका जन्मकाल माना जा सकता है।

(घ) **कृतियां**—(१) तत्व संख्यानकर्म निर्णय (२) प्रश्नोपनिषद् (३) तन्त्रसार संग्रह (४) वायुस्तुति (५) मध्वविजय (६) नखस्तोत्र (७) प्रमाण चन्द्रिका टीका (८) अणुभाष्य टीका (६) भागवत टीका।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य—नाम**—शेषाचार्य कृत टीका का नाम 'मन्द बोधिनी' है। मन्द व्यक्तियों के बोध कराने के लक्ष्य से इसका नाम 'मन्द बोधिनी' रखा गया है।[1]

परिमाण—यह टीका अष्टम स्कन्ध एवं नवम स्कन्ध पर है।

उद्देश्य—मध्व सम्प्रदाय में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न स्कन्धों की टीकाएँ लिखी हैं। अष्टम-नवम स्कन्ध के अभाव की पूर्ति इस टीका द्वारा की गई है। विशेषतः माध्वाचार्य के तात्पर्य निर्णय की समालोचना एवं गवेषणा ही इनका मुख्य लक्ष्य रहा है। इनके पूर्व आचार्य विजयध्वज अपनी पद मुक्तावली की रचना कर चुके थे। यह इनके मङ्गलाचरण से स्पष्ट है —

> 'श्रीभागवत टीकायाः कर्तृनपि पुरातनान्
> प्रणम्य ज्ञान सिद्धयर्थं विजयध्वज पूर्वकान् ॥'

प्रकाशन—मध्व गौड़ीय पर साहित्य मन्दिर, कलकत्ता।

शैली—इस टीका में विभिन्न शब्दों का चयन कर उनकी व्याख्या की गई है। एवं टीका में मध्व के सिद्धान्तों का परिशीलन उपलब्ध होता है। भाषा सरल एवं सुगठित है। गुरु की इस ग्रन्थ के उपक्रम में वन्दना की गई है —

> 'श्रीमध्वदर्शनाचार्य ममानुग्रहपूर्वकं
> छलारी नरसिंहार्य वन्देऽहं श्रेयसे मम ॥'

टीका में किसी नवीन पाण्डित्य शैली अथवा रहस्योद्घाटन का दर्शन नहीं है। मध्व तात्पर्य के अनुसार पदों का स्पष्टीकरण अवश्य है, अन्य कोई लाभ अध्येताओं को नहीं।

९. सत्याभिनव

परिचय—श्री सत्याभिनव ने भागवत की 'दुर्घट भाव दीपिका' की रचना की थी। इनका जन्म दक्षिण भारत में हुआ था। इनके पिता का नाम 'सत्यनाथ तीर्थ' था। ये इनके विद्यादाता गुरु भी थे। इन्होंने अपने पिताजी से समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया और गुरु स्वरूप में नमस्कार किया है —

> 'यत्कृपा लेश मात्रेण प्राप्ता वैकुण्ठ निर्वृतिः।
> सत्यनाथ गुरुन् वन्दे पितृस्तान् सर्वशोभम ॥'

---

[1] 'इति... ....मन्दबोधिन्यामष्टमः स्कन्धः।' (मन्दबोधिनी, स्क० ८ उपसं०)

पिताजी ने टीका में उन्हें अत्यन्त सहयोग दिया था। यह निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है --

'तेषानेव प्रसादेन तत्प्रसादैक लिप्सया।

श्रीमद्भागवतस्याहं भावंवक्ष्यामि शक्तितः ॥' (दु० भा० १।१।१)

सत्यनाथ तीर्थ ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया था, और उन्हीं के अमोघ संकल्प से यह टीका रची गई थी —'इति श्रीमदश्रुत पद-वाक्य-व्याख्यातृणामभिनव चन्द्रिका, अभिनव ताण्डव, अभिनवगदा, अभिनवामृतादि वहुग्रन्थ कर्त्तृणां जगत्पूज्यपादुकानां श्री सत्यनाथ तीर्थ श्रीपादानां शिष्येण सत्याभिनवयतिना त्वया भागवत टिप्पणी करिष्यामिति तदीयामोघ संकल्प मात्रमवलम्व्य कृतायां दुर्घटभाव दीपिकायां प्रथमः स्कन्धः।' (प्रथम स्कन्धान्त)

इनकी पुष्पिका क्रम सन्दर्भ की शैली पर विस्तारपूर्वक लिखी है, इससे केवल पितृ नत भावों को स्पष्ट किया गया है, इन्होंने अपने पिता के विषय में यह लिखा है कि वे व्याकरण, न्याय, मीमांसा-शास्त्र के पारङ्गत विद्वान् थे—

पद-वाक्य-प्रमाणज्ञा कल्याण गुण शालिनः
नूतन ग्रन्थ कर्तारः पितरो गुरवश्चमे ॥ (दु० भा० अन्त में)

इनके पिता सत्यनाथ एक सिद्ध पुरुष थे एवं जगत्पूज्य पादुक थे —

'मातरः सुहृदो नित्यमिच्छादिक फल प्रदाः।
श्री सत्यनाथ गुरवोजगत्पूजित पादुकाः ॥

इन पर अनेक आपत्तियाँ आईं उनमें म्लेच्छ भय, राजभय, चोरभय एवं अग्निभय प्रमुख थे —

म्लेच्छ राज महाचोर महाग्निभ्योमहद्भयम्
यत्कृपालेशमात्रेण गतं नैव विचारणा ॥

चोर भय, राज भय की घटना से इनका वैभव वढ़ा चढ़ा था। यह प्रतीत होता है। यह समस्त भयचक्र उनके पिता के आशीर्वाद से दूर हो गये थे —

तेषां श्रीगुरु राजानां पादपीठसमाश्रयात्
तेषां संकल्प मात्रेण जाता टीका न चान्यथा ॥

उक्त श्लोक से यह स्पष्ट है कि उनके ही समक्ष ये गद्दी पर बैठे थे, ये उनके अनन्य भक्त थे, और जो कुछ अच्छा कार्य करते थे, ये उनके संकल्प से ही पूर्ण होते थे —

श्रीमद्भागवतस्येयं दुर्घटार्थ प्रबोधिनी
एवं रामार्चनं सर्व तत्सङ्कल्पाद्धि जायते।

अतस्तज्जनितं पुण्यं तेषामेव न संशयः
अथापि ते दयालुत्वात्प्रीता एव न संशयः ।
सत्याभिनव शब्देन वाच्येऽस्मिन्मयिसर्वदा
अतः सर्वेऽपि गुरवो जगद्गुरु पदाश्रया ।।

गुरु परम्परा में जयतीर्थ आदि का उल्लेख किया है —

जयतीर्थ गुरुः प्राज्ञ पूर्ण प्रज्ञस्तथा गुरुः
वलित्थेत्यादिभिर्वेदैर्वायोरंश इति श्रुतः ।
तदन्तस्थो हरिर्नित्यं सीतामाः सहितः प्रभुः
श्रीरामचन्द्रोव्यासश्च प्रीतासनेभ्यो नमो नमः ।। (दु० भा० १।१।१)

(ख) **सम्प्रदाय** —दुर्घट भावदीपिका के मङ्गलाचरण में—'पूर्ण प्रज्ञस्तथागुरुः' में पूर्ण प्रज्ञ (मध्व) का स्पष्ट उल्लेख है ।

(ग) **स्थितिकाल**-सम्वत् १७६१ में इनका जन्म हुआ था तथा ४७ वर्ष पर्यन्त ये जीवित रहे । गौड़ीय दर्शनेर इतिहास में सुन्दरानन्द नामक विद्वान् ने (१६७५ से १७०६ ईस्वी) पर्यन्त इनका मठ आचार्यत्व स्वीकार किया है ।

(घ) **कृतियां**—१. महाभारत तात्पर्य निर्णय २. दुर्घट भावदीपिका

(ङ) **टीका वैशिष्ट्-नाम**—दुर्घट भावों के प्रकाश करने के कारण इस टीका का नाम दुर्घट भावदीपिका है । 'श्रीमद्भागवतस्येयं दुर्घटार्थ प्रबोधिनी' ।

परिमाण--यह टीका समस्त भागवत पर है, इसका प्रकाशन मूल के साथ नहीं हुआ है, मूल श्लोकों के केवल अंक दिये गये हैं ।

उद्देश्य--इस टीका का मुख्य उद्देश्य भागवत के अनेक क्लिष्ट विषयों का समाधान करना है । पदरत्नावली में जिन भावों का स्पष्टीकरण नहीं उन्हें भी स्पष्ट किया है ।

प्रकाशन—गौड़ीय मध्व पर साहित्य, कलकत्ता ।

शैली—टीका अत्यन्त सरल भाषा में लिखी गई है । यह टीका प्रत्येक श्लोक पर नहीं लिखी गई अपितु आवश्यक स्थलों पर लिखी गयी है । पूर्वाचार्यों की शंका का-'दूषणं परिहृतं' शब्द के द्वारा परिहार किया है । यथा-श्रृंगाल वासुदेव का उल्लेख प्राप्त होता है तो श्रृंगाल का अर्थ वन्य जन्तु नहीं । 'एतेन वासुदेवाख्य इति वक्तव्यं श्रृंगालो वासुदेवाख्य इति कथनमयुक्त इति दूषणं परिहृतम्' । व्याकरण के द्वारा अनेक पदों का अर्थ स्पष्ट किया-'द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं' सातिशयं गमयत इति न्यायेन' यह व्याकरण परिभाषा अविवाक्षित की व्युत्पत्ति में लिखी गई है । 'तत्वमसि' में जीवात्मा-परमात्मा का भेद स्पष्ट है—

'तत्वमस्यादि वाक्येषु जीवेश्वराभेदस्योक्तत्वात् जीवेश्वरत्वं नास्तीति कथमुच्यतइत्याशंका परिहारार्थं' तत्वमसीत्यादि वाक्येषु भेद एवोच्यते।' (दुर्घट भाव० १०) शंका समाधान की दृष्टि से भागवत पढ़ने वाले व्यक्तियों को यह अत्यन्त लाभप्रद है।

१०. अनन्त तीर्थ

(क) **परिचय**—इन्होंने 'भागवत तात्पर्य दीपिका' की रचना की थी। एक मंगल पद्य में इन्होंने 'श्रीनाथ' को नमस्कार किया है। सम्भव है ये इनके गुरू हों— 'तं श्रीनाथमहं भजे' (मंगलाचरण)

(ख) **सम्प्रदाय**--ये मध्व सम्प्रदाय के अनुयायी थे। आनन्दतीर्थ एवं जयतीर्थ का इन्होंने भी उल्लेख किया है--

'आनन्द तीर्थों लसताद् गुरूश्च
प्रसीदतु श्री जयतीर्थ वर्यः।' तथा--
'श्रीमहानन्दतीर्थानां केवलं करूणा वलात्
श्रीभागवत तात्पर्य दीपिका क्रियते मया।'

(ग) **स्थिति काल**—विजयध्वज तीर्थ का समय १६वीं शती माना गया है, फलतः अनन्त तीर्थ १७वीं शती के पश्चात् ही माने जाने चाहिये, क्योंकि ये विजयध्वज से प्राचीन नहीं।

(घ) **कृतियां**—भागवत तात्पर्य दीपिका।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य-नाम**--यह टीका अनन्ततीर्थ द्वारा विरचित है। प्रारम्भ में इस टीका का नाम इन्होंने 'भागवत तात्पर्य दीपिका' लिखा है—

'श्रीभागवततात्पर्य दीपिका क्रियतेमया'। 'भागवत तात्पर्य' की रचना श्रीमध्वाचार्य ने की थी, यह उसी के भाव एवं तात्पर्य दीपन कराने के हेतु रची गई है।

परिमाण–टीका 'तात्पर्य' के सारांश रूप में लिखी गयी है। दीपिका में तात्पर्य के आवश्यक अंशों का विवेचन किया गया है।

उद्देश्य—मध्व सिद्धान्तों का प्रसार करना।

प्रकाशन--इसका प्रकाशन खुले पत्रों में मध्व गौड़ीय पर साहित्य कलकत्ता से हुआ है।

शैली--यह टीका प्रौढ़ संस्कृत में लिखी गयी है। टीकाकार का उद्भट पाण्डित्य प्रभाव टीका पर पड़ा है। मंगलाचरण का श्लोक प्रस्तुत है—

'सृष्टिस्थित्यप्ययेहा नियति दृशितमो बन्ध मोक्षाश्च यस्मात्

अस्य श्री ब्रह्म रुद्र प्रमृति सुर नर ध्नीश शत्र्वात्माकस्य ।
विष्णोर्व्यस्ता: समस्ता सकल गुणनिधि: सर्वदोष:···· ····
पूर्णानन्दोऽव्ययोयो गुरुरपि परमश्चिन्ये तं महान्तम् ।।[२]

टीका में श्रुतियों के अनेक उद्धरण दिये हैं यथा–गविष्ठ शब्द का अर्थ सूर्य है, उसके भी श्रुति प्रसारण प्रस्तुत किया है ।[१] संकावों के समाधान में विशेष रुचि ली है । वामन ने ऊपर के लोकों की और वाम पाद ऊंचा किया किया था या दक्षिण ? वारह कल्प में वाम एवं अन्य कल्प में दक्षिणा ।[२] श्री वत्स का चिन्ह 'प्रकृति' स्वरूप है तथा कौस्तुम ब्रह्मा है, भगवान् उनसे संयुक्त है—

'श्री वत्स: प्रकृतिर्ज्ञेया ब्रह्माख्य: कौस्तुभ: पुमान्
तदतीतै: षेडशभि: स्वरूपैरप्युपास्यत इति ।।' (वही ६।२५)

भागवत की उक्ति के पुष्टयर्थ अन्य पुराणों के अनेक प्रमाण इसमें लिखे गये हैं । इसमें पद्यों की संख्या अधिक है, गद्य भाग स्वल्प मात्रा में है, तात्पर्य जानने के लिये यह अत्यन्त उपयोगी है ।

११. सत्यधर्म यति

(क) परिचय—भागवत तात्पर्य टिप्पणी के रचयिता सत्यधर्मयति हैं । सत्यबोध, सत्यसन्ध एवं सत्यवर से इनका निकटतम सम्बन्ध है—

'श्री सत्यवोध श्री सत्यसन्ध सत्य वरावरा:
मस्तकन्यस्त ह्रस्ताय यद्दयाँ कुर्युः सहोदयाम् ।।'

ये कोपीनधारी सन्यासी थे—

'एतत्तात्पर्य तात्पर्य भाष्य टीकान्तरानुगाम्
कांचित्तनोति विवृतिं कोऽपि कोपीन भाग्यभाक् ।।'

इनके पिता सत्यवर तीर्थ थे, किन्तु साधारण बालकों की भाँति ये माता की कुक्षि से उत्पन्न नहीं हुए थे अपितु पिता की अंजलि से उनका जन्म हुआ था । पुष्पिका में इसका स्पष्ट संकेत है—'इतिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यत्वाधनेक गुणगणसम्पन्नपद वाक्य पारावार पारंगत सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्रीमद्वैष्णव सिद्धान्तप्रतिष्ठापनाचार्य श्रीमत्सत्वर तीर्थकर कमल संजात श्रीमत्सत्यधर्म यतिना कृते श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टम: स्कन्ध: ।

---

१. 'असौ वाव गविष्टौ' भागवत तात्पर्य दीपिका १।३७ मंगलाचरण

२. वाराहे वाम पादं तु तन्येषु तु दक्षिणम् ।
पादं कल्पेषु भगवानुज्जहार त्रिक्रिम ।। (वही ५।१७।१)

(ख) **सम्प्रदाय**—ये मध्व सम्प्रदाय के अनुयायी विद्वान् थे। मध्य कृत तात्पर्य की व्याख्या से भी यह मध्व सम्प्रदाय के सिद्ध किये जा सकते हैं।[1]

(ग) **स्थितिकाल**--सत्यधर्म यति ने सत्य बोध का स्मरण किया है, अतः ये सत्यबोध के पश्चात् हुए। सत्यबोध का जन्म १६ वीं शताब्दी के उपरान्त हुआ था। भानुदीक्षित प्रसिद्ध वैयाकरण का उन्होंने स्मरण भी किया है,[2] भानुदीक्षित का समय सत्रहवीं शती है अतः ये इनके पश्चात् हुए। ६।३।२८ में आचार्य विजयध्वज का उल्लेख किया है। इनका समय १७६८-१८३० ई० निश्चित माना जाता है।[3] इन्हें द्वितीय पेशवा वाजिराव का समसामयिक भी लिखा गया है। उनका समय १७६५-१८१८ ई० के मध्य माना है। अतः १७६८ में इनका मठाधिपत्य मानें तो लगभग १७५० के आसपास जन्म मानना चाहिये।

(घ) **कृतियां**--भागवत तात्पर्य टिप्पणी।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य-नाम**-भागवत तात्पर्य टिप्पणी के रचयिता श्री सत्यधर्म यति हैं। मध्वाचार्य कृत तात्पर्य की यह व्याख्या है—

'नत्वा गुरुन्भागवत षष्ठ स्कन्धस्यकाश्यते
तात्पर्य व्याकृति मिषाद्भावो भावुक मोददः॥ (मंगला०)

तात्पर्य टिप्पणी में भाष्य एवं अन्य भागवत टीकाओं से भी सहयोग लिया है--

'एततात्पर्यतात्पर्य भाष्य टीकान्तरानुगाम्
कांचितनोति विवृति कोऽपि कोपीन भाग्यमाक्॥ (मंगला. २४)

परिमाण—यह दो खण्डों में है। इस टीका की पूर्णता के लिये पुरस्कार रखा गया था, किन्तु मुद्रण के समय दशमस्कन्ध प्राप्त हुआ अन्य स्कन्ध प्राप्त नहीं हुए। अतः यह अपूर्ण है।

उद्देश्य—टिप्पणी द्वारा माध्वाचार्य के तात्पर्य का मर्म प्रकाशन करना ही मुख्य उद्देश्य है।

प्रकाशन—शाके १८५८ में वण्णूर गोविन्द ने इस टीका का प्रकाशन पूना से करवाया था।

शैली—लम्बे-लम्बे समासों में इस टीका का गद्य कादम्बरी की छटा

---

[1] **गौड़ीय दर्शनेर इतिहास।**
[2] **'निशीधस्तु''''''इतिभानुदीक्षितः।' (भा. ता. टि. ६।८।२८)**
[3] **गौड़ीय दर्शनेर इतिहास।**

का प्रतिनिधित्व करता है–'इह खलु नानाविध व्यसन सम्मृत संसारासार कान्तारसन्तप्त संसरण निःसारणोपाय दानव्यापार दीनजननिभालन करुणा-परवशाः पराशर शरीराजो जननीतन् जनुषमिवोद्दिधीर्षु रनकूरित धरान्तरस्थ निरूपरि सरण करण बीजवदकिंचित कर ज्ञानांकुरं निर्निरंजननानामेतर्हि गर्हिताचार…………प्रवृत्यनुपपतेः ।' (स्कन्ध ६, उपक्रम) । आधुनिक व्याकरण ग्रन्थों का प्रमाण भी पर्याप्त रूप से लिखा गया है, मनोरमा एवं शेखर के प्रमाण टीकाकारों ने कहीं भी उल्लिखित नहीं किये किन्तु सत्यधर्म ने उन्हें स्थान-स्थान पर लिखा है ।[1] नारायणाय–इति में प्रकृति भाव द्वारा नारायणा होना चाहिये, पर यह आर्ष प्रयोग नहीं है जैसा कि श्रीधर स्वामी ने माना है ।[2] साहित्य शास्त्र पर इनका असाधारण अधिकार था, एक श्लोक द्वारा इसका आभास मिलता है ।

'अनेनान्येनसांनाथोदययेदुदयेषणः
रामौ रामारमोऽस्माव्यासोव्यासांद्दशंदिशन् ।।'

व्याकरण के ये पूर्ण पक्षपाती थे–पदों की भी व्युत्पत्ति बड़े मनोयोग के साथ की है । नारिकेल पद की व्युत्पत्ति–'नलति, नल्यतेवा, इण् केन=वायुना ईल्यते ईर्यत इति=नारिकेलः ।' पुष्प फल तथा वृक्षों की व्युत्पत्ति अन्य टीका में प्राप्त नहीं है जैसी इसमें है ।

भगवान् ६।४।१४ के २७ अर्थ किये हैं, यह अर्थ उडुपी के हृषीकेश जी ने मध्वाचार्य के मुख से श्रवण किया था, परम्परा द्वारा इन्होंने सुना–'श्री मदुडुपी श्रीकृष्णपादपद्माराधक हृषीकेष श्रीमच्चरणैः श्रीमध्वराजमुखकमलाच्छ्रुत्वा लिखितमेतत् घातुव्याख्यानमिति तत्सम्प्रदायाभिक्षोक्तमुखाच्छ्रुत्वा कृतोऽयं लेखेति……मोऽयास्तीति भवान् ।

इनकी उत्प्रेक्षा बड़ी ही सुन्दर है—

'नीलं नैव नभः सुलज्जित शची भर्त्तुर्मुखे नीलिमा
मेघाः क्वापि न सन्ति सन्ति दिविजभ्राजद्विमानाम्वुदाः ।
तामिस्रं न हि दिश्यथापि च दृशित्वां मानुषंमन्वतां

---

[1] तात्पर्य टिप्पणी ६।१।२३.

[2] 'न च भवितव्यं प्लुतमात्रस्य वैकल्पिकत्वात् मतोरमायां च …………इति हरदत्तः । एवं च चतुर्धा निर्वाह्ये स्पष्टआर्षप्रयोग इति श्रीधरोक्तिर्नादर्तव्येति । (तात्पर्य टिप्पणी ६।२।८)

चित्तेंक्वस्ति नवेपथुर्निजजने भीतेन्द्रगात्रेयदम् ॥"[१]

यह टीका सर्वतोभावेन सुन्दर कही जा सकती है ।

१२. पाँधरी श्रीनिवासाचार्य

(क) **परिचय**—भागवत टिप्पणी विरोधोद्धार के रचयिता पांधरी श्रीनिवासाचार्य उच्चकोटि के विद्वान् थे । आपके पिता का नाम नरहरि एवं गुरू का नाम प्राणार्य था—

'मुख्य प्राणार्य शिष्येण नरहर्याख्यसूनुना
विद्याधीशाभिधेयेनाद्यस्कन्धपद्य विरोधिता ।
साधिता श्रीनिवासार्येर्लिख्यते हरिसिद्धये ॥ (स्क. ७ पृ. १०)

(ख) **सम्प्रदाय**—ये मध्व सम्प्रदाय के अनुगामी थे ।

(ग) **स्थिति काल**—विजयध्वज का उल्लेख टीका में किया है । अतः यह उनके उपरान्त ही उत्पन्न हुए । विजयध्वज का समय १६वीं शताब्दी है, अत: ये १७वीं शताब्दी के मध्य हुए होंगे ।

(घ) **कृतियां**--भागवत टिप्पणी विरोधोद्धार ही इनकी विशिष्ट कृति है ।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्-नाम**—ऐसा ज्ञात होता है कि किसी विद्वान ने भागवत टिप्पणा का विरोध किया था । उसके निराकरण हेतु भागवत टिप्पणी विरोधोद्धार की इन्होंने रचना की है । इस ग्रन्थ में विशेषत: विरोधों का ही उद्धार है, किसी पूर्वपक्षी का उल्लेख प्राप्त नहीं, अतः विरोधाद्धार नाम सार्थक ही है ।

परिमाण—यह टीका 'मण्डूक प्लुतिन्याय' से समस्त भागवत पर लिखी गई है । प्रत्येक श्लोक या अध्याय से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है ।

उद्देश्य– माध्व सिद्धान्तों का मण्डन एवं विभिन्न शङ्काओं का परिहार करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य है ।

प्रकाशन– यह टीका मध्व गौड़ीय पर साहित्य कलकत्ता से खुले १२८ पृष्ठों में प्रकाशित हुई है ।

शैली—यद्यपि यह टीका अत्यन्त सरल संस्कृत में लिखी गई है तथापि

---

१. 'घारानैवपयोमुचां यदुपते प्रेमाश्रु धारा परं
स्वानां नो परिगर्जितं स्तुति कृतां सिद्धेश्वराणां ध्वनिम् ।
विद्युन्नामरनर्तकीकरचयालंकारकान्ति: प्रमो
नोबायुः सुर वृष्ट पुष्प सहगानाल्पालि पक्षैमरुत् ॥
(तात्पर्य टिप्पणी १०।२३।२५)

मूल न होने के कारण है, यदि यह मूल श्लोकों के साथ प्रकाशित होती तो अवश्य ही इसका अधिक प्रसार होता। प्रारम्भ में नृसिंह की वन्दना तो सभी टीकाकारों ने की है किन्तु देवी, गणेश आदि की स्तुति केवल इस टीका में ही दृष्टिगोचर होती है—

‘श्रीमन्मृगेन्द्रास्यमनन्तवासं
....

साम्बा गणेश...............
प्राणेन्दिरोरुं भगवन्तमीडे ।। (वही मंगला०)

भागवत के विरोध निराकरण का संकेत मङ्गलाचरण में उपलब्ध है--

‘श्रीमन्नृसिंह चरणार्पित चित्त योगा
दूरीकृताखिल सुसंशयात्मभूत्थं ।
नत्वा गुरुं च तदनुग्रह तोऽस्य तुष्ट्यै
संसाथयाम्यखिल भागवताविरोधम् ।’

इस कार्य में माधव हरि उनके सहायक बने--

‘श्रीभागवत भूयिष्ठान् विरोधाद्रीन् प्रतीयतः
स्वदत्त बुद्धिवज्रेणछिनत्तु माधवो हरिः ।।’

अध्याय की शङ्का का निराकरण करते हुए इस टीकाकार ने ३३५, ३३२ अध्याय संख्या पर पानी फेरते हुए ३४४ संख्या सिद्ध की है[1]—‘शतानि च विचविच वि वि ‘वेतिवर्णस्यान्तस्थ वर्णेषु चतुर्थत्वेन’ चतुर्थो को लक्ष्यते एवं वि वि इत्यस्य चतुर्विशत्[2] संख्यार्थकत्वं सिद्धयति ।’

जन्माद्यस्य श्लोक की व्याख्या बड़े विस्तारपूर्वक लिखी है। पंचम स्कन्ध के भूगोल खगोल का विवेचन पठनीय है। षष्ठ स्कन्ध केवल ३१ पंक्तियों में ही लिखा गया है। कलियुगारम्भ द्वापर में ही मान लिया था, इनके अनुसार द्वापर मान ८ लाख ६४ हजार है, इसमें द्वापर के जब ३६ सहस्र वर्ष शेष थे तब से ही कलियुग ने प्रवेश कर लिया था। इनके अनुसार कलियुग में ७२ सहस्र वर्ष पर्यन्त द्वापर युग ही माना जायगा, कलियुग में १ लाख ४४ सहस्र वर्ष जब शेष रह जायेंगे तब सत्ययुग का प्रारम्भ होगा। ‘इदानीं कृष्णतां गतः’ उक्ति में जो भगवान् के कृष्ण वर्ण का हेतु है वह कलियुग ही है। (७।६)

---

[1] ‘द्वात्रिशत् त्रिशतं’ की व्याख्या (भा० टि० वि०)

[2] ‘चतुश्चत्वारिंशत्’ होना चाहिए ।

कतिपय महत्वपूर्ण विरोधों का समाधान द्रष्टव्य है—रेणुका का परपुरुष दर्शन निशिद्ध होते हुए भी युक्त है। 'एक बार रेणुका अपने पति के लिये जल लेने के लिये गयी थी, वहां उसने जलक्रीड़ा में रत चित्ररथ को देखा और उसकी क्रीड़ा में अपनी अभिरुचि प्रकट की। समय अतिक्रमण होने का उसे स्मरण ही न रहा।' यह वर्णन भागवत में है। टीकाकार का कथन है कि चित्ररथ साक्षात् शिव का अंश था और रेणुका पार्वती का अंश थी, अतः परपुरुष दर्शन का कोई दोष नहीं लगा। (६।१४)

कुछ विद्वानों ने अजामिल प्रसङ्ग के ३ अध्याय, द्वादश स्कन्ध के अन्तिम ३ अध्याय तथा आचार्य वल्लभ ने दशम स्कन्ध के ३ अध्याय प्रक्षिप्त माने थे। टीकाकार ने उक्त सभी मतों का खण्डन करते हुए केवल अघासुर प्रकरण को ही क्षेपक में गिनाया है। आश्चर्य है कि टीकाकार ने द्वात्रिंशत् के अनुसार ३३२ अध्याय ही लिखे हैं जबकि प्रारम्भ में ३४४ अध्यायों का उल्लेख उसने स्वयं किया है। पूतना को पूर्व जन्म की उर्वशी अप्सरा सिद्ध करते हुए, भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म भी गोकुल-मथुरा के मध्य सिद्ध किया है। वह लिखता है कि नन्द एवं यशोदा कंस को वार्षिक कर देने के लिए मथुरा जा रहे थे। मार्ग में प्रसव हुआ और वहीं पूतना भी आई। यदि पूतना गोकुल में मरी होती तो समस्त गोकुल नष्ट हो जाता। (१०।६) किन्तु भागवत में मार्ग में जन्म होने का उल्लेख नहीं है।

राम और कृष्ण दोनों में केवल ३ मास का अन्तर है। देवकी के छठा गर्भ आश्विन कृष्ण षष्ठी के दिन स्थित हुआ तथा वैशाख मास में सतमासा शिशु दक्ष नाम का उत्पन्न हुआ था। आषाढ़ मास में बलराम गर्भ में आए तथा तीन मास पश्चात् अर्थात् आश्विन मास में उन्हें रोहिणी के गर्भ में योगमाया द्वारा पहुँचा दिया गया। इनका सातवें मास में अर्थात् वैशाख मास में जन्म हुआ था। देवकी का गर्भ स्राव आश्विन मास में हुआ था, अतः पौष शुक्ल पक्ष में देवकी के गर्भ में भगवान् कृष्ण का प्रवेश एवं सात मास १५ दिन पश्चात् श्रावण कृष्ण अष्टमी को उनका प्रादुर्भाव हुआ—

'देवीमुवासात्र च सप्त मासात्
सार्धास्ततश्चाविरभूदजोऽपि ॥ (इत्युक्तेः १०।७)

इनके अनुसार कृष्ण का भूलोक वास १०० वर्ष ही था। किन्तु भागवत में १२५ वर्ष का उल्लेख है। देवकी के गर्भ से ६६ वर्ष ८ मास की अवस्था में देवगणों ने स्तुति की थी—ऐसा इस टीकाकार ने अपना अभिमत व्यक्त किया

है । भागवत के अनेक दुरूह स्थलों का समाधान व्याकरण व्युत्पत्ति, मौलिक सूझ, पुराण सङ्गति आदि द्रष्टव्य हैं । यह टीका भागवत मर्म-जिज्ञासुओं को को अति उपादेय है ।

१३. धनपति मिश्र

(क) परिचय—'गूढ़ार्थ दीपिका' भागवत टीका के रचियता धनपति सूरि एक प्रतिभावान् विद्वान् परम वैरागी एवं भागवतपान रसिक भक्त थे । आपके पिता का नाम रामकुमार था । 'मिश्र' शब्द के उल्लेख से इनको ब्राह्मण माना जा सकता है । धनपति ने अपने परिचय में कुछ भी नहीं लिखा है । पुष्पिका के आधार पर इनके पिता का परिचय प्राप्त होता है—'इति श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य्य बालगोपाल तीर्थ श्रीपाद शिष्य दत्तवंशावतंस रामकुमार सूनु धनपतिमिश्र सूरि कृतायां भागवत गूढ़ार्थ दीपिकायां दशमस्कन्धे एकोन त्रिशोऽध्यायः ।' (१०।२६)

(ख) सम्प्रदाय—बालगोपालतीर्थ वीतराग सन्यासी थे, ये धनपति के गुरु थे । यह भी उक्त पुष्पिका द्वारा निश्चित है । ये द्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी थे । मंगलाचरण में भी इन्होंने बालगोपाल की वन्दना की है—

'उमां श्रीबालगोपाल तीर्थान् व्यासमुखान्मुनीन् ।' बालकृष्ण की प्रशंसा से स्पष्ट है कि ये बालकृष्ण भगवान् के उपासक थे । यथा—

'गोपाङ्गना गुणाकृष्ट चेतोऽखिल अनाश्रयः
तस्य कृष्णस्य पादाब्जमाश्रयेऽभीष्ट सिद्धये ॥' (१०।२६)

(ग) स्थितिकाल—धनपतिकृत गीता टीका में एक श्लोक उपलब्ध है जिसके अनुसार १८५३ विक्रम में उक्त टीका के लिखे जाने का उल्लेख है, अतः इन्हें १८ विक्रम के लगभग माना जा सकता है ।[1]

(घ) कृतियां—(१) भाष्योत्कर्षदीपिका (गीता टीका) (२) गूढ़ार्थ दीपिका (भागवत टीका) ।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—धनपति सूरि की टीका का नाम 'गूढ़ार्थ दीपिका' है, जैसा कि पुष्पिका से स्पष्ट है—'इति…………श्रीधनपति

---

[1] रामेश्वहीन्दु संवत्सरस्य प्रभवसंज्ञिनः
फाल्गुने कृष्ण पंचभ्यां वृषे सिद्धा गुराबियम् ॥
(भाष्योत्कर्ष दीपिका उपसंहार)

सूरि कृतायां गूढ़ार्थ दीपिकायां, स्कोनत्रिंशो ध्यायः।' 'गूढ़ार्थ दीपिका—गीता की प्रसिद्ध टीका है, इसके रचयिता मधुसूदन सरस्वती थे। उनका खण्डन धनपति सूरी ने 'भाष्योत्कर्ष दीपिका' नामक अपनी गीता की टीका में प्रस्तुत किया है। सम्भव है मधुसूदन की 'गूढ़ार्थ दीपिका' टीका नाम की प्रेरणा से अपनी भागवत टीका का नाम 'गूढ़ार्थ दीपिका' रखा हो।

परिमाण—'गूढ़ार्थ दीपिका' भागवत दशम स्कन्ध के २९ से ३३ अध्यायों पर एवं भ्रमर गीत ४७ वें अध्याय पर उपलब्ध है।

उद्देश्य—रासलीला का अध्यात्मपरक अर्थ करना एवं कृष्ण का ब्रह्मत्व सिद्ध करना ही उद्देश्य है।

प्रकाशन—यह टीका वृन्दावन से आठ टीका संस्करण में प्रकाशित है।

शैली—श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी की यह टीका निवृत्तिपरक अर्थ में सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है। यद्यपि कतिपय टीकाकारों ने श्रीधर स्वामी की भावार्थ दीपिका टीका निवृत्तिपरक लिखी है, किन्तु अधिक विश्लेषण धनपति सूरी की टीका में है, शृङ्गार पक्ष एवं निवृत्तिपरक पक्ष दोनों में यह टीका सफल है—'पंचाध्यायात्मोयं सर्वशास्त्रसारसर्वस्वभूतो ग्रन्थ इतिसूचयितुं मङ्गलाचरणार्थमादौ भगवानिति पदं प्रयुक्तम्। अत्र भक्ति शान्ति रस प्रधाने श्रीमद्भागवते पारमहंस्यां संहितायां प्रसङ्गात् पर ज्ञास्त्रार्थ शृंगार रस मनुवदता मुनीन्द्रेण स्वसिद्धान्तोऽपिगूढ़तयानिर्दिष्टः अतएव शृङ्गार कथापदेशेन विशेषतो निवृत्ति परेयं पंचाध्यायीति श्रीधर स्वामिभिरप्युक्तम्।' (२९।१)

श्लोकों की व्याख्या के पूर्व बड़ी-बड़ी भूमिकाएं बाँधी गई हैं, यथा —

'भगवानपिता रात्रीः…………' (भागवत १०।२९।१)

'इन्द्र वरुणादि विजये किं चित्रं ब्रह्मादि जय संरूढ़ दर्पः कामोऽपि भगवतापराजितः इतिख्यापनाय क्रमप्राप्तां भगवत्कृतां रासक्रीड़ां वर्णयितु मुपक्रमते भगवानपीति।

श्लोक का अन्वय सार रूप में रखा है, यथा—'भगवानपि रन्तुं मनश्चक्रे'। किन्तु प्रत्येक पद की विशेष व्याख्या की गई है।

धनपति उच्चकोटि के विद्वान् थे। गीता की 'भाष्योत्कर्ष दीपिका' इनकी प्रौढ़ कृति है, इसमें श्री शङ्कराचार्य के भाष्य का उत्कर्ष तो सिद्ध किया

ही है साथ ही मधुसूदन सरस्वती जैसे प्रतिभाशाली विद्वान् की टीका का खण्डन भी किया है। यथा—'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः' (गीता १।१) की टीका में मधुसूदन सरस्वती ने लिखा है—'अथवा धर्मक्षेत्र माहात्म्येन पापानामपि मत्पुत्राणां..........महातुद्वेग एव प्रश्न वीजम्।'

इसका खण्डन भाष्योत्कर्ष में धनपति ने किया है—'अथवा धर्म क्षेत्र माहात्म्येन.............. प्रश्न वीजम्' इति केचिद्वर्णयन्ति। तदुपेक्ष्यम्। (१।१)

'यदिमामप्रतीकारम्...............।' (गीता १।४५) की टीका में—मधुसूदन सरस्वती ने लिखा है—'ननुतववैराग्येऽपि भीम सेनादीनां..........किंविधेयम्।'

इस टीका को भाष्योत्कर्ष में ज्यों की त्यों रखकर खण्डित किया है। महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ की टीका का खण्डन भी इस टीका में दृष्टिगोचर होता है। 'धर्मक्षेत्रे' की व्याख्या में—'यत्वन्ये—धर्मक्षेत्रपदं कुरुक्षेत्रपदादविमुक्तक्षेत्र प्रतिपत्तिर्माभूदित्येतदर्थमिति। तन्न।' (१।१)

यहाँ 'यत्तु' पद नीलकण्ठ के लिये है क्योंकि उन्होंने कुरुक्षेत्र पद से युद्धभूमि का कुरुक्षेत्र पृथक् लिखा है जिसका खण्डन धनपति सूरि ने किया है। धनपति ने गीता की टीका में जो मङ्गलाचरण लिखा है वह भागवत टीका में भी उपलब्ध है—

'वालस्वामिनमाचार्यं नुमोव्यासमुखान्मुनीन्
विघ्नहर्त्तृन् गणेशादीन्पण्डितांश्चविमत्सरान्।' (मङ्गला० ५)

महेश्वर शङ्कर की वन्दना की है तथा श्रीकृष्ण एवं शङ्कर की एक श्लोक में एक रूप में स्तुति भी की है, जैसी अन्यत्र सुलभ नहीं—

'ईशावेकात्मकौलोके सम्प्रदायप्रवर्तकौ
गीताभाष्यप्रकाशेन वन्दे श्रीकृष्ण शङ्करौ।' (मङ्गला० ४) तथा
'कृष्णात्मनाशिवेनादौ व्याख्याता पदशःस्फुटम्।' (मंगल० ६)

भागवत टीका में इतने मंगल पद्य नहीं हैं जितने गीता टीका में। सत्य, परम् की वन्दना भी गीता में हैं।

प्रमाणार्थ अनेक श्लोकों के उद्धरण दिये गये हैं—भागवत के श्लोक 'भगवानपि' के भग पद की व्याख्या निम्नलिखित रूप में की है—

ऐतश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतींगना॥'

श्लोक तीन में भजनानन्द पक्ष, शृंगाररस पक्ष, बसन्त पक्ष, चन्द्र पक्ष, प्रियामुख पक्ष, समूह पक्ष की व्याख्या रामनारायण ने की है। जिन पर धनपति का अधिक प्रभाव है। धनपति ने चतुर्थ श्लोक से 'निवृति पक्षे प्येव' निवृति पक्ष का पृथक् उल्लेख किया है।

'रजन्येषाघोर रूपा घोर सत्व निषेविता' (भागवत १०।२९।१९)

'प्रेमोद्दीपनार्थ मीषत् कर्ण कठोरं वाक्यमाह रजन्येषेति। निवृत्त पक्षेक्षु-एषा अहेतुवाद्यभिमत निर्विशेषा चित्त रंजनी रात्रितुल्या सर्वस्यापि तत्राध्यासात्…………तथा हि ब्रह्म मानान्तर गम्यं न भवति।

…………

इस प्रकार समस्त रासक्रीड़ा की व्याख्या की गई है। कतिपय श्लोकों की एक पक्ष में ही व्याख्या की है। इनकी भाषा में प्रौढ़ता एवं प्रवाह है।

—*—

अध्याय पंचम

द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१. केशव कश्मीरी भट्ट
२. शुक सुधी
३. वंशीधर
४. गंगा सहाय

द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१. केशव कश्मीरी भट्ट

(क) **परिचय**—केशव कश्मीरी भट्ट निम्बार्क सम्प्रदाय के विद्वानों में मूर्धन्य थे। इन्होंने श्रीमद्‌भागवत की टीका की रचना की थी किन्तु दुर्भाग्यवश अब वह उपलब्ध नहीं है केवल दशम स्कन्ध की वेदस्तुति की व्याख्या ही उपलब्ध है।

भट्ट जी निम्बार्काचार्य के वंश में उत्पन्न हुए, आपको भी जगगुरू की उपाधि से भूषित किया गया था। आपका जन्म तैलंग देश में वैदूर्य पत्तन नामक स्थान में हुआ था। आपने भारत भ्रमण किया और वैष्णव धर्म की पताका फहराई। श्रीमद्‌भागवत की टीका उज्जैन में की थी। शंख चक्र आदि धारण की विधि देश से लुप्त होती जा रही थी, इन्होंने उसे फिर से प्रचलित किया।[1] ऐसा कहा जाता है कि यात्रा में भट्ट जी के साथ १४००० शिष्य थे। काश्मीर में मांसाहारी दल बहुत बढ़ा हुआ था एवं वे अनेक माया भी जानते थे। कश्मीरी भट्ट के वहाँ पहुँचते ही शंख ध्वनि हुई उसे सुनते ही यवन दल ने आक्रमण किया और अपने तान्त्रिक प्रयोगों से भट्ट जी के शिष्यों को व्याकुल कर दिया। किन्तु आचार्य जी के आते ही यवन भस्म होने लगे, यवनों का दल भी भाग खड़ा हुआ। यवन पति के मुख से रुधिर की धारा निकलने लगी। उक्त समाचार सुनते ही उसका छोटा भाई जो दुर्घर्ष शासक था आया, उसने अपने प्रभाव से चारों ओर अन्धकार फैला दिया। उसी क्षण आचार्य ने सूर्य का आवाहन किया तथा समस्त अंधकार नष्ट हो गया। वह यवन अपने साथियों सहित इनकी शरण में आ पड़ा।[2] काश्मीर में ही भट्ट जी ने वेदान्त सूत्रों पर 'कौस्तुम प्रभावृत्ति' लिखी और वहीं से हिमालय की यात्रा करने चल पड़े। वहां भी नारद आदि की प्रतिमाओं की स्थापना की एवं ११० वर्ष पर्यन्त समाधि लगाकर रहे—

---

१. **सर्वेश्वर पत्र-वृन्दावनांक, पृष्ठ २१४।**

२. **सर्वेश्वर पत्र-वृन्दावनांक, पृष्ठ २१५।**

दशोत्तर शतं वर्ष गिरिदर्म्या महामनाः
ध्यानयोगरतोवासीत् यत्र सन्निहितोहरिः ॥[1]

काशी में सांख्यवा–कणाद–गौतम एवं वैशेषिक न्याय में ही अनेक विद्वान् उलझे हुए थे । सत् शास्त्र की अवहेलना साधारण बात हो रही थी, भट्ट जी ने उन्हें पराजित किया था तथा भगवद्भक्ति करने का उपदेश दिया–

'ये वै कापिल सांख्यवाद निरताः काणादि नैयायिकाः
येऽन्येऽद्वैतमतान्धकारपतिताः शैवाश्व बौद्धादयः ।
नाना तर्क वितर्क कर्कश धियः सच्छास्त्रविप्लावका–
स्तान्निर्जित्य पदाम्बुजे भगवतो भक्तिपरां प्रादिशत् ॥'

काशी से पालकी वाहन द्वारा ये गंगासागर संगम गये । बंगाल में शाक्त मत जोर पर था, कौल मत के अनुयायी अधिक होते जा रहे थे । ऐसे समय भट्ट जी ने उन्हें शास्त्रीय प्रमाणों से पराजित किया था । इस यात्रा प्रसंग में नैमिषाख्य में उन्हें यवनों के आक्रमण द्वारा मथुरावासियों के कष्ट का समाचार प्राप्त हुआ, वे वहां से चल लिये और मथुरा में 'ध्रुव टीला' नामक स्थान पर निवास किया । विश्रान्त घाट पर यवनों ने एक ऐसा यन्त्र लगा दिया था जिसके नीचे निकलने वाले व्यक्तियों की शिखा उड़ जाया करती थी । आचार्य विश्रान्त घाट पर स्नान करने गये उनके पदार्पण के समय ही यवनों की माया विलीन हो गई, उन्होंने स्नान के उपरान्त एक ऐसा यन्त्र लगाया था जिसके प्रभाव से उनके पुरुषतत्व के चिह्न नष्ट हो गये एवं स्त्रीत्व विशिष्ट चिह्न प्रकट हुए, जब समस्त यवन उनके चरणों में आकर पड़े तब उन्होंने यमुना जल के मार्जन से उन्हें शुद्ध बना दिया ।

(ख) सम्प्रदाय––निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी श्रीभट्ट देव जी से आपने दीक्षा ली थी, अतः आप द्वैताद्वैतमत के अनुयायी थे । आप दर्शनशास्त्र–भक्ति-तन्त्र- पुराण- काव्य आदि शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् थे । आपने अनेक संस्कृत पद्यों की रचना की थी, यमुना स्तोत्र के श्लोक देखिये—

त्वतीरस्थ कदम्ब कानन लता छाया कुटी वासिभिः
सद्भिः सार्घमहर्शिं हरिकथा श्रण्वन् ब्रुवन् वैमुदा
कांक्षेऽहं तव तीर सेवन परस्त्वन्नीर पानै रतिम्
त्द्वीची क्षण सूत्सवं त्वयिमनः स्यान्ये शरीर क्षयः ॥

वृन्दावन आपका प्रमुख केन्द्र बन गया था एवं आप यहीं अधिकतर

---

[1] **आचार्य चरित्र, ६ विश्राम ४६ ।**

रहे। श्री भट्टदेवाचार्य इनके प्रधान शिष्य थे । इनके वंशज अधापि ध्रुव टीला मथुरा में निवास करते हैं।

(ग) स्थिति काल—आपका जन्मोत्सव ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी को मनाया जाता है।[1] इनके शिष्य श्री भट्टदेवाचार्य की कृति 'युगल शतक' की रचना सं० १३५२ विक्रम मानी जाती है,[2] अतः केशव काश्मीरी का समय इससे पूर्व १२००–१३०० के मध्य माना जा सकता है।

(घ) कृतियां—(१) वेदान्त सूत्र व्याख्या (२) कौस्तुम प्रभावृत्ति
(३) तत्व प्रकाशिका–भागवत टीका (४) यमुना स्तोत्र

(ङ) टीका वैशिष्ट्य-नाम––केशव काश्मीरी भट्ट कृत टीका का नाम 'तत्व प्रकाशिका' है।

परिमाण––यह टीका भागवत के ८७ वें अध्याय पर उपलब्ध है, ज्ञात होता है कि भट्ट जी ने सम्पूर्ण भागवत पर टीका की होगी किन्तु वर्तमान में अनुपलब्ध है।

उद्देश्य––भागवत के तत्वों का प्रदर्शन निम्बार्क सम्प्रदाय के आधार पर किया गया है।

प्रकाशन––आठ टीका संस्करण वृन्दावन से प्रकाशित शुक सुधी कृत 'सिद्धान्त प्रदीप' में यह वेदस्तुति की टीका प्रकाशित है।'[3]

शैली––केशव कश्मीरी भट्ट ने इस टीका के आरम्भ में सनन्दन की वन्दना की है, सनक सनन्दन ब्रह्माजी के मानस पुत्र थे, यही द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक माने जाते हैं—

सनन्दन पद द्वन्द्वं भक्तिनम्रं के चेतसा
प्रणम्यक्रियतेव्याख्या ब्रह्मायौपनिषदी मया ॥

श्लोकों के सम्बन्ध बैठाने के लिए विशाल भूमिकायें उपनिबद्ध की है जिनमें ब्रह्मसूत्र, श्रुति–स्मृति–पुराण आदि के वाक्या रत्नों की भांति जटित कर दिये हैं। कहीं बड़े-बड़े समास भी रखे हैं–श्री कृष्णस्येव ज्ञानान्मुक्तिः

---

[1] आचार्य चरित्र-श्रीनारायणदेवाचार्य द्वारा संग्रहीत।
'ज्येष्ठें शुक्ले चतुर्थ्यां ये काशमीरी केशवः प्रभुः
अवतीर्णे दिग्विजयेयेंनयवनेशः निराकृतः ॥

[2] सर्वेश्वर-वृन्दावनांक, पृष्ठ २१७।

[3] 'अत्र मायावाद ध्वान्त भास्करैः श्रीं काश्मीरि केशव भट्टैः कृता व्याख्या कार्त्स्न्येनोपन्यस्यते।' (सिद्धान्त प्रदीप ८७।१)

प्रतिपादिता चतुर्थांथे वंशावल्या 'तच्च रूपमुत्फुल्लदलामलामलक्षमत्युज्जवल पीत वस्त्र धार्य्यमल किरीट केथूर कटकोपशोभितमुदारपीवर चतुर्बाहुशंख चक्र गदाधर मति रूढगेरानुभवेन………तत्र पृच्छति ब्रह्मन् इति।'

'अस्मत्पक्षेतु' लिखकर अपना मत भी उद्धृत किया है, 'तत्तु समन्वयाधिकरणं व्याख्यातम्' लिखकर ब्रह्म सूत्रों का समन्वय किया है। (८७।१५) टीका में सर्वत्र द्वैताद्वैत का निरूपण किया है।

२. शुक सुधी

(क) परिचय—निम्बार्क सम्प्रदाय में भागवत ग्रन्थ का अत्यन्त आदर है, किन्तु इस ग्रन्थ पर टीका रूप में कोई प्रशंसनीय कार्य नहीं हुआ। किसी समय केशव काश्मीरी ने अवश्य इसकी टीका की थी, किन्तु अब वह थोड़े अंश पर ही उपलब्ध होती है। वर्तमान युग में इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध टीकाकार शुक सुधी हैं। इनके वैयक्तिक जीवन के बारे में अधिक पता नहीं लगा। किन्तु यह निश्चित है कि ये मथुरा के 'परशुराम द्वार' नामक स्थान में निवास करते थे।[1] यह स्थान निम्बार्क सम्प्रदाय के आधिपत्य में था। श्री जी की कुंज वृन्दावन में है इसके स्वामी सलेमाबाद गद्दी के महन्त रहे हैं। इस स्थान से इन्हें २०० रुपये मासिक भी मिलते थे। ये विरक्त वैष्णव थे।

(ख) सम्प्रदाय—इनके गुरू का नाम श्री सर्वेश्वर दास था। उनका ध्यान भी इन्होंने किया है—

सर्वेश्वर गुरूं चैवप्रणमामिह्यहर्निशम्
तद्दत्तेन कृतोर्थोऽस्मितद्भृत्यत्वेन सर्वशः॥[2]

आपको निम्बार्क शरण देनाचार्य जी के कृपापात्र शिष्य होने का संकेत वृन्दावनांक (सर्वेश्वर) मासिक में किया गया है।[3] इस पत्र के अनुसार यह भी कहा जाता है कि विक्रम सम्वत् १८६७ में जगद्गुरू पीठासीन होने के लिए शुक सुधी से अनुरोध किया गया था किन्तु परम विरक्तता के कारण उस पद को अस्वीकार कर दिया था। तब ब्रजराज शरणदेव को इस गद्दी का अधिकार दिया गया।

---

१. अधिकारी श्री ब्रजवल्लभ शरण देव जी श्रीजी कुंज वृन्दावन के पास सुरक्षित प्राचीन वही के अनुसार। २. सिद्धान्त प्रदीप, मंगलाचरण।
सर्वेश्वर पत्र-वृन्दावनांक (वर्ष ५, अंक १-५, सं० २०२३), पृष्ठ २६८।

(ग) **स्थितिकाल**--शुकसुधी के जन्म के वारे में निश्चित नहीं कहा जा सकता कि ये किस सम्वत् में उत्पन्न हुए, किन्तु निश्चित रूप से सम्वत् १९२६ विक्रम में इनका गौलोक वास माना गया है। देहत्याग की अवस्था का अनुमान ७०-७५ वर्ष के लगभग वतलाया गया है। अतः आपका जन्म सम्वत् १८५० के आसपास मानना होगा। सं० १८४०-१८६० के मध्य मानने में कोई आपत्ति नहीं है। १८९७ विक्रम में आपके अध्ययन के लिए सिद्धान्त कौमुदी, महाभारत आदि ग्रन्थ लिखवाये गये थे, वे आज भी श्रीजी कुंज में उपलब्ध हैं, उनमें 'शुक सुधी पठनार्थ' लिखा है। (स्वधर्मामृत सिन्धु मङ्गलाचरण १)

(घ) **कृतियाँ**—१. 'सिद्धान्त प्रदीप' यह श्रीमद्भागवत की टीका है। २ 'स्वधर्मामृत सिन्धु—३९२ पृष्ठों के इस ग्रन्थ में २५ तरङ्ग हैं। यह सम्वत् १९८१ में वृन्दावन से प्रकाशित हुआ है। श्री निम्बार्क सम्प्रदाय से सम्वन्धित व्यक्तियों को यह ग्रन्थ अत्यन्त लाभकारी है--

'श्री निम्बार्कं नमस्कृत्य सम्प्रदायानुसारतः
स्वधर्मामृत सिन्धुर्वे क्रियते शास्त्रमानतः ।'

(३) विष्णु सहस्र नाम टीका (४) महाभारत टिप्पणी (अप्रकाशित) श्रीजी कुंज वृन्दावन में सुरक्षित है। शुक सुधी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। निम्बार्क सम्प्रदाय के विशिष्ट विद्वान् और भावुक महानुभावों में आपकी शुकदेव जी जैसी प्रतिष्ठा है।

(ङ) **टीका वैशिष्टय-नाम**--सिद्धान्त प्रदीप। निम्बार्क सम्प्रदाय में भागवत के प्रकाण्ड विद्वान् 'शुक सुधी' सिद्धान्त प्रदीप के रचयिता हैं--'इति श्री मद्भागवते..........सिद्धान्त प्रदीपे प्रथमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः।'

परिमाण—यह श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्धो पर लिखी गई है। टीका सम्पत्ति मूल के लगभग हैं, न विस्तार शैली है एवं न लम्बी चौड़ी भूमिका ही बाँधी गई है। अतः इसका परिमाण स्वल्प ही है।

उद्देश्य—निम्बार्क सम्प्रदाय में शुक सुधी के अतिरिक्त अन्य कोई टीका सम्प्रति उपलब्ध नहीं हैं। सम्प्रदाय के विद्वान् एवं भावुकों को स्वसम्प्रदायोक्त भाव भागवत में देखने की एक जिज्ञासा चिरकाल से चली आ रही थी, उसे शुक सुधी ने पूर्ण किया। यह टीका सम्प्रदाय के भावों को हृदय में रख कर की गई है। 'सिद्धान्तों का दीपक' नाम इस टीका को सार्थक ही दिया गया है।

प्रकाशन—'आठ टीका के साथ' वृन्दावन से प्रकाशित सं० १९६० विक्रम ।

शैली--अन्वय मुखी यह टीका संक्षेप में अपने भावों को व्यक्त कर देती है । भूमिका का विस्तार इसमें न के बराबर है । उदाहरणार्थ—

'मा शोचतं महाभागावात्मजान् स्वकृतं भुजः
जन्तवोन सदैकत्र दैवाधीनास्त दासते ।' (भागवत १०।४।१८)

सिद्धान्त प्रदीप—जन्तवः–प्राणितः सदा एकत्र नासते यतो दैवाधीनाः स्वकृतकर्मतन्त्राः अतः स्वकृतं भुजः स्वकृत कर्मफलभोक्तृन् मा शोचतम् ।' इस टीका में मूल के महाभागावत्मजान्, आदिपद त्याग दिये गये हैं । अन्वय अवश्य किया गया है किन्तु अन्वय पदों के द्वारा मूल श्लोक की संगति नहीं बैठ सकती उसके लिये मूल पद देखना भी आवश्यक है । भूमिका अत्यन्त संक्षेप में बाँधी गई है—

'भुवि भौमानि भूतानि'

सि० प्र०—'देहानामेव जन्ममरणे नात्मन इत्याह—भुवि' इति । (१०।४।१९) कहीं एक शब्द लिख कर ही टीकाकार आगे बढ़ गये है, यथा—

'सपत्नीं दीनवदनां कृतासन परिग्रहः' (भा० ८।१६।३) की टीका में 'स कश्यपः' लिखकर नं० ३ डाल दिया है । किन्तु सम्प्रदाय के जहाँ भाव अव्यक्त रूप में भागवत में बिखरे पड़े हैं उन्हें विस्तारपूर्वक समझाने का प्रयत्न किया है, यथा--

'त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषांपतिः'

इसमें टीकाकार ने द्वैताद्वैत सिद्धान्त का निरूपण किया है--'सर्वस्य-विश्वस्य भगवतो भिन्नस्यापि तदात्मकत्वात्तदभिन्नत्वं ऐतदात्म्यमिदं सर्वं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' तदन्यत्वमारम्मण शब्दादिभ्य २।१।१५ इत्यादि श्रुति सूत्र प्रसिद्धम् भगवच्चक्रं तु सुतरां भगवदभिन्नमिति सिद्धान्त विद्धाजर्षि भगवच्चक्रं भगवत्तया भगवत्प्रियायुधतया च स्तौति ।' (सिद्धान्त प्रदीप ९।५।३) एवं यह भी स्पष्ट लिखा है कि राजर्षि अम्बरीष द्वैताद्वैतसिद्धान्त से पूर्ण परिचित था । इनकी टीका में शब्दाडम्बर नाममात्र को भी कहीं दिखलाई न देगा । श्रुति-वाक्य अधिकांश में वहीं हैं जिन्हें श्रीधर आदि आचार्य लिख चुके है । स्मृतियों में केवल गीता के वाक्य ही उद्धृत किये हैं । द्वैताद्वैत सिद्धान्तों का प्रतिपादन स्तुतियों में ही विशेषतः किया है । पूर्ववर्ती टीकाकारों में श्रीधर एवं

जीव गोस्वामी की टीकाओं से अत्यधिक साहाय्य लिया गया है, कहीं-कहीं तो उनके ही अक्षर भी लिखे गये हैं यथा—

८।१६।३ की व्याख्या में–स कश्यपः क्रमसन्दर्भ में भी है, सिद्धान्त प्रदीप में भी ८।१७।७ में 'फेरुः श्रृगालः' क्रमसन्दर्भ में भी है, सिद्धान्त प्रदीप में भी इतना ही अंश रखा है। इनके मुख्य प्रतिपाद्य द्विभुज कृष्ण हैं— 'द्विभुजं ज्ञान मुद्राढ्यम्' ये स्वगंत भेद स्वाभाविक है—

'स्वगत भेदस्तु अस्ति अतोहि स्वभावत एव द्वैताद्वैतमित्यर्थ ।।'

अंश तथा अंशी का भी स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध है—

'प्रधानं प्रकृत्याख्यं शक्तिरूपं पुरुषं
जीवात्मकांश रूपं विश्व तदुभयात्मकं
प्रपंचरूपं शक्ति तद्वतो अंशांशिनोश्च
स्वाभाविकं भेदाभेद सम्बन्धात् । (सि० प्र० ६।९।२९)

उक्त स्थलों पर सम्प्रदायगत भाव अवश्य ही इनके मौलिक हैं, इन पर अन्य टीकाकारों के प्रभाव का कोई हेतु ही नहीं है।

'वैराग्यार्थमकस्मात् प्रलयमिव दर्शयाभासेति तदसत् निर्मूलत्वात् ।'

श्रीधर स्वामी ने ८।२४।४६ की व्याख्या में स्पष्ट लिखा था—'नैवायं वास्तवः कोऽपि प्रलयः किन्तु सत्यव्रतस्य ज्ञानोपदेशायाकस्मात् प्रलयमिव दर्शयामास ।'

श्रीधर स्वामी को मायावादी कहकर एक प्रकार से उन्हें तिरस्कृत किया है। इस टीका में वेदस्तुति की केशव कश्मीरी कृत टीका लिखी गई है। सम्प्रदाय के तत्व बलात् आरोपित नहीं किये हैं। पाठान्तर तथा प्रशिप्तांश भी अधिक नहीं लिखे हैं। सम्प्रदाय की दृष्टि से टीका गम्भीर एवं अपने में पूर्ण सफल है। क्वचित् श्रीधर स्वामी के खण्डन की दिशा में टीकाकार पहुँचे है, यथा—द्वादश स्कन्ध के अन्तिमाध्याय की कथाओं के क्रम में व्युत्क्रम हुआ है, वहाँ वे श्रीधर के इस पक्ष से सहमत नही कि यह व्युत्क्रम स्कन्धों के कारण है। श्रीधर स्वामी ने अष्टम स्कन्ध में वर्णित प्रलय मायिक मानी है (भावार्थ दीपिका ८।२४।४६), शुकसुधी ने वास्तविक (सिद्धान्त प्रदीप ८।२४।४६)।

'आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मी नैमित्तिकः लयः इत्यारम्य यावद् ब्राह्मी निशेत्यन्तेन ग्रन्थेनोक्तमर्थमनादृत्य—मायावादिना यदुक्तं नचायं वास्तवः कोऽपि प्रलयः किन्तु सत्यव्रतस्यज्ञानोपदेशाय आविर्भूतो भगवान वैराग्यार्थं मकस्मात् प्रलयमिव दर्शयामासेति तत्सत् निर्मूलत्वात् ।' (सिद्धान्त प्रदीप ८।२४।३७)

'अनाथ विद्योपहात्म सम्विदः' श्लोक की व्याख्या में स्पष्ट इसे मायिक प्रलय लिखा है—

'…………नैवायं वास्तवः कोऽपि प्रलयः किन्तुसत्यव्रतस्यज्ञानोपदेशाया-कस्मात् प्रलयमिव दर्शयामास' (भावार्थ दीपिका ८।२४।४६) इसका खण्डन सिद्धान्त प्रदीप में ३७ वें श्लोक में किया गया है।

३. बंशीधर

(क) **परिचय**—भागवत के ख्यातिप्राप्त टीकाकारों में बंशीधर का प्रमुख स्थान है। यद्यपि श्रीमद्भागवत के अनेक टीकाकार हुए हैं तथापि बंशीधर अपनी नव नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा एवं श्री राधा की अनन्य सेवा भावनापरक अर्थ रुचि के कारण भागवतियों के श्रद्धा के भाजन बने हुए हैं। इनके वंश परिचय के लिए किसी प्रकार की असुविधा नहीं क्योंकि टीका के उपसंहार में अपना परिचय पद्यों में लिख दिया है।[१] इनका जन्म खरड नामक नगर के सुप्रसिद्ध वंश में हुआ था। ये कौशिक गोत्री ब्राह्मण थे। खरड नगर हिमालय के पश्चिम में बसा हुआ है, वहां बलराम शर्मा अपनी विद्वत्ता से पूजित होकर रहते थे। उनके पुत्र का नाम भूधर था।[२] भूधर के गौरीप्रसाद एवं उनके सुखदेव शर्मा हुऐ। सुखदेव के पुत्र गजराज समस्त शास्त्रों के ज्ञाता थे। इनके पुत्र निवकाराम थे[३] एवं इन्हीं निवकाराम के पुत्र श्री वंशीधर शर्मा थे।

तस्माद्वंशीधरो जातो गोत्रे कौशिक संज्ञके
गौड़-वंशे नन्दसूनु पाद-ध्यान-परायणः ॥

---

[१] 'बंशीधर, कौशिक गोत्र गौड़, वंश्यः कृती श्रीधर वृत्ति वृत्तिः'
(भाव० दी० प्र० १०।१।१)

[२] भुवन पालन तत्पर मानसाद्गिरिवराज्जल पस्य दिशिस्थियम्
हर विलोचन योजनभूमिके रघु सुतस्य नृपस्य सरोपरम् ॥
निखिल पाप हरं प्लयनादिका तदुपकंठ गतं शुभ पत्तनम्
खरड नामक मस्ति जनैर्युतं श्रुति विधान पारायण मानसैः ॥
तस्मिन् पुरे विप्र गणाग्रय गण्य उवासविप्रोबलराम शर्मा
तदात्मजो भूधर नाम धेयः स्वाचार निष्ठोऽखिल शास्त्रवेत्ता ॥
(वही उपक्रमे)

[३] धर्मात्मकं मधुरिपोरनुग स निवका--
रामं ह्यवाप तनयं विनयोपपन्नम्। (वही उपक्रमे)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बंशीधर के एक पुत्र था जिसका नाम लक्ष्मीनारायण था एवं प्रमुख शिष्य का नाम दुर्गादत्त था। बंशीधर कृष्ण भगवान् के अनन्य भक्त थे। उनकी कृति भी सागर के समान थी और भावार्थ दीपिका की प्रकाशिका थी——

तेनायं ग्रथितः कृष्ण कृपया ग्रन्थ सागर
श्रीधर स्वामि भावार्थ दीपिकायाः प्रकाशकः ।।
व्याख्या पुष्पमयी माला श्रीबंशीधर शर्मणा
समर्पिता कृष्ण कण्ठे प्रीत्योपदिहिते मया ।।

(ख) **सम्प्रदाय**—कृष्ण अपने भक्तों के विचारों को सर्वथा पूर्ण करते हैं राधापति तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं, मेरा जीवन तुम्हारे ध्यान में संलग्न रहे तथा वृन्दावन वास न छूटे। राधाकृष्ण के उपासक एवं चित्र में गोपीचन्दन के अर्ध्व पुण्ड्र तिलक से इनका निम्बार्क सम्प्रदाय का अनुगामी होना सिद्ध है—

श्री कृष्ण नाथ परि पूरय चिंतित श्री
राधापते न कठिनं तवकिंचिदस्ति
तद्ध्यान निष्ठ मनसो ममयातु कालो
वृन्दावनेश व्रज मण्डलगस्यनित्यम् ।।

बंशीधर नाभा नरेश हीरासिंह के आश्रय में रहे थे।

(ग) **स्थिति काल**—बंशीधर ने चित्सुख-मध्व श्रीधर विजयध्वज-जीव गोस्वामी विश्वनाथ चक्रवर्ती के नाम लिखे हैं[1]। इनमें परवर्ती टीकाकार विश्वनाथ हैं जिनका समय १७०८ विक्रम से प्रारम्भ माना जाता है, अतः बंशीधर का समय इसके पश्चात् है। पुष्ट प्रमाण यह है कि—बंशीधर के सन्मुख ही यह टीका सम्वत् १९४५ विक्रम में प्रकाशित हुई थी।[2] टीका में उपलब्ध चित्र के देखने से उनकी अवस्था ६५ वर्ष से अधिक प्रतीत होती है। यदि यह टीका रचना काल का चित्र है तो इनका जन्म सं० १८७०–८० के मध्य मानना चाहिये।

---

[1] श्रीविश्वनाथविजयध्वज जीवगोस्वामी
चित्सुख श्वसनजादिभिरीरितायाः
टीका अतीव गहनाः सुविलोक्य शास्त्र
श्री भारतं च रचितोऽयमपि प्रबन्धः। (भा० दी० प्र० उपक्रम)

[2] शपाऽम्नायांक ज्ञातांशुभितेसम्वत्सरोर्ज्जवे। (वही उपसंहार)

(घ) कृतियां--(१) भावार्थ दीपिका प्रकाश (२) आद्य पद्य व्याख्या शती (३) भगवल्लीला कल्पद्रुम (४) भारत टीका (५) न्याय सिद्धान्त मुक्तावली टीका (६) मातृका विलास (७) चतुर्युगीय नृप चरित ।

उक्त सभी ग्रन्थ खेमराज मुम्बई प्रेस से प्रकाशित हैं ।

(ङ) टीका वैशिष्ट्-नाम—भावार्थ दीपिका प्रकाश नाम से स्पष्ट है कि श्रीधर स्वामी की टीका भावार्थ दीपिका के ऊपर लिखी गई है ।[१]

परिमाण--सम्पूर्ण भागवत पर लिखित यह टीका मूल से कई गुनी अधिक है । कतिपय अत्यन्त सरल श्लोकों के अतिरिक्त यह टीका सम्पूर्ण श्लोकों पर लिखी गई है ।

उद्देश्य—श्रीधर स्वामी ने टीका लिख कर जहां एक ओर भागवत को सरल बनाने की चेष्टा की दूसरी ओर वह टीका एक जटिल समस्या बन गई । इसमें श्रीधर स्वामी की प्रकाण्ड विद्वता ही हेतु थी ।

श्रीधर स्वामी अनेक शास्त्रों के पारङ्गत विद्वान् थे फलतः उनकी टीका में वह प्रतिविम्ब आना स्वाभाविक था, अतः यह टीका उन व्यक्तियों को समस्या बन गई जो सहसा साधारण ज्ञान के आधार पर उसका तात्पर्य समझने का यत्न करना चाहते थे । वंशीधर पण्डित ने इस कठिनाई पर विचार किया एवं उसके निराकरणार्थ इस टीका की रचना की । श्रीधर ने अनेक स्थलों पर संकेत-मात्र लिखे थे उन्हें बंशीधर ने स्पष्ट लिखा तथा उनके भावों का पल्लवन किया । राधा चर्चा आदि विषय इनके अपने हैं क्योंकि श्रीधर ने इन पर कुछ भी नहीं लिखा । श्रीधर स्वामी का अभिप्राय व्यक्त करना साधारण कार्य नहीं है तथापि उनकी अनुकम्पा से मैं उनके भावों को व्यक्त करूँगा—

'श्रीधर स्वाम्यभिप्रायं श्रीधरो वेत्ति सर्वथा
भविष्यति तत्कृपया तदभिव्यक्तिराशुमे ॥'

(भा० दी० प्र० १०।१ मं०)

यद्यपि श्रीधर स्वामी के पदों का उद्घाटन इस टीका में किया है तथापि उनके द्वारा अव्याख्यात पद्यों की टीका भी इन्होंने की है—

'क्वचिच्च श्रीधरत्यक्त पदानामपि वर्णनम्' (वही)

---

[१] **'भावार्थदीपिका टीका प्रकोशोऽति प्रयत्नतः'**

(भा० दी० प्र० ३।३ उप० श्लोक ५)

इस कार्य के लिये इन्हें अन्य टीकाओं का भी आश्रय ग्रहण करना पड़ा था —

'करिष्यामि विदांप्रीत्यै क्षमंतां ते ममत्वराम्
पूर्वाचार्यानुग्रहान्मे सर्वेर्थाः प्रतिभान्तु वै ।' (वही १।१।१ उप०)

वंशीधर वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित थे किन्तु टीकारम्भ में उन्होंने स्मार्त धर्म की उपेक्षा नहीं की, देवी, गणपति सूर्य आदि सभी की वन्दना की है जो उनकी उदार भावना की द्योतिका है—

वन्दे देवं पार्वतीजं महेशं
वाचं सूर्यं मां गुहं राधिकेशं
विद्यातीर्थान् सर्वतश्च प्रणम्य
व्याख्यां कुर्वे श्रीधर स्वामि वृत्तेः । (१०।१।१ मंग०)

प्रकाशन—'भावार्थ दीपिका प्रकाश' की रचना १९४५ विक्रम में हुई एवं सम्वत् १९६५ विक्रम में खेमराज के स्टीम प्रेस बम्बई में यह मुद्रित हुई । यह प्रथम संस्करण हीं उपलब्ध है ।

शैली---टीका में व्याकरण, मीमांसा, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, न्याय साहित्य आदि वाङ्मय के उच्च ग्रन्थों के आधार पर विभिन्न विषयों का निरूपण हुआ है । प्रथम भागवत दशम स्कन्ध की टीका की गई थी जैसा कि लिखा भी है—

प्रथमं दशमस्कन्ध व्याख्यां कुर्वे कुतूहलात्
श्री कृष्णलीला माधुर्य सेवनासक्त चेतसः ।। (वही)

यह ग्रन्थ श्री राधा की प्रसन्नता के लिये रचा गया था--

श्री वृन्दावन चन्द्रस्य वृषार्क तनया पते
प्रीत्यर्थं च कृतं ग्रन्थः श्रृणोतु श्री हरिः स्वयम् ।। (१०।उप०)

हृदयेश निज प्रिय 'श्रीराधा' मुझे अप्रने समीप बुलाकर इस ग्रन्थ को सुनो—

वृषभानुसुतानाथ भामाहूय कृतिं मम
वृन्दावने श्रृणु विभो हृदयेश निज प्रिय । (११।उप०)

इस ग्रन्थ में जो कुछ सौष्ठव है वह प्राचीन टीकाकारों का श्रम है, मैंने उनकी योजना मात्र की है—

सर्वाणिप्राक्तनान्येवपदवाक्याक्षराणि वै
कर्त्तृत्वं मेऽस्ति ग्रन्थेऽस्मिंस्तेषां योजन मात्रतः ।

यद्यपि मेरे गुरु अनेक हैं और गुरु ही पिता के समान हैं, अतः उनकी सम्पत्ति पर मेरा भी अधिकार है।

सन्ति मे गुरवः सर्वे गुरुवः पितरोमताः
पित्रर्जित स्वे पुत्राय यथा स्वत्वं तथैव मे ॥

अपने से पूर्व टीकाकारों की सम्पत्ति पर अपने अधिकार का स्पष्ट उल्लेख जैसा इन्होंने किया, अन्य किसी टीकाकार ने नहीं किया। यह मुक्तकण्ठ से कहा जा सकता है कि प्राच्य विद्वानों की सम्पत्ति को ग्रहण करते हुए भी उसकी योजना बड़े चातुर्य के साथ की है। वंशीधर ने भागवत में अष्टादश सहस्र श्लोक संख्या पूर्ण मानी है और यह भी लिखा है कि भागवत में दीर्घ वृत्त हैं एवं अनेक गद्य श्लोक भी हैं, उनके अक्षरों को जोड़कर एवं 'इति श्रीमद्भागवते' पुष्पिकाओं एवं उवाच संख्या को मिलाकर अनुष्टुप् के ३२ का भाग देने पर १८००० पूर्ण श्लोक संख्या बन जाती है—

श्लोक	–	१६१९५
उवाच	–	१२७०
अर्द्ध श्लोक	–	२००
पुष्पिका[1]	–	३३५
		१८०००

श्रीधर स्वामी जहां 'ननु' इत्यादि शङ्कावाचक पद रखते हैं वहां वंशीधर उसे स्पष्ट करते हुए पदों का स्पष्ट अर्थ भी लिख देते है। यथा १।२।२४—

'नन्वन्यानपि केचिद्भजन्तो दृश्यन्ते'

'अत्राक्षिपति नन्विति। अन्यान्=भैरवादीन्'

इनकी भूमिकात्मक शैली भी द्रष्टव्य है—'अवताराह्यसंख्येया'

'अथ हयग्रीव हरि हंस पृश्निगर्भ विभु सत्यसेन वैकुण्ठाजित सार्वभौम विष्वक्सेन धर्मसेतु सुधामयोगेश्वर वृहद्भान्वादीनां शुक्लादीनां चानुक्तानां संग्रहार्थमाह अवतारा इति।' (वही १।२।२६)

अनेक विद्वान् परीक्षित के विषय में शास्त्रार्थ करते देखे गये हैं कि मृत्यु के समय परीक्षित की अवस्था कितनी थी? इस प्रश्न का 'मूल' व्यास

---

[1] भावार्थ दीपिका प्रकाश, भूमिका, पृष्ठ ८।

की ही दोनों कृति हैं——श्रीमद्भागवत और महाभारत। भागवत में परीक्षित युवा वर्णित है महाभारत में ६० वर्ष की अवस्था लक्षित होती है।

पं० वंशीधर ने उसका समाधान करते हुए लिखा है कि 'आषष्टिमध्यमं वयः' ६० वर्ष की अवस्था मध्यम वय है तथापि यौवन से सम्बन्धित होने पर वह भी यौवन ही कही जायगी स्थाविर नहीं। अन्यथा वयस्थ पद अयुक्त होगा।[1]

संगीत की ओर इनकी विशेष अभिरुचि है 'स्वर ब्रह्म विभूषिताम्' (भा० १।६।३३) श्लोक की व्याख्या में 'भैरव-पंचम-नाट, मल्लार-गौड़माल आदि ६ भाग एवं उनमें वङ्गपाल, गुणकरी, मध्यमादि वसंतक धन्याश्री पांचराग भैरव के लिखे हैं। इस प्रकार प्रत्येक के भेद का निरूपण किया गया है।

टीका में विशेषतः गौड़ीय वैष्णवाचार्यों की पद्धति का अनुसरण किया गया है। दशमस्कन्ध में कंस प्रेरित. पूतना तृणावर्त शकटासुर आदि में तत्तदर्थ-प्रतिपादिका श्रुतियाँ भी उद्धृत की हैं। अध्याय १४ से ६० पर्यन्त श्रीधर स्वामि के अभिप्राय का विशेष वर्णन है। वैष्णव तोषिणी, सारार्थदर्शिनी आदि टीका जहाँ अवस्थित की हैं वहाँ पुष्प गुच्छ सा चिन्ह दे दिया गया हैं। श्रीधर स्वामी ने ६४ कलाओं के नाम लिखे हैं, वंशीधर ने उनके उदाहरण तथा भेद भी लिख दिये हैं।

वेदस्तुति की व्याख्या पाँच प्रकार से की है। इसमें नीलकण्ठाचार्य की टीका भी लिखी है। ८८ वें अध्याय से ९० अध्याय पर्यन्त ३ अध्यायों के दो अर्थ किये हैं। एकादश स्कन्ध में श्रीधर की उक्ति ही कही गई है। प्रत्येक स्कन्ध के अन्त में उस स्कन्ध का माहात्म्य भी लिखा है। इस प्रकार प्रत्येक स्कन्ध का माहात्म्य भी अन्य किसी टीका में नहीं लिखा गया है। इस टीका की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। साथ ही इसका भूमिका भाग भागवत तत्व जिज्ञासुओं को सर्वदामननीय है। प्रारम्भ में—भागवत की 'कर्मकाण्ड से श्रेष्ठता' शीर्षक में मीमांसा का निचोड़ रख दिया गया है। उपासना काण्ड से श्रेष्ठता दिखलाते हुए शाण्डिल्यादि भक्ति सूत्रों की विवेचना का है। शिव, भैरव देवी, कार्तिकेय, गणपति आदि सभी तो भारत के पूज्य देवगण हैं और इनके पूजन विधान के सम्बन्ध में अनेक शास्त्रीय प्रमाण हैं इनके उपासकों के दृष्टिकोण और अन्त में एकेश्वरवाद की सिद्धि पठन योग्य सामग्री है।

---

१. 'तथा च षष्टि वर्षोऽपि वयस्थस्तरुणो युवा इत्युक्तेर्युंवैव' (वही १।४।११)

ज्ञान काण्ड से श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए ज्ञान के भेद तथा व्यावहारिक-प्रातिभासिक-पारमार्थिक सत्ता और उनकी आवश्यकता पर विचार किया है। वेद काण्डत्रयात्मक है तथा भागवत वेद का उपवृंहक है अतः यह तीनों काण्डों से श्रेष्ठ है। टीकाकार ने—देवी भागवत एवं श्रीमद्भागवत में महापुराण कौन है, इस विषय पर शङ्का की है एवं समाधान में दोनों का प्राधान्य स्वीकार किया है। इस स्थल पर ये सम्प्रदायवाद की परिधि का निःसंकोच भाव से उल्लंघन करते देखे जा सकते हैं—

'अस्माकं त्वेवं भाति श्रीमद्भागवतं देवीभागवतं इत्युभयमपि महापुराणान्तर्गतं सर्गविसर्गादि दश लक्षणलक्षितत्वात् शुक प्रोक्तत्वादि बहु लक्षणसमन्वयाच्च…………तथा कल्पभेदेन व्यवस्था ग्राह्या।'

(भा० दी० प्र० भूमिका)

अध्याय विवाद पर विचार करते हुए टीकाकार ने ३३५ अध्याय प्रामाणिक स्वीकार किये हैं। 'ब्रह्मसूत्र एवं श्रीमद्भागवत' शीर्षक दोनों में प्रतीत वाले विरुद्ध धर्म का स्पष्टीकरण किया है। क्योंकि ब्रह्म सूत्र में कपिल मत का खण्डन है—'तेषांचानुपलब्धेः' (ब्रह्मसूत्र) भागवत में महत्तत्व अहङ्कार राजस इन्द्रियों का स्पष्ट उल्लेख है। अतः विरोध है किन्तु प्रधानांश में कोई विरोध नहीं है। दोनों में ही 'जन्माद्यस्ययतः' का वर्णन है। ब्रह्मसूत्र में आकाशादि क्रम से सृष्टि का वर्णन प्राप्त होता है। 'भागवत में महत्तत्वादि क्रम का उल्लेख है। सृष्टियादि में अर्थवाद में आदराभाव है।' भागवत में वेदान्त सांख्य है, कपिल सांख्य नहीं है।

'भागवत और ज्योतिष' शीर्षक में भागवत में वर्णित जम्बूद्वीप की भूमि १ लाख योजन है। ज्योतिषशास्त्र में ५ सहस्र योजन परिमित, इनके विरोध का परिहार टीकाकार ने बड़े चातुर्य के साथ किया है। गोलाकार, मण्डलाकार एवं हिरण्मयाण्ड की विवेचन शैली बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से लिखी गई होने के कारण पठनीय है। यह पृथ्वी स्वल्पाकार है किन्तु नक्षत्र पुंजों पर दीर्घाकार है। पृथ्वी में पांच सहस्र योजन की दूरी पर अग्नि का गोला है, इसके उपरितन भाग में कांचनी भूमि है यह 'निर्मला' है। इसका एक भाग अल्प, एक भाग वृहत् है। बाह्याङ्ग चन्द्रादि का भी अल्पत्व इसी से सिद्ध होता है। इनके मतानुसार भूपृष्ठ से आकाश कक्षा पर्यन्त आठ पवन हैं, जल गोल दोनों के मध्य में है। पुलिश सिद्धान्त में भी इसका उल्लेख है—

भू वातोद्वहयोयोगे जलगोलोऽस्तिकाचवत्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दृश्यन्ते येन संलग्नाः भिन्नाः सूर्यादि रश्मयः ।।

खगोल परिहार—शीर्षक में इन्होंने लिखा है कि अन्तरिक्ष का कोई माप नहीं है। विम्व स्वरूप से सवा लक्ष योजन की दूरी पर है, ६ कोटि ६८ लाख का इसमें अन्तर है। इस प्रकार टीकाकार ने भागवत के सम्वन्ध में किये जाने वाले अनेक विशिष्ट स्थलों पर बड़ी विद्वत्तापूर्वक विचार किया है, जिनसे इस टीका का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है।

टीकाकार ने टीका में जिन ग्रन्थों से सहायता ली है, उनमें, चारों वेद कठादिउपनिषद्, अत्रिआदि स्मृति, अठारह पुराण, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, कालिदास आदि के काव्य, अमरकोश, विश्वकोश, हैमकोश, यादवकोश, मेदिनी कोश, द्विरूप कोश आदि कोशों के अनेक उद्धरण के साथ श्रीधर, विजयध्वज, जीव गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, वल्लभाचार्य, गिरिधर, रामप्रसाद आदि की टीकाओं के नाम भी लिखे हैं।

भागवत कथा श्रवण पद्धति का निर्माण पौराणिकों के हितचिन्तन की दृष्टि से किया गया है। इस पद्धति में ‘कलियुग में सप्ताह श्रवण का माहात्म्य[1], नक्षत्र नामावली, मृगशिर, चित्रा, श्रुतित्रय, स्वाति, अश्विनी, पुष्य आदि[2] का उल्लेख मुहूर्त के लिये किया है। गुरु, सूर्य, चन्द्र, शुक्रवार एवं वक्ता तथा श्रोता का श्रेष्ठ चन्द्रबल, पापग्रह, दृष्टि रहित, शीर्षोदय लग्न में सप्ताहारम्भ किया जाय तथा प्रारम्भमें-ब्रह्मादि देव व नवग्रहपूजन, षोडशमातृका,सप्तमातृका, कलशादि पूजन पूर्वक, नर-नारायण, गुरु, वायु, सरस्वती, शेष, सनत्कुमार, साँख्यायन, पाराशर, वृहस्पति, मैत्रेय एवं उद्धव की पूजा तथा पृथक् पीठ पर नारद की स्थापनाविधि लिखी है—व्यासपीठ, पुस्तक एवं वक्ता की यथोपलब्ध

---

१. सप्ताहं राजसं प्रोक्तं शोभित्वाद्वहु पूजनैः
मासतुंनावाविंशाहैरेकाढ्यैः सात्विकं शुभम् ।।
समस्तानन्द हेतुत्वादधतामस मुच्यते
वर्षेणतामसं प्रोक्तभालस्यात्स्मृतिरोधकृत् ।।
निर्गुणं तु यथेच्छं स्यात् कलौ सप्ताहकं परम् ।। (वही भूमिका)

२. धर्म क्रिया मित्र मृगात्य चित्रा
श्रुति त्रये स्वात्यदितौ कराश्वे
पुष्येच सौम्येषु दिनेषु शस्ते
त्याहुमुंहूर्तागम कोबिदेन्द्राः ।। (वही)

सामग्री द्वारा पूजा, गाथा की निर्विघ्न समाप्ति के लिये, गणेशस्तव, गायत्री एवं द्वादशाक्षर जाप के लिये ब्राह्मणों का वरण कलशपर सुवर्ण की मूर्ति और उसकी पंचामृतादि स्नानपूर्वक पूजा की विधि लिखी है। श्रोता के श्रवण नियम एवं उनके बैठने के स्थान भी लिखे हैं। प्रथम पंक्ति में संयासी, द्वितीय में वानप्रस्थ, तृतीय चतुर्थ में ब्रह्मचारी, पंचम में ब्राह्मण, षष्ठ में क्षत्रिय वैश्य, सप्तम में शूद्र बैठाये जाँय। वक्ता के वाम भाग में स्त्री वर्ग बैठे अन्य समागत श्रोता दक्षिण भाग में बैठें।

प्रति स्कन्ध पर गंध पुष्पादि से पूजन तथा विराम पर द्वादशवर्ति द्वारा नीराजन एवं प्रसाद वितरण की विधि शास्त्रीय प्रमाणों के उद्धरण पूर्वक लिखी गई है।

सप्ताहक्रम—भागवत में सप्ताह का उल्लेख अवश्य है किन्तु प्रत्येक दिवस के विश्राम का कोई संकेत नहीं दिया है, सर्वप्रथम वंशीधर का ध्यान इस ओर भी गया और उन्होंने इसकी शास्त्रीय विधि ढूँढ़ निकाली, क्रम इस प्रकार है—

मनु कर्दम सम्वाद पर्यन्तं प्रथमेऽह्नि
भारताख्यान पर्यन्तं द्वितीयेऽह्नि वाचयेत्।
तृतीये दिवसे कुर्यात् सप्तमस्कन्ध पूरणम्
कृष्णाविर्भाव पर्यन्तं चतुर्थे दिवसे वदेत्॥
रुक्मिणयुद्वाह पर्यन्तं पंचमेऽह्नि शस्यते
श्री हंसाख्यान पर्यन्तं शष्ठेऽह्नि प्रवदेत्सुधीः।
सप्तमे तु दिने कुर्यात्मूर्तिर्भागवतस्य वै
एवं निर्विघ्नता सिद्धिर्विपर्यय इतोऽन्यथा॥

प्रथम दिवस——मनुकर्दम सम्वाद पर्यन्त
द्वितीय दिवस——भारताख्यान पर्यन्त
तृतीय दिवस——सप्तमस्कन्ध पर्यन्त
चतुर्थ दिवस——कृष्णाविभाव पर्यन्त
पंचम दिवस——रुक्मिणी विवाह पर्यन्त
षष्ठ दिवस—हंसाख्यान पर्यन्त

सप्तम दिवस—द्वादशस्कन्ध पर्यन्त[1]

उपर्युक्त कतिपय विशेषताओं के कारण भागवत वक्ताओं द्वारा जो महत्ता इस टीका को दी जाती है वह किसी भी टीका को नहीं। सप्ताह वाचकों के लिये अनेकानेक भावार्थ के लिए बंशीधर की इस भा०दी० टीका की विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। टीकाकार ने टीका की विशेषता में अपनी सम्पूर्ण शक्ति व्यय की है। इस प्रकार की यह एकमात्र टीका कही जा सकती है।

४. गंगासहाय

(क) **परिचय**—भारतवर्ष की भूमि में अध्यात्म तत्व इतना घुल मिल गया है जिसे पृथक् करना अत्यन्त दुरूह है, फलतः अनेक मेधावी विद्वान् यहाँ जन्म ग्रहण कर तपश्चर्या में ही जीवन व्यतीत करना उचित समझते थे। प्रसिद्ध गङ्गासहाय जरठ नामक विद्वान् ने अपने जीवन के वहुमूल्य क्षण भारती की सेवा में ही व्यतीत किये थे। गङ्गासहाय पाटण नामक स्थान के निवासी थे। यह स्थान पांडुवंशीय तोमर अनङ्गपाल के वंशज मुकुन्दसिंह के शासन में था।[2] इनके पिता रामधन थे, एवं इन्हीं के चरणों में बैठकर टीकाकार ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया था—

एतां स्व पूर्व वसति ममतात पादा
ख्यातां व्ययुर्जगति राम धनाभिधानाः ।। (अ० प्र० उप०)

इन्हें मातृ वात्सल्य से शीघ्र ही वंचित होना पड़ा था, माता लक्ष्मी नाम और कर्म दोनों से अन्वर्थ थीं, जैसा कि स्वयं टीकाकार ने लिखा है--

---

[1] व्रजस्थ विद्वान् पं० बन्ना जो निम्नलिखित क्रम को ही अधिक महत्व देते हैं—
हिरण्याक्ष वधं यावत् प्रथमेऽन्हि प्रकीर्तयेत्
चरितं भरतस्याथ द्वितीयेऽथतृतीयके
समुद्र मथनं यावद्यत्र कूर्मः स्वयं हरिः
चतुर्थे दशमे कृष्ण जन्मयावत्प्रकीर्तितम्
पंचमेन्हि पठेद्विद्वान् रुक्मिण्याहरणावधि
षष्ठे चौद्धव संवादं सप्तमेऽन्हि समापयेत्। (संग्रह से प्राप्त)

[2] श्रीपाण्डु वंश भव तोमर गोत्र इन्द्र,
प्रस्थेश्वरोऽभवदिलाभृदनंगपालः ।...............
स्थानं पुरी जयति संप्रति पाटणाख्या ।। (अन्वितार्थ प्रकाश, उपसंहार)

याग्रे सरत्वमयतेस्म दयावतीनां
सीमां च यांचति परांस्म पतिव्रतानाम् ।
मद्वाल्य एव परलोकमुपेयुषींतां
लक्ष्म्याह्वयां स्व जननीं प्रणमामि भक्त्या ।। (वही)

इनके अनुज का नाम चेतराम तथा सपत्न भ्राता विष्णुदत्त तथा हरिवल्लभ थे । इनके पुत्र का नाम रामप्रताप था । इन्होंने भागवत का अध्ययन अपने पिता से किया था—

ज्येष्ठः सुतो जडतमोऽप्यहमाशिषातै
राज्ञापितोऽजनिषिभागवतेऽनुरक्तः ।
अध्यापितश्चशनकै र्विपुलश्रमेण
प्रापं सतांपरमनुग्रह भाजनत्वम् ।। (वही उपोद्घात)

अन्य शास्त्रों का अध्ययन मेलाराम, हरिनारायण, गोविन्द राम, गोपीनाथ प्रभृति विद्वानों से किया था । इनके प्रधान शिष्यों में––संसारचन्द्र, पद्मचन्द्र प्रभृत्ति के नाम उल्लेखनीय हैं ।

कुनिहारनाथ, पूर्णदेव नृपति एवं उनके पुत्र श्रीकृष्ण सिंह नृपति इनके परम स्नेही थे । गङ्गा सहाय ने इनके प्रति टीका में कृतज्ञता प्रकाशित की है । कुछ दिवस वाघल मण्डलाधिपति के समीप भी इन्होंने व्यतीत किये थे । गणेश पुरी यतीन्द्र इन्हें बूँदी नामक स्थान में ले गये थे । उन दिनों सूर्य मल्ल नामक कवि वहाँ का राज्य कवि था । नृपति रामसिंह से सूर्यमल्ल ने गङ्गासहाय की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की । रामसिंह ने अपनी सभा में इन्हें सम्मानपूर्वक स्थान दिया । पाँच वर्ष के कार्यकाल से सन्तुष्ट होकर रामसिंह ने इन्हें प्राच्यपरम्परानुसार अमात्य पद प्रदान किया था । दस वर्ष पर्यन्त अमात्य पद पर सेवा की एवं अपनी वृद्धावस्था समोप देखकर उस पद से निवृत्त हो गये । रामसिंह एवं उनके पुत्र रघुवीरसिंह ने इनका पर्याप्त सम्मान किया था––

श्रीरामसिंह इति वुन्दि नृपेपु रत्त–
मासीदसौ जयति संप्रति कीर्ति मूर्तिः । (वही)

(ख) सम्प्रदाय––इनके सम्प्रदाय के बारे में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा मकता, क्योंकि प्रायः सभी देवताओं की स्तुति प्राप्त है, तथापि श्रीकृष्ण के सुन्दर पद्यों के आधार पर इन्हें भक्तवर वैष्णव तो माना ही जाता है तथापि विशेष सम्प्रदायाचार्य का उल्लेख न मिलने के कारण एवं युगलोपासक होने के कारण इन्हें निम्बार्क सम्प्रदाय टीकाकारों में रख दिया है ।

(ग) **स्थितिकाल**—इनके समय के बारे में अधिक विसम्वाद नहीं है, क्योंकि अपनी टीका रचने की अवस्था एवं उसका सम्वत् इन्होंने स्पष्ट लिख दिया है, अन्वितार्थ प्रकाशिका टीका सम्वत् १९५५ में रची गई थी, जैसा कि उपोद्घात पृष्ठ ३६ से स्पष्ट है--

> 'द्वीष्वङ्ग भू प्रमित विक्रम वत्सरस्य
> माघेऽभवद्धवल पक्ष उपक्रमोऽस्याः
> पंचेषु गोधरणि (१९५५) वत्सर कृष्णजन्मा—
> ष्टभ्यां मुकुन्द कृपया परिपूर्ति रासीत् ॥

यह टीका ६० वर्ष की अवस्था पूर्ण होने के उपरान्त रची गई थी। 'षष्टिः समा कुचरितैर्गमितावृथैव''[1] अतः १९५२ में ६० वर्ष घटित करने पर १८९२ विक्रम इनका जन्म सम्वत् बैठता है। इसके उपरान्त इन्होंने पर्यङ्क निवृति की रचना की होगी पर वह प्राप्त नहीं। सम्भव है वे सङ्कल्प मात्र करके ही रह गये हों और वह न लिखी गई हो :

(घ) **कृतियाँ**—(१) शत्रु शल्य टीका (२) केन-कठ-व्याख्या (३) हैम कोश (४) अन्वितार्थ प्रकाशिका-भागवत टीका (५) पर्यङ्क टीका।

'पर्यङ्क टीका' का उल्लेख भागवत टीका में कई स्थानों पर प्राप्त होता हैं। भागवत टीका में अनेक बातें वे नहीं लिख सके थे, उन्हें इस 'पर्यङ्क टीका' में रखने का विचार था—

> व्याख्यायि भागवतमन्वय वर्त्मनेदं
> वक्ष्ये पुनः स्फुट तदशय बोधनाय।
> नानामतानि विषयांश्च समासतोऽग्रे
> पर्यङ्क नाम्नि विवृतेरवशेष भागे॥ (वही उपदो०)

(ङ) **टीका वैशिष्टय-नाम**--इस टीका का नाम अन्वितार्थ प्रकाशिका है।[2] भागवत के मूल श्लोकों का अन्वय पूर्वक अर्थ लिखने के कारण ही इसका यह नामकरण किया गया है। गङ्गासहाय ने अनेक टीकाओं का अवलोकन किया किन्तु एक भी ऐसी टीका नहीं थी जिसके आधार पर भागवत का

---

[1] वही, श्लोक १०।

[2] ············**इयमन्वितार्थप्रकाशिका नाम्नी टीका निर्मिता श्रीहरेश्चरणयोरर्पिता चेति। (अन्वितार्थ प्रकाशिका-उपोद्घात)**

मूलार्थ भली भाँति बुद्धिगम्य हो सके, गङ्गासहाय ने इस कमी को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया और वे इसमें सर्वथा सफल हुए।

परिमाण—यह टीका सम्पूर्ण भागवत पर लिखी गई है।

उद्देश्य—श्रीधर स्वामी प्रभृति टीकाकारों की टीका के समक्ष इसका क्या महत्व है, इसका टीकाकार ने उत्तर दिया है—'कि अब तक मूल भागवत का अन्वय टीका के अतिरिक्त अध्ययन के आधार पर लगाया जाता था, जिसमें विद्वानों को भी अत्यन्त श्रम पड़ता था तथा वे भी अनिश्चित रहते थे।' इस अभाव की पूर्ति गङ्गासहाय ने की। यह टीका न तो अत्यन्त स्वल्प आकार में है न अत्यन्त वृहत्। भागवतोपयोगी विषयों को इसमें संजो कर रखा गया है। साथ ही पूर्व टीकाओं की सारोक्तियों को भिक्षा के रूप में ग्रहण कर लिखा है।[1]

प्रकाशन—यह टीका गङ्गा विष्णु के लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई में मुद्रित हुई थी। प्रथम बार गङ्गा विष्णु ने ही अपने व्यय से इसे प्रकाशित किया था—

'टीकामिमां निज धनव्ययतोऽखिलेषु

+ +

विष्णुर्मुकुन्द कृपयांऽचतुमङ्गलानि।' (उपोद्घात)

पण्डित पुस्तकालय काशी से १६६६ ई० में इसकी द्वितीयावृत्ति हुई है। यह भूलानुसारिणी टीका है—

गङ्गासहाय जरठोऽहमपास्त धर्मा—
चारोऽवशेष वयसि व्यथितो रुजाभिः
ऋज्वीभिरन्वित पदाभिरनायताभि—
र्वाग्भिः परं शरण याभि पुराणराजम्॥ (उपोद्घात १२)

---

[1] नन्नु पूर्वैः कृतासु वह्वीषु श्रीमद्भागवत टीकासुसतीसु किं तव टीकया दीप्यमानासु तरणि श्रेणिपुखद्योत पोतिकयैवेति चेत्सत्यम्। मया हि अन्वय क्रमेण प्रायः सर्वं श्लोकार्थं प्रदर्शिका नाति विस्तरा भागवतोपयोगि बहुविषय युक्ता अति सुगमा च टीका स्वबोधनायेवापेक्षिता…… ………तादृशीमन्यां टीकामलभमानेन प्रायः पूर्व टीकाभ्यः किंचित् किंचिद्भिक्षित्वा ईयमन्वितार्थ प्रकाशिका नाम्नी टीका निर्मिता।

(उपोद्घात)

प्राचीनाचार्यों की उक्तियां सादर ग्रहण की हैं उन्हें कोई चौर्य न समझे—

प्राचां सुवर्ण रचना परिगृह्य भिक्षां
भक्त्या तयार्चित वतः परमेशितारम्
क्षीणस्य विप्लुत मतेर्जरठस्य विज्ञा—
श्चौर्यं न कल्पयत कांचनमार्गणामे ।। (उपोद्घात १४)

इस उक्ति से इनकी निश्छलता, विनम्रता आदि गुणों का आभास प्राप्त होता है ।

शैली—(१) इस टीका में समस्त श्लोकों की व्याख्या है केवल वही श्लोक इस टीका में व्याख्या रूप में नहीं है जिनमें नाममात्र गणना है या जो अत्यन्त सरल है ।

(२) मल्लिनाथ आदि प्राचीन टीकाकारों की भांति इसमे पिण्डान्वय हैं खण्डान्वय नहीं ।

(३) टीका में से मूल पद पृथक् करके पृथक् अन्वय की भी सुविधा है ।

(४) विशेष्य सर्वदा विशेषण के उपरान्त रखा गया है ।

(५) उद्देश्य विधेय तथा यत्-तत् का पूर्ण ध्यान रखा गया है ।

(६) उपमा विषय में प्रायः एक वाक्य ही रखा है, उसके स्पष्ट व्याख्यान के लिये उपमानार्थ कहीं पृथक् कहीं एकत्र वाक्य में ही रखा है ।

(७) कठिन श्लोकों का अन्वय कहीं पृथक् भी लिख दिया है ।

(८) गूढ़ पद्यों का अर्थ विशद करने के लिए श्रीधरी टीका का अवलम्बन लिया है—

ये गूढ़तामुपगता वतनैव सूर्या—
लोकेप्यभासिषत भागवतस्य भावाः
येस्तेप्यदर्शित दीपिकयेवते मे
श्री श्रीधरा जडमते परमोऽवलम्वः ।। (उपोद्घात)

(९) पंचमस्कन्ध का गद्य अन्वय मुख ही लिखा गया है, अतः कहीं मूल पद त्याग दिये हैं ।

(१०) क्वचित् श्रीधर से अतिरिक्त मतान्तर से भी अर्थ लिखे हैं ।

(११) आह के आगे भूतकाल का द्योतन कराने के लिये 'स्म' शब्द का उल्लेख किया है ।

(१२) 'वै' इत्यादिकपादपूरणार्थ अन्वयों का प्रायः परित्याग किया गया है।

जहां एकत्र अर्थ में अन्वित बहुत से पदार्थ समुच्चित हैं तहां प्रायः प्रथम शब्द के आगे आदि शब्द का उल्लेख है। आगे जो व्याख्येय हैं उनका ही उल्लेख है, सबका नहीं। यथा–

'ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महोजसः'

यहाँ 'ऋष्यादयः' ही लिखा है, मनुदेव तथा मनुष्यों का उल्लेख नहीं है।

'चक्र शङ्खासि चर्मेषु धनुः शूलगदाधरः' इत्यादि स्थलों में चक्रादि अष्टायुधधर इतना ही उल्लेख है।

छन्दो-वैशिष्ट्य—इस टीका का यह अपना निजी वैशिष्ट्य है। इस टीका में ही प्रथम बार भागवत के मूल श्लोक जिन छन्दों में रचे गये हैं उनका विचार किया है तथा छन्दः शास्त्र के लक्षणों से उन्हें घटित करके भी दिखलाया है।

यद्यपि भागवत में अनुष्टुप श्लोक हैं तथापि इन्द्र वज्रा उपेन्द्र वज्रा-वंशस्थ इन्द्रवंशा, उपजाति, बसन्त तिलका आदि विभिन्न छन्दः भी प्राप्त हैं। श्रीमद्भागवत में विषम छन्द नहीं हैं।

छन्द तालिका

पथ्यावक्त्र	--	नैमिषेऽनिमिष क्षेत्रे	(१।१।४)
इन्द्र वज्रा	--	तन्नः परमपुण्यमसंवृतार्थम्	(१।१८।१७)
उपेन्द्र वज्रा	--	सर्वैभवान्वेदसमस्त गुह्यम्	(१।५।६)
वंशस्थ	--	नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः	(१।४।११)
इन्द्रवंशा	--	नामान्यनन्तस्यहतत्रपः पठन्	(१।६।२७)
उपजाति	—	स वा इदं विश्वममोघ लील	(१।३।३६)
बसन्त तिलका	—	यंप्रव्रजन्तमनुपेत मपेतकृत्यं	(१।१।२)
प्रमाणिका	—	हरे त्वांध्रिपंकजम्	(७।८।५१)
शालिनी	—	एवं राजाविदुरेणानुजेन	(१।१३।२८)
वातोर्मी	—	दृष्टः किन्नोदृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वम्	(४।७।३७)
स्वागता	—	वाम बाहु कृतवामकपोलो	(१०।३५।२)

द्रुतविलम्बित — निगम कल्पतरोर्गलितंफलम् (१।१।३)
भुजङ्ग प्रयातम् — अयंत्वत्कथा मृष्टपायूष नद्यां (४।७।३५)
स्रग्विणी — स्वागतन्ते प्रसीदेशतुभ्यं नमः (४।७।३६)
रुचिरा — पिवन्ति ये भगवत आत्मनः सताम् (२।२।३७)
प्रहर्षिणी — यज्ञोयंतवयजनाय केनसृष्ट (४।७।३३)
मंजुभाषिणी — जगदुद्भवस्थितिलयेषुदैवतः (४।७।३९)
मत्तमयूर — अशांशास्ते देवमरीच्यादय एते (४।७।४३)
मालिनी — तव वरद वरांध्रावाशिषेहा-खिलार्थे (४।७।२९)
मन्दाक्रान्ता — उत्पत्यध्वन्यशरणउरुक्लेश-दुर्गान्तकोग्रे (४।७।२८)
शिखरिणी — पुराकल्पापायेस्वकृत मुदरी कृत्यविकृतम् (४।७।४२)
नर्कुटकम् — जय जय जह्यजामजितदोष-गृभीत गुणां (१०।८७।१४)
शार्दूल विक्रीडित — जन्माद्यस्ययथोऽन्वया (१।१।१)
स्रग्धरा अर्द्धसमछन्द — गुर्वेर्थे त्यक्तराज्यो (९।१०।४)
वैतालीय — प्रियरावपदानिभाषसे (१०।९०।२१)
औपछन्दसिक — हृदमप्यच्युत विश्वभावनम् (४।७।३२)
पुष्पिताग्रा — इतिमतिरूपकल्पितावितृष्णा (१।९।३२)
आर्या — अजितजितः सममतिभिः (६।१६।३४)
(टीकाकार का कथन है कि उक्त श्लोक में छन्दोलक्षण सर्वात्मना घटित नहीं है पर आर्षत्वात् साधु माना जाता है।)

अपाणिनीय प्रयोग—पुराण वेद की कोटि में किं वा पंचम वेद के नाम से विख्यात हैं। उनमें आर्ष धर्म के साथ-साथ आर्ष पद, वाक्य आदि भी प्रचुर मात्रा में आयें यह स्वाभाविक है। श्रीमद्भागवत में अनेक पद पाणिनीय व्याकरण की परिधि में नहीं समा सकते। 'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' परिभाषा पूर्णरूपेण घटित है। अनेक स्थलों पर बहुलं छन्दसि का आधार लिया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नित्यदा में दाप्रत्यय, विभागशः में शस् प्रत्यय, द्वादशमम् में संख्या होने भी मट् प्रत्यय इसके उदाहरण हैं। श्रीमद्भागवत में उपग्रह नामक—परस्मैपद पर आत्मने पद का व्यत्यय अधिक संख्या में है। यथा 'धीमहि' में परस्मैपद का व्यत्यय है। 'सात्वतां पतयेनमः' षष्ठयंत से युक्त पति शब्द विकल्प से 'घि' संज्ञक हो जाता है। अतः पतये बन जाता है।

इनमें कतिपय प्रयोग जो 'आर्ष' कहकर टीकाकारों ने छोड़ दिये हैं वे—'समासान्तो विधिरनित्यः' तथा 'आगम शास्त्रमनित्यम्' आदि से सिद्ध हो जाते हैं। शेष प्रयोग पाणिनीय वैदिक प्रक्रिया के आधार पर सिद्ध किये जा सकते हैं। ऐसे प्रयोग प्रसिद्ध काव्यादिकों में प्रयुक्त नहीं किये गये और न सीधे व्याकरण के नियम ही उनमें परिलक्षित होते हैं, अतः आर्ष के नाम से लिखे जाते हैं।

* * *

अध्याय षष्ठ

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१. वल्लभाचार्य
२. विट्ठलनाथ
३. पुरुषोत्तम
४. गिरधरलाल
५. किशोरीप्रसाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Ghandigarh

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१. वल्लभाचार्य

(क) **परिचय**—भागवत के टीकाकारों में वल्लभाचार्य का नाम सर्वोपरि कहा जा सकता है। वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था, अतः जगद्गुरु के पद पर इन्हें आसीन किया गया। 'काँकरौली का इतिहास'[1] ग्रन्थ एक प्रामाणिक ग्रन्थ है, इसके अनुसार वल्लभाचार्य का परिचय यहाँ दिया जा रहा है—

श्रीमद्वल्लभाचार्य के पिता लक्ष्मण भट्ट जी 'काँकरवाड़' नामक ग्राम के निवासी थे। यह ग्राम तैलङ्ग देश में गोदावरी नदी के किनारे स्थित है। ये भारद्वाज गोत्री तैलङ्ग ब्राह्मण थे। तीर्थयात्रा प्रसङ्ग से काशी में आकर बस गये थे। काशी में निवास करते हुए एक दिन लक्ष्मण भट्ट ने सुना कि—काशी पर यवन सेना का आक्रमण होने वाला है। अतः वे भागने की चिन्ता में व्यस्त हो गये।

तत्कालीन इतिहास से ज्ञात होता है कि उस समय दिल्ली में बहलोल लोदी नामक बादशाह राज्य कर रहा था। काशी उस समय 'दशनामी' साधुओं का दृढ़ गढ़ था, अतः उन्होंने यवनों से मोर्चा लेने का सङ्कल्प कर लिया था। सेना के आजाने पर नगर निवासियों को काशी को त्याग कर भाग जाना पड़ा। मार्ग की अनेक आपत्तियों का सामना करते हुए लक्ष्मण भट्ट तथा उनके साथी सं० १५३५ वैशाख कृष्ण एकादशी के दिन सायंकाल के समय रायपुर (मध्यप्रदेश) जिला के चम्पारण्य नामक जङ्गल में से होकर जाने लगे। उपद्रव की आशङ्का तथा मार्ग के कष्टों के कारण गर्भवती इलम्मा गारू के उदर में पीड़ा होने लगी। एवं एक विशाल वृक्ष के नीचे उनके अष्टम मासिक गर्भ से एक बालक उत्पन्न हुआ। घोर अन्धकार में शिशु को मृतवत् जानकर पत्तों के ढेर से उसे आच्छादित कर बड़े कष्ट के साथ वे अपने साथियों से

---

[1] **काँकरौली का इतिहास——ले० कण्ठमणि शास्त्री, प्र० सा० विद्या विभाग काँकरौली, सम्वत् १९९६ द्वितीय भाग। यह इतिहास ग्रन्थ श्री १००८ गोस्वामी ब्रजभूषणलाल जी महाराज काँकरौली की अध्यक्षता में लिखा गया है। गोस्वामी जी आचार्य वल्लभ के वंशज हैं।**

चौड़ा नगर में जा मिले। भोजनादि के उपरान्त काशी में शान्ति का समाचार मिला, उसे सुनते ही एक समुदाय काशी व द्वितीय दक्षिण की ओर चल दिया।

श्री लक्ष्मण भट्ट भी काशी की ओर चल दिये एवं गतरात्रि से स्थल पर अपने बालक को देखने की लालसा से वे वहाँ शीघ्र पहुँच गये। उस स्थान पर एक अतिशय सुकुमार तेजस्वी बालक को देखा जो अपने अंगुष्ठ को मुख में रखकर चूस रहा था। वृक्ष के अधस्तन भाग को छोड़कर चारों ओर रात्रि को लगी हुई दावाग्नि से सभी व्यक्तियों को बड़ा विस्मय हुआ। प्रेम से उन्होंने बालक को उठाकर छाती से लगाया।[1] बालक की शारीरिक चेष्टा तथा सामुद्रिक चिन्ह के द्वारा लक्ष्मण भट्ट को निश्चय हो चुका था कि यह बालक अवश्य होनहार पुरुष है। वे पुनः चौड़ा नगर वापिस आये और यहाँ जातकर्म संस्कार किया।

संस्कार और शिक्षा—नामकरण संस्कार में पिता ने सर्वप्रिय होने के कारण बालक का नाम श्री वल्लभ रखा। कुछ दिवस उपरान्त लक्ष्मण भट्ट काशी में आ गये एवं कृष्णदास द्वारा व्यवस्थित उसी पुराने मकान में निवास करने लगे। चार पांच वर्ष की वय होने पर वल्लभ का अक्षरारम्भ किया गया। वल्लभ ने कुछ ही वर्षों में अपना प्रारम्भिक अध्ययन समाप्त कर लिया। धीरे-धीरे संस्कृत साहित्य का अच्छा ज्ञान इन्हें हो गया था। पंडित इनकी बुद्धि से प्रभावित होते और इन्हें बाल-सरस्वती, वाक्पति, वैश्वानरावतार आदि विशेषणों से सम्बोधित करते थे।

उपनयन—लक्ष्मण भट्ट ने इनका वैदिक संस्कार करना चाहा तथा सम्वत् १५४३ चैत्र शुक्ल नवमी के दिन वल्लभाचार्य का उपनयन संस्कार किया गया।[2] वल्लभ ने ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही अपनी कुशाग्र बुद्धि के

---

[1] वल्लभाचार्य चरित-पत्र ७-में प्रसिद्धि का नाम, दैवनाम—कृष्णप्रसाद मास नाम—जनार्दन नक्षत्र नाम—श्राविष्ट, लिखा है।

[2] (क) वल्लभ नामावली 'तदीय सर्वस्व' में ५ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत होने का उल्लेख है।

(ख) सम्प्रदाय प्रदीप तथा सम्प्रदाय कल्पद्रुम में आठवीं वर्ष में यज्ञोपवीत होना लिखा है।

दोहा—पेख मुहूरत श्रेष्ठ जब श्रीलक्ष्मण द्विजराय।
किय उपनयन जु वेद विधि ज्ञातिमध्य हरषाय॥
अब्द नैन-फल-तत्व भू (१५४२) रामजन्म तिथि पाय।
कृष्णदास सेवक भयेहु तिहिं क्षण भूपति आय॥
अष्टम वर्ष अषाढ़ सित दूज पुष्य गुरुवार।
पढ़न गये गुरु गेह को पितु आयसु उर धार॥

(ग) वल्लभ चरित्र में भी आठवीं वर्ष का उल्लेख है।

वल से वेद, वेदान्त, षट् शास्त्र और आवश्यक पुराणों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वल्लभ ने लक्ष्मण भट्ट से वेदाध्ययन, तिरुमल से अंगाध्ययन, नारायण दीक्षित से व्याकरणादि का अध्ययन, माधवेन्द्र मुनि से मीमांसा का अध्ययन एवं सन्यास दीक्षा ग्रहण की थी। वल्लभ की ११-१२ वर्ष की अवस्था में ही लक्ष्मण भट्ट दिवंगत हो गये। यह वियोग वल्लभ को वेंकटाद्रि नगर में वैशाख कृष्ण नवमी सं० १५४६ में प्राप्त हुआ।[1]

प्रख्याति—विद्याध्ययन के पश्चात् वल्लभ काशी की सभाओं में विद्वानों से शास्त्रार्थ करने लगे थे। वे शास्त्रार्थ में शुद्धाद्वैत-सिद्धान्त स्थापित करते थे। १५४५ सम्वत् में वल्लभाचार्य ने जगदीश पुरी के शास्त्रार्थ में भाग लिया था। मायावादी पंडितों से पराजित विद्वान् एकत्रित होकर वल्लभ के समीप आये और शास्त्रार्थ के लिय वल्लभ को उत्सुक देखकर वहां के राजा की अनुमति ग्रहण कर शास्त्रार्थ सभा का आयोजन किया। वैदिक सिद्धान्त पर शास्त्रार्थ हुआ और उसमें वल्लभ की विजय हुई। अन्त में राजा ने चार प्रश्न पूछे जो इस प्रकार थे—

१. मुख्य और प्रामाणिक शास्त्र कौन है ?
२. मुख्य और प्रामाणिक देवं कौन है ?
३. कौन सा मन्त्र फलदायक है ?
४. सवसे सदल और उत्तम कर्म क्या है ?

इस पर वल्लभ ने भक्तिमार्ग के अनुसार उत्तर दिया जिसे मायावादियों ने स्वीकार नहीं किया एवं जगदीश की अनुमति पर निर्णय किये जाने की घोषणा की। खाली कागज कलम और स्याही जगदीश के मन्दिर में रख कर थोड़ी देर बाद पट खोले गये, कागज पर एक श्लोक लिखा मिला।

एकं शास्त्रं देवकी पुत्र गीतं
एको देवो देवकी पुत्र एव
मन्त्रोऽप्येक स्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥

इस पर विश्वास न करने पर पुनः जगदीश के मन्दिर में कागज रखा गया और इस बार यह श्लोक लिखा मिला—

---

[1] (क) वल्लभ पत्रिका-मथुरा अंक, प्रथम में मृत्यु सं० १५४० लिखा है।
(ख) भागवत गुजराती भाषा-भूमिका, पृष्ठ ३० में सं० १५४८ में बालाजी नामक स्थान में पितृवियोग माना है।

य: पुमान् पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसम् ।
य: पुमानीश्वरं द्वेष्टि तं विद्यादन्त्यजोद्भवम् ।।

इसे पढ़कर राजा के क्रोध की सीमा न रही, उसने वादी पंडित को तिरस्कृत कर बाहर निकलवा दिया एवं वल्लभ को विजय माला पहनाकर भेंट चढ़ाई ।[1] वल्लभ ने समस्त भारत का परिभ्रमण किया । अवन्ती में नरोत्तम नामक विद्वान् को अपना पुरोहित बनाया तथा सांदीपनी आश्रम में ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ किया । इसके पश्चात् 'घटसरस्वती' नामक तान्त्रिक विद्वान् से शास्त्रार्थ किया । यह विद्वान् शास्त्रार्थ के मध्य में एक घट रखा करता था एवं अपने पक्ष की पुष्टि उसके द्वारा यह करवा लिया करता था । १५४७ सं० में ओरछा में वल्लभाचार्य का इससे शास्त्रार्थ हुआ तथा वह पराजित हो गया । यहां वल्लभाचार्य का कनकाभिषेक सम्पन्न हुआ । प्रताप वंश वर्णन में भी इस घटना का उल्लेख किया गया है ।[2] सम्वत् १५४९ में वल्लभ ने व्रज में पदार्पण किया । १५५० श्रावण शुक्ल ११ को अर्द्ध रात्रि में भगवान ने साक्षात् प्रकट होकर ब्रह्म सम्वन्ध की दीक्षा का उपदेश दिया और भक्ति के द्वारा अपनी प्राप्ति का उपाय वतलाया । वल्लभ ने सर्वप्रथम दामोदरदास को आत्मनिवेदन (ब्रह्म सम्बन्ध) की दीक्षा दी थी । वल्लभाचार्य की ब्रजयात्रा में दो घटनाएं उल्लेखनीय हैं--

(१) मथुरा के विश्राम घाट से यन्त्र का हटाना । इस यन्त्र के नीचे

---

१. (क) गोपीनाथ जी का हस्तलिखित पत्र, जगन्नाथपुरी से प्राप्त श्री व्रजभूषण लाल जी महाराज काँकरौली नरश के पास सुरक्षित ।

(ख) निज वार्ता प्रसंग १५ में राजा का नाम भोजदेव लिखा गया है ।

(ग) सम्प्रदाय कल्पद्रुम में सम्वत नहीं लिखा है—

गंगासागर होयकें भुवनेश्वरहिं निहार,
दर्शन कर जगदीश के भूप प्रश्न उरधार ।
उत्तर श्री जगदीश सो लेख कराय दिवाय,
मायावादी द्विजन सों विजय पत्र नृप पाय ।।

२. राम भद्रो यदा राजा राजते वै स्वपत्तने,
तदा श्री वल्लभाचार्यः कृपया तु समागतः ।
प्रसन्नेत तदा राज्ञा सुवर्णेनाभिषेचितः ।।

प्रतापवंश वर्णन, पृष्ठ ४६, श्लोक २५-४७ । इस ग्रन्थ में श्लोक २६ से ३६ पर्यन्त घटसरस्वती के शास्त्रार्थ का वर्णन है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से निकलने वाले व्यक्तियों की चोटी हट जाती थी एवं डाढ़ी आ जाती थी। वल्लभ ने दिल्ली दरवाजे पर एक ऐसा यन्त्र लगाया जिसके नीचे निकलने पर चुटिया लग जाती थी। दिल्ली के बादशाह की अनुमति से दोनों स्थानों से यन्त्र हटवा दिये गये।

(२) दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी को जब वल्लभाचार्य की महानुभावता का परिचय मिला, तो उसने 'होंनहार' नामक प्रसिद्ध चित्रकार को उनका चित्र बना लाने को गोकुल भेजा। वह जब-जब वल्लभ का चित्र बनाता तब-तब पर्याप्त भेद निकलता। अन्त में जब वह वल्लभ के चरणों में गिर पड़ा तब उनके आदेश से वह चित्र बना पाया।[1]

विजयनगर का शास्त्रार्थ—विद्यानगर के महाराजा कृष्णदेव राय ने अपनी राजधानी में पंडितों की सभा बुलाई थी उसमें वल्लभाचार्य गये और उन्हें उच्च स्थान दिया गया। कृष्णदेव की रानी माध्व मतानुयायिनी थीं वे कृष्णदेव को भी इस सम्प्रदाय में दीक्षा दिलवाना चाहती थीं। इस पर अद्वैतवादियों का शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। राजा ने घोषणा की कि विजयी पक्ष का मैं सेवक बनूँगा, वल्लभाचार्य ने अपने सिद्धान्त की विजय की और राजा ने उनसे दीक्षा ली।[2] राजा ने १००० स्वर्ण मुद्राएँ सोने के थाल में रखकर भेंट कीं। आचार्य ने उनमें से केवल ७ मुहरें लीं। यात्रा प्रसंग में द्वारकापुरी तथा बदरीनाथ में भी शास्त्रार्थ किये। सम्वत् १५७६ वैशाख शुक्ल ३ को श्रीनाथ जी का मन्दिर बन कर तैयार हुआ, इस मन्दिर का निर्माण पूर्णमल्ल खत्री ने करवाया था। कृष्णदास को अधिकारी तथा कुम्भनदास को कीर्तनियां नियुक्त किया था। वल्लभाचार्य को दस सेव्य स्वरूप मिले, उन्हें योग्य वैष्णवों को दे दिया।

विवाह और सन्तति—सम्वत् १५६०-६१ में श्री वल्लभाचार्य ने अपना

---

[1] १. कृष्णगढ़ के राजमन्दिर में—यह चित्र सेवा में विद्यमान है, प्रथम चित्र काँकरौली में है।

[2] २. (क) वल्लभ चरित्र, पृष्ठ २६।

(ख) सम्प्रदाय प्रदीप, पृष्ठ ५६ में वल्लभाचार्य का शास्त्रार्थ के सातवें दिवस आने का उल्लेख है।

(ग) वल्लभीय सर्वस्व, पृष्ठ १० में लिखा है कि शास्त्रार्थ ६ मास पूर्व से चल रहा था, विष्णु स्वामी की गद्दी पर विल्वमंगल द्वारा तिलक किये जाने का उल्लेख है।

विवाह किया। उनके श्वसुर का नाम मधुमङ्गल, सास का नाम अनिम्मा, पत्नी का नाम महालक्ष्मी था। वल्लभाचार्य के प्रथम पुत्र गोपीनाथ का प्राकट्य सं० १५६८ आश्विन कृष्ण १२ को हुआ। द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ का प्राकट्य १५७२ सं० पौष कृष्ण ६ को हुआ। गोपीनाथ जी का सं० १६२० में नित्य लीला में प्रवेश हुआ था।

कृष्ण चैतन्य से सम्मिलन—एक बार जगन्नाथपुरी में चैतन्य महाप्रभु से मिलाप होने पर दोनों आचार्यों में बड़ा प्रेमपूर्ण वार्तालाप हुआ। एक दूसरे को भगवद्रूप मानने लगे थे। एक बार चैतन्य महाप्रभु के पधारने पर वल्लभाचार्य ने उन्हें भोजन करवाया था। उल्लेखनीय बात यह थी कि उस समय ठाकुर जी का भोग नहीं लगा था, बिना भोग की वस्तु वे अर्पण नहीं करना चाहते थे किन्तु चैतन्य के हृदय में भगवान् का निवास मान कर उन्हें अर्पित किया गया। इसका प्रभाव दोनों की शिष्य मण्डली पर अच्छा पड़ा था।

'अडैल' नामक ग्राम में स्थायी निवास बनाकर ये कुछ दिन पश्चात् चरणाट (चुनार) नामक स्थान में चले गये एवं वहाँ से काशी आये। यहाँ वैदिक मत का शास्त्रार्थ पत्रों में किया गया था, अतः वह पत्रावलम्बन नाम से प्रसिद्ध हुआ। पत्रावलम्बन के उपसंहार में इसका संकेत दिया है—

काशीपति स्त्रिलोकेशो महादेवस्तु तुष्यतु
कस्यचित्त्वथ सन्देहः समां पृच्छतु सर्वथा ॥
न भयं तेन कर्तव्यं ब्राह्मणानामियं गतिः
डिंडिस्तु वादितो द्वारि बिश्वेशस्य मयात्रहि
विद्वद्भिः सर्वथा श्राव्यं ते हि सन्मार्ग रक्षकाः ॥

भारतवर्ष में इनके भागवत पारायण के ८४ स्थान हैं, जो 'बैठक' नाम से प्रसिद्ध हैं। सं० १५८७ में वल्लभाचार्य अडैल से प्रयाग आये और यहां नारायणेंद्र तीर्थस्वामी से सविधि दीक्षा ली। सन्यास लेकर काशी चले आये और वहां हनूमान घाट पर निवास करने लगे वहाँ एक मास से अधिक योग किया तथा नित्य लीला पधारने का समय निकट आया जानकर इनके दोनों पुत्र तथा कई शिष्य दर्शनार्थ काशी आये और उन्होंने अपने कर्त्तव्य के विषय में उनसे आज्ञा माँगी।

(**ख**) **सम्प्रदाय** - श्रीमद्वल्लभाचार्य शुद्धाद्वैत मतवाद के प्रसारक हैं। वैदिक साहित्य से अनुप्राणित भारतीय धर्म, सदाचार संस्कृति के मौलिक सिद्धान्त प्रतिपादक अमर भारती के वाङ्मय विश्व में तात्विक चिन्तनात्मक रूप में 'शुद्धाद्वैत सिद्धान्त' और अनुष्ठानात्मक रूप में भक्ति मार्गान्तर्गत 'पुष्टि

मार्ग' का सिद्धान्त अपना एक गौरवपूर्ण अधिष्ठान रखता है, जिसमें आसुरी वृत्तियों से बचकर दैवी सम्पत्ति के अनुगामी जीवों को स्व-स्वरूप ज्ञान, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का अववोध और अभ्युदय निःश्रेयस के साथ परमानन्दमय स्थिति प्राप्त का प्रतिपादन किया गया है ।

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादन का यह एक मौखिक युग था, जब श्री वल्लभाचार्य ही उसके एक मात्र प्रतिपादक और अनुगामी थे । वल्लभ के सतत प्रयत्न से वैदिक सिद्धान्त के रूप में अद्वैत के ऊपर शुद्धाद्वैत का प्रकाश छाने लगा । सर्वशास्त्रों की समन्वय पद्धति ने विद्वत्समाज में आदर पाया और श्री वल्लभाचार्य इस सिद्धान्त के प्रथम संस्थापक माने जाने लगे । इस शुद्धाद्वैत-वाद का निरूपण प्रथम श्री कृष्णदेव की विद्वत् सभा में हुआ था, वैष्णव सिद्धान्त की विजय वैजयन्ती वल्लभ द्वारा यहीं फहरायी गयी और कनकाभिषेक के साथ उन्हें जगद्गुरु की उपाधि मिली ।[1] यह मतवाद विष्णु स्वामि से सम्वन्धित है । अतः वल्लभाचार्य को विष्णु स्वामि सम्प्रदाय का उद्धारक भी कहा जाता है । विष्णु स्वामी की शिष्य परम्परा[2]—

विष्णु स्वामी
|
वित्वमङ्गल
|
श्रीकान्त मिश्र
|
सत्ववोधि पण्डित
|
नरहरि
|
× ×
|
वल्लभाचार्य

वल्लभाचार्य ने उक्त मत में अपने पुष्टि मत का स्थान पृथक् रखा है जो किसी अन्य सम्प्रदायाचार्य की देन नहीं अपितु श्रीमद्वल्लभाचार्य की ही मौलिक प्रतिभा की देन है ।

(ग) **स्थितिकाल**—वल्लभाचार्य के जन्म सम्वत् के बारे में दो मत प्रचलित हैं । एक के अनुसार इनका जन्म १५२६ विक्रम द्वितीय के अनुसार

---

[1] शुद्धाद्वैत पुष्टि संस्कृत वाङ्मय, पृष्ठ २ ।

[2] वल्लभ दिग्विजय द्वितीय अवच्छेद ।

१५३५ वि० है। सं० १५२६ का उल्लेख सर्वप्रथम 'कल्लोल' नामक ग्रन्थ में मिलता है। द्वितीय उल्लेख सरस्वती भण्डार काँकरौली में सुरक्षित एक पत्र में है। पत्र में उनके पूर्वजों का परिवार का एवं लीला प्रवेश का भी उल्लेख है--

श्री वल्लभाचार्य कुलक्रमोऽयं, यज्ञनारायणः ततोगंगाधरः सोमयाजी, ततोगणपतिः सोमायजी ततोवल्लभः भट्टः, ततो लक्ष्मणः भट्टाः तत्कुलतिलकाः श्री ५ श्री वल्लभाचार्याः तेषां प्रादुर्भावः सं० १५२९ वर्षे वैशाख वदी ११ शनौ पूर्व भाद्र पदे, मेष संक्रान्ति गतांश ८, तत्र शुभ दिने रात्रिगत घटी ६, पल ४४ अस्यां शुभवेलायां श्री वल्लभाचार्य प्रादुर्भावः श्री चंपारण्य देश मध्ये चौड़ा ग्रामे भागीरथी तटे प्रादुर्भावः। श्री मातृ चरणानां नाम 'इल्लम्माजीति' प्रभूणां-स्थितिः वर्ष ५६, सन्यास ग्रहण सं० १५८६ आषाढ़ सुदि २ लीला तिरोधानं, सन्यासानन्तरं दिन ४२ स्थितिः श्री प्रभूणां भ्राता केशवपुरी नाम रामकृष्ण भट्टः, नारायण भट्टः। (कांकरौली का इतिहास भाग २ पृष्ठ २०)

सम्वत् १५३५ का उल्लेख निम्नलिखित ग्रन्थों में है। (वही पृष्ठ १९) अतः सम्वत् १५३५ मानना अधिक उपयुक्त है।

१. वल्लभ दिग्विजय   २. सम्प्रदाय प्रदीप
३. सम्प्रदाय कल्पद्रुम   ४. वंशावली[1]
५. प्राचीन श्लोक[2]   ६. निजवार्ता
७. द्वारकेश गो० रचित कीर्तन   ८. अधिकांश प्रसिद्धि
९. जन्मपत्री।

(घ) **कृतियां**—आचार्य चरण ने शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के प्रकाशन के लिये जो ग्रन्थ लिखे उनसे उनके अगाध पाण्डित्य का पता लगता है। उनमें सरल किन्तु गम्भीर भाषा में वेद-वेदान्त-पुराणों का सार भरा हुआ है। अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिये वे "प्रस्थान चतुष्टय" को प्रमाण मानते थे। उनके प्रधान ग्रन्थों के नाम निम्नलिखित हैं—

---

[1] ब्रजभूषण जी गोस्वामी रचित-

सम्वत् पन्द्रह सै वरस पैंतीसा वैसाख
कहि शुभ तिथि एकादशी प्रकट अंधेरे पाख॥

[2] अब्दे पाण्डव वन्हि वाण कुमिते (१५३५) राधेऽसिते कादशी
वस्वक्षार्के ववे शुभे वृषशनौ राहौ च खे ज्ञे सुते।
कर्कंगारगुरावलावजरवौ कुम्भें सचन्द्रे कवौ
श्रीमद् वल्लभ नाम धाम जगदुद्धारार्थमेचाजनि॥
(वृहत्स्तोत्र सरित्सागर, भाग २)

१. षोडष ग्रन्थ, जिनमें सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है।[1]

२. पुरुषोत्तम सहस्र नाम–इसमें भगवान का एक सहस्र नाम भागवत लीलाओं के आधार पर रखे गये हैं।

३. न्यासादेश–गीता के "सर्वधर्मान् परित्यज्य" श्लोक का संक्षिप्तार्थ इसमें रखा गया है—

न्यासादेशेषु धर्म त्यजनवचनतोकिंचनाधिक्रियोक्ता,
कार्पण्यं वागमुक्तं मदितर भजनापेक्षगं वा व्यपोढम्।
दुःसाध्येच्छोद्यमौ वा क्वचिदुपशमिता वन्य संमेलने वा
ब्रह्मास्त्र न्याय उक्तस्तदिह न विहतो धर्म आज्ञादि सिद्धौ ॥

(४) परिवृढाष्टक, इसमें ८ अष्टक हैं–नन्दकुमाराष्टक, कृष्णाष्टक, मधुराष्टक, कृष्णप्रेमामृताष्टक, गिरिराजधार्यष्टकादि, पंचश्लोकी, शिक्षाश्लोक, कृष्णजन्म पत्रिका।

(५) गायत्री मन्त्र भाष्य।

(६) श्रुतिगीता।

(७) वेद वल्लभ–जटा शङ्कर शास्त्री ने र्बलिन की लाइब्रेरी में सुरक्षित लिखा है।

(८) त्रिविध लीला नामावली।

(९) पूर्वमीमांसा भाष्य–भावार्थ पाद पर्यन्त

(१०) पूर्वमीमांसा कारिका

(११) बृहद्भाष्य—यह भाष्य ब्रह्म सूत्रों पर लिखा गया है, आंशिक रूप में सरस्वती भवन कांकरौली में शुद्धाद्वैत बन्ध ४५-२४ पर विद्यमान है। इसकी पुष्पिका में अणुभाष्य का उल्लेख नहीं है—

'इति श्री मत्कृष्णद्वैपायन मति वर्ति–
श्री वल्लभाचार्य विरचिते ब्रह्मसूत्र श्री–
मद्भाष्ये तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः।'

इस भाष्य का नाम 'तत्त्व सूत्र भाष्य' था। श्री विट्ठलनाथजी ने सर्वोत्तम स्तोत्र में आचार्य का एक नाम 'तत्वसूत्र भाष्य प्रदर्शकः' लिखा है। बृहद तथा अणु दोनों भाष्यों को इनके पुत्र श्री विट्ठलनाथ ने पूर्ण किया था।

---

[1] १६ ग्रन्थों के नाम ये हैं—यमुनाष्टक, बालबोध, सिद्धान्त मुक्तावली, पुष्टि प्रवाह–मर्यादा भेद, सिद्धान्त रहस्य, नवरत्न स्तोत्र, अन्तःकरण प्रबोध, कृष्णाश्रय, स्तोत्र, चतुःश्लोकी, भक्तिवर्द्धनी, जलभेद, पंचपद्यानि, संन्यास निर्णय, निरोध लक्षण, सेवाफल, विवेकधैर्याश्रय।

(१२) अणु भाष्य-- यह बृहद्भाष्य का संक्षिप्त रूप है अणु नाम जीव का है, उसे अधिकृत कर बनाये जाने के कारण इसका नाम अणुभाष्य रखा गया था। तृतीयाध्याय के द्वितीय पाद ३४वें सूत्रपर्यन्त की व्याख्या वल्लभाचार्य कर पाये थे[1], शेष भाग या तो उपलब्ध ही नहीं या रचा ही नहीं गया। अणुभाष्य के अन्त में वल्लभाचार्य को ग्रन्थ समर्पित किया गया है।[2]

(१३) तत्वदीप निबन्ध तथा प्रकाश टीका--इस निबन्ध ग्रन्थ में तीन प्रकरण हैं--

शास्त्रार्थ प्रकरण—प्रमाण बल के आधार पर शास्त्रार्थ का विवेचन इसमें किया गया है—'प्रमाण बल माश्रित्य शास्त्रार्थों विनि रूपितः' शास्त्र का अर्थ भगवत्स्वरूप है। भागवत शास्त्र लक्ष्य-सर्ग विसर्गादि स्वरूप का साक्षात्कार कराना है। पुराण के लक्षणानुसार भागवत में सर्ग विसर्गादि दस लीलाओं का वर्णन है। प्रथम स्कन्ध में अधिकारी तथा द्वितीय स्कन्ध में साधन तृतीय स्कन्ध में सर्ग का वर्णन है। सर्ग-भगवान की प्रथम लीला है। विसर्ग-सृष्टि में जीवों की मुख्यता है। अतः धर्मादि पुरुषार्थ का वर्णन चतुर्थ-स्कन्ध में है। पुरुषार्थ सिद्ध पुरुषों को तत्तत् मर्यादा के साथ स्थापित करना स्थान है, इसका विवेचन पंचमस्कन्ध में किया गया है।

पोषण–मर्यादा स्थित जीवों में से किन्हीं पर अनुग्रह (पुष्टि) करना षष्ठ स्कन्ध में वर्णित है।

ऊती–जो पुष्ट हैं उनके वैशम्य दोष की निवृत्ति के लिये वासनाओं का निरूपण सप्तम स्कन्ध का अर्थ है।

मन्वन्तर–वासना की निवृत्ति के लिये जिन सद्धर्मों की आवश्यकता है वे अष्टम स्कन्ध में वर्णित हैं।

ईशानुकथा–निर्दोष सद्भक्तों का चरित नवमस्कन्ध में वर्णित है।

निरोध–भक्तों का निरोध (आसक्ति) भगवान् में ही होता है, अतः दशम स्कन्ध में उनके स्वरूप बोधनार्थ कृष्ण के चरित्रों का निरूपण किया गया है।

मुक्ति–आसक्त जीवों की स्वरूप व्यवस्थिति रूप मुक्ति का वर्णन एकादश स्कन्ध में वर्णित है।

आश्रय–व्यवस्थित भक्तों का आश्रय द्वादशस्कन्धार्थ है।

---

[1] **अणुभाष्य रश्मि–गोपेश्वर कृत ३।२।३४।**

[2] **श्री मदाचार्य चरणाम्बुजे निवेदितस्तेन तुष्टा भवन्तु मयि ते सदा।'**
(अणुभाष्य उपसंहार)

शास्त्रार्थ--प्रकरणार्थ, स्कन्धार्थ, अध्यायार्थ का प्रतिपादन इस निबन्ध में है, अन्य तीन वाक्य, पद, अक्षरों का अर्थ सुबोधिनी में है।

अध्याय विवेचन--वल्लभाचार्य ने प्रत्येक स्कन्ध में अध्यायों की संख्या में हेतु का प्रतिपादन किया है। यथा प्रथम स्कन्ध में १९ अध्यायों में अधिकारी की संगति स्थिर करते हुए उसके तीन भेद किये हैं—

अधिकारी

साधारण (अ० १–३)
मध्यम (अ० ४–६)
उत्तम (अ० ७–१९)

साधारण अधिकारी का निरूपण तीन अध्यायों में हुआ है। प्रथम में श्रोता की जिज्ञासा, वक्ता की श्रेष्ठता, द्वितीय में श्रोता का निर्मत्सरत्व, वक्ता का चातुर्यत्व, तृतीय में श्रोता की श्रवण प्रीति-वक्ता का गुह्यज्ञानत्व वर्णित है।

मध्यमाधिकारी में—श्रोता वक्ता को भगवत्कृपा प्राप्ति, भगवदीयत्व, तथा भगवदेकत्व का निरूपण है। उत्तमाधिकारी में-७ से १९ पर्यन्त, दो चरण, दो हस्त, दो जानु, दो बाहू, दो स्तन, एक हृदय, एक शिर अंग तथा अंगी रूप से एक मिलाकर १३ अध्याय हैं। तीन अधिकारी होते हैं अतः तीन ही प्रकरण इस स्कन्ध में हैं।

द्वितीय स्कन्धार्थ--साधन निरूपण। इसमें तीन प्रकरण हैं--एक से दो अध्याय पर्यन्त तत्व ध्यान, तीन से चार हृत्प्रसाद, पांच से दस मनन। तत्व ध्यान में-स्थूल तथा सूक्ष्म ध्यान का वर्णन, हृत्प्रसाद में-श्रोता वक्ता के हृत्प्रसाद का वर्णन, मनन में-उत्पत्ति और उत्पत्ति भेद हैं। जनन-समागम प्राकट्य उत्पत्ति के तथा उपपत्ति के भेद हैं, अतः मनन ६ प्रकार का है। जड़ से जनन, जीव से समागम, परमात्मा से प्राकट्य होता है। अतः इस स्कन्ध में दस अध्याय हैं।

तृतीय स्कन्ध में सर्ग लीला का निरूपण ३३ अध्यायों में किया गया है। सृष्टि के द्वैविध्य के कारण मुख्य प्रकरण भी दो हैं—

सर्ग लीला

लौकिक सर्ग (१-१९) (वन्य सृष्टि)
अलौकिक सर्ग (२०-३३) (मुक्ति सृष्टि)

वन्ध सृष्टि मे ५ अवान्तर प्रकरण हैं, अध्याय १–६ में गुणातीत,

अध्याय ७–९ में सगुण सृष्टि, अध्याय १०–११ में काल सृष्टि, १२ में तत्व सृष्टि, और १३–१९ में जीव सृष्टि उपोदघात है।

मुक्ति सृष्टि में ५ भी अवान्तर प्रकरण हैं। अध्याय २०-२४ में तत्व मुक्ति, अध्याय २५ में काल मुक्ति, अध्याय २६-२७ में गुणातीत मुक्ति, अध्याय २८ में सगुण मुक्ति, अध्याय २९–३३ पर्यन्त जीव मुक्ति का वर्णन है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में १२ आदित्य, ११ रुद्र, ८ वसु, १ इन्द्र, १ प्रजापति का उल्लेख है। अर्थात् ३३ देवगणों की सृष्टि के कारण भी इस स्कन्ध में ३३ अध्याय हैं। लौकिक सृष्टि में २८ तत्व, ४ भूत बीज, १ काल = ३३ का उल्लेख है। इस कारण भी इस में ३३ अध्याय हैं।

चतुर्थ स्कन्ध (विसर्ग)–इसमें चार प्रकरण तथा ३१ अध्याय हैं।

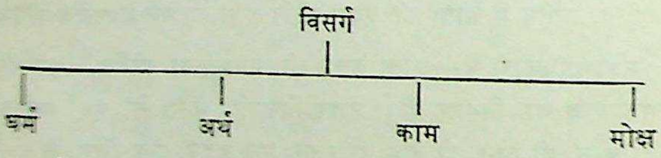

धर्म प्रकरण—१-७ अध्याय। इसमें अग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, अतिरात्र, आप्त, अर्याम, वाजपेय सात धर्मों का वर्णन है।

अर्थ प्रकरण—८–१२ अध्याय। इसमें साधन, साध्य, मनूपदेश–दोष निवृत्ति तथा फल प्राप्ति का वर्णन है।

काम प्रकरण—१३-२३ अध्याय। इसमें पृथिवी–सर्वकाम–स्वकाम नाम के ३ अवान्तरण प्रकरण हैं।

मोक्ष प्रकरण—२४-३१ अध्याय। इसमें ५ अध्याय से ब्रह्म भाव तथा ३ अध्याय से सायुज्य का निरूपण है।

"विसर्गः पौरुषः स्मृतः" विसर्ग भगवन्नाम माहात्म्य का ज्ञापक है। माहात्म्य ज्ञापन पुरुषार्थ चतुष्टय के दान से विदित होता है। अतः चारों पुरुषार्थों के निरूपण के हेतु इसमें चार प्रकरण माने गये हैं।

पंचम स्कन्ध (स्थान)—इस स्कन्ध में २६ अध्याय हैं और दो प्रकरण हैं—

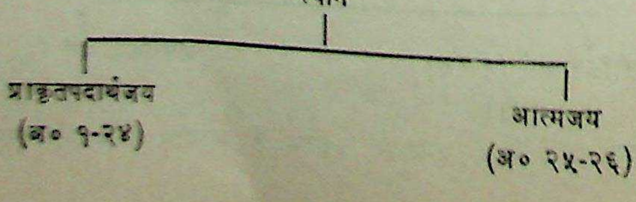

यौगिकार्थ के अनुसार स्थान का अर्थ सर्वत्र स्थिति है, इसके अनुसार तीन भेद हैं—देश, काल, आत्मा। प्रथम मतानुसार प्राकृत पदार्थ २४ हैं। प्रत्येक पर विजय करने के लिये २४ अध्याय हैं। अप्राकृत पदार्थ जीव तथा ब्रह्म रूप से द्विविध है, अतः २६ अय्याय हैं।

षष्ठ स्कन्ध (पोषण)

नाम (अ० १-३)
ध्यान (अ० ४-१७)
अर्चन (अ० १८-१९)

नाम प्रकरण–श्रवण, कीर्तन, स्मरण की त्रिविधता के कारण ३ अध्याय हैं। ध्यान प्रकरण में रूप सम्बन्धी १४ गुणों के कारण १४ अध्याय हैं। अर्चन प्रकरण में बाह्य-अभ्यान्तर भेद से अर्चन के दो भेद हैं, अतः इसमें दो अध्याय हैं।

सप्तम स्कन्ध (अति)—इसमें ३ प्रकरण तथा १५ अध्याय हैं—

ऊति

असद्वासना (अ० १-५)
सद्वासना (अ० ६-१०)
मिश्रवासना (अ० ११-१५)

अष्टम स्कन्ध (मन्वन्तर)–इसमें ४ प्रकरण तथा २४ अध्याय हैं—

मन्वन्तर

हरि स्मरण (अ० १-४)
दान (अ० ५-१४)
स्वोक्त निर्वाह (अ० १५-२३)
मत्स्य (अ० २४)

हरि स्मरण–चतुर्भुज पुरुषार्थ का वर्णन है, अतः ४ अध्याय हैं। दान प्रकरण में–नव गुण–एक निर्गुण का वर्णन है, अतः दस अध्याय हैं। स्वोक्त निर्वाह–दानोक्त प्रकार के अनुसार नव विध होता है, अतः ९ अध्याय हैं। मत्स्योक्त में–धर्मवक्ता का प्रतिकथन एक अध्याय में है। अतः सम्पूर्ण स्कन्ध में २४ अध्याय हैं।

नवमस्कन्ध (ईसानुकथा)—इसमें दो प्रकरण, २४ अध्याय हैं। पहला प्रकरण हरिकथा का तथा द्वितीय प्रकरण हरिभक्त कथा का है।

ईशानुकथा का फल

दुःख निवारण
सुख प्राप्ति

अध्याय १ से ९ में सगुण भक्ति द्वारा दुःख निवारण, अध्याय १० में ज्ञानी द्वारा, अध्याय ११–१३ में भगवच्चरित्र द्वारा, अध्याय १४–२३ में भक्त द्वारा, तथा अध्याय २४ में भगवत् द्वारा दुःखनिवारण तथा सुख प्राप्ति का का निरूपण है। इस कारण २३ अध्यायों का रहस्य भी यही है।

दशम स्कन्ध (निरोध)–इस स्कन्ध में ५ प्रकरण ८७ अध्याय हैं।

निरोध

जन्म	तामस	राजस	सात्विक	गुण
(अ० १–४)	(अ० ५–३२)	(अ० ३३–६०)	(अ० ६०–८१)	(अ० ८२-८७)

जन्म प्रकरण में–चार अध्यायों में क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, व्यूह प्राकट्य का वर्णन है। तामस प्रकरण में–प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल का २८ अध्यायों में निरूपण है। राजस प्रकरण में–प्रमाण-प्रमेय, साधन, और फल का २८ अध्यायों में निरूपण है। सात्विक प्रकरण में प्रमेय, साधन, फल का २१ अध्यायों में निरूपण है। सात्विक में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। गुण प्रकरण में–ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य का वर्णन ६ अध्यायों में है। १२-१४ अध्याय कौतुक लीला के निरूपक एवं प्रक्षिप्त माने गये हैं। निरोध लीला प्रतिपादक दशमस्कन्ध पुरुषोत्तम का हृदय स्थानीय है। भक्तों के प्रपंच का अभाव और स्वकीय शक्तियों के साथ परमात्मा का भक्त हृदय में शयन (निवास) करता है। प्रापंचिक विषय से हटाकर भक्त को स्व विषयों के प्रति लीला द्वारा आकृष्ट करना भी निरोध है।

एकादश स्कन्धार्थ (मुक्ति निरूपण)

जीव मुक्ति	सायुज्य मुक्ति	ब्रह्म मुक्ति
(अ० १–५)	(अ० ६–२९)	(अ० ३०–३१)

निष्प्रपंच भक्तों को स्वरूप लाभ होना मुक्ति कहलाता है, जिसका सीधा अर्थ "अन्यथा रूप" का त्यागकर स्वरूपावस्थान है। ३१ अध्यायों का यही रहस्य है।

द्वादशस्कन्ध (आश्रय) इसमें पाँच प्रकरण तथा १३ अध्याय हैं—

आश्रय

कृष्णाश्रय	जगदाश्रय	वेदाश्रय	भक्तियोगाश्रय	भागवताश्रय
(अ० १–३)	(अ० ४–६)	(अ०७)	(अ० ८–१०)	(अ० ११–१३)

भागवत साक्षात् श्रीकृष्ण स्वरूप है, अतः इसमें भी तद् बोधक छः धर्मों का समावेश है। प्रथम स्कन्ध तथा द्वितीय स्कन्ध से ज्ञान का निरूपण। तृतीय चतुर्थ से 'वैराग्य' का, पंचम–षष्ठ से 'वीर्य' का, सप्तम–अष्टम से ऐश्वर्य का, नवम–दशम से यश, एकादश–द्वादश से श्री का निरूपण है।

१४. सुबोधिनी—यह श्रीमद्भागवत् की प्रसिद्ध टीका है।

१५. दशम–एकादश स्कन्धार्थ निरूपण कारिका। इसमें एकादश द्वादश दोनों स्कन्धों का निरूपण कारिकाओं में किया गया है।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य–नाम**—शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य श्रीमद्वल्लभाचार्य द्वारा रचित भागवत की टीका का नाम "सुबोधिनी" है। टीकाकार ने इसे विवरण नाम भी दिया है। जैसा कि पुष्पिकाओं से स्पष्ट है—

"इति श्री भागवत सुबोधिन्यां श्री लक्ष्मण भट्टात्मज श्रीवल्लभदीक्षित विरचितायां अष्टमाध्याय विवरणम्।"

विशेषतः यह श्री सुबोधिनी जी के नाम से अभिहित की जाती है एवं इसे मूल के समान किं वा उससे भी अधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, इससे भागवत ग्रन्थ का भी गौरव बढ़ता है।

परिमाण—यह टीका समग्र भागवत पर उपलब्ध नहीं है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, दशम तथा एकादश स्कन्ध के चतुर्थाध्याय पर्यन्त ही उपलब्ध है। वैसे समग्र भागवत में ३३२ अध्यायों को टीकाकार ने प्रामाणिक माना है।

उद्देश्य - इस टीका द्वारा भागवत के अत्यन्त गूढ़ार्थों का प्रकाशन हुआ है। टीकाकार की इस विशेषता के कारण ही 'गूढ़ार्थ प्रकाशन परायणः' नाम से भी प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी है। टीकाकार स्वयं एक सिद्धान्त के प्रवर्तक थे, अतः उन्होंने स्वाभिप्राय प्रामाण्य के लिये भागवत ग्रन्थ को आधार बनाया फलतः टीका में अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में अत्यधिक रुचि ग्रहण की थी।

प्रकाशन—इस टीका के अनेक संस्करण हो चुके हैं, आठ टीकाओं के साथ वृन्दावन धाम से सम्वत् १९६४ में भी इसका प्रकाशन हुआ है।

शैली—टीकावलोकन से उसकी कतिपय विशेषताएँ मननीय हैं–

(१) इस सुबोधिनी टीका में अध्यायानुसार श्लोकों का अर्थ पूर्वापर सङ्गति रूप में कहा गया है।

(२) श्लोकों में समागत पदों के स्वारस्य का विवेचन किया गया है। यह पद स्वारस्य ही वास्तव में पदार्थ है जिसमें प्रकृति-प्रत्यय का अक्षरार्थ भी सम्मिलित है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(३) अन्वय मुख व्याख्या होने पर भी भाषा क्लिष्ट है ।

(४) भूमिका रूप में जहाँ टीका लिखी गयी है वहाँ समास वहुला गौडी के दर्शन होते हैं, व बुद्धि में अर्थ प्रकटन सहज ही नहीं होता, साधारण व्यक्ति की समझ में कुछ नहीं आता । यथा--

'त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भक वत्सला ।' (भाग० १०।६।१२)

की टीका में 'मातर्मा' मा ताडयेत्युक्ते 'ताडये यदि०' इति पुत्रोक्ति कातर्य विक्लव मना हन्त कदाचिदयं मन्युना वनं प्रविशेत् इति शंकयातन्निरोधार्थमुपायं निश्चिकायेत्याहृत्यक्त्वेति । तद्वीर्यस्य सर्वव्यापकत्व लक्षणस्यतदैश्वर्यस्य न कोऽपि शुद्ध तन्माधुर्य्यैक निमग्नत्वादिति भावः ।' (सुबोधिनी १०।६।१२)

उक्त गद्यांश के परिशीलन से स्पष्ट है कि इसका मूल से कितना सम्बन्ध है । केवल भावबोध ही समझ में आता है ।

(५) एकाक्षरात्मक अव्ययों के अर्थ की गम्भीरता भी दर्शनीय है ।

(६) पाठभेद की समालोचना प्रायः सभी अध्यायों में की गयी है ।

(७) विभिन्न कोश और शब्दानुशासन तथा धातु पाठों का आश्रय लेकर वाक्यार्थ की सङ्गति लगाने का चमत्कार भी देखने योग्य है ।

(८) टीकाकार की दृष्टि में लक्षणा वृत्ति का अधिक महत्व नहीं है । न्यून पद से अन्य पद का अनुसंधान भी इस टीका में नहीं किया गया जैसा कि टीकाकार के कथन से प्रमाणित होता है—

लक्षणां नैववक्ष्यामि न न्यूनादस्य पूरणम्
आर्थिकं तु प्रवक्ष्यामि परोक्षकथनादृते ।' (वही १।१ मं० का० ६)

परोक्ष कथन से—पुरंजनोपाख्यान आदि आध्यात्मिक कथानकों से है, इनमें तो भागवतकार ने ही अन्य अर्थ की घोषणा की है । लक्षणा न मानने का एक अभिप्राय मननीय हैं, उनका कथन है कि यह वृत्ति मूल से दूर ले जाती है, जैसे 'गङ्गायां घोषः', 'गङ्गा में कुटी' पद से गंगा अर्थ में गाँव या कुटी स्थिर न रहने के कारण उससे तट का बोध होता है, जो कि गंगा से दूर हो गया है, अतः भागवत में अभिधेयार्थ को त्याग कर गौण अर्थ स्वीकार करना उन्हें उचित प्रतीत नहीं हुआ ।

(९) इस टीका में शास्त्र, स्कन्ध, प्रकरण, अध्याय, वाक्य, पद तथा अक्षर, अर्थ की अविरोध संगति की गयी है । यह उसकी सर्वातिशयिता है । टीकाकार ने उक्त सप्त अर्थों में पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर दुर्बल है, यह भी स्वीकार किया है । (सुबोधिनी १।१ मंगलाचरण, कारिका ७)

(१०) टीका में अनेक श्रुतियों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है,

श्रुतियों का अर्थ भी स्व सम्प्रदायानुसार किया गया है। इसमें व्रह्मसूत्रों भी सहायता ली गयी है।

(सुवोधिनी १०।५।१६ में व्रह्मसूत्र २।१।३३ का उल्लेख)

(११) कथाभाग में संकेतों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं।

(१२) भक्त विश्वासदायिनी भगवत्कथाओं को बड़े यत्न से रखा गया है—

'इत्येवं भगवल्लीला भक्त विश्वासदायिनी
निरूपितातित यत्नेन कृष्ण पादाम्बुजाश्रया।' (वही पूर्वार्द्ध उप०)

(१३) भागवत में त्रिविध भाषाओं का उल्लेख उद्घोषित करते हुए उनके उदाहरण द्वारा कथन की पुष्टि की गयी है। यथा—लौकिक भाषा–'अथोषस्युपवृत्तायां' आदि का वर्णन लौकिक भाषा में है। परमत भाषा–'केचिदाहुरजं जातं' में 'केचित्' पद परमत है।

समाधि भाषा—वेदव्यास ने समाधि में जिस तत्व का साक्षात्कार किया है उसका प्रतिपादन करने वाला सिद्धान्त समाधि भाषा कहलाता है। लौकिक और परमत के विश्लेषण के अनन्तर शेष भाषा समाधि भाषा है। यद्यपि समग्र भागवत वेदव्यास की कृति है तथापि सम्वादात्मक रूपों को पृथक् मानना पड़ता है। समाधि दृष्ट तत्वानुसन्धान के लिये सूत ने कहा भी है —

'अपश्यत् पुरुषां पूर्णं मायां च तदपाश्रयाम्' (भा० १।७।६)

टीकाकार ने भी समाधि भाषा का प्रामाण्य स्वीकार करते हुए लिखा है—

'समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्।'[1]

'यावत् समाधौ स्वयमनुभूय निरूपितं सा समाधि भाषा।' भागवतार्थ प्रकरण में भी इसकी पुनरावृत्ति की गई है—

'एषा समाधि भाषाहि व्यासस्यामित तेजसः।'

(भागवतार्थ प्रकरण, पृष्ठ १२३)

यह भाषा व्यास रूप में अवतरित साक्षात् हरि की भाषा है, अतः इसका सम्मान अधिक किया गया है—

'व्यास रूपोऽवतीर्याद्यमंगलादि पुरः सरम्
प्रसङ्ग पूर्वकं चाह समाधावुपलभ्यहि ॥' (वही पृ० १२५)

इन तीनों भाषाओं में जहाँ-जहाँ विरोध सा प्रतीत होता है, वह कल्पान्तर का है। 'धाता यथा पूर्वकल्पयत्' के अनुसार सृष्टि यथापूर्व ही होती रहती

---

[1] सप्रकाश तत्वदीप निबन्ध-शास्त्रार्थ प्रकरण, पृष्ठ ३।

है। आवश्यक परिवर्तन होने से उसमें एकरूपता कहीं-कहीं नहीं आती अतः उसे एक दूसरे का विरोधक या अप्रामाणिक नहीं मानना चाहिये।

(१४) श्रीमद्भागवत में जिस स्थल पर जिस भाषा का प्रयोग है वहाँ सुबोधिनी में उसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इस टीका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह ईश्वर से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित है। टीकाकार ने यह भी लिखा है कि यह टीका भगवदंश के अतिरिक्त नहीं लिखी जा सकती थी, उन्होंने स्वयं अपने लिये भी यह प्रयोग (सुबोधिनी, उपक्रम कारिका ५) में किया है—

> अर्थं तस्य विवेचितुं नहिविभुर्वैश्वानराद्वाक्पते-
> रन्यस्तत्र विधाय मानुष तनुं मां व्यासवच्छ्रपतिः
> दत्वाज्ञां चकृपावलोकन पटुर्यस्मादतोऽहं मुदा
> गूढ़ार्थं प्रकटी करोमि वहुधा व्यासस्य विष्णोः प्रियम्॥

इसी भाव से सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् हरिराय जी ने लिखा है कि यदि वल्लभाधीश का आश्रय न लिया तथा सुबोधिनी टीका का परिशीलन नहीं किया तो जन्म व्यर्थ है।

> नाश्रितो वल्लभाशीधो न च दृष्टासुबोधिनी
> नाराधिराधिकानाथो वृथा तज्जन्म भूतले।[1]

टीका के महत्व का ऐसा वाक्य अन्यत्र दुर्लभ है। इसमें टीका कार का महत्व भी है। आचार्य वल्लभ ने भागवत के परिशीलन में जितना समय दिया था उतना अन्य टीकाकारों ने दिया हो यह कहा नहीं जा सकता। 'चौरासी बैठक' भागवत के पारायण के कारण ही प्रसिद्ध हैं। इस टीका में अन्य विद्वानों के मतों की समालोचना भी की है। अप्रासङ्गिक पाठों का संशोधन दष्टव्य है। यह टीका सूत्र शैली में लिखी गयी है। अतः यह कथन अनुचित नहीं कि जब तक भागवत निबन्ध का परिज्ञान न हो सुबोधिनी का ज्ञान कठिन है। इस टीका का मर्म जानने के लिये आचार्य की 'अणु भाष्य' आदि कृतियों का ज्ञान भी आवश्यक है। सुबोधिनी स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है उसमें भागवत के श्लोकों के वर्णन पर सिद्धान्तों का निरूपण है तथा वे टीका में सर्वत्र विकीर्ण हैं। सुबोधिनी में अध्यायारम्भ में कारिकाएँ दी गयी हैं, जिनमें वे अपना दृष्टिकोण रख देते हैं, यथा (सुबोधिनी १०।१।१७ कारिका १–२) अवतार प्रयोजन में—

---

[1] हरिरायवचनामृत–लखनऊ प्रकाशन, अन्तिम पृष्ठ।

भक्तानां दुःख नाशाय कृष्णावतरणं मतम्
भूमिर्माता तथा चान्ये भक्ता वै त्रिविधामता ।
ये भक्ताः शास्त्र रहिता स्त्रीशूद्र द्विज बन्धवः
तेषानुद्धारकः कृष्णः स्त्रीणामत्रविशेषतः ।।

श्लोकों की संगति का निरूपण भी कारिकाओं में दिया गया है—

दशभिः सान्त्वनं भूमेः पंच विंशत्तमैस्तथा
अष्टभिर्नारदोक्त्यैव सर्वेषां दुःखमंजसा ।।

प्रत्येक श्लोक और उसमें कथित शब्दों का परस्पर क्या सम्बन्ध है इसका जितना निरूपण इस टीका में प्राप्त होगा अन्यत्र नही । तथापि यह निश्चित है कि सुबोधिनी का उपयोग धारावाहिक कथा बाँचने में उपयोगी नहीं है। टीकाकार ने भागवत को तीन रूप में देखा है—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक । आध्यात्मिक रूप में—यह परम हंस संहिता या सात्वत संहिता कहलाती है, क्योंकि इसमें तत्व ज्ञान कूट-कूट कर भरा हुआ है । आधिदैविक रूप में—यह भगवत्स्वरूप तथा भगवल्लीला का अवगाहन कराने में समर्थ है । आधिभौतिक रूप में—यह ग्रन्थ रूप में है और इसे परमोत्कृष्ट काव्य संज्ञा से सम्मानित किया जा सकता है । आचार्य वल्लभ का थोड़ा ही समय रहा, यदि ये कुछ काल और अधिक विद्यमान रहते तो समस्त भागवत की व्याख्या और विस्तार के साथ लिखते । इन्हें भगवदाज्ञा मिली थी कि आपको भूतल त्याग करना है । यह आज्ञा प्रथम तो गंगासागर तट पर द्वितीय मधुवन (मथुरा) में हुई थी । अतः तृतीय स्कन्ध की रचना के पश्चात् दशम तथा एकादश स्कन्ध के ही कतिपय अध्यायों की व्याख्या कर पाये थे—

'आज्ञा पूर्वं तु या जाता गंगा सागर संगमे
यापि पश्चात् मधुवने न कृतं तद्द्वयं मया ।
देह देश परित्यागस्तृतीयो लोकगोचरः ।।

…………भगवता श्रीभागवतार्थ प्रकटनाय पूर्वमाज्ञप्तम् तत्सूक्ष्म टीका करणेन कृतम् ।' (विवरण—व्रजराय जी कृत—कारिका ६)

२. श्री विट्ठलनाथजी

(क) **परिचय**—श्री विट्ठलनाथ जी श्रीमदाचार्य के द्वितीय पुत्र थे, विट्ठलनाथ की ख्याति महाप्रभु, गोसाईं जी के नाम से अधिक है। इनका जन्म चरणाट नामक ग्राम में हुआ था। विट्ठलनाथ के ज्येष्ठ भ्राता का नाम गोपीनाथ था। विट्ठलनाथ का जन्म एक क्रान्तिकारी जन्म है, एवं ईश्वर का किसी न किसी विशेष प्रकार से इनसे सम्बन्ध है, क्योंकि वल्लभाचार्य जी जब संन्यास की ओर प्रवृत्त थे तब श्री विट्ठलनाथ भगवान् (पंढरपुर) ने उन्हें विवाह करने की प्रेरणा की और स्वयं ने जन्म ग्रहण करने के विषय में भी कहा था।[1] श्री वल्लभाचार्य इनके जन्म अवसर पर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे तथा इनका नाम विट्ठलनाथ ही रखा।

उपनयन तथा अध्ययन—सम्वत् १५८० चैत्र शुक्ल नवमी को श्री वल्लभाचार्य ने उनका काशी में उपनयन संस्कार किया था। शास्त्रीय अध्ययन भी यहीं आरम्भ हुआ। विट्ठलनाथ जी बाल्यावस्था में स्वमार्गीय सिद्धान्तों के परिशीलन में योग नहीं दिया, वल्लभाचार्य ने काशी के प्रसिद्ध विद्वान् संन्यासी माधव सरस्वती के पास इन्हें विशेषतः भागवत के परिशीलन के लिये भेजा था। क्रीड़ा की ओर अधिक अभिरुचि देखकर दामोदर दास नामक वैष्णव ने खेल खेलने के व्याज से साम्प्रदायिक सेवा प्रणाली के प्रति इनकी विशेष रुचि उत्पन्न की।

विवाह और सन्तति—विट्ठलनाथ जी का प्रथम विवाह सं० १५८९ के आसपास हुआ था। इनके श्वसुर का नाम बागरोदी विश्वनाथ भट्ट और पत्नी का नाम रुक्मिणी बहूजी था। प्रथम पत्नी से १० सन्तान तथा द्वितीय पत्नी से 'घनश्याम' नामक एक पुत्र ही हुआ था। द्वितीय विवाह सं० १६१६ में प्रथम पत्नी के दिवंगत हो जाने पर सं० १६२४ में मध्य प्रान्त निवासी पं० रामकृष्ण भट्ट जी तैलंग की पुत्री श्री पद्मावती के साथ हुआ था। विट्ठलनाथ जी ने अपने पुत्र, पुत्रियों के उपनयन तथा विवाहादि संस्कार समय-समय पर बड़े उत्साह के साथ किये। इनके सभी पुत्र प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने वल्लभाचार्य के ग्रन्थों का गम्भीर विशद विवेचन किया और साथ में नवीन ग्रन्थों के निर्माण के द्वारा आवश्यक विषय की पूर्ति भी की। विद्वन्मण्डन ग्रन्थ की रचना में ये पूर्व पक्ष गिरिधर नामक पुत्र से कराते थे, ऐसा कहा जाता है।[2]

---

[1] **कांकरौली का इतिहास, पृष्ठ ८१।**

[2] **बाबा श्री व्रजेशकुमार जी गोस्वामी, कांकरौली।**

श्री विट्ठलनाथ ने अनेक ग्रन्थों का संकलन वैष्णवों से लेकर किया था क्योंकि इनके भाई गोपीनाथ जी की मृत्यु के पश्चात् उनकी पत्नी समग्र ग्रन्थ अपने साथ ले गयीं थीं। चित्रकला-संगीतकला एवं काव्यकला में आपकी अप्रतिहत गति थी। तानसेन जैसे कलाकार आपसे अपनी सफलता की आशा करते थे। गाय हिन्दू संस्कृति का प्रतीक है उसमें सेवा एवं दक्षता दिखलाने के कारण अकबर बादशाह द्वारा आपको गोकुल की एवं जतीपुरा (गोवर्धन) की जागीर दी गईं थीं। सम्प्रदाय के प्रचार की भावना से आपने कई बार लम्बी यात्राएं कीं। ऋतुओं के अनुसार कीर्तन व्यवस्था आपके वैज्ञानिक ज्ञान की परिचायिका है। सूरदास आदि अष्ट सखाओं की नियुक्ति कर आपने हिन्दी जगत् में एक नवीन कार्य किया। अष्ट छाप शब्द अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। आपके ७ पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी एवं श्री यदुनाथ जी का वंश चला। सम्वत् १६४२ माघ कृष्ण सप्तमी को आपने शरीर त्याग कर लीला प्रवेश किया।

(ख) **सम्प्रदाय**—श्री विट्ठलनाथ जी ने शुद्धाद्वैत मत का ही प्रचार किया था। इस सम्प्रदाय का जितना शास्त्रीय विचार श्री विट्ठलनाथ जी ने किया उतना अन्य किसी ने नहीं किया। विद्वन्मण्डन एवं अणुभाष्य एवं भागवत टिप्पणी में पुष्टिवाद का अत्यधिक महत्व प्रतिपादन किया है, एक प्रकार से पुष्टि सम्प्रदाय के ये महान् स्तम्भ माने जा सकते हैं, पुष्टि भक्ति का प्रसार इन्हीं श्री विट्ठलनाथ जी के द्वारा हुआ।

(ग) **स्थितिकाल**—श्री विट्ठलनाथ वल्लभाचार्य के कनिष्ठ पुत्र थे। इनके जन्म सं० के लिए अधिक विवाद नहीं। आपके जन्म के सम्बन्ध में एक श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध हैं जिसके अनुसार सम्वत् १५७२ पौष कृष्ण नवमी, हस्त नक्षत्र, तैतिल करण आपका जन्म दिवस था।

वर्षे नेत्राश्व भूत द्विजपति गणिते पौष कृष्णे नवम्यां
हस्तर्क्षे तैतिलेह्न्यधिकृत भृगुजे शोभने गोविलग्ने।
रन्ध्रस्थेऽर्के स चान्द्रौ कवि कुज शनिषु थू नगेष्वात्मजस्थे
सोमे जीवे धनस्थे तमसि सहजगे विट्ठलः प्रादुरासीत् ॥[1]

सम्वत् १६४२ माघ कृष्ण सप्तमी के दिवस आपका अन्तर्धान होना भी प्रसिद्ध है, इस प्रकार पृथ्वी पर ७० वर्ष २८ दिवस उनकी स्थिति मानी गयी है।

---

१. (क) **कांकरोली का इतिहास, पृष्ठ ९१।**

(ख) **शुद्धाद्वैत पुष्टि संस्कृत वांङ्मय, द्वितीय खण्ड।**

(घ) कृतियां—कांकरोली का इतिहास पृष्ठ ९६ के अनुसार आपके निम्न ग्रन्थ हैं–

(१) विद्वन्मण्डन (२) निबन्ध प्रकाश टीका (३) अणुभाष्य का अन्तिम डेढ़ अध्याय (४) सुबोधिनी टिप्पणी (५) भक्ति हंस (६) भक्ति हेतु (७) भक्ति निर्णय (८) षोडश ग्रन्थ टीकाएं (९) विज्ञप्ति (१०) शृंगार रस मण्डन (११) निर्णय ग्रन्थ (१२) संस्कृत आर्याऐं और पद (१३) स्फुट स्तोत्रादि ग्रन्थ और टीकाएं (१४) गीत गोविन्द विवृति[1] (१५) रामनवमी निर्णय[2] (१६) गीता तात्पर्य[3]।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य–नाम—श्री विट्ठलनाथ जी गोस्वामी रचित भागवत टीका का नाम 'टिप्पणी' है, इसे विवृति प्रकाश नाम से भी कहा जाता है।

परिमाण—यह टीका दशम स्कन्ध पर ३२ अध्याय पर्यन्त, भ्रमर गीत, वेद-स्तुति, एवं द्वादश स्कन्ध के कुछ श्लोकों पर लिखी गयी है।

उद्देश्य—इस टिप्पणी का उद्देश्य सुबोधिनी टीका के गूढ़ भावों का स्पष्टीकरण है, साथ ही शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के भावों एवं सिद्धान्तों का भागवत द्वारा प्रामाण्य सिद्ध करना।

प्रकाशन—सम्वत् १९७७ में चौखम्बा संस्कृत सिरीज से कुछ अंश प्रकाशित हुआ है। टीकाकार ने अपनी उद्भट विद्वत्ता का परिचय विद्वन्मण्डन ग्रन्थ में दिया है, किन्तु इस टीका में भी वे अपनी विद्वत्ता का स्वाभाविक ढंग से प्रकाशन कर गये हैं। शंका समाधान पर अधिक बल देते हुए वे भागवत समालोचना करते हैं। यथा, भगवान श्रीकृष्ण का जन्म दक्षिणायन कृष्ण पक्ष में क्यों हुआ ? गोस्वामी जी का कथन है कि जन्म ग्रहण करने का तात्पर्य मर्यादा मार्ग से पुष्टि मार्ग की विशेषता सिद्ध करना है।

तथा करणं तन्मर्यादामार्गात् पुष्टिमार्गोऽति विलक्षणो बलिष्ठश्चेति ज्ञापनायेति जानीमः।' (टिप्पणी १०।३।१)

भगवान में विरुद्धांश या विरुद्धाश्रयत्व देखा गया है। परीक्षित के रक्षण के समय यह विरुद्धाश्रयत्व देखा गया है। परीक्षित का लौकिक बीजांश का दहन तथा वैष्णवांश गर्भ का रक्षण विरुद्धाश्रयत्व है। साधना भाव में पूतना मारण, शकटासुर विदारण तृणावर्त वध आदि भी इसी कोटि के कार्य हैं। (टिप्पणी १०।३।९) नारायण के हस्त कमल में चार आयुधों

---

[1] शुद्धा० पु० सं० वा०, भाग १. पृष्ठ ७६। [2] वही पृष्ठ २६८।
[3] वही पृ० ७६

का क्रम अस्पष्ट है, टिप्पणीकार ने लिखा है कि भगवान् के दक्षिण हस्त में शंख-कमल, वाम हस्त में चक्र गदा है। तीन आयुधों का उल्लेख भागवत में जन्म समय में उपलब्ध है—

'चतुर्भुजं शंख गदाद्युदायुधम्''[1]

इस श्लोक में उदायुध शब्द कमल का वाचक है। टिप्पणीकार ने कहा है कि यह त्रिविध आयुध का उल्लेख संकर्षण– प्रद्युम्न अनिरुद्ध रूप के द्योतनार्थ किया गया है। टिप्पणीकार 'शंख' को भी आयुध मानते हुए लिखता है कि इससे दर्प का विनाश होता है। अब्ज ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। इससे उपमर्दन होता है—

'अब्ज धारणेनैव यथा उपरि पतित्वा उपमर्दनं भवति'

यद्यपि सुबोधिनी अपने में स्वयं विस्तृत टीका है तथापि क्वचित् उसके आकार से भी द्विगुणाकार टिप्पणी है। इसमें श्रीधर, रामानुजादि आचार्य के मतों का खण्डन एवं मर्यादामार्ग पुष्टि मार्ग का वैशिष्ट्य चित्रित किया गया है। यह टिप्पणी प्रौढ़ शैली में लिखी गयी है। दुर्भाग्य से यह टिप्पणी समग्र सुबोधिनी पर उपलब्ध नहीं है, अन्यथा इससे सुबोधिनी के गौरव में और भी वृद्धि होती। पुष्टि मार्ग के विवेचन के लिये अपने अवसर का परित्याग कहीं नहीं किया। यही इस टीका का विशेष महत्व है। क्वचित् अनवसर पर ही पुष्टि-मर्यादा आदि का प्रतिपादन किया गया प्रतीत होता है।

३. पुरुषोत्तम जी

(क) परिचय—गोस्वामी कुल कमल दिवाकर पुरुषोत्तम जी विट्ठल नाथ जी के तृतीय पुत्र बालकृष्ण के वंशधर थे। इनके पिता का नाम पीताम्बर तथा पितामह का नाम यदुपति था।[1] जनश्रुति के अनुसार आपने ६ लक्ष ग्रन्थ

---

[1] **कल्याण–वेदान्तांक, पृष्ठ ७०३ के अनुसार वंश परम्परा —**

वल्लभाचार्य
|
विट्ठलनाथ
|
बालकृष्ण
|
ब्रजराज
|
यदुपति
|
पीताम्बर
|
पुरुषोत्तम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(श्लोक) रचना की थी। आपकी कृतियाँ अत्यन्त प्रौढ़ संस्कृत भाषा में लिखी गयीं उपलब्ध हैं। इनकी कृतियों में विज्ञान भिक्षु, निम्बार्क आदि सम्प्रदायों की विचारधारा की समालोचना भी की गयी है।

(ख) **सम्प्रदाय**—आप शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी थे एवं उक्त सम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य के वंशज थे।

(ग) **स्थितिकाल**—श्री पुरुषोत्तम जी गोस्वामी का प्रादुर्भाव सम्वत् १७२५ विक्रम (ई० १६६८) में हुआ था। (शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, पृष्ठ २५८)

(घ) **कृतियाँ**--१. भाष्य प्रकाश २. सुवर्ण सूत्र–विद्वन्मण्डन टीका ३. प्रस्थान रत्नाकर ४. सुबोधिनी प्रकाश (भागवत टीका)

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य–नाम**—श्री पुरुषोत्तम गोस्वामी द्वारा विरचित सुबोधिनी टीका का नाम प्रकाश है। जैसा कि इस पुष्पिका से स्पष्ट है--

'श्री श्रीमद्वल्लभनन्दन चरण रजः पूरित हृदयस्य पीताम्बरात्मजस्य पुरुषोत्तमस्य कृतौ द्वितीय स्कन्ध सुबोधिनी प्रकाशे दशमाध्याय विवरणम् सम्पूर्णम्।'

परिमाण--यह प्रकाश टीका सुबोधिनी के अनुसार प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ स्कन्ध एवं दशम स्कन्ध पर उपलब्ध है।

उद्देश्य--सुबोधिनी एवं टिप्पणी का स्पष्टीकरण।

प्रकाशन—तेलीवाड़ा बम्बई, सम्वत् १९६३ में प्रकाशित।[1]

शैली—अधिकांश में सुबोधिनीकार ने संकेत पूर्वक श्रीधर स्वामी की टीका का खण्डन किया था किन्तु प्रकाशकार ने उसे स्पष्ट किया है और उन संकेत स्थलों पर 'श्रीधर मतं दूषयन्ति' लिख दिया है जहाँ-जहाँ केचित् शब्द का उल्लेख है वहाँ-वहाँ श्रीधर मत का खण्डन ही है। प्रकाश में केचित् का अर्थ 'श्रीधरादयः' स्पष्ट लिखा है। इनकी भाषा में प्रवाह है—

---

[1] **(क) हस्तलिखित प्रति–श्री द्वारकेश संस्कृत महाविद्यालय मथुरा में २३२ वर्ष प्राचीन सं० १७९० वैशाख कृष्ण की लिखित।**

(ख) हस्तलिखित प्रति–श्रीनाथद्वारा विद्याविलास में।

'ननु मत्स्यावतारं चाक्षुषे प्रलय उक्त्वा कूर्म एकादश उक्तस्ततश्च दशमत्वमस्य आयाति, नवम संख्या सदंशाच्च ततश्च क्रम विचारे चाक्षुष मन्वन्तरीयस्य कूर्मस्य पाश्चात्यत्वात् पूर्व प्रलयो मायिक एव सेत्स्यति न वास्तवः क्रमेण बाधात् इत्यत आहुः पूर्वोत्यादि ।" (प्रकाश १।१।३)

यहां पूर्वेत्यादि यह अंश सुबोधिनी का है किन्तु उसकी भूमिका 'ननु' पद से वाहुः पर्यन्त बाँधी गई है । वल्लभाचार्य के प्रति अगाध भक्ति का प्रदर्शन करना स्वाभाविक ही है--

नमः श्री वल्लभाचार्य चरणाव्जनखेंदवे
यत्प्रकाशित हृद्देशा भक्त्यम्भोधितरंगिता ।। (मंगलाचरण)

समास शैली में आप सिद्धहस्त थे। भाषा में ओज प्रवाह सर्वत्र देखा जा जा सकता है—

प्रेभंजन शिलाशनि व्यधित सर्व दिङ्मण्डले
सुरेश्वर निदेशतः प्रलय वारिदे वर्षति
क्षितिध्रु विमदीकृतः क्षितिधर द्रुहः स्वीकृतः
व्रजेक्षित सुधांबुधेर्भगवतः कृतायैनमः ।। (मंगलाचरण)

वल्लभाचार्य विष्णु स्वामी सम्प्रदायानुवर्ति गोपालोपासक थे। यह प्रथम वार इस टीका में प्राप्त होता है—

'...........विष्णु स्वामि मतानुवर्तिगोपालोपासकत्वं सूचितम् ।'

टीकाकार ने ३३२ अध्याय ही भागवत में माने हैं—'शाखा द्वि वन्हिद्वयम् प्रमाण के अनुसार। इतना ही नहीं श्रीधरोक्त—'द्वा त्रिशत् त्रिशतं च' श्लोक के अनुसार ३३२ अध्याय लिखे हैं। यहाँ श्रीधर मत को भी प्रमाण रूप में लिखा है—'इयमेव संख्या श्रीधरीयेऽपि ।'

इन्होंने भट्ट मतानुयायी विद्वानों को स्थान-स्थान पर परास्त किया है—

'एतेन सहस्त्र दिन साध्यत्वं वदन्तों भाट्टा निरस्ता वेदितव्यम् ।'

सूत—शौनिकों के 'सहस्त्र दिवस साध्य' यज्ञ का खण्डन किया गया है, क्योंकि यह सत्र बलदेव की तीर्थ यात्रा पर्यन्त विद्यमान था। इस सत्र में

सूत का वध भी किया गया था–'श्री वलदेव तीर्थ यात्रायां यावत् सत्रं समाप्यत, सत्र एव सूत वधात्, तस्यैवेदानीमपि-अनुवर्तित्वात् ।'

(सुवोधिनी प्रकाश १।१।४)

एक स्थल पर श्रीधर स्वामी की भूल दिखलाते हुए लिखा है––

'पुत्रेति तन्मयतया' श्लोक में प्लुत के स्थान पर सन्धि 'आर्षत्वात्' लिखना श्रीधर स्वामी की विरह कातर उक्ति का न जानना है––

श्रीधर मतं दूषयन्ति न तु स्वगयित्यादि शेषिणादूरादाह्वाने दूराद्धूते चेत्यनेन प्लुते जाते प्लुतप्रगृह्या इत्यनेन प्रकृति भावात् संध्यनुपपत्ति माशंक्याहुः, तथा चात्र सन्धेरार्षत्वं वदतः श्रीधरस्य विरह कातर पदतात्पर्याज्ञान मित्यर्थः ।

श्रीधर स्वामी की इस प्रकार की स्पष्ट भर्त्सना अन्य टीकाकारों ने नहीं की ।

४. गोस्वामी गिरधरलाल जी महाराज

(क) परिचय–गोस्वामी गिरधरलाल 'काशी वाले' गोसाईं जी के नाम से प्रसिद्ध हैं । इनके पिता का नाम गोपाल लाल जी था जैसा कि इनके मंगलाचरण से स्पष्ट है–

श्रीमन्मुकुन्दरायाणां गोपालानां तथैव च
व्यासादीनां स्व पितृणामाचार्याणां महात्मनाम् ।।
पादपद्मं नमस्कृत्य प्रार्थयित्वा पुनः पुनः
वल्लभाचार्य वंश्येन श्रीमद्गोपालसूनुना ।।
श्रीमद्गिरिधराख्येन स्वान्तःकरण तुष्टये । (बालप्रबोधिनी)

उक्त श्लोकों में आचार्य वल्लभ का वंशज एवं मुकुन्दराय की सेवा प्राप्ति का भी उल्लेख है । मुकुन्दराय के विग्रह का वर्णन 'कांकरौली का इतिहास' पृष्ठ २८७ में भी उपलब्ध है–

'सम्वत् १८६६ में काशीस्थ श्रीगिरिधर जी महाराज ने श्री मुकुन्दराय जी को काशी से नाथ द्वारा पधरा कर मनोरथ का विचार किया…………

गिरधर जी महाराज अपने ठाकुर जी को अषाढ़ मास के पूर्व नाथद्वारा पधरा लाये। आषाढ़ में उन्होंने श्रीनाथ जी के साथ मुकुन्दराय जी का छप्पन भोग का मनोरथ कर कार्तिक में चार स्वरूपों का उत्सव करने का विचार किया।

(ख) **सम्प्रदाय**–काशीस्थ गिरधर जी महाराज श्री वल्लभाचार्य के वंशज थे। यह परिचय में लिखा जा चुका है। अतः शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी थे, साथ ही 'शुद्धाद्वैत मार्त्तंड' नामक एक ग्रन्थ इस सम्प्रदाय का महनीय ग्रन्थ है।

(ग) **स्थितिकाल**–शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड, पृष्ठ २६१ के अनुसार सम्प्रदाय में आपका जन्म सम्वत् १८४७ विक्रम में माना गया है।

(घ) **कृतियां**–१. शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड २. बाल प्रबोधिनी
३. प्रपंचवाद[1]

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य—नाम**—गोस्वामी गिरधर जी महाराज कृत श्रीमद्भागवत टीका का नाम बाल प्रबोधिनी है—

'श्रीमद्भागवतस्येयं टीका बालप्रबोधिनी'

परिमाण—यह टीका द्वादश स्कन्धों पर की गयी है, एवं प्राप्त समग्र टीकाओं में अधिक शब्द सम्पति युक्त है।

उद्देश्य—भागवत का गूढार्थ ज्ञान इस टीका द्वारा कराने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। सुबोधिनी टीका द्वारा समग्र भागवत का बोध नहीं होता क्योंकि चतुर्थ स्कन्ध पर्यन्त एवं द्वादश स्कन्ध पर भी वह नही लिखी गयी। बालप्रबोधिनीकार ने शुद्धाद्वैत की भावना एवं सिद्धान्तों के अनुरूप सभी स्कन्धों की टीका की है जिसके द्वारा सम्प्रदायक व्यक्तियों एवं भागवत प्रेमियों को अलभ्य लाभ हुआ है।

प्रकाशन—हरिप्रसाद भागीरथ, मुम्बई द्वारा प्रकाशित।

शैली—सुबोधिनी टीका के ज्ञान के लिये वल्लभ रचित 'तत्व दीप निबन्ध, अणुभाष्य' का मार्मिक अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। बिना इन

---

[1] (क) शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड, पृष्ठ २६१ (ख) शु० पु० सं० बा०, पृष्ठ ५३।

ग्रन्थों के ज्ञान के सुबोधिनी का मर्म ज्ञात ही नही होगा, यह मन में विचार कर गोस्वामी गिरिधर जी ने बालप्रबोधिनी की रचना का निर्णय किया था। इसमें 'तत्वदीप' के विषय को अत्यन्त सरलतापूर्वक प्रारम्भ में तथा प्रत्येक गूढ-स्थल पर स्पष्ट कर दिया है। प्रथम स्कन्ध में उत्तम, मध्यम अधमाधिकार का निरूपण, श्रोता वक्ता के गुण आदि की संगति सुन्दर शब्दों में निरूपित की है। टीकाकार ने वल्लभाचार्य की कारिकाओं की भाँति स्वनिर्मित कारिकाओं में अध्यायार्थ भी दिया है। स्थान-स्थान पर अन्तर्कथाऐं नवीन लिखी हैं जिन्हें अन्य टीकाकारों ने स्पर्श भी नहीं किया। यथा साक्षात् पितुर्द्वेपायनस्यम' साक्षात् पिता का उल्लेख माता अभाव का द्योतक है।

एक समय व्यास अग्निमंथन कर रहे थे, उनको काम का प्रवल वेग उठा तथा उनके वीर्य का पात अरणि में हो गया, फलतः शुक की उत्पति हुई।[1]

मोक्ष की अपेक्षा भगवद्भजन में ही विशेष आनन्द है, इसे सिद्ध किया है तथा जीव को सर्वत्र भगवदंश निरूपित किया है। ब्रह्म अविकृत परिणाम-शील है इसका विवेचन वेदस्तुति में किया है।[2] टीकाकार ने न केवल सुबोधिनी का ही सम्यक् परिशीलन किया था अपितु श्रीधर कृत भावार्थ दीपिका[3], विजयध्वज कृत पदरत्नावली,[4] विटठलनाथ कृत टिप्पणी[5], रामानुजीय-चन्द्रिका[6], रामप्रताप कृत सुबोधिनी[7] आदि टीकाओं का गूढ़ परिशीलन किया था। इनकी समालोचना अनेक स्थलों पर इन्होंने की है। अतः यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में इस टीका ने अपना विशिष्ट स्थान स्वयं बना लिया है। इस एक टीका से सम्प्रदाय का मर्म भली भांति समझा जा सकता है।

५. किशोरी प्रसाद

(क) **परिचय**—विशुद्ध रसदीपिका के रचयिता श्री किशोरीप्रसाद का इतिवृत्त अभी अप्रकाश में है, भागवत टीका के अनुसार इनके विषय में कुछ लिखने का प्रयत्न किया जा रहा है। इन्होंने टीकारम्भ में सर्वप्रथम मिश्र नारायण की वन्दना की है और इन्हें भागवत का मर्मज्ञ विद्वान् लिखा है, अतः नारायण इनके गुरू वंश के पूर्व पुरुष थे —

---

१. बाल प्रबोधिनी १।६।३६   २. वही १०।८७।४७   ३ व ४ वही १।१।१
५. वही १०।१।१   ६. वही १।७।४६   ७. वही १।४।१४

श्रीमिश्र नारायण पाद पल्लवं
प्रणोंमि सद् भागवतं पुराणम्
यत्र क्व व येन स्वयं प्रकाशितम्
स्वयं निपतिं स्वयमेव गीतम् ।। (वि. दी. १०।२९ उप्रकम १)

श्री शुकदेव जी की कृपा से मित्र नारायण को यथार्थ व्याख्यान की शक्ति प्राप्त थी।

लोकवल्लीलया येन मुनिन्द्रि वरदानतः
लब्धा महापुराणस्य यथार्थख्यान शक्तयः ।। (वही श्लोक २)

नवधा भक्ति उनके आगे मूर्तिमती स्थित थीं—

नवधा भक्तयो यस्य मूर्तिमत्योऽग्रतः स्थिताः
शुद्धां भक्तिं प्रपुष्णन्तितत्पदाम्वुज सेविनाम् ।।

वे किशोरी रमण की उपासना सख्य भाव से करते थे एवं ललिता सखी के अनुयायी थे—

किशोरी रमणो यस्य देवः सख्येन सेवितः
ललितानुगत प्रीत्या साक्षादानन्ददायकः ।।

'किशोरी रमण' का मन्दिर नील कटरा देहली में है तथा 'ललिता अटा' के नाम से एक प्रसिद्ध स्थान ललिता सखी का ऊंचे गाँव में है।

मिश्र नारायण के पश्चात् 'प्रद्युम्न' नामक विद्वान् की महिमा का उल्लेख मिलता है। प्रद्युम्न वंशी अली के पिता थे, वंशी अली वृन्दावन के प्रमुख सन्तों में थे—

'वंशी अली का जन्म किशोरीरमण मन्दिर 'नील कटारा,' देहली में ही हुआ था। कुछ काल के बाद जब वे पुष्कर गये तब मार्ग में जयपुर में किशोरीप्रसाद इनके शिष्य हुए। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। वंशी अली के प्रभाव से जयपुर में राजा द्वारा 'लाड़िली जी' के मन्दिर का निर्माण भी किया गया। वंशी अली के वंशज श्री युगल किशोर गोस्वामी वर्तमान हैं।"

प्रणम्य प्रद्युम्न पदारविन्दम्—
वर्षन् महाप्रेम सुधामरन्दम्
श्री राधिका कृष्ण किशोर लीलाम्,
व्याख्यामि चाख्यामि सदाऽप्रमीलाम् ।।

"प्रद्युम्न के चरणारविन्द की वन्दना कर महाप्रेम सुधा वर्षिणी राधिका कृष्ण की किशोर लीला की व्याख्या करता हूँ।"

(विशुद्धरस दीपिका, मंगलाचरण)

इसके पश्चात् 'श्री रामकृष्ण' का स्मरण किया है, उन्होने लिखा है कि यह टीका रामकृष्ण के प्रसाद से पूर्ण हुई—

रामकृष्ण प्रसादेन संवादेन सताभिवम्
क्रियते रासलीलाया विशुद्धरस दीपिका ।

अतः रामकृष्ण से श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया था, यह स्पष्ट है । अपनी अतिशय विनम्रता द्योतक हेतु उन महात्मा विद्वानों की स्तुति भी की है जिन्होंने अपने प्रवल वैदुष्य से भागवत की इस रासलीला की गूढ़ता का का प्रदर्शन किया था–

यदुच्छिष्टामृतेनायं मूर्खोऽपि मुखरीकृतः
साधवस्ते कृपापूर्णाः क्षभ्यन्तामक्रमं मम ।।

किशोरीप्रसाद सकल शास्त्र पारावार पारीण विद्वान् थे एवं अतीव विनम्र भक्त थे । विना भवित भाव के इतनी सरस टीका का निर्माण भी कठिन था ।

(ख) **सम्प्रदाय**–किशोरीप्रसाद विष्णु स्वामी सम्प्रदायानुवर्ती ललिता सम्प्रदाय के अनुयायी थे । परिचय में यह लिखा गया है कि ये वंशीअली के शिष्य थे, वंशीअली के उपास्य किशोरीरमण एवं ललिता के अनुगामित्व का निर्देश किशोरीप्रसाद ने अपनी टीका में किया है–

'ललितानुगतप्रीत्या' (विशुद्धरस दीपिका, उपक्रम)

शुद्धाभक्ति का उल्लेख भी इस परम्परा में प्राप्त है—

'शुद्धां भक्ति प्रपुष्णन्तितत्पदाम्बुज सेविनाम् ।'

विष्णु स्वामी का उल्लेख उनकी टीका में उपलब्ध नहीं हुआ तथापि वंशी अली के वंशजों के अनुसार उन्हें उक्त सम्प्रदाय में माना गया है ।

(ग) **स्थितिकाल**—विशुद्धरस दीपिकाकार ने अपनी स्थिति के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है किन्तु वंशी अली जी के वृत्त के आधार पर यह निश्चय किया जा सकता है कि इनका जन्म १८००–१८५० के मध्य हुआ होगा ।[1]

(घ) **कृतियां**–विशुद्धरसदीपिका–रासपंचाध्यायी टीका

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य—नाम**–इस का नाम 'विशुद्ध रस् दीपिका है—

'क्रियते रासलीलाया विशुद्ध रस दीपिका' (उपक्रम, श्लोक ७)

परिमाण–यह टीका केवल रासपंचाध्यायी पर है । अर्थात् दशम स्कन्ध

---

[1] **वंशी अली के वंशजों के कथनानुसार ।**

के २६ से ३३ अध्याय पर्यन्त। किन्तु यह टीका रासपंचाध्यायी की उपलब्ध टीकाओं में सर्वाधिक शब्द सम्पत्तिशालिनी टीका है।

उद्देश्य—यह टीका राधाकृष्ण के संवलित रूप के निर्धारण एवं प्रचारण के हेतु लिखी गई है। श्री कृष्ण की स्थिति राधा से कभी भिन्न नहीं हो सकती यह इस टीका द्वारा स्पष्ट किया गया है।

प्रकाशन—यह टीका वृन्दावन से प्रकाशित आठ टीका संस्करण मुद्रित है।

शैली–रासपंचाध्यायी का टीका भूमिका शैली में है, यथा 'बादरायणिरुवाच' पद की संगति मिलाते हुए लिखा गया है--

'तत्र श्रीबादरायणिरुवाच श्रीशुक उवाचेति पाठद्वयं तत्राति हर्षज्ञापकं पुण्यविशेषमेत्तस्मिन्नुपकल्पयन् बादरायणिरुवाचेत्याह श्री सूत:तथाहि बदराणां समूहो बादरम् 'वदरीखण्डमण्डिते' इति प्रथमोक्तेः, तदयनमाश्रयो यस्या सौ बादरायणो व्यास: तस्यापत्यं बादरायणि: ततश्च—

अन्यत्र दशभिर्वर्षैर्यत् पुण्यमुपलभ्यते
मनुजैरेकरात्रस्य वासाद् बदरिकाश्रमे ।।

तत्रचिरवासेन..................आख्यानमित्यादि शन्नाह् बादरायणिरुवाच । यत्र शुक उवाचेति पाठ: श्रीरत्रातियोग्यत्वाच्छ्रीराधैव ।'

उक्त गद्य उनकी विस्तार भावना का परिचायक है, सभी शब्दों की प्राय: व्याकरण द्वारा व्युत्पत्ति, कोशों के उद्धरण तथा पुराणों के प्रामाणिक उद्धरण एवं अन्तर्कथाएँ आदि अनेक विशेषताएँ इस टीका में दृष्टिगोचर होती होती हैं। श्री राधिका का उत्कर्ष श्री सनातन ने सिद्ध किया। जीव गोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती आदि टीकाकारों ने उसे चरम कोटि में प्रविष्ट किया। विशुद्धरस दीपिकाकार ने मानों उसका साक्षाद्नुभव किया है। साथ ही वंशी तत्व की विभिन्न व्याख्याएँ की गईं। यद्यपि भागवत में 'वेणु' शब्द का उल्लेख होने के कारण वंशी के विषय में कुछ नहीं लिखा गया तथापि व्रज में वंशी शब्द का ही अधिक प्रसार है। उक्त टीका में वंशी का सादर उल्लेख ही नहीं अपितु उसकी स्तुति भी है। इस इकार की स्तुति अन्य किसी टीका में उपलब्ध नहीं है--

श्री वंशिकां नौमि ययात्मसात्कृता:
कृता न के कुंज सुखाब्धिमग्ना: ।
निपीय यस्या ध्वनिमाशु याता
जाता व्रजे राधितराधिका स्ता: ।।

वंशी ने कुंज सुख के समुद्र में सुनने वालों को मग्न किया है, अतः उसे नमस्कार करता हूँ। कृष्ण राधिका की लीला नित्य है, टीकाकार ने दशम स्कन्ध की लीला का नित्यत्व सिद्ध किया है––

'तत्र भगवत्लीलाया नित्यत्वप्रतिपादकं श्री दशम स्कन्ध वाक्यं यथा जयतीति––

'जयति जन निवासो देवकी जन्मवादो'

+ \+

'जयति वर्तमान प्रयोगेण नित्यत्यं सूचितम्'।

भगवान की नित्य लीला के सम्बन्ध में वल्लभाचार्य एवं गौड़ीय वैष्णवों ने ही बल दिया है, अन्य टीकाकारों ने केवल श्लोकों की व्याख्या मात्र की है उसके तलस्पर्श का प्रयत्न ही नहीं किया। शब्द व्युत्पत्ति में वस्तुतः ये सिद्धहस्त थे, देवकी की व्युत्पत्ति देखिये–

'दीव्यति नित्यं क्रीडतीति देवोनित्य बिहारी तं कायति शब्दायते सा देवकी श्री हरिकथा।'

देवकी का अर्थ हरिकथा है।

'राधा' कृष्ण के वाम भाग में सदा विराजमान हैं––

'वाम भागे स्थितां तस्य राधिकां पर देवताम्'

पुंल्लिग का निर्देश होने पर भी राधा से अभेद है–

'तस्माज्ज्योतिरभूद् द्वेंधा राधामाधवरूपकम्'

प्रमाण से स्पष्ट है। हरि की त्रिविध लीला ब्रज, वन, निकुंज में हैं। किन्तु ब्रज की लीला से वन की लीला एवं वन की लीला से निकुंज की लीला श्रेष्ठ है। पुनश्च यह लीला द्विधा है—प्रकटा, अप्रकटा। प्रथम प्रकट लीला साधक सिद्धि के लिये है, अप्रकट लीला द्वापरान्त में होती है। राधाकृष्ण अपने-अपने परिकर सहित गौलोक से ब्रजभूमि में अवतरित होते हैं। कुंज-कुंज में विहरण कर प्रकटता में भी अप्रकट रूप से ज्ञात होते हैं। विशेषतः उनकी प्रकट लीला का गान मुनि महर्षि करते हैं, अप्रकट लीला अति रहस्यपूर्ण होने के कारण गान नहीं की जाती। माधुर्य सिद्ध अधिकारियों के लिये यह लीला प्रकट की गई है। (विशुद्ध रस दीपिका, उपक्रम)

गोपी––गोपियों के चार भेद किये हैं--ऋषि कन्या, गोप कन्या, श्रुति-रूपा, देवरूपा। दण्डकारण्य के ऋषियों ने राम का रूप देखकर उनसे विहार करने की इच्छा की थी––

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

'पुरामहर्षय: सर्वे दण्डकारण्य वासिन:
दृष्ट्वारामं हरिं तत्र भोक्तुमेच्छन् सुविग्रहम् ।
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्ना समुद्भूताश्च गोकुले
हरिं संप्राप्य कामेन ततोमुक्ता भवार्णवात् ।'

अत: वे गोकुल में स्त्री रूप में प्रकट हुए। अग्निपुत्र भी गोपकन्या बने थे--

'अग्निपुत्रामहात्मानस्तपसा स्त्रीत्वमापिरे'

टीकाकार ने 'कृष्णयामल' के अनुसार ८० गोपियों के नामों का उल्लेख किया है। श्रुतियों के सम्बन्ध में कहा है—'एक बार श्रुतियों ने परात्पर ब्रह्म की चिरकाल तक स्तुति की, वे उनसे प्रसन्न हुए एवं वर माँगने के लिये उन्हें प्रेरित किया तब श्रुतियों ने कहा कि आपके कोटि काम मोहक रूप को देखकर हम कामिनी भाव से आपका सेवन चाहते हैं—

ब्रह्मानन्द मयोलोको व्यापी बैकुण्ठ संज्ञित:
तल्लोकवासी तत्रत्ये: स्तुतोवेदे: परात्पर:।
चिरंस्तुत्या ततस्तुष्ट: परोक्षं प्राहतान् गिरा
तुष्टो स्मि ब्रूत वो प्राज्ञा वरं यन्मनसेप्सितम् ।।'

श्रुतय: ऊच —

'कन्दर्प कोटि लावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसिन:
कामिनी भावमासाद्य स्मर क्षुब्धा न संशयम् ।।
यथात्वल्लोकवासिन्य: कामतत्वेन गोपिका:
भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाऽजनि म स्तथा ।। वि० टी० २९।१)

तब भगवान ने कहा—

"आगामिनि विरंचौतु जाते सृष्ट्यर्थमुद्यते
कल्पं सारस्वतं प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ ।।"

इस वाक्य द्वारा सारस्वत कल्प में उन्हें गोपिका बनने का वरदान दिया। वे गोपी रूप में प्रकटीं। श्रुतिरूपा चालीस गोपियों के—सुतपा, उग्रतपा, सुव्रता आदि नाम भी लिखे हैं। इस प्रकार गोपियों का केवल मनुष्यत्व से सम्बन्ध नहीं था। यह इन्होंने सिद्ध किया है—

'गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यका:
देवकन्याश्च विपेन्द्र ! न मानुष्य: कथंचन ।।

किन्तु निकुन्ज में एक ही स्त्री का वास होता है—

"नहि निकुन्जेऽनेक नायिकात्वम्"

अत्रैवाहं पुमानेकः केवलोऽगम्य ईश्वरः
स्त्री द्वितीया तुराधैव तस्याः सख्य; स्त्रियोऽपराः ॥

राधा का कृष्ण के साथ विवाह वर्णन इस रास लीला के व्यपदेश से है—

"उभयोः गान्धर्व विवाहमेव रासापदेशेन सूचयति ।"

राघवेन्द्र सरस्वती के श्लोकों को यहां उद्धृत किया है—

"श्रीकृष्णस्तिलकं चकार सुदृशोभालेनिभाल्याननम् ।
त्वं वृन्दावन वल्लवी मणिरसि प्राणाधिके राधिके
इत्युक्ते मुर वैरिणा जय जयेत्याकाशवाणी जगौ
नेदुर्दुन्दुभयोऽपि पेतुरसकृन्मन्दार पुष्प स्रजः ॥"

(विशुद्धरस दीपिका, २६।१)

"गान्धर्वोऽयं विवाहः समभवदनया राधया माधवस्य
प्रायो गन्धर्व मुख्यैः सुरनरपतिभिर्गास्यते सर्वलोके ।
आ चन्द्रार्कं च वृन्दावनभुविमविता कुन्जगेहे विहारो
रासे गोपीकुमारस्तव भवतु चिरंराधिके कण्ठहारः ॥"

(वही २६।१)

टीकाकार ने अपनी शक्ति का विनियोग बड़े चातुर्य एवं भक्ति भाव से स्थापित किया है, प्राच्य टीकाओं का भली भांति परिशीलन करने के कारण इस टीका में एक अपूर्वता आ गई है, अतः रासपंचाध्यायी की अन्यान्य टीकाओं के मध्य यह श्रेष्ठ टीका है ।

* * *

अध्याय सप्तम

मध्व गौड़ीय सम्प्रदाय के टीकाकार

१. सनातन गोस्वामी
२. जीव गोस्वामी
३. विश्वनाथ चक्रवर्ती
४. बलदेव विद्याभूषण
५. राधारमणदास गोस्वामी
६. रामनारायण मिश्र

मध्व गौड़ीय सम्प्रदाय के टीकाकार

१. श्री सनातन गोस्वामी

(क) परिचय—मध्व गौड़ीय वैष्णवाचार्य परम्परा में सनातन गोस्वामी का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ ग्रहण किया जाता है। सनातन गोस्वामी भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे, इन्होंने ब्रज एवं वृन्दावन के विभिन्न गुप्त स्थलों को प्रकट किया था। आज वे तीर्थ बन चुके हैं। सनातन के साहित्य परिशीलन से उनके मस्तिष्क पक्ष एवं हृदय पक्ष की महत्ता का बोध होता है किन्तु उसके तल स्पर्श के लिये स्वयं का ज्ञान अपेक्षित है। उनके प्रत्यक्ष चमत्कारों का उल्लेख भी कम महत्व का नहीं है प्रसिद्ध मदनमोहन जी के मन्दिर का दर्शन उनके चमत्कारपूर्ण जीवन के एक अंश का परिचायक है।

वस्तुतः सनातन-सनातन धर्म के प्रबल पोषक के रूप में जनता के सम्मुख आये थे इनके जीवन के बारे में विश्वनीय प्रमाण उपलब्ध हैं। जीव गोस्वामी एवं स्वयं सनातन गोस्वामी ने अपने परिचय में लिखा है कि उनके पूर्वज 'श्री सर्वज्ञ-कर्णाट प्रदेश के अधिपति थे'।[1] सर्वज्ञ बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे।[2] अनिरुद्ध वेद के प्रकाण्ड विद्वान् थे।[3] इन्हीं के वंश में श्री सनातन देव हुए। सनातन की माता का नाम रेवती एवं पिता का नाम कुमारदेव था। सनातन का जन्म रामकेलि (गौड़देश) में हुआ था।[4] सनातन ने प्रारम्भिक अध्ययन अपने ग्राम में ही किया था। यवन शासन के कारण इन्हें फारसी का अध्ययन करना पड़ा। इस कार्य की सम्पन्नता फकरुद्दीन नामक यवन से हुई थी। समस्त शास्त्रों का अध्ययन रामभद्र नामक विद्वान् से किया था। सनातन

---

[1] आठ टीका संस्करण में अन्तिम पृष्ठ पर श्लोक बद्ध परिचय, जीव गोस्वामी द्वारा रचित।

[2] श्री सर्वज्ञ जगद्गुरुर्भुवि भरद्वाजान्वय ग्रामणीः। (श्लोक ५)

[3] 'लक्ष्मीवाननिरुद्धदेव इति यः ख्याति क्षितोजज्ञिवान्' (श्लोकवद्ध परिचय)

[4] (क) गौड़ीय वैष्णव अभियान कोश, पृष्ठ १३९७ (बंगला)
(ख) सन्त अंक, पृष्ठ ४३६, गीताप्रेस गोरखपुर।
(ग) भक्ति रसामृत सिन्धु, (भूमिका पृ० १), बी० एच० वनमहाराज (अंग्रेजी)

गोस्वामी ने वेद वेदांग व्याकरण, ज्योतिष, साहित्य, पुराण शास्त्रों में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली थी ।[1] बड़ी अवस्था के पूर्व ही सनातन गोस्वामी को 'साकार मलिक' पद हुसेन शाह ने दिया था । इस पद पर बड़ी योग्यता के साथ सनातन ने कार्य किया । सनातन का बाल्यावस्था का नाम अमर था किन्तु हुसेन शाह के द्वारा इनका नाम 'साकार मल्लिक' प्रसिद्ध हुआ । आगे चलकर गौड़ीय सम्प्रदाय के अनुगामी वैष्णवों ने इन्हें 'बड़ गोसाई' शब्द से अभिहित किया । सम्प्रति सनातन की जन्मस्थली-बड़वाड़ी एवं सरोवर सनातन सागर के नाम से प्रसिद्ध है । 'सनातन' नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है । यह नाम चैतन्य महाप्रभु ने दिया था । इस प्रकार सनातन के चार नामों का उल्लेख प्राप्त होता है । सनातन के अनुज का नाम रूप था जो रूप गोस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए । रूप के अनुज का नाम वल्लभ था, यही जीव गोस्वामी के पिता थे ।[2] रूप गोस्वामी ने सनातनाष्टक में यह उल्लेख भी किया है कि सनातन के पितामह का नाम मुकुन्द देव था—

सु दाक्षिणात्य भूमिदेव भूपवंश भूषणम् ।
मुकुन्द देव पौत्रकं कुमार देव नन्दनम् ।
सजीवतात वल्लभाग्र जन्म रूपकाग्रजम्
भजाम्यवं महाशयं कृपाम्वुधिं सनातनम् ।। (सन्नातेनाष्टक)

श्री सनातन की आत्मा में अशान्ति बनी रहती थी, यवनों की मृत्यता उनके आचार विचार एवं भारत पर उनका आर्यजनों पर शासन आदि से वे विक्षुब्ध हो गये थे । उनकी इस उद्विग्नता में श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शनों का सौभाग्य इन्हें प्राप्त हुआ, इसके पूर्व सनातन ने एक स्वप्न देखा, उसमें एक ब्राह्मण ने इन्हें भागवत पुराण दिया । ज्ञात होता है कि उस समय सनातन गोस्वामी भागवत पुराण के परिशीलन में व्यस्त थे—

ये श्री भागवतं प्राप्य स्वप्नेप्राहश्च जागरे
स्वप्न दृष्टादेवविप्रातप्रथमे वयसि स्थिताः ।। (आ० टी० उप० सं०)

चैतन्य महाप्रभु के दर्शन से इन्हें कुछ शान्ति प्राप्त हुयी तथा ये वृन्दावन-वास के लिये लालायित हो उठे, इस अवसर पर हुसेन शाह के साथ उनका वार्तालाप हुआ । वार्तालाप का विषय राजकीय अर्थव्यवस्था थी ।

---

[1] ब्रजधाम और गोस्वामी गन—ले० गोवर्द्धनदास, वृन्दावन (बंगला)

[2] आदिः श्रीलसातनस्तदनुजः श्री रूपनामा ततः
श्रीमद्वल्लभनामधेय वलितो निर्विधते राज्यतः ।। (आठ टी० उप०)

सनातन का उत्तर सन्तोषजनक न पाकर एवं इनके कार्य व्यापार से असन्तुष्ट होकर उसने इन्हें कारागार में डाल दिया। सनातन गोस्वामी ने कुछ दिवस कारागार में व्यतीत किये, अन्त में श्री रूपगोस्वामी के सहयोग से ये कारागार से भाग निकले। कारागार से मुक्त होते ही ये श्री चैतन्य के समीप काशी पहुँचे एवं वहाँ दशाश्वमेघ घाट पर दीक्षा ली। श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार ये वृन्दावन में आदित्य टीला नामक स्थान पर निवास करने लगे। इसी स्थान पर सनातन गोस्वामी को भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन का लाभ प्राप्त हुआ था।

सनातन गोस्वामी वृन्दावन में निवास करते किन्तु भिक्षा के लिए नित्य मथुरा जाया करते थे। एक बार माथुर बालकों के मध्य क्रीड़ा करते हुए एक बालक ने सनातन के साथ वृन्दावन चलने की अभिरुचि प्रकट की। किन्तु भोजनादि की सुव्यवस्था न होने के कारण सनातन ले जाने में थोड़ा झिझके, किन्तु एक दिन ये वृन्दावन चल दिये। सनातन को इनमें दिव्य दर्शन हुए और वे उनकी बड़े भाव से सेवा करने लगे। तभी एक घटना घटी और वह सनातन से पृथक् हो गया। कृष्णदास नामक वैश्य अपनी नौका में व्यापार के लिये यमुना द्वारा यात्रा कर रहा था। नौका सनातन गोस्वामी के स्थान के समीप ही भँवर में पड़ गयी, नाविक भाग गये। तब कृष्णदास सहायता के लिए पुकारने लगे, सनातन सेव्य बालक ने उनसे कहा कि आप सनातन नाम पुकारिये तो आप बच जायँगे। उन्होंने ऐसा ही किया। नाम ग्रहण करते ही नौका भँवर से निकल आयी। तट पर पहुँच उसने बालक से सनातन का परिचय पूछा और वे उनकी कुटिया पर पहुँच उनके चरणों में गिर पड़े। सनातन को जब यथार्थ ज्ञात हुआ तो वे बालक के प्रति आवेश में आ गये। साधु प्रकृति पर मोहित होकर कृष्णदास ने समरत धनराशि सनातन के चरणों में अर्पित की किन्तु सनातन ने उसे अस्वीकार कर दिया। इससे कृष्णदास और भी अधिक प्रभावित हुए और उन्होंने सनातन गोस्वामी का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। बालक के अन्तर्हित होने पर सनातन व्यग्र थे किन्तु कुछ कालोपरान्त एक प्रस्तर मूर्ति उन्हें प्राप्त हुयी जो आकार प्रकार में उस शिशु के ही तुल्य थी। सनातन ने मदन गोपाल नाम से उनकी स्थापना की तथा कृष्णदास ने उनकी सेवा-भावना के अनुसार एक भव्य मन्दिर का निर्माण करवा दिया। यह स्थान मदनटेर के नाम से विख्यात है।[1] सनातन गोस्वामी

---

[1] वृहद्भागवतामृत–रतनलाल बेरी (भूमिका), वृंदावन, सं० २००६।

के प्रमुख शिष्य–रघुनाथदास, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट थे। एक अन्य प्रमाण के अनुसार जीवन ठाकुर, गोपाल मिश्र, अच्युतदास तथा रामदास कपूर भी इनके भक्त शिष्य थे।[1] सनातन गोस्वामी के चमत्कार के सम्बन्ध में अन्य घटनाएँ भी प्रसिद्ध हैं—

(१) एक बार एक ब्राह्मण ने धन हेतु शिव की आराधना की, शिवजी की आज्ञानुसार वह सनातन गोस्वामी के समीप आ पहुँचा। सनातन ने उसका अभिप्राय समझ उसे पारस मणि दे दी। तब वह उससे भी अधिक आकांक्षा करने लगा। सनातन ने उसे भगवान् के स्वरूप की छटा का दर्शन करा दिया। वह पारस मणि को यमुना में फेंक उनकी शरण में आ पड़ा और प्रेम रूपी धन प्राप्त किया। (वृहद्भागवतामृत, भूमिका)

(२) सनातन बृद्धावस्था में गोवर्द्धन पर्वत की प्रदक्षिणा में मुर्छित हो जाते थे। श्रीकृष्ण ने एक बालक के रूप में दर्शन दिया और भगवच्चरण चिन्हित एक शिला का दर्शन कराते हुए उसकी प्रदक्षिणा का उपदेश दिया। सनातन उसी की प्रदक्षिणा करने लगे, वह शिला तभी से भक्तवृन्दों का आकर्षण बन गयी। सनातन गोस्वामी के प्रयत्न से ब्रजमण्डल के अनेक तीर्थ प्रकाश में आये, उन्होंने अपने आचार-विचार एवं सहनशीलता आदि के द्वारा ब्रजवासियों पर अमिट छाप छोड़ी थी। अनेक व्यक्ति उनके शिष्य बन कर अपना सौभाग्योदय मानने लगे थे, किन्तु सनातन भगवद्ध्यान एवं भजन का उपदेश देना उचित समझते थे। शिष्य बनाने में उनकी श्रद्धा नहीं थी क्योंकि वे ब्रजवासियों को भगवत्सखा के रूप में मानते थे। कई बार नन्दग्राम में भगवान् ने उन्हें भिक्षा में दुग्धपान कराकर स्वस्थता प्रदान की थी।

(ख) **सम्प्रदाय**—सनातन गोस्वामी ने चैतन्य की भावना पूर्ण करने का प्रयत्न किया था। वे चैतन्य के परमप्रिय पार्षदों में थे। इन्हें चैतन्य सम्प्रदाय का प्रमुख स्तम्भ माना जाता है। चैतन्य की इच्छा निम्न थी, जिनको सनातन गोस्वामी ने पूर्ण किया[2]—

(१) शुद्धभक्ति सिद्धान्त स्थापन।
(२' मथुरा मण्डल के लुप्त तीर्थों का उद्धार।
(३) वृन्दावन में कृष्णविग्रह प्राकट्य।
(४) वैष्णव सदाचार प्रचार।

१, ब्रजधाम और गोस्वामीगन–गोवर्द्धनदास कृत, वृन्दावन।

२. सप्त गोस्वामी गन–पृष्ठ १२२।

(ग) **स्थितिकाल**—सनातन गोस्वामी का जन्म सम्वत् १५४५ प्रामाणिक रूप में माना जाता है किन्तु कतिपय ग्रन्थों में विभिन्न सम्वतों का उल्लेख है। सप्त गोस्वामी गन (पृष्ठ ६४) एवं वृहद्भागवतामृत की भूमिका में इनका जन्म सम्वत् १५२१ एवं १५३६ लिखा है। विश्वकोश (बङ्गला पृष्ठ १७३) में १५४२ विक्रम, सन्त अंक, कल्याण में पृष्ठ ४३६ पर १५४३ विक्रम एवं भागवत पत्रिका में १४४५ वि० स्वीकार किया है।[1]

इस प्रकार उक्त सभी मतों में भी केवल १४ वर्ष का अन्तर स्पष्ट है। इनमें गौड़ीय वैष्णव समाज में १५४५ विक्रम को अधिक प्रामाणिक माना गया है। उसका कारण यह है कि उक्त सम्प्रदाय के सम्मान्य विद्वान् भक्ति विनोद टक्कुर ने 'छः गोस्वामी सम्बन्ध अब्दनिर्णय' नामक ग्रन्थ में उक्त सम्वत् की पुष्टि की है।[2]

सनातन गोस्वामी का स्थितिकाल ७० वर्ष स्वीकार किया जाता है, 'सप्त गोस्वामीगण' ग्रन्थ का सम्वत् १५२१ मानने से सम्वत् १५९१ पर्यन्त उनका स्थितिकाल बैठता है जो अयुक्त है क्योंकि उनका अन्तर्द्धानकाल १६१५ आषाढ़ शुक्ल माना गया है, अतः वह प्रामाणिक नहीं है। श्री रूप सनातन शिक्षामृत पृष्ठ ४० पर उनके अन्तर्द्धान का समय १४७६ शाके सम्वत् १६१३ लिखा है। इस अवधि में सनातन गोस्वामी ने वृहद्वैष्णवतोषिणी की रचना की थी[3] एवं उसका संक्षेप जीवगोस्वामी से करवाया था।[4] अतः सनातन गोस्वामी का जन्म सम्वत् १५४५ तथा अन्तर्द्धान सम्वत् १६१५ मानना उपयुक्त है।

(घ) **कृतियाँ**—जीव गोस्वामी के अनुसार इनकी निम्नलिखित कृतियाँ हैं—

(१) भागवतामृत (२) हरिभक्तिविलास (३) दिक्प्रदर्शिनी टीका
(४) लीलास्तव (५) वैष्णवतोषणी।

तथाग्रज कृतेध्वग्यू श्रील भागवतामृतम्
हरिभक्ति विलासश्च तट्टीका दिग् प्रदर्शिनी।

---

[1] भागवत पत्रिका–केशव गौड़ीय मठ मथुरा प्रकाशन, वर्ष ६, पृष्ठ २६२।

[2] सज्जन तोषिणी, द्वितीय वर्ष, द्वितीय संस्करण।

[3] शके षट् सप्तति मनौ पूर्णेयं टिप्पणी शुभा
संक्षिप्त युगशून्याग्र पंचक गणिते तथा।। (लघुतोषिणी, उपसंहार)

[4] 'या संक्षिप्य मया क्षुद्र जीवेनापितदाज्ञया' (लघुतोषिणी, उपसंहार)

लीलास्तव टिप्पणी च सेयं वैष्णवतोषणा
या संक्षिप्य मया क्षुद्र जीवेना पितदाज्ञया ।। (लघुतोषिणी ७५०)

विश्वकोश में पृष्ठ १७३ पर दिक् प्रदर्शिनी टीका की गणना 'हरि भक्ति विलास' के साथ ही की है पृथक नहीं। सर्वेश्वर पत्र के वृन्दावनांक में पृष्ठ २५७ पर 'गीतावली', 'सिद्धान्तसार' एवं 'रसमय कलिका' नामक तीन ग्रन्थों का उल्लेख अधिक है। कल्याण में भी इनकी पुष्टि की गयी है।[1] तात्पर्य टीका[2] का उल्लेख एवं गोपाल-पूजा[3] का उल्लेख भी उपलब्ध होता है। जीव गोस्वामी ने इनके ५ ग्रन्थों का ही उल्लेख किया है, वैष्णवतोषणी में इनका स्पष्ट निर्देश है, सम्भव है ये ग्रन्थ लघुकाय हों या बाद में लिखे गये हों, जीव गोस्वामी ने वैष्णवतोषणी के संक्षेप करने के समय ही उक्त ग्रन्थों का उल्लेख किया होगा।

(१) बृहद्भागवतामृत–यह ग्रन्थ दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड का नाम 'श्री भागवत कृपा सार निर्द्धार' द्वितीय का नाम 'गोलोक माहात्म्य निरूपण' है। प्रथम खण्ड में भोम, दिव्य, प्रपंचातीत, भक्त, प्रिय, प्रियतम, और पूर्ण कृपापात्र नामक अध्याय हैं। द्वितीय खण्ड में वैराग्य, ज्ञान, भजन वैकुन्ठ, प्रेम, अभीष्ट, लाभ और जगदानन्द नामक ७ अध्याय हैं। खण्ड एक में ७९८ तथा खण्ड दो में १७१६ श्लोक हैं।

(२) हरि भक्ति विलास—इस ग्रन्थ की रचना महाप्रभु चैतन्य के आदेशानुसार १४६१ शाके (सम्वत् १५९६) में हुई थी। यह ग्रन्थ तथा इसकी 'दिग्दर्शिनी' नामक टीका राधारमण मन्दिर वृन्दावन में सुरक्षित है।

(३) श्रीकृष्णलीलास्तव—यह लीला स्तव के नाम से भी विख्यात है। इसे भागवत दशम स्कन्ध की लीलाओं का सार कहा जा सकता है। ४३२वें श्लोक में १०८ दण्डवत् की विधि पर अच्छी भांति प्रकाश डाला है। ४५वें अध्याय में नन्द विदा पर्यन्त की कथा बड़े कौशल के साथ रखी गयी है। भागवत की स्तुति तथा भगवान् कृष्ण की करुणा का माहात्म्य अद्भुत है। इस ग्रन्थ के पाठ मात्र से भागवत पाठ की नित्य विधि पूर्ण हो जाती है। भागवत की वन्दना के यह श्लोक ४१२ व ४१६ बड़े ही सरस हैं। यथा—

---

[1] कल्याण-वेदान्तांक, पृष्ठ ७०४।

[2] इण्डिया आफिस कैटलोग, वाल्यूम ७, पृष्ठ १४२२

[3] मद्रास ओरियन्टल—एम० एस० एस० लाइब्रेरी के पार्ट १, नं० ३०५३

सर्वशास्त्राब्धि पीयूष सर्व वेदेक सत्फल
सर्व सिद्धान्त रत्नाढ्य सर्वलोकेक दृक प्रद ।
सर्व भागवत प्राण श्री मद्भागवत प्रमो
कलि ध्वान्तो दितादित्य श्रीकृष्ण परिवर्तित ।।

(४) बृहद्वेष्णवतोषणी—यह श्री सद्भागवत की टीका है । केवल दशम स्कन्ध पर यह टीका लिखी गयी हैं । इसमें श्रीधर स्वामी के अस्पष्ट भावों को व्यक्त करने के साथ अचिन्त्य भेदाभेद के सिद्धान्तों की स्थापना भी की है ।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य–नाम** —सनातन गोस्वामी की टीका का नाम 'बृहद्वैष्णवतोषिणी' है । जैसा कि पुष्पिका से स्पष्ट है—

इति सनातन गोस्वामी कृतायां बृहद्वैष्णवतोषिण्यां दशम स्कन्धे पूर्वाद्ध प्रथमोऽध्यायः ।

परिमाण–यह टीका केवल दशम स्कन्ध पर लिखी गयी है किन्तु गौड़ीय वैष्णव टीकाओं में सर्वाधिक शब्द सम्पति युक्त है ।

उद्देश्य–सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी शिष्य थे । इस सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत पुराण को अपना उपास्य माना है । श्रीमद्भागवत में दशमस्कन्ध ही सार है अतः सनातन ने इस स्कन्ध की ही टीका की थी । 'बृहत्तोषिणी' भागवतगुह्य रस से अनभिज्ञ टीकाकारों की शुष्कवाद से पूर्ण वाक्यावली की ऊष्मा से सन्तप्त भक्तों की हृदय वापिका को सरस बनाने में पूर्ण सफल सिद्ध हो चुकी है । अथवा भगवत्लीला रसास्वादन पटु जीवधारियों की सुधालिप्सा को यह पूर्ण करने में समर्थ है । व्रजवल्लवी तथा व्रजवल्लभ के हृद्गत भावों का सफल सम्पादन जैसा इस टीका में देखने को प्राप्त होता है अन्यत्र दुर्लभ है ।

प्रकाशन–यह टीका आठ टीका संस्करण, वृन्दावन में मुद्रित हुई है। किन्तु दशम स्कन्ध के १३ अध्यायों की टीका इसमें प्रकाशित ही नहीं हुई है, जिससे भगवान की सरस व्रजलीलाओं पर सनातन के भावों से वंचित रहना पड़ता है ।[1]

---

[1] आठ टीका संस्करण, में पृष्ठ ४७१ से बृहतोषिणी का मुद्रण हुआ है । १०।१४।१२ की टिप्पणी में सम्पादक महोदय ने लिख दिया है कि यह टीका मुद्रण के कुछ काल पश्चात् प्राप्त हुई थी अतः पश्चात् ही आरब्ध की जा रही है ।

शैली–यह अन्वय मुख व्याख्या है, बड़ी-बड़ी भूमिकायें भी उपनिबद्ध की है––

'यदि च तास्तादृशविधूनेन निवारिता अभविष्यन् तर्हि सध एवं दशमीं दशामगमिष्यन्निति तासां सर्वासामेव भावविशेषं दृष्टान्तेनैव प्रदर्शयन् कासांचिदवस्थाविशेषमाह। (बृहद्तोषिणी १०।२९।१०)

भाषा में सरलता तथा लालित्य है लम्बे लम्बे समासी में भी कृत्रिमता कहीं नहीं है। व्याकरण की अवहेलना नहीं हैं तथा शब्दानुप्रास इन्हें आकर्षित नहीं कर सका। ये भाव के कवि हैं अतः गद्य की सभी विधाओं का सन्निवेश इनकी टीका में हैं। अनेक स्थलों पर श्रुतियों को उद्धृत किया है गोपालतापनी उपनिषद् विशेष प्रिय हैं। पुराणों में विष्णु पुराण तथा हरिवंश पुराण के वाक्य ही उधृत किये हैं। ब्रह्म संहिता का अनेक बार उल्लेख किया गया है तन्त्रों में 'पांच रात्र' आगम को प्रामाणिक स्वीकार किया है इनके उद्धरण दिये हैं। व्याकरण के आधार पर अनेक अर्थ किये हैं, क्वचित् कोश से भी साहाय्य लिया गया है।[1]

अचिन्त्य भेद वाद की स्थापना सनातन गोस्वामी की विशेष देन है। इस विषय में सनातन की बुद्धिमता देखी जा सकती है–चैतन्य महाप्रभु ने श्रीधर स्वामी एवं उनकी टीका का अत्यधिक समादर किया था, अतः वे खण्डन तो नहीं करना चाहते थे किन्तु उनके वाक्यों का भाव भी अपने सम्प्रदाय की ओर खींचकर लाने के प्रयास में पीछे नहीं रहे। इस प्रसंग में ये भागवतकार से भी नहीं चूके, उनके द्वारा अपने वाद की पुष्टि बड़े धैर्य, विद्वता तथा स्वाभाविक रूप से प्रदर्शित करने की पूर्ण चेष्टा की गयी है।

सनातन गोस्वामी पूर्ण रूपेण अलंकार साहित्य के उद्भट विद्वान् थे और वे साहित्यशास्त्र को देख चुके थे। अतः भ्रमरगीत की व्याख्या में 'जल्प, प्रजल्प, विजल्प' आदि के भेदों का निरूपण प्राप्त होता है। इनकी विनम्रता का प्रभाव टीका पर भी पड़ा है। श्रीधर स्वामी के विपक्ष में टीका करते हुए भी उन्हें 'श्रीधर स्वामि चरणाः' कहकर उन्हें अभिहित किया है। यथा बृहत्तोषिणी से—

---

[1] 'मायादम्भे कृपायांच' इति विश्वः

(बृहत्तोषिणी १०।२९।१)

पीत श्री गोपिकागीत सुधा सार महात्मनाम्
श्रीधर स्वामिनां किंचिदुच्छिष्टमुपचीयते ।। (१०।३१)

इस टीका का सर्वश्रेष्ठ महत्व इसलिये है कि इसने श्रीमद्भागवत में राधा की स्पष्ट स्थापना की है। भागवत में राधा का स्पष्ट नाम निर्देश न करने की शंका का समाधान भी किया है। एका-काचित् आदि पदों द्वारा राधा का उल्लेख भी सिद्ध किया है। प्रेमभक्ति के उज्ज्वल भाव इनके प्रत्येक पद में देखे जा सकते हैं।

भगवान कृष्ण नित्य वृन्दावनवासी हैं वे वृन्दावन त्यागकर कहीं नहीं जाते जीवात्मा तटस्था शक्ति है, वह प्रभु का सेवक है, प्रभु सेव्य है। वैसे ईश्वर जीव तथा माया अनादि है अनन्त है।

यह टीका अपने अभिनव भाव, रस मीमांसा, राधा प्रेमप्रसाद ब्रजरत्न अलौकिकता आदि के निर्वचन के कारण गौड़ीय वैष्णव समाज की धरोहर निधि के समान है। यह टीका जिसकी नेत्रेन्द्रिय का एक बार विषय बन जाय वह इसे पूर्ण देखे बिना अपनी चक्षुरिन्द्रिय को कभी इस ओर से हटा नहीं सकता।

इस टीका में इतने वैशिष्ट्य आजाने का एक कारण यह है कि सनातन गोस्वामी ने निरन्तर ब्रज वास किया था एवं प्रभु की लीलाओं का साक्षात् अनुभव प्राप्त किया; यह वैशिट्य केवल शब्दराशी पर गर्वित 'टीका लेखक' में प्राप्त नहीं होगा। सनातन भी साधारण विषग्री पुरुष होते तो उनकी अमरकीर्ति इतने कार्य मात्र से नित्य नवीन बनकर स्थिर नहीं रह सकती थी।

२. जीव गोस्वामी

(क) परिचय—गौड़ीय वैष्णव समाज के देदीप्यमान रत्नों में श्री जीवगोस्वामी का उल्लेख सर्वोपरि किया जाता है। वस्तुतः जीवगोस्वामी प्रकाण्ड पण्डित, सरस साहित्यिक तथा मायावाद के प्रबल विरोधी एवं महान् भक्त थे। प्रायः देखा जाता है कि विद्वान् भगवद्भक्ति की परिधि में अपने आप को स्थिर नहीं कर पाते किन्तु जीवगोस्वामी ने विद्वत्ता तथा भक्ति दोनों क्षेत्रों में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है।

जीवगोस्वामी के पूर्वज कर्णाट प्रदेश के निवासी थे[१] तथापि इनके पिता अनूप (या वल्लभ) यशोदरे में निवास करते थे। जीवगोस्वामी का जन्म चन्द्रद्वीप ढाका में हुआ था। जीदगोस्वामी ने लघुतोषणी के उपसंहार में अपना परिचय लिखा है, अतः इनके परिचय के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। जीवगोस्वामी के पिता वल्लभ थे। वे सनातन एवं रूपगोस्वामी के कनिष्ठ भ्राता थे एवं वे श्रीराम के भक्त थे। जीवगोस्वामी ने लघुतोषणी, उपसंहार में लिखा है—

> 'यः सर्वावरजः पिता मम स तु श्रीराममासेदिवान्
> गंगायां द्रुतमग्रजौ पुनरमुं वृन्दावनं संगतौ
> याम्यां माथुर गुप्त तीर्थ निवहो व्यवित कृतोभक्तिर–
> प्युच्चैः श्रीव्रजराज नन्दनगता सर्वत्र संवर्द्धिता ।।

शिक्षा-दीक्षा—जीवगोस्वामी के पिता उन्हें छोटी ही अवस्था में छोड़कर चल बसे थे। जीव गोस्वामी वाल्यावस्था में ही भगवत्पूजा में रत रहते थे।

---

[१] वैष्णव अभिधान कोश पृष्ठ १२४८ (बंगा०) के अनुसार–जीवगोस्वामी का वंश वृक्ष—

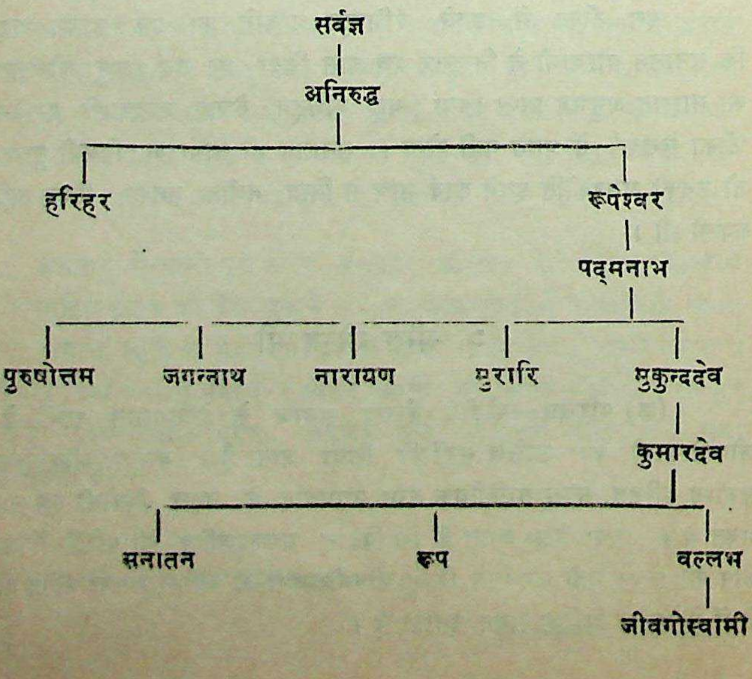
सर्वज्ञ
अनिरुद्ध
हरिहर
रूपेश्वर
पद्मनाभ
पुरुषोत्तम
जगन्नाथ
नारायण
मुरारि
मुकुन्ददेव
कुमारदेव
सनातन
रूप
वल्लभ
जीवगोस्वामी

श्री जीव वाल्य काले वालकेर सने
....
करितेन पूजा पुष्प चन्दनादि दिया ।   (चैतन्य चरितामृत)

प्रारम्भिक दीक्षा रूपगोस्वामी से प्राप्त की एवं काशी में मधुसूदन वाचस्पति से वेदान्त शास्त्र का अध्ययन किया था । भक्तिशास्त्र के ग्रन्थों का स्वाध्ग्राय वृन्दावन में सनातन एवं रूपगोस्वामी से किया था । रूप, सनातन के विरक्त हो जाने के पश्चात् जीवगोस्वामी को गृहस्थ एक बन्धन प्रतीत हुआ । उन्हें विषय भोग भी आर्कषित करने में असमर्थ रहे । भक्ति रत्नावली में लिखा भी है—

नाना रत्न भूषापरिधेय सूक्ष्मवास
अपूर्व शयन शय्या भोजन विलास
ए सब छांड़िल किछू नाहिभार्यचित्ते
राज्यादि विषय वार्ता ना पारे सुनिते ।। (१।६८७)

जीवगोस्वामी में चांचल्य भी कम न था । कहा जाता है कि एक बार रूपगोस्वामी के समीप वल्लभ भट्ट आये, रूपगोस्वामी को ग्रन्थ लिखता देखकर उसके बारे में पूछताछ की और कहा कि मैं उस ग्रन्थ का शोधन कर दूँगा । वे यमुना स्नान करने चले गये । जीवगोस्वामी को भट्ट जी के उक्त कथन से ठेस पहुँची वे यमुना तट पर गये और उनसे यह प्रश्न किया कि आपको इस ग्रन्थ में किन स्थलों पर दोष दिखलाई पड़े हैं । भट्ट जी के उत्तर से दोनों में विवाद छिड़ गया ।[1] उन्होंने रूपगोस्वामी से पूछा कि यह बालक कौन है तब रूपगोस्वामी ने परिचय दिया कि यह मेरा शिष्य है एवं भ्रातृव्य है—

श्री रूप कहे ने किवा, दिव परिचय
जीव नाम, शिष्य मोर भ्रातार तनय ।।

वल्लभ भट्ट जीवगोस्वामी की प्रशंसा कर चले गये किन्तु रूपगोस्वामी समझ गये कि अवश्य ही जीवगोस्वामी ने इन्हें शास्त्र विचार में तिरस्कृत किया होगा । क्योंकि वे जीवगोस्वामी के स्वभाव से पूर्ण परिचित थे । उन्होंने खिन्नता पूर्वक जीवगोस्वामी को पूर्व की ओर चले जाने का आदेश दिया । यह भक्ति रत्नावली में है—

मोर कृपा करि भट्ट आइला मोर पासे
मोर हित लागि ग्रन्थ शोधिव वलिला ।।

---

१. **भक्तिरत्नावली ४।१६३५–'श्री जीवेर वाक्य भट्ट नारे खण्डितारे ।'**

ए अति अल्प वाक्य सहिते नारिला
ताहे पूर्व देशे शीघ्र करह गमन ।। (५।१६४१-४३)

रूपगोस्वामी की अनुल्लंघनीय आज्ञा थी अतः जीवगोस्वामी पूर्व की ओर नन्दघाट के समीप जा पहुँचे। वहाँ कन्द-मूल से अपना निर्वाह करते, कई बार उन्हें उपवास भी करने पड़ते थे। कालान्तर में दुर्बलता के कारण जीवगोस्वामी का पहचानना कठिन हो गया। एक दिन सनातन गोस्वामी भ्रमण करते हुए वहाँ आये और इनकी दशा देखकर रूप गोस्वामी के समीप लाकर क्षमा करा दिया। सनातन के अनुग्रह से इन्हें आरोग्य लाभ हुआ—

श्री जीवेर आरोग्य सवार हर्ष मन
दिलेन सकल भाव रूप सनातन
श्री रूप सनातन अनुग्रह हइते
श्री जीवेर विद्या बल व्यापिल जगते ।। (वही ५।१६६४)

प्रसिद्ध है कि षट् सन्दर्भों की रचना नन्दघाट पर हुयी थी। जीव गोस्वामी अत्यन्त उदार एवं कृतज्ञ थे उन्होंने विद्वानों का आदर करना सीखा था। इसकी पुष्टि वैष्णव तोषिणी, दशम स्कन्ध के मंगलाचरण से द्रष्टव्य है—

श्रीमन्मदन गोपालं वृन्दारण्यपुरन्दरम्
श्रीगोविन्दं प्रपद्येऽहं दीनानुग्रह कातरम् ।।
श्रीमाधवपुरीं वन्दे यतीन्द्रं शिष्य संयुतम्
लोकेष्वंकुरितो येन कृष्णभक्ति सुरांघ्रिपः ।।
श्रीभागवत सिद्धयाप्ते टीका दृष्टिरदायियैः
श्रीधर स्वामि पादांस्तान् वन्दे भक्त्येक रक्षकान् ।।
भट्टाचार्यं सार्वभौमं विद्यावाचस्पतीन् गुरून्
वन्दे विद्या भूषणंच गौडदेश विभूषणम् ।।
वन्दे श्रीपरमानन्द भट्टाचार्यं रसालयम्
राम भद्रं तथा वाणी विलासंचोपदेशकम् ।।
नमामि श्रीमदद्वैताचार्यं श्रीवासपण्डितम्
नित्यानन्दावधूतंच श्री गदाधर पण्डितम् ।।
श्री वासुदेवदत्तंच श्रीगोविन्दं मुकुन्दकम्
मुरारिगुप्तमन्यांश्च वन्दे चैतन्य सेवकान् ।। (२-८)

उक्त मंगलाचरण से स्पष्ट है कि उन्होंने मदनगोपाल, गोविन्दमाधव पुरी (संन्यासी) श्रीधर स्वामी, भट्टाचार्य सार्वभौम, विद्यावाचस्पति, विद्याभूषण, परमानन्द भट्टाचार्य, रामभद्र, वाणी विलास, अद्वैताचार्य, श्रीवास

पण्डित, गदाधर पण्डित, दामोदर, वासुदेवदत्त, मुरारि गुप्त आदि को नमस्कार किया है। गोपाल भट्ट तथा रघुनाथदास भट्ट की विशेष सहायता का आभार प्रकट करते हुए इन्होंने लिखा है कि उनकी कृपा से ही मैं ग्रन्थ लेखन में सफल हुआ हूँ—

राधा प्रिय प्रेम विशेष पुष्टो
गोपाल, भट्टोरघुनाथ दासः।
स्यातामुभौ यत्र सुहृत्सहायौ
को नाम सोऽर्थो न भवेत् सुसिद्धः॥

जीव गोस्वामी के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती है कि ये जितने उदार विनम्र तथा सरस थे उतने ही क्रोधी भी थे। कविराज गोस्वामी के ग्रन्थ चैतन्य चरितामृत को इन्होंने एक बार कुये में डाल दिया था। जिसके कष्ट के कारण उन्होंने अपने प्राणों का विसर्जन कूप में कर दिया था। कतिपय गौड़ीय वैष्णवाचार्य इस घटना को ऐकान्तिक सत्य नहीं मानते हैं।[1]

अकबर बादशाह से भेंट--किम्बदन्ती है कि एक बार अकबर सम्राट के राजदरबार में गंगातटवासी एवं राजपूतानावासी दो दलों में एक विवाद चल पड़ा था। एक दल का कथन गंगा की श्रेष्ठता द्वितीय दल यमुना की श्रेष्ठता सिद्ध करता था। इसके समाधान के लिये जीवगोस्वामी को मध्यस्थ चुना गया। उन दिनों जीवगोस्वामी वृन्दावन छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। अतः आगरा का निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। बादशाह ने उनके रात्रि वास वृन्दावन के नियम का पालन करने का वचन दिया तथा घोड़ों का प्रबन्ध कर दिया। जीवगोस्वामी ने निर्णय देते हुए कहा कि 'गंगा विष्णु चरणामृत है तथा यमुना प्रेयसी है, अतः यमुना श्रेष्ठ है।' इसे सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने जीवगोस्वामी को पर्याप्त धनराशि भेंट की लेकिन इन्होंने उसे विरक्तता के कारण अस्वीकार कर दिया। विशेष आग्रह देखकर इन्होंने बनारस तथा आगरे में निर्मित कागज लेना स्वीकार किया था। कागज प्रप्ति के पूर्व ग्रन्थ लेखन के लिये इन्हें भोजहत्र तथा ताड़पत्रों का प्रयोग करना पड़ा था।[2]

जीवगोस्वामी के समय स्वकीया-परकीयावाद की धूम मची हुई थी। उन्होंने केवल नित्य लीला में परकीयात्व स्वीकार नहीं किया। उन्होंने लिखा है कि--

---

१. १०८ श्रीभक्तिहृदय वनमहाराज-रेक्टर (प्राच्य दर्शन विद्यापीठ) वृन्दावन।

२. वही।

स्वकीया परकीया रूपेद्विविध संस्थान
परकीया भावे अति रसेर उल्लास
व्रज विना इहार अन्यत्र नहिं वास ।।

श्रंगाररस में औपपत्य रसाभास जनक है ।

(ख) सम्प्रदाय—'वन्दे चैतन्य सेवकान्' (लघु० उपसंहार)

इस वाक्य एवं सनातन रूप के शिष्यत्व से स्पष्ट है कि वे चैतन्य सम्प्रदाय के अनुयायी थे ।

(ग) स्थितिकाल—जीवगोस्वामी ने अपने परिचय में जन्म समय का उल्लेख कहीं नहीं किया है । किन्तु यह निश्चित है कि ये सनातन गोस्वामी की टीका रचना के समय विद्यमान थे । इस टीका की रचना सम्वत् १६११ विक्रम में हुई थी । इसका उल्लेख जीवगोस्वामी ने भी किया है । इस समय जीवगोस्वामी की ३०–३१ वर्ष की अवस्था मानी जाय तो सम्वत् १५८० विक्रम के आसपास उनका जन्म समय बैंठता है । विश्वकोश में जीवगोस्वामी का जन्म पौष शुक्ल तृतीया सम्वत् १५८० एवं ब्रजरजवास तिथि आश्विन शुक्ल तृतीया सम्वत् १६७५ का उल्लेख किया है ।[1] भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने निबन्ध में इनका जन्म सम्वत् १५९१ वि० लिखा है तथा अन्तर्द्धान् सम्वत् १६७६ विक्रम में माना है । यदि उक्त मत स्वीकार किये जाँय तो इनका वल्लभ भट्ट वाली घटना से सम्बन्धित मानना अयुक्त होगा । । क्योंकि उनका अन्तर्द्धानकाल १५८७ वि० निश्चित है ।[2]

(घ) कृतियां—१. षट्सन्दर्भ–छः सन्दर्भों का नाम षट्सन्दर्भ है ।

(क) तत्वसन्दर्भ–दर्शन का ग्रन्थ है ।
(ख) भगवत्सन्दर्भ–इसमें ब्रह्म और शक्ति का विचार है ।
(ग) परमात्मसन्दर्भ–परमात्मा के विषय में विचार ।
(घ) श्रीकृष्णसन्दर्भ–कृष्ण के सम्वन्ध में निर्णय ।
(ङ) भक्तिसन्दर्भ–भक्ति का विवेचन है ।
(च) प्रीतिसन्दर्भ–भगवान् की प्रीति को सबसे बड़ा पुरुषार्थ कहा है ।[3]

२. सर्व सम्वादिनी (या अण व्याख्यान)––७३१ श्लोकों का यह ग्रन्थ

---

[1] विश्वकोश खण्ड ७-८ पृष्ठ १०९ (बंगाक्षर)
[2] (क) सज्जन तोषणी (ख) ब्रजधाम और गोस्वामीगन, पृष्ठ १७१ ।
[3] वैष्णव अभिधान कोश, पृष्ठ १६२९ ।

चार भागों में विभक्त है, इसकी रचना भागवत सन्दर्भ की विशिष्ट स्थलों की पूर्ति हेतु की गयी थी। 'सर्वसम्वाद' से स्पष्ट है कि इसमें वेद, वेदान्त, व्याकरण तथा पूर्वाचार्यों की समालोचना की गयी है।

(३) हरिनामामृत व्याकरण—यह ग्रन्थ गोपालदास नामक शिष्य के लिये रचा गया था। इस ग्रन्थ में ३१८६ सूत्रों का विवेचन है।

(४) सूत्र मालिका—हरिनामामृत में व्याख्यात सूत्रों को व्यवस्थानुसार रखा गया है।

(५ दुर्गसङ्गमिनी—यह भक्ति रसामृत की टीका है। गौड़ीय वैष्णव साधन ज्ञान के लिये यह ग्रन्थ अति उपादेय है।

(६) श्रीमाधव महोत्सव—यह महाकाव्य १४७७ शाके में रचा गया। इस ग्रन्थ में ६ उल्लास तथा ११५६ श्लोक हैं। राधा के वृन्दावन राज्य के अभिषेक का वर्णन है। इस ग्रन्थ की रचना रूपगोस्वामी के आदेशानुसार की गयी थी।

(७) श्रीगोपाल चम्पू—यह दो भागों में विभक्त है। पूर्व भाग में किशोरावस्था पर्यन्त की लीलाओं का वर्णन है, उत्तर भाग में मथुरागमन से गौलोक गमन का वर्णन है। इस ग्रन्थ की भाषा दार्शनिक है और ब्रजरस पूर्ण रूपेण भरा पड़ा है। कविराज ने चैतन्य चरितामृत में ठीक ही लिखा है—

श्रीगोपाल चम्पू नामे ग्रन्थ महाशूर
नित्य लीला स्थापन याहे ब्रजरसपूर ॥ (१।४४ बंगा०)

(८) संकल्प कल्प वृक्ष—इसमें दशमस्कन्ध की लीलाओं को समन्वित करने का सफल यत्न किया हैं। यह चम्पू के भावों का भी द्योतन कराता है। 'संकल्प कल्प वृक्षोऽयं चम्पू भावार्थ सूचकः'। ७३१ श्लोकों का यह ग्रन्थ चार भागों में विभक्त हैं।

(९) श्रीगोपाल विरुदावली—यह काव्यात्मक शैली की उत्कृष्ट रचना है।

(१०) सुखबोधिनी—यह गोपालतापिनी उपनिषत् की टीका है। इस टीका में गोपाल रूप ब्रह्म ही सर्वोत्तम है यह सिद्ध किया गया है।

(११) दिग्दर्शिनी—यह ब्रह्म संहिता की टीका है। इसमें कृष्ण का कर्त्तव्य तथा आनन्दमय मूर्तित्व प्रतिपादित है।

(१२) लोचनरोचनी—यह उज्ज्वल नीलमणि के भावों की स्पष्ट व्याख्या है। जीवगोस्वामी की प्रखर प्रतिभा का दर्शन भी इस ग्रन्थ के अवलोकन से किया जा सकता है।

(१३) गायत्रीभाष्य—इसमें अग्निपुराणस्थ २१६ अध्याय के १७वें श्लोक की व्याख्या बड़े विस्तार के साथ की गई है।

(१४) क्रमसन्दर्भ–यह भागवत की टीका है। इसकी रचना के सम्बन्ध में लेखक ने लिखा है कि—भागवत सन्दर्भ तथा वैष्णव-तोषणी के दर्शन से जहाँ भी कहीं मुझे स्फूर्ति मिली है वहाँ ही भागवत की व्याख्या के रूप में यह सन्दर्भ लिखा गया है।

(१५) धातु संग्रह–इसमें भू आदि धातुओं का संग्रह है।

कृष्णलीला कथा बीज रूप धातुगणोमया
संक्षेपाद्वक्ष्यते तेन कृष्णो मह्यं प्रसीदतु ॥

यह ग्रन्थ हरिनामामृत के पश्चात् रचा गया था।

• इससे इतना तो स्पष्ट है कि जीवगोस्वामी की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे सार्वदेशिक विद्वान्, रससिद्ध कवि, आलंकारिक एवं उच्चकोटि के पौराणिक थे। उनका जीवन भागवतमय बन चुका था। उनकी समस्त रचनाएँ एक प्रकार से श्रीमद्भागवत की अर्थप्रकाशन की सहायिका हैं। ब्रजवास एवं ब्रजरस ज्ञान के कारण उनकी भागवत टीका भी अन्य टीकाओं से अपना महत्व बनाये हुए है। टीका में ब्रज के रीति-रिवाज, भौगोलिक सीमा आदि का निरूपण बड़े ही सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य—नाम**–श्रीमद्भागवत पर जीवगोस्वामी की व्याख्या 'क्रम सन्दर्भ' के नाम से प्रसिद्ध है। वैसे इनकी भागवत पर ३ टीका कही जा सकती है—१. क्रम सन्दर्भ, २. बृहत्क्रमसन्दर्भ, ३. वैष्णवतोषिणी। 'क्रम सन्दर्भ' एक विशेष हेतु से सम्बन्धित है, गूढ़ार्थ प्रकाशक, नानार्थ वस्तु, सारोक्ति-श्रेष्ठता आदि वाली रचना सन्दर्भ कहलाती है—

गूढ़ार्थस्यप्रकाशश्च सारोक्तिः श्रेष्ठता तथा
नानार्थत्वं च वेद्यत्वं सन्दर्भः कथ्यते बुधैः। (प्रारम्भ)

जीवगोस्वामी रचित यह सप्तम सन्दर्भ है, षट् सन्दर्भ की चर्चा कृतियों में की जा चुकी है। यह सन्दर्भ श्रीधर स्वामी के अव्यक्त भाव तथा व्यक्त होने पर भी अस्फुट भावों का सरलतम ढंग से उद्बोधक है—

स्वामिपादैर्नयद् व्यक्तं यद्व्यक्तं चास्फुटं क्वचित्
तत्र तत्र च विज्ञेयः सन्दर्भः क्रम संज्ञकः ॥ (वही मंगला०)

परिमाण—यह सन्दर्भ सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पर लिखा गया है। यद्यपि यह व्याख्यात्मक शैली में लिखा गया है तथापि विस्तार कहीं-कहीं इतना अधिक हो गया है जिससे एक पृथक् निबन्ध ही बन जाता है, यथा 'श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः' की व्याख्या में ३०० पंक्तियाँ भक्तिशास्त्र के स्तर से ओतप्रोत है। (वही ७।५।२३)

उद्देश्य—इस सन्दर्भ की रचना सम्वन्ध अभिधेय प्रयोजन निर्णय के लिये की गयी थी—

'अधुना श्रीमद्भागवत व्याख्यानाय तत्रापि सम्बन्धाभिधेय प्रयोजन निर्णय दर्शनाय च सप्तमः क्रमसन्दर्भोऽयमारभ्यते।' (वही १।१।१)

प्रकाशन—आठ टीका संस्करण वृन्दावन से प्रकाशित। बंगाक्षरों में अनेक संस्करण विभिन्न स्थानों में हो चुके हैं।

शैली—क्रमसन्दर्भ अन्वय मुख व्याख्या है। लम्बी भूमिकाओं द्वारा श्लोक की संगति बैठायी गयी है—

यथा 'भीष्मादीनां स्वापराधमननशंकया मुनीना स्वस्यापि शिक्षणेन युधिष्ठिरो न शाम्यतिस्म……………………पूर्वाभिप्रायमेवव्यक्तीकर्त्तु माहपाण्डु पुत्रानिति ।' (वही १।६।११)

भाषा में लालित्य एवं भाव प्राधान्य है। मन्तव्य का प्रकाशन स्वाभाविक ढंग से कराया गया है। व्याकरण व्यात्पत्ति-लभ्य अर्थ के साथ प्रवृत्ति-लभ्य अर्थ को भी स्वीकार किया गया है। इस व्याख्या की कतिपय निजी विशेषताएँ हैं, जिनकी ओर लेखक ने ध्यान आर्कषित किया है। बिना इस कुंजी के रहस्योद्घाटन सम्भव नहीं है। श्री जीवगोस्वामी ने इस सन्दर्भ का मूल लेखक गोपाल भट्ट को ही स्वीकार किया है। इसमें यदि कोई दोष भी हो तो वह मेरा ही समझा जाय कर्त्ता का नहीं।[1] दाक्षिणात्य भट्ट ने इसका विवेचन किया था, उसी की कृति का परिशीलन परिवर्द्धन इसमें किया गया है—

जयतां मथुरा भूमौ श्रील रूप सनातनौ
यौविलेखयतस्तत्वज्ञापकौ पुस्तिकाभिमाम् ॥
तौसन्तोषयता सन्तौ श्रील रूप सनातनौ
दाक्षिणात्येन भट्टेन पुनरेतद्विविच्यते ॥
तस्याद्यं ग्रन्थना लेखं क्रान्त व्युत्क्रान्त खडितम्
पर्यालोच्याथ पर्यायं कृत्वालिखति जीवकः ॥
पूर्वं यान्येव वाक्यानि धृतान्यर्थं विशेषतः
तानि मूलक्रमेणापि धार्याणि क्रमलब्धये ॥ (वही मंगलाचरण)

---

[1] श्रीभागवतसन्दर्भान् श्रीमद्वैष्णव तोषिणीं
दृष्ट्वा भागवतव्याख्या लिख्यतेऽत्रयथामतिः ।
यदत्र स्खलितं किंचिज्जायतेऽनवधानतः
ज्ञेयं न तत्तत् कर्तॄणां समाहर्तुं मंमैव तत् ॥ (वही मंगलाचरण)

इसमें पूर्व व्याख्या पूर्व पक्ष सम्मत तथा सर्वान्तिमा जीवगोस्वामी सम्मत है—

पूर्व पूर्वात्र च व्याख्या पूर्वपक्षतयामता
सर्वान्तिमा तु विज्ञेया स्वसिद्धान्ततयामता ॥

टीका में जहां अंक दिये हैं वे मूल से अभिमत हैं, कहीं अंक नहीं दिये गये वहाँ पूर्व श्लोक से सम्बन्धित उसे मानना चाहिये । अर्द्धक-युग्मक के संकेत भी यथास्थान दिये गये हैं—

अथात्र परिभाषेयं ज्ञातव्या यद्यपेक्ष्यते
मूलं सटीकमंकाद्यै: परिच्छेयं सहानया ।
अंका वाक्यान्त एवात्र देया···· ·······
वहुपद्यैक वाक्यत्वे गर्भीका विन्दु मस्तका: ॥
यस्मिन् पद्ये नास्ति टीका तदप्यंकेन योजयेत्
···· ····
वहुपद्यैकवाक्यत्वेऽप्यमीभ्रेयास्तथाविधा:
यथार्द्धकं युग्मकं च त्रिकमित्याद्युदाहृति: ॥ (वही मंगलाचरण)

श्रुतिवाक्यों को अधिकतर वेदस्तुति में प्रमाण के लिए उद्धृत किया है । अनेक ग्रन्थों का उल्लेख इस टीका में उपलब्ध होता है । विशेषत: हनुमद्-भाष्य, वासनाभाष्य, सम्वन्धोक्ति, विद्वत्कामधेनु, तत्वदीपिका, भावार्थ दीपिका, परमहंसप्रिया, शुकहृद्या, मुक्ताफल, हरिलीला, भक्ति, रत्नावली, सम्वत्सर प्रदीप, शारीरिकभाष्य, ब्रह्मसंहिता, गरुड़ पुराण, स्कन्दपुराण. पद्म तथा विष्णु पुराण, मध्वभाष्य आदि के नाम उल्लेखनीय हैं (क्रम सन्दर्भ १।१।१) । ग्रन्थकारों में चित्सुख[1], श्रीधर स्वामी[2] का उल्लेख सर्वाधिक किया है । क्वचित् 'तैर्व्याख्यातम्' पद से श्रीधर का उल्लेख है । व्याख्या मे अनेक परिभाषाएँ दी गयी हैं यथा उत्तम श्लोक की परिभाषा देते हुए लिखा है कि जो जगत् के जीवों का मल दूर करते हैं, मलमूत्रादि रहित है—वे उत्तम (पुण्य) श्लोक हैं—

जगज्जनमलध्वंसि श्रवण स्मृति कीर्तन:
मलमूत्रादिरहिता: पुण्य श्लोक इतिस्मृता: ॥

जीवगोस्वामी ने जिन भागवत टीकाओं का उल्लेख किया है उनमें कतिपय तो नाम से भी अप्रसिद्ध हो चुकी हैं ।

---

[1] **क्रमसन्दर्भ** १।२।२, ४।१६।४१, ४।१०।२२-२३, ४।२५।३०-३२, ४।२७।६-१०, ४।२८।६१, ४।२९।३ आदि ।

[2] **क्रमसन्दर्भ** १।१।१, ४।२७।१, ४।२७।५ आदि ।

(ङ) **वैशिष्ट्य** (वृहत्क्रम सन्दर्भ)—यह सन्दर्भ दशम स्कन्ध के ब्रह्मस्तुति (भा० १०।१४) रासपंचाध्यायी (१०।२९।३३) भ्रमरगीत (१०।४७) एवं वेदस्तुति (भा० १०।८७) प्रकरण पर उपलब्ध हैं । आठ टीका संस्करण में दशम स्कन्ध के १४ वें अध्याय के ८ वें श्लोक पर यह सूचना टिप्पणीकर ने दीं है कि, वृहत्क्रम सन्दर्भ पश्चात् प्राप्त हुआ था, अतः मुद्रण भी यहीं से किया गया है । क्रमसन्दर्भ में जो विचार अस्पष्ट हैं वे 'वृहत्क्रम सन्दर्भ' में विस्तार के साथ स्पष्ट किये गए हैं । अधिकांश भाग वृहत्तोषिणी–वैष्णवतोषिणी से साम्य रखता है । भावार्थ विस्तार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'पुष्प प्रियत्वात् माधवोवसन्त इत्यभिप्रायः (क्र० सं० १०।३०।८)

यहाँ अभिप्राय शब्द का प्रयोग भावार्थदीपिकाकार से सम्बन्धित है । इसी क्रम संन्दर्भ के व्याख्यात श्लोक की टीका का विस्तार वृहत्क्रमसन्दर्भ की टीका में है । यथा–

'हे सख्यः अनया दृष्टोऽसौ सापत्नादेव न कथ्यते तदेता मालत्यादीः । पृच्छाम एतास्त्वमस्माकं सखी प्राया एवेति तथा पृच्छन्ति हे मालति, हे मल्लिके, हे जाति, हे यूथिके……इतिभावार्थः ।' (१०।३०।८)

इससे यह स्पष्ट है कि वृहत्क्रम सन्दर्भ में भावों के प्रकाशन पर अधिक श्रम किया गया है । वृहत्क्रम सन्दर्भ की रचना वैष्णवतोषिणी के पश्चात् हुई थी । यह 'दृष्ट्वा वैष्णव तोषिणी' पद के द्वारा स्पष्ट है । क्र० सं० १।१।१। वृहत्क्रम सन्दर्भ में जीवगोस्वामी की मौलिकता की झांकी देखने को प्राप्त होती है ।

(ङ) **वैशिष्ट्य**–(वैष्णवतोषिणी)–सनातन गोस्वामी ने बृहत्तोषिणी की रचना अति विस्तार में की थी । सनातन गोस्वामी ने इसका सहज आस्वादन प्राप्त करने के लिये जीवगोस्वामी से इस टीका को संक्षिप्त करवाया था । इसमें सनातन के अस्पष्ट भावों को भी स्पष्ट करने का यत्न किया गया है । इसका प्रकाशन भी आठ टीका संस्करण में वृन्दावन से हुआ है । यह टीका केवल दशमस्कन्ध पर है । ब्रज, गोपिका एवं राधा की महत्ता के सम्बन्ध में इन्होंने इस टीका में बड़े विस्तार के साथ स्वाभिप्राय का प्रकाशन किया है । इस टीका का प्रत्येक अक्षर मूल्यवान् है । प्रायः वृहत्तोषिणी के भाव तथा अक्षर भी ज्यों के त्यों इसमें दिखलाई पड़ते हैं ।

३. विश्वनाथ चक्रवर्ती

(क) परिचय—श्रीमद्भागवत की रसमयी अनूठी टीका के रचयिता आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के सम्मान्य रत्नों में थे ।

इनके पिता का नाम रामनारायण चक्रवर्ती था। विश्वनाथ के ज्येष्ठ भ्राता रामचन्द्र तथा कनिष्ठ रघुनाथ थे ।[1] सम्प्रदाय की जनश्रुति के अनुसार विश्वनाथ के जन्म के समय एक तेज पुंज सूती गृह में समाविष्ट हुआ था और उसी से इनका जन्म हुआ था। जगन्नाथ के पुत्र नरहरि चक्रवर्ती ने इस घटना का उल्लेख भी किया है ।[2] जगन्नाथ श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य थे। विश्वनाथ के पूर्व पुरुष 'वर्द्धमान' नामक स्थान के निवासी थे। भट्टनारायण 'नदिया' नामक ग्राम में निवास करने लगे थे। 'ऐतिहासिकों' का कथन है कि देवगांव में कभी पाण्डव छद्म वेष में रहे थे। कल्याण वर्मा प्रभृति नरेशों की राजधानी भी यहां थी। यह देवग्राम वर्तमान में काशीगंज थाने के अन्तर्गत है।

शिक्षा—विश्वनाथ का विद्यारम्भ देवग्राम में ही हुआ था ।[3] स्वल्प काल में काव्य-व्याकरण आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। विश्वनाथ भक्तिशास्त्र का अध्ययन करना चाहते थे, अतः ज्येष्ठ बन्धु की आज्ञानुसार सैयदाबाद स्थान के उस नरोत्तम ठाकुर के अन्यतम शिष्य–रामकृष्ण आचार्य के पुत्र प्रधान पण्डितों में थे। विश्वनाथ ने भागवत का अध्ययन इन्हीं के पास किया था।

विवाह—इन्हें अनिच्छा से गृहस्थ में आना पड़ा। विवाह के उपरान्त भी ये स्त्री से कभी प्रेमालाप नहीं करते थे। एक बार गुरू के आग्रह विशेष से स्त्री के समीप जाने पर सारी रात भागवत की कथा सुनाकर व्यतीत कर दी। अवसर पाते ही बिना सूचना के ये गृहस्थ त्याग कर चले गये।

उपनाम—गृह परित्याग कर विश्वनाथ वृन्दावन चले गये। वैष्णव समाज में भगवत्कथा प्रसंग में बेसुध हो जाने के कारण वे 'हरिवल्लभ' नाम से विख्यात हो गये ।[4] इस अवसर में विश्वनाथ ने विभिन्न विद्वानों की कृपा से

---

१. वैष्णवाचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती—ले० गोपालगोस्वामी, प्राच्यवाणी कलकत्ता (बंगा.)।

२. जन्म धरे तेज पुंज अग्निर समान
क्षणेक थाकिया ताहा छैल अन्तर्द्धान्
बालक देखिया सुख वाड़िल सवार
मध्ये मध्ये बालकेर देखे चमत्कार ॥ (नरोत्तम विलास)

३. वैष्णव अभिधान कोष, पृष्ठ १४५० बंगाक्षर (हरिदास नवद्वीप)

४. भागवत पत्रिका–गौड़ीय मठ मथुरा, वर्ष ६, सं०१२, पृष्ठ २६४।

शास्त्रों का अवगाहन किया । राधारमण,[1] कृष्णचरण[2] आदि विश्वनाथ के गुरू थे । राधारमन का संक्षिप्त नाम राम तथा कृष्णचरण का कृष्ण था । निम्न श्लोक में दोनों नाम अंकित हैं—

श्रीराम कृष्णगंगाचरणान् नत्वा गुरुनुरु प्रेम
श्रील नरोत्तम नाथ श्री गौरांगं प्रभुं नौमि ।।

गंगाचरण—कृष्ण के गुरू थे, नाथ शब्द से लोकनाथ का ग्रहण किया जाता है । लोकनाथ नरोत्तम के गुरु थे ।

अध्यापक पद—संस्कृत भाषा के पठन-पाठन की क्षीण प्रणाली देखकर विश्वनाथ ने गुरु की आज्ञा से अध्यापन भी किया । इस बीच संस्कृत के अनेक ग्रन्थ भी इन्होंने रचे । संस्कृत की रचना द्वारा इनका संस्कृत के प्रति प्रगाढ़ प्रेम अधिक परिलक्षित होता है । विश्वनाथ के पास देश देशान्तर के छात्र विद्याध्यन के लिये आते थे । कविकर्णपूर की रचना 'अलंकार कौस्तुभ' की टीका भी विश्वनाथ ने संस्कृत में ही की थी ।

वृन्दावन यात्रा—षट् गोस्वामियों के तिरोधान के पश्चात् वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण भी अपनी महिमा का तिरोधान करने लगे थे । जीवगोस्वामी के शिष्यों ने श्री विग्रह इतस्ततः छिपा दिये थे । व्रजधाम में अन्धकार छाने लगा था । गोपीनाथ, मदनमोहन, गोविन्द जी, राधाविनोद, राधा दामोदर, प्रभृति विग्रह व्रजभूमि छोड़कर इधर-उधर चले गये थे । जो वृन्दावन गौरांग की कृपा से गौड़ीय वैष्णव गण द्वारा सुप्रतिष्ठित किया गया था, वह ह्रासोन्मुख हो रहा था । विश्वनाथ ने इसके उद्धार का व्रत ग्रहण किया । यद्यपि वे इस कार्य में असहाय ही जुट गये थे तथापि उन्हें वलदेव विद्याभूषण का पर्याप्त सहयोग मिला । वृन्दावन में इस कार्य का श्री गणेश करने के उपरान्त एक बार ये गौड़देश गये तथा अनेक स्थानों में भ्रमण करने उपरान्त पुनः वृन्दावन आये ।

राधाकुण्ड वास—विश्वनाथ ने वृन्दावन से अधिक शान्ति का अनुभव राधाकुण्ड में किया । अधिकांश ग्रन्थ राधाकुण्ड में रचे गये थे—

करिलेन वास राधाकुण्ड समीपें ते
रचिलेन बहु ग्रन्थ व्यापिल जगते ।।

षट् गोस्वामियों के ग्रन्थ अत्यन्त दुरूह थे । उन्हे वंग-देश निवासी भी नहीं समझ पाते थे, विश्वनाथ ने उनकी टीकाएँ की ।

---

[1] 'श्रीराधारमणं मुदा गुरुवरं वन्देनिपत्यावनौ'
(स्तवामृत लहरी—गुरुचरणाष्टक, विश्वनाथ कृत)

[2] 'स कृष्ण चरण प्रभुः प्रदिशतु स्वपादामृतम्' (वही—परमगुरु अष्टक)

राधा-दर्शन—राधाकुण्ड निवास के अवसर पर विश्वनाथ की दृष्टि में कविराज गोस्वामी का एकपद आया जिसका अर्थ बड़ी कठिनाई से भी समझ में न आ सका, वह पद निम्न था—

काम गाइत्री रूप हय कृष्णेर स्वरूप
सार्द्ध चव्विश अक्षर तार हय ।

विश्वनाथ ने विचार किया कि यह या तो कविराज की भूल है या मेरी, पर वे भूल नहीं कर सकते । काम गायत्री कृष्ण का स्वरूप कैसे है ? यह उनकी बुद्धि में नही समा रहा था । फलतः उन्होंने प्राण त्याग का निश्चय किया । रात्री को 'राधा जी' ने स्वप्न दिया और इस पद का आशय समझाया, तव विश्वनाथ प्रसन्न हुए । विश्वनाथ चक्रवर्ती ने एक भगवद्विग्रह की स्थापना भी की थी । यह विग्रह आज भी वृन्दावन में 'गोकुलानन्द' नाम से विद्यमान है । विश्वनाथ ने माघ शुक्ल पंचमी के दिन राधाकुण्ड में शरीर त्याग दिया । वृन्दावन के पत्थरपुरा नामक मुहल्ला में इनकी समाधि है । वालूचर स्थान में इनके वंशधर अव भी निवास करते हैं ।

(ख) सम्प्रदाय—इनकी गुरु परम्परा का क्रम गौरांग से ही माना जाता है । फलतः ये मध्व गौड़ीय सम्प्रदाय के अनुयायी थे । विश्वनाथ के परम गुरु नरोत्तम ठाकुर थे, नरोत्तम ठाकुर के गुरु लोकनाथ थे जिनका स्मरण विश्वनाथ ने मंगलाचरण में किया है। लोकनाथ चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे, यह प्रसिद्ध है । अतः विश्वनाथ के सम्प्रदाय निर्णय में कोई मतभेद नही है ।

(ग) स्थितिकाल—विश्वनाथ चक्रवर्ती के जन्म समय के बारे में दो मत प्राप्त होते हैं । प्रथम के अनुसार इनका जन्म सम्वत् १६८५ है तथा द्वितीय के अनुसार सम्वत् १७२१ विक्रम । प्रथम मत श्यामलाल गोस्वामी का है, द्वितीय मत के संस्थापक अनेक सम्प्रदायज्ञ गौड़ीय वैष्णवों की अनुश्रुति है । किन्तु गौराङ्ग लीला की रचना सम्वत् १७२६ में की गई थी । अतः विश्वनाथ ने इसे चार वर्ष की अवस्था में रचा हो, यह असम्भव है । अतः इसे तो किसी प्रकार युक्त नहीं माना जा सकता । सर्वेश्वर वृन्दावनांक में में इनका जन्म सम्वत् १७०४ विक्रम लिखा है ।[1] 'राधाकृष्ण कुण्ड का इतिहास' के लेखक ने इन्हें १०८ वर्ष पर्यन्त जीवित रहना सिद्ध किया है ।[2] एक स्मृति

---

१. **सर्वेश्वर वृन्दावनांक, पृष्ठ २६१ ।**

२. **राधाकृष्ण कुंड इतिहास, ले० नवद्वीपदास, राधाकुंड (बंगाक्षर)**

फलक के अनुसार इनका जन्म सम्वत् १७०० विक्रम एवं देहत्याग सम्वत् १७८६ वि० माना गया है। इसका उल्लेख निम्न प्रकार है—

'वैष्णवाचार्य विश्वनाथ। श्री गौरांगाय नमः

महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर प्रकट काल शकाब्दाः १५६५–१६५२ (सम्वत् १७००–१७८६ विक्रम)……… …

विश्वस्यनाथ रूपोऽसौ भक्ति वर्त्म प्रदर्शनात्
भक्त चक्रे वर्तितत्वात् चक्रवर्त्याख्यया भवेत्।
सैयदा वासि श्री विश्वनाथाख्य शर्मणाऽद्भुता
चक्रवर्तीति नाम्नेयं कृता टीका सुबोधिनी॥

यह सुबोधिनी टीका अलंकार कौस्तुभ पर की गई थी। यदि इनका जन्म सम्वत् १७०० वि० माना जाय तो भागवत की टीका की रचना ६१ वर्ष की अवस्था में की गई, यह निश्चित है। भागवत की टीका शाके १६२६ में की गई थी——

ऋत्वक्षि षड् भू मिते शाके राधा कृष्ण सरस्तटे
शुक्ले षष्ठ्यां सिते माघे टीकेयं पूर्णतामगात्॥[1]

विश्वनाथ ने क्षणदागीत चिन्तामणि की रचना शाके १६२७ में की थी। इस कृति के पश्चात् कोई कृति नही लिखी गयी। अतः उनका जन्म १७०० वि० मानना उचित है।

(घ) **कृतियाँ**——विश्वनाथ ने साहित्य की महती सेवा की थी। काव्य-दर्शन दोनों का कोई साधर्म्य नहीं है तथापि विश्वनाथ ने दोनों में सफलता प्राप्त की थी। विश्वनाथ की १२ मौलिक कृतियाँ तथा १२ ही टीकाएँ हैं। इनमें भागवत की सारार्थदर्शिनी टीका गौड़ीय वैष्णव समाज का पूर्ण प्रतिनिधित्व भागवत पर निभाने में समर्थ है।

वैष्णव अभिधान कोश[2] के अनुसार कृतियों का परिचय——

(१) उज्ज्वल नीलमणि किरण–यह टीका रूपगोस्वामी कृत 'उज्ज्वल नीलमणि' नामक ग्रन्थ की संस्कृत टीका है। इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के ६६ प्रकार के भेदों का वर्णन है एवं नायिका के ३६० भेदों का एवं उसके स्वभाव, उसकी दूती आदि का विस्तृत विवेचन है।

(२) ऐश्वर्यकादम्बिनी–इस ग्रन्थ में दर्शनशास्त्र का विश्लेषण है।

---

१. सारार्थदर्शिनी टीका-उपसंहार।

२. कृतियों का परिचय, पृष्ठ १५३०-१५५० तक।

(३) गौरगणस्वरूपतत्व चन्द्रिका—इसमें गौर महाप्रभु तथा उनके गणों का परिचय है।

(४) गौरांगलीलामृत—१६०१ शाके में इसकी रचना हुई थी, खण्डित होने के कारण लेखक का नाम स्पष्ट ज्ञात नहीं होता।

(५) प्रेमसम्पुट काव्य—इस काव्य में १४१ श्लोक हैं। राधा-कृष्ण के परिहास का सुन्दर निरूपण इसमें किया गया है। विश्वनाथ ने इसका सरलानुवाद भी किया है। शाके १६०६ में इसकी रचना हुई थी—

षट् शून्य ऋत्ववनिभिर्गणिते तपस्ये
श्री रूप वाङ्मधुरिमामृतपान पुष्टे
राधा गिरीन्द्र धरयोः सरसस्तटान्ते
तत्प्रेम सम्पुटमविन्दत कोऽपि काव्यम् ॥[1]

सरलानुवाद बंगला में 'राधा-कुण्ड' में लिखा गया था—

राधा कुण्ड श्याम कुण्ड तटे अवस्थित हइया
प्रेम संपुट काव्य लाभ अर्थात् रचना करिलेन।

(६) श्रीकृष्ण भावनामृत—यह २० सर्ग का महाकाव्य है इसमें १३२६ श्लोक हैं, जिनमें श्लेष का प्रयोग बाहुल्य, विगूढ़ शृंगार रस-व्यंजना अत्यन्त चमत्कारपूर्ण है। प्रत्येक लीला के वर्णन के अन्त में युगल किशोर का एक बार मिलन वर्णन इस ग्रन्थ की अपनी विशेषता है। रागानुगासाधना भक्ति की पद्धति पर इसकी रचना की गई है।

(७) चमत्कार चन्द्रिका—यह खण्ड काव्य है। यह काव्य चार कुतूहलों में विभक्त है—प्रथम में—मंजूषिका मिलन, द्वितीय में—अभिमन्त्य वेश में मिलन, तृतीय में—वैद्यवेश में मिलन, चतुर्थ में—गायिका वेश में मिलन का वर्णन है।

(८) भक्ति रसामृत सिन्धु विन्दु—यह रूप गोस्वामी की कृति 'भक्तिरसामृत सिन्धु' का सार है।

अनधीत्य व्याकरणश्चरणप्रवणोहरेर्जनोयस्मात्
भक्तिरसामृत सिन्धु इन्दुतोविन्दुरूपेण ॥[2]

(९) श्रीभागवतामृत कणिका—यह लघु भागवतामृत का सार मात्र है। अन्त में लिखा है—

---

[1] प्रेम सम्पुट, १४१ पद्य (बंगाक्षर) **वैष्णवग्रन्थावली में प्रकाशित।**

[2] **वैष्णव ग्रन्थावली (वं०) अन्तिम २८।**

अनधीत्य व्याकरणश्चरण प्रवणोहरेर्जनो यस्मात्
भागवतामृतकणिकामणिकांचनभिवानुस्यूता ।।

(१०) माधुर्य कादम्बिनी–यह प्रकरण ग्रन्थ ८ वृष्टियों में विभक्त है, विश्वनाथ की मौलिक कृति है ।

(११) रागवर्त्मचन्द्रिका–भक्तिरसामृत सिन्धु विन्दु का ही यह संक्षिप्त रूप है ।

(१२) स्तवामृत लहरी–इसमें २८ स्तव हैं ।

(१३) सुबोधिनी–अलंकार कौस्तुभ की टीका नाम सुबोधिनी है । किन्तु सरस्वती भवन वाराणसी में कृष्णदेव सार्वभौम के नाम से रचित यह उपलब्ध है, सम्भव है विश्वनाथ की कृति अन्य रही हो ।

(१४) आनन्द चन्द्रिका–यह उज्ज्वल नीलमणि की टीका है । इसका रचनाकाल शाके १६१८ है ।

(१५) दानकेलि कौमुदी महती–रूपगोस्वामी कृत 'दानकेलि कौमुदी' पर यह टीका लिखी गयी है । कृष्ण की दानलीला का वर्णन है ।

(१६) सुखवर्तिनी–आनन्द वृन्दावन चम्पू की टीका का नाम सुखवर्तिनी है । कविकर्णपूर ने भगवान की जिन मानवोचित या अतिमर्त्य लीलाओं को गाया है उनका निगूढ़ तात्पर्य और माधुर्य विश्वनाथ चक्रवर्ती ने प्रकट किया है । पूतनावध (३।५ का०) तथा जृम्भण लीला (५।१) आदि में उनकी उत्कृष्ट शैली देखने योग्य है ।

(१७) चैतन्य चरितामृत टीका-यह कविराज गोस्वामी कृत चैतन्य चरितामृत की टीका है । इस ग्रन्थ में गौड़ीय वैष्णव धर्म के नैतिक, तात्त्विक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विषय बड़े चातुर्य के साथ संजोकर रखे हैं ।

(१८) प्रेमभक्ति चन्द्रिका–'प्रेमभक्ति' नरोत्तम ठाकुर की कृति है, विश्वनाथ ने इस पर 'चन्द्रिका' नामक टीका रची है ।

(१९) भक्तिसारप्रदर्शनी–यह भी भक्तिरसामृतसिन्धु की टीका मात्र है ।

(२०) भक्तहर्षिणी–यह भगवद्गीता की विवृत्ति मात्र है ।

(२१) ब्रह्मसंहिता टीका–यह दुष्प्राप्य टीका है ।

(२२) हंसदूत टीका–रूपगोस्वामी कृत हंसदूत की टीका है, इसमें विश्वनाथ की सरल शैली के दर्शन होते हैं, इसमें १४२ पद्य हैं ।

(२३) सरार्थवर्षिणी–भगवद्गीता की टीका का नाम सारार्थवर्षिणी है । इस टीका में श्रीधर स्वामी की टीका से सहायता ली गयी है । इसमें

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भक्ति के विना कर्म व ज्ञान की व्यर्थता सिद्ध की है। यह टीका प्रीति रसपूर्ण तथा काव्यवत् सहजबोध्य एवं आनन्ददायक है।

(२४) सारार्थदर्शिनी–यह प्रसिद्ध भागवत टीका है।

(२५) क्षणदागीत चिन्तामणि—इस ग्रन्थ में ४५ कवियों के पद्य संग्रहीत हैं। इसमें ३६ पद हरिवल्लभ नाम से तथा १५ पद वल्लभ के नाम से संगृहीत हैं। किन्तु उक्त पद विश्वनाथ के ही हैं। हरिवल्लभ उनका उपनाम था यह लिखा जा चुका है। चण्डीदास का कोई पद इसमें नहीं हैं यह आश्चर्य की बात है—

'ए सखि विहि की पुरायव साधा
हेर वपन किये रूपनिधि राधा

....

कहे हरिवल्लभ सुत ब्रज बाला
हरि जप ये तुया गुन मणि माला ॥ (१६।५)

इसके पूर्वभाग से ज्ञात होता है कि वे उत्तर भाग नहीं रच सके।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य–नाम** – सारार्थ दर्शिनी का उल्लेख उन्होंने पुष्पिकाओं में तथा कारिकाओं में किया है –

'इति महामहोपाध्याय श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ति कृतायां सारार्थदर्शिण्यां एकोनविंशतितमोध्यायः।' (१।१९)

प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में अध्याय का सार तथा प्रत्येकाध्याय के अन्त में प्रायः एक कारिका लिखी है –

इति सारार्थ दर्शिण्यां हर्षिण्यां भक्त चेतसाम्
स्कोयविंशा प्रथमे संगतः संगतः सताम् ॥ (१।१९)

केवल एक श्लोक में इसे अपने नाम से भी सम्बोधित किया है—

'टीकेयं वैश्वनाथी भवतु भगवतो भक्तलोकस्य रस्या। (१२।१३)

इस टीका का नाम साभिप्राय रखा गया है। श्रीधर स्वामी, श्रीमहाप्रभू की व्याख्याओं का सार ग्रहण करने के कारण इसका नाम सारार्थ दर्शिनी है।[1]

परिमाण – यह टीका सम्पूर्ण भागवत पर उपलब्ध है।

---

[1] **श्रीधर स्वामिनां........................**
व्याख्यानुसार ग्रहणादियंसारार्थ दर्शिनी। (वही १।१९ का०)

उद्देश्य—भागवत का सर्वशास्त्र मूर्धन्य सिद्ध करना एवं कृष्णस्वरूप प्रमाणित करते हुए चैतन्य के सिद्धान्तों को पुष्ट करना।

प्रकाशन--सं० १६६४ में नित्यस्वरूप द्वारा वृन्दावन से आठ टीका संस्करण में प्रकाशित।

शैली--यह अनुभव मुख व्याख्या है, सरल संस्कृत को प्राधान्य दिया है। काव्यगत श्लोकों की व्याख्या बड़े ललित शब्दों में की गई है : काठिन्य की ओर टीकाकार की अभिरुचि नहीं दिखलाई देती, यथा–

'अवतारस्यास्य ब्रह्मत्वे केचित् संशेरते तत्र ये संशेरते ते संशेरतां नाम अहन्तु साक्षादिमं पर ब्रह्म रूपमेवानुभवामि। (५।१६।४)

पदार्थ ज्ञात कराने के लिये किन् का अधिक प्रयोग किया गया है।

'ततः किमत आह न कश्चिदिति। ततोऽपि किमत आह–अहो इति। (१।१६।८) शंका 'ननु' पद से उठाई गई है–

'ननु तर्हि कथमस्माकं क्लेशस्तत्र तत् कारणं प्राचीनार्वाचीनं किमपि-पापमपश्यत् ......आह 'सर्वकालकृतं मन्ये।' (१।६।१४)

अनेक लीलाऐं विश्वनाथ ने अपनी मौलिक देन में दी हैं और उनका आधार भागवत् ही है, यथा भागवत के 'मनोरमालापविहार विभ्रमैं (१०।३०।२) के आलाप शब्द के आधार पर कथोपकथन लिखे हैं। कृष्ण जब वन जाते हैं गोपियां उसे विरह काल मानकर व्याकुल हो उठती हैं एवं कभी-कभी वार्तालाप भी करती हैं मानों कृष्ण कह रहे हैं[1]—

जो स्थल पद्मिनी ? तृषार्त मधुकर को मधुपान के लिये मधु देगी या नहीं ?

गोपी—पद्मिनी का पति सूर्य है उसे छोड़कर वह तुझ भ्रमर को मधु पान क्यों करायेगी ?

कृष्ण—पद्मिनी ! यह तो तुम्हारा स्वभाव है कि तुम अपने पति को परित्याग कर उपपति भ्रमर को ही भजती हो। इस आलाप से पराजित होकर हँसती हुई अधर पानादि विहार करने लगी।

संज्ञावाची शब्दों की सुन्दर व्याख्या की गई है। यथा—शारदा-- 'शीर्यंत इति शारः' तं संसारं घति खण्डयति इति शारदा।

---

[1] कृष्ण—अयिस्थल पद्मनि ? अति तृष्णार्ताय मधुपाय स्व मकरन्दं दास्यसि न वा।
गोपी—भो भ्रमर ! पद्मन्याः पतिः सूर्य एव न तु भ्रमरस्तत्कथं त्वां स्वं स्वीयं मधु पाययिष्यति। (सारार्थ दर्शिनी १०।३०।२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विचित्रार्थ—तात्पर्यार्थ वड़े विचित्र लिखे हैं जैसे शिव के वीर्य से सोने चांदी की खान वनीं। इसका अर्थ सुवर्ण प्राप्ति के लिये शिवोपासना किया है (८।१२।३३)। कल्पनाशक्ति वड़ी विलक्षण थी—चीरलीला प्रसंग में गोपियां वस्त्र मांगती हैं, कृष्ण उन्हें देवियों के वतलाते हैं, यहां वड़ा मधुर आलाप प्रस्तुत किया है। सम्प्रदाय भावना को उचित स्थलों पर ही प्रकट किया है—

'परिच्छिन्नस्यापि मत्स्वरूपस्यव्यापकत्वादित्यचिन्त्य शक्तिमत्वंचदर्शितम्।' (६।४।४७)

अनेक शंकास्पद स्थलों का सुन्दर समाधान किया। अवतार ग्रहण भूमि पर वात्सल्यादि गुणों का वैकुण्ठ में उपयोगाभाव होने के कारण हुआ। (१०।१।१) भागवत की कथा ब्राह्म कल्प की है, पद्म कल्प की नहीं। (३।४।१३)

विद्वानों द्वारा 'भागवत का सिंहासन पर रख कर दान देने का' उल्लेख विरुद्ध प्रतीत होता था। कतिपय विद्वान् शंका करते थे कि सिंह देवी का वाहन है अतः महापुराण देवी भागवत ही है। विश्वनाथ ने वड़ी युक्तिपूर्वक समाधान किया है—श्री मद्भागवत् पुराणार्क है अतः सम्राट है, सम्राट का सिंहासन पर आसीन होना उचित ही है। अथवा उस समय सिंह राशि के सूर्य थे तथा भाद्रपद मास की पूर्णिमा को इस ग्रन्थ की समाप्ति हुई थी। (१२।१३।१४) अतः सिंहासन द्वारा उसकी तिथि का संकेत किया गया है। अथवा भगवान विष्णु के लिये भी सिंहासन प्रदान पाँचरात्रागम सम्मत है, अतः दोष नहीं। टीका में देवी देवताओं की न तो निन्दा ही की गई है न उपेक्षा। देवी दुर्गा के नामों की सुन्दर व्युत्पत्ति (२।१८।१४) शिव की महिमा आदि सभी के वड़े सुन्दर चित्रण हैं। राम की परब्रह्मता का प्रतिपादन सुन्दर रीति से किया है।

ब्रजभूमि वास के कारण वे यहां की मान्यताओं की भी अच्छी जानकारी रखते थे। शकट को गोपों का अधिदेव मानना आदि इसी भावना के परिचायक हैं। (१०।७।१२) श्रीकृष्णलीला भाव वाले प्रक्षिप्त श्लोकों को भी सादर ग्रहण किया है, यह भी इस टीका की विशेषता है।[१] क्षेपक या प्रक्षिप्त मानकर भागवत के श्लोकों का क्वचित् तिरस्कार नहीं किया। गौड़ीय वैष्णव समाज में सनातन गोस्वामी की रसमयी टीका के पश्चात् सारार्थ दर्शिनी टीका ही अधिक सम्मान्य है। भागवतशास्त्र रूपी अगाध अमृत

---

[१] 'यदि कंसाद्विभेषित्वं तर्हिमां गोकुले नय' (वही० १०।३।४६)

सरोवर में अवगाहन करने वाले व्यक्तियों के लिए सारार्थ दर्शिनी सोपान है। इस टीका की विशेषता है कि इसके कतिपय स्थल विना मूल के भी पढ़े जांय तो मूल से भी अधिक आनन्द एवं अविच्छिन्न कथानक युक्त मिलेंगे। चीरलीला–रासलीला आदि के स्थल मौलिक निबन्धों से परिपूर्ण हैं। यद्यपि टीकाकार न्याय, व्याकरण, मीमांसा एवं अलंकार शास्त्र आदि का प्रगाढ़ पण्डित या तथापि उसकी प्रवृत्ति एवं उसका भक्तिरस से रसमय हृदय भाव-पक्ष की ओर अधिक प्रवाहित हुआ है। टीकाकार की यह स्पष्ट घोषणा है कि भागवत शास्त्र विना भक्ति के बुद्धिगम्य नहीं। यथा १२।१३ उपसंहार का० २—

टीकेयं वैश्वनाथी भवतु भगवतौ, भक्तलोकस्य रस्या
षट् शास्त्रागम्यधाम्नो मधुरिमलहरीखेलनैकान्त वृत्तेः
यत्तस्या रोखकत्वे कृतिरिति कृतिनः सर्वसाद्‌गुण्य गुण्या
दीव्यत्पाण्डित्यनृत्याप्यनुपद विधुरा स्याज्जती दुर्भगेव ।। तथा
व्याख्याऽस्य भक्त्या गम्या सा श्रीगुरोः कृपये क्षते
तस्मान्नमो नमस्तस्मै गुरवे गुरवे नमः ।। (उप० का० ३)

टीकाकार हठधर्मी नहीं थे किन्तु अपनी सम्प्रदाय का हीनत्व भी स्वीकार नहीं करते। निम्न श्लोक में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि आरम्भवाद, परिणामवाद, विवर्तवाद आदि से हमें कोई प्रयोजन नहीं, भागवत पुरुषार्थ शिरोमणि है—

आरम्भे परिणामे च विवर्तेऽपि नहि क्षतिः
श्रीमद्‌भागवते भक्तेः पुरुषार्थ शिरोमणेः ।। (१२।१३ उप०)

भागवत एक पूज्य शास्त्र है तथा विश्वनाथ विनीत भक्तों के दास हैं, वे स्पष्ट कहते हैं कि तुम्हारे द्वार पर एक श्वान स्थित है जो उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण की कानना करता है—

हे भक्ताः द्वारिवश्चंचद् बालधी रौत्ययं जनः
नाथावशिष्ट श्वे वातः प्रसादं लभवां मनाक् ।। (वही)

श्रीधर स्वामी की टीका का अन्य टीकाकारों ने खण्डन भी किया है किन्तु विश्वनाथ ने 'स्वामिचरणास्तु' के सम्बोधन द्वारा उन्हें सर्वत्र सम्मान दिया है। क्वचित उनकी टीका की पंक्तियों को अविकल उद्धृत किया है।[1] सनातन गोस्वामी एवं जीवगोस्वामी की व्याख्याओं को भी उद्धृत

---

[1] वही २।२७।२१, २।६।१०, २।५।४०।

किया है। राधा का उल्लेख उन्होंने किया है। भक्तिशास्त्र के गूढ़ स्थानों की भी विवेचना की है। पांडित्यपूर्ण विवेचन, नयनवोन्मेषशालिनी भक्तिशास्त्र की प्रतिभा, अनुपम रसमयी कथा आदि विशेषतायँ इस एक ही टीका में समुचित रूप में देखने को उपलब्ध होती हैं। श्लेष[1], काकु[2], रूपक[3], उपमा[4] आदि की सुन्दर योजना देखने योग्य है।

टीका में श्रीधर स्वामी[5], सनातन गोस्वामी[6], जीवगोस्वामी[7]' मधुसूदन[8], सरस्वती भट्टनायक[9], तथा यमुनाचार्य[10], आदि के उल्लेख हैं। विशेष प्रमाण के लिये गोपाल तापनी[11], मुग्धबोध[12], मध्यभाष्य[13], नृसिंह तापनी[14], नारद पंचरात्र[15], विश्वप्रकाश[16], के नाम लिखे हैं। कोशों में विशेषतः विश्वकोश मेदिनी का उल्लेख प्राप्त होता है।[17]

४. वलदेव विद्याभूषण

(क) परिचय—भागवत की वैष्णव नन्दिनी टीका के रचयिता वलदेव विद्याभूषण का जन्म रेमुना गांव के निकट हुआ था।[18] यह गांव उड़ीसा के वालेश्वर जिले के अन्तर्गत है। पिल्का ह्रद के निकट किसी विद्वत् स्थली में व्याकरण अलंकार एवं न्यायशास्त्र का अध्ययन किया।

(ख) सम्प्रदाय—वलदेव वेदाध्ययनार्थ महीशूर भी गये थे। इसी समय इन्होंने माध्य सम्प्रदाय का शिष्यत्व ग्रहण किया।

षट् सन्दर्भ का अध्ययन—श्री रसिकानन्द प्रभु के प्रशिष्य कान्यकुब्ज वासी श्रीराधा[19] दामोदर के निकट किया। एवं गौड़ीय वैष्णव धर्म के निगाढ़ मर्म से आकृष्ट होकर उनके शिष्य बन गये।

भक्तिशास्त्र—का अध्ययन पीताम्बर से एवं श्रीमद्भागवत का अध्ययन विश्वनाथ चक्रवर्ती से किया था।

---

१. **वही** ३।१८।३

२. **वही** ३।१८।११

३. **वही** ३।२०।२६

४. **वही** ३।२८।३०

५-७. **सारार्थं दर्शिन** १।१।१

८. **वही** १।५।२२

९. **वही** १।१।३

१०. **वही** ७।५।३२

११-१२. **वही** १।१।३ १।८।४५

१३-१४. **वही** ३।४।२६

१५. **वही** ३।५।२२

१६. **वही** ३।६।१

१७. **वही** ३।२।१८, ३।२८।६०

१८. **गौड़ीय अभिधान कोश, पृष्ठ १२६२**

१९. **अर्चित नयनानन्दो राधा दामोदरोगुरुर्जीयात् (छन्दः कौस्तुम भाष्य)**

गोविन्ददास—विरक्त वैष्णव वेश ग्रहण करने के बाद इन्हें गोविन्ददास नाम से पुकारा जाने लगा था। वृन्दावनस्थ श्यामसुन्दर के विग्रह की स्थापना इन्हीं के द्वारा हुई थी।

प्रधान शिष्य—बलदेव के प्रधान शिष्यों में उद्धवदास और नन्दमिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं। बंगालियों को सेवा करने का अनाधिकारी सिद्ध किये जाने पर विश्वनाथ के आदेश से बलदेव विद्याभूषण, कृष्णदेव सार्वभौम के साथ जयपुर गये एवं विपक्षियों को पराजित किया। 'गलता' नामक स्थान पर गौड़ीय आसन की प्रतिष्ठा की तथा विजय गोपाल भगवान की स्थापना की।[१] यद्यपि यह विग्रह देवमन्दिर में विराजमान हैं। इसी समय श्री गोविन्द देव की कृपा के आदेश से श्री गोविन्द भाष्य की रचना भी की।

(ग) **स्थितिकाल**—बलदेव विद्याभूषण ने विश्वनाथ चक्रवर्ती का स्मरण किया है—

> इति विश्वनाथ चक्रवर्ति शिष्य बलदेव विद्याभूषण विरचितायां भागवत…………टीकायां प्रथमोऽध्यायः। (वै० १।१)

और स्वयं को विश्वनाथ चक्रवर्ती का शिष्य लिखा है। विश्वनाथ से इन्होंने श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया था यह निर्विवाद है। विश्वनाथ ने अन्तिम समय में भागवत की टीका सारार्थ दर्शिनी लिखी थी। सम्वत् १७६१ वि० में बलदेव विद्याभूषण अवश्य उपस्थित रहे होंगे क्योंकि इसी समय सारार्थ दर्शिनी पूर्ण हुई थी। यदि उस समय विद्याभूषण की अवस्था ४० वर्ष के लगभग मानी जाय तो सम्वत् १७२१ विक्रम के लगभग इनका जन्म समय मानना होगा।

बंगालियों को अनधिकार सिद्ध किये जाने की जैपुर वाली घटना से भी कोई विरोध आकर नहीं पड़ता। कहा जाता है कि जब जैपुर में यह झगड़ा चल रहा था कि बंगालियों को राधा-कृष्ण की एक साथ पूजा करना अवांछनीय है तब विश्वनाथ अति वृद्धावस्था में थे और वे वहाँ नहीं जा सके तथा बलदेव को शास्त्रार्थ के लिए भेजा। अतः बलदेव का उस समय विद्वान एवं युवक होना निश्चित है फलतः उनका जन्म सं० १७२० के समीप मानना उपयुक्त है।

(घ) **कृतियां**—गौड़ियार तिन ठाकुर में पृष्ठ ४०० पर इनकी निम्न कृतियां लिखी हैं—

---

[१] **सर्वेश्वर-वृन्दावनांक, पृष्ठ २६१।**

१. षट् सन्दर्भ की टीका २. लघु भागवतामृत ३. सिद्धान्तस रत्न ४. वेदान्त स्यमन्तक ५. सिद्धान्त दर्पण ६. प्रमेय रत्नावली ७. श्यामानन्द शतक टीका ८. नाटक चन्द्रिका टीका ९. साहित्य कौस्तुभ १०. छन्दः कौस्तुभ ११. काव्य कौस्तुभ १२. वैष्णवानन्दिनी टीका (भागवत टीका) १३. गोपाल तापिनी भाष्य १४. भगवद्गीता भाष्य १५. स्तवमाला १६. ऐश्वर्य कादम्बिनी १७. गोविन्दभाष्य (ब्रह्मसूत्रों पर रचित) १८. विष्णु सहस्र नाम भाष्य १९. संक्षेपभागवतामृत टिप्पणी २०. चन्द्रालोक की टीका (दुष्प्राप्य) २१. गोविन्द भाष्य टीका ।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य–नाम**—वैष्णवानन्दिनी टीका के रचयिता श्री बलदेव विद्याभूषण गौड़ीय वैष्णवाचार्य थे । पुष्पिका में इसका स्पष्ट निर्देश है–

'इति विश्वनाथ चक्रवर्ति शिष्य बलदेव विद्याभूषण रचितायां वैष्णवानन्दिन्यां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।' (१।१)

परिमाण—यह टीका द्वादश स्कन्धों पर की गई थी । सूत्र शैली में लिखे जाने के कारण इसकी शब्द सम्पत्ति स्वल्प ही है ।

उद्देश्य—गौड़ीय वैष्णवों के सिद्धान्तों में परिवर्तन तथा परिवर्द्धन और भागवत द्वारा उनकी पुष्टि ।

प्रकाशन—मध्व गौड़ीय परसाहित्य मन्दिर कलकत्ता ।

शैली—टीका के आरम्भ में कृष्ण, व्यास तथा शुकदेव की बड़ी सुन्दर वन्दना की है । दशम स्कन्ध में सनातन गोस्वामी, श्रीधर स्वामी एवं विश्वनाथ चक्रवर्ती की प्रार्थना की है तथा विश्वनाथ की भाँति अध्यायारम्भ में संक्षिप्त कारिकाओं में अध्याय का सार भी लिखा है । मायावाद का प्रबल खण्डन प्रथम स्कन्ध में किया है । गौड़ीय 'वैष्णव अभिधान कोश पृष्ठ १७८१ के अनुसार इस टीका में शंकर के केवलाद्वैतवाद रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद का खण्डन किया गया है तथापि सैद्धान्तिक मतभेद जीवगोस्वामी से भी है, जीव गोस्वामी 'जीवात्मा, प्रकृति' आदि की उत्पत्ति एक परतत्व मानते हैं । बलदेव विद्याभूषण ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल, कर्मभेद से पाँच तत्व मानते हैं तथा जीव-प्रकृति आदि ४ शक्तियाँ भी मानते हैं । जीव गोस्वामी जीव को तटस्था शक्ति मानते हैं । बलदेव विद्याभूषण विभिन्नांश मानते हैं । टीका में उनके मत का प्रतिबिम्ब अवश्य भाषित होता है । टीका अत्यन्त उच्च भावों से परिपूर्ण है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

५. श्री राधारमणदास गोस्वामी

(क) **परिचय**—राधारमणदास गोस्वामी भागवत के प्रसिद्ध विद्वान् थे। आप वृन्दावन निवासी थे। आपके पिता श्री गोवर्धन[1] जी एवं पितामह श्री जीवनलाल जी भी उच्चकोटि के विद्वान् थे।[2] श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध वक्ताओं में वे सर्वश्रेष्ठ गिने जाते थे। राधारमण जी की माता का नाम किशोरी था—

> किशोरी मातरं वन्दे वृषभानु पुरोद्भवाम्'
>
> (दीपिका दीपनी ११।१)

किशोरी जी बरसाना ग्राम की थीं। पितामही कृष्ण कुँवर थीं इन्हें 'गीत गोविन्द' कण्ठस्थ था। राधारमणदास ने इनका उल्लेख भी अपनी टीका में किया है—

> पितामहीं प्रपद्ये ऽहं श्रीकृष्ण कुंवराभिधाम्
> गीत गोविन्द काव्यं हि यस्याः कण्ठे विराजते ॥
>
> (दीपिका दीपनी ११।१)

राधारमणदास के चचेरे भाई का नाम कृष्णगोविन्द था और इनका व्यवहार मित्र जैसा था। अपनी टीका में इन्होंने 'मित्र' शब्द का उल्लेख किया है –

> कृष्ण गोविन्द मित्रेण राधारमण सेविना
> राधारमणदासेन तृतीये दीपनं कृतम् ॥[3]

राधारमणदास के छोटे भाई का नाम विरजलाल था। विरजलाल का वंश आगे नहीं चला। राधारमणदास जी के दो पुत्र हुए, ज्येष्ठ का नाम

---

[1] गोस्वामि पितरं वन्दे श्रीगोवर्द्धन लालकं.................
(दीपिका दीपिनी ११।१)

[2] 'पितुश्च पितरं वन्दे श्रीमज्जीवन लालकं
मन्त्रराजोपदेशेन येन निस्तारितो स्म्यहम् ॥
(दीपिका दीपनी ११।१ मंगलाचरण)

[3] दीपिका दीपनी ३।३३, उपसंहार २।

राधाप्रसाद एवं कनिष्ठ का गोपीप्रसाद था।[1] राधारमण जी के पुत्र अल्पवय में ही चल बसे थे। राधारमणदास जी ने अपने पितामह की विशेष कृपा का सौख्य प्राप्त किया था। शिक्षा-दीक्षा दोनों ही इन्हें पितामह द्वारा प्राप्त हुई थी।

---

[1] वंशज श्री विश्वम्भर गोस्वामी जी के पास सुरक्षित वंशवृक्ष के आधार पर।

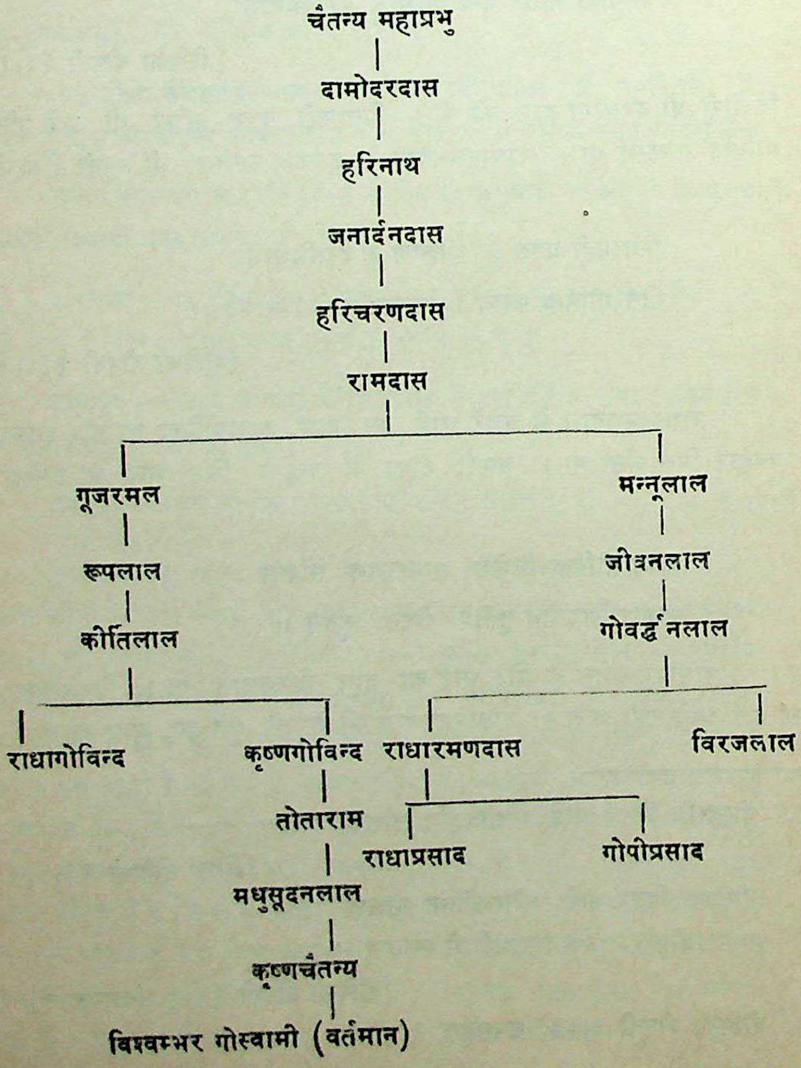
चैतन्य महाप्रभु
दामोदरदास
हरिनाथ
जनार्दनदास
हरिचरणदास
रामदास
गूजरमल
मन्नूलाल
रूपलाल
जीवनलाल
कीर्तिलाल
गोवर्द्धनलाल
राधागोविन्द
कृष्णगोविन्द
राधारमणदास
विरजलाल
तोताराम
राधाप्रसाद
गोपीप्रसाद
मधुसूदनलाल
कृष्णचैतन्य
विश्वम्भर गोस्वामी (वर्तमान)

(ख) **सम्प्रदाय**–मध्व गौडेश्वराचार्य के वंश में इनकी स्थिति मानी गई है, जैसा कि वंशवृक्ष से स्पष्ट है। श्री चैतन्य का उल्लेख भी टीका में किया गया है--

कीर्तनात्मक यज्ञेन यः सन्तुष्टः शुनोऽपिहि
तं चैतन्यं प्रपद्येऽहं गान्धर्वाभाव कान्तिकम् ॥ (वही ११।२७ उप०)

....

श्री चैतन्यं प्रपद्येऽहं साद्वैतं च सनित्यकम्
श्रीमद्‌गोपाल भट्टं च षट् सन्दर्भ प्रकाशकम् ॥
श्रीमद्‌भागवतं वन्दे सर्वशास्त्र प्रकाशकम्
तद् व्याख्यातॄन गुरुन् वन्दे श्रीधरस्वामिपादकान् ॥
(वही ३।१ मंगलाचरण)

उक्त श्लोकों द्वारा चैतन्य सम्प्रदाय के अनेक अनुयायी विद्वान [illegible] स्मरण किया है। प्रथम स्कन्ध के प्रथम श्लोक की टीका में नृसिह, मुरारिगुप्त, गोकुल चन्द्र मिश्र, महामहोपाध्याय गोपाल भट्टाचार्य, काशीनाथ उपाध्याय, गोपीचन्द्र वैयाकरण आदि के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। श्रीमद्‌भागवत की टीका में प्रारम्भ में कोई मंगलाचरण नहीं है, एकादश स्कन्ध में मंगलाचरण उपलब्ध है ः प्रथम आपने भागवत के एकादश स्कन्ध की टीका ही की थी। इसके उपरान्त प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्कन्ध की रचना की थी। तृतीय स्कन्ध की रचना के समय इन्हें मृत्यु के समान कष्ट प्राप्त हुआ। चैतन्य की कृपा से ही अपनी देह-रक्षा मानते हुए इन्होंने लिखा है--

मृत्योर्विमोच्य येनाहं तृतीयस्कन्ध दीपनं
प्रापितो स्मिप्रपद्येऽहं चैतन्यं प्राणपालकम्। (वही ३।३३ उप०)

चतुर्थ स्कन्ध का आरम्भ करते ही इन्हें ज्वर ने आक्रान्त किया था, और ये उससे बड़े चिन्तित थे--

प्रोत्साहितोऽस्मि चेन्नाथ ! भावानां दीपने ह्ययम्
तज्ज्वरादिक कष्टन्तु कस्मान्मेदीयते प्रभो ॥ (वही ४।१ मंगला०)

एक बार तो ये प्रारब्ध की प्रबलता पर खीझ उठे और स्पष्ट कह दिया कि आपकी कृपा से यदि मैं वियुक्त नहीं तो प्रारब्ध की इतनी शक्ति क्यों जो शारीरिक कष्ट भोगना पड़ रहा है--

त्वत्पाल्यमानेऽप्यरब्धं प्रवलं चेन्महा प्रभो
तदाशास्त्रस्य व्याकोपो राजसंप्रार्थने यथा ॥ (वही ४।१ मंग.)

(ग) **स्थितिकाल**--यद्यपि राधारमणदास ने अपने जन्म आदि का

उल्लेख नहीं किया तथापि कतिपय प्रमाणों के आधार पर निश्चित रूप से उनका स्थिति काल माना जा सकता है। राधारमणदास और बिरजलाल दोनों भाई थे। इन दोनों का विभाजन सम्वत् १८८७ विक्रम में राधारमण मन्दिर (वृन्दावन) में हुआ था। यह विभाजन आठ आने के कागज पर इनकी माता की समक्षता में संपन्न हुआ था। इस कार्य में साक्षी कृष्णगोविन्द ने की थी जो राधारमणदास के चचेरे भाई एवं मित्र भी थे।[1] इससे यह निश्चित है कि राधारमणदास जी १८८७ में अल्पवयस्क नहीं थे। सम्वत् १८१८ से सं० १८५७ पर्यन्त विभिन्न समयों में राधारमणदास जी के पितामह एवं पिता को कथा-प्रवचन के लिये ग्वालियर मध्यवर्ति नरवर रियासत में जाना पड़ा था। सम्वत् १८१८ में मन्दिर के लिये ५०० रुपये की धनराशि भी नरवर रियासत से भोग सामग्री के लिये निश्चित की गई थी। छत्रसिंह ने २५ बीघा भूमि भी इस मन्दिर के लिये भेंट की थी। विभाजन के पूर्व गोवर्द्धनलाल (पिता) तथा जीवनलाल जी (पितामह) का परम पद हो चुका था किन्तु जीवनलाल जी से दीक्षा ग्रहण की थी अतः राधारमणदास जी का समय १८५० १८६० विक्रम के मध्य माना जा सकता है।

(घ) **कृतियाँ**—राधारमणदास गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी विरक्त से रहते थे। आपकी कृतियों की कुल संख्या कितनी थी यह अभी निर्णय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। वर्तमान में आपकी केवल 'दीपिका दीपिनी' (भागवत टीका) ही उपलब्ध है।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य**–नाम—श्री राधारमणदास कृत भागवत की टीका का नाम 'दीपिका दीपिनी' है। टीकाकार ने 'दीपन' शब्द का प्रयोग अधिक किया है—

'राधारमणदासेन तृतीये दीपनं कृतम्' (वही ३।३३ उप०)

यह टीका श्रीधर स्वामी कृत भावार्थ दीपिका पर लिखी गयी है। 'दीपका' शब्द से उनका तात्पर्य उक्त श्रीधर स्वामी की टीका से ही है। 'दीपन' शब्द का प्रयोग श्रीधर स्वामी के भावों को दीप्त करने के हेतु रखा गया है। श्रीधर स्वामी की इन्होंने बन्दना भी की है।

परिमाण—यह टीका समग्र भागवत पर उपलब्ध नहीं हैं। केवल प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ (१६ अध्याय के २० श्लोक पर्यन्त) तथा दशम स्कन्ध के 'वेदस्तुति' मात्र एवं एकादश स्कन्ध पर यह टीका उपलब्ध है।

---

[1] शपथपत्र श्री विशवम्भर गोस्वामी, वृन्दावन के पास सुरक्षित।

टीकाकार चैतन्य महाप्रभु की वंश परम्परा से सम्वन्धित थे, फलतः उनके सिद्धान्तों का अनुसरण किया है ।

शैली—भावार्थ दीपिका के अक्षर-अक्षर का रहस्य इस टीका में दर्पण की भाँति स्पष्ट दिखाई देता है—

गोस्वामिनश्च संनम्य श्रीधरस्वामिदादकान्
व्याख्या व्याख्यायते तेषां सा भावार्थ प्रदीपिका ।। (वही १।१।१)

भावार्थ दीपिका एक गूढ़ टीका है इसका ज्ञान दीपिका के आधार पर बड़े ही सहज ढंग से प्राप्त हो जाता है। प्रारम्भ के मंगलाचरणों को ही देखें। श्रीधर स्वामी ने राम, नृसिंह, हरिहर, कृष्ण आदि देवों की वन्दना की है किन्तु अन्य वैष्णव टीकाकारों में इस प्रकार त्रिदेव वन्दना कम ही देखने को मिलेगी। राधारमणदास जी ने प्रत्येक देव की वन्दना का हेतु लिखा है। प्रारम्भ में श्री राम की वन्दना 'श्रीमत् परमहंसा स्वादित०' से है । राधारमणदास लिखते हैं 'श्रीरामं नमस्करोति, ओं नम इति' ततैतिह्यम्—इस मंगलचरण में इतिहास है। एक बार श्रीधर स्वामी अपने पाण्डित्य से समस्त दिशाओं को जीतकर आरहे थे, मार्ग में चोरों ने उनका पीछा किया। श्रीधर भयभीत हुए और उन्होंने अपने कुल के उपास्य श्री रामचन्द्र का स्मरण किया, तत्क्षण ही श्री राम ने धनुष-वाण लेकर चोरों को दर्शन दिया और उन्हें भयभीत किया। चोर जिस दिशा में जाते थे वहां पर ही उन्हें धनुर्वाणधारी श्रीराम दिखाई देते थे । चोर घबड़ा गये और श्रीधर स्वामी के चरणों पर गिर पड़े। चोरों ने कहा कि आपके साथ दूर्वादल श्याम धनुर्वाणधारी कोई बालक है जो हमें वेध रहा है, आप रक्षा करो। श्रीधर स्वामी को यह सुनकर वड़ा दुःख हुआ कि धन के लिये मेरे प्रभु श्रम कर रहें हैं। तव खिन्न होकर एवं सव कुछ परित्याग कर काशी आये और दण्ड ग्रहण किया ।[1] काशी में आकर परमानन्द नामक गुरु से नृसिंह मन्त्र की दीक्षा ली। इस कारण प्रारम्भ में उन्होंने श्रीराम का ही स्मरण किया। भागवत के कुछ बंगीय संस्करणों में–राम के स्थान पर 'कृष्ण' का भी उल्लेख है । आठ टीका के सम्पादक ने उसका खण्डन किया है और 'राम' पाठ ही उचित माना है——

'रामाय इति तु सार्वत्रिकः पाठः अयमेवोचितश्च, अन्यथा' विश्व सर्ग विसर्गेत्यादि पद्येन पौनरुक्तय प्रसंगात् । वंश पराम्परोपास्यत्वेन श्रीरामः मन्त्रानुद्रान द्वारा विद्यादातृत्वेन नृसिंहः, श्रीमद्भागवत प्रतिपाद्यत्वेन श्रीकृष्णश्च

---

[1] **दीपिका दीपनी १।१।१, आठ टीका संस्करण (वनमहाज पुस्तकालय) ।**

त्रयोऽस्मिन्, ग्रन्थे श्रीधरस्वामिनो वन्द्या इति श्रीमद्गोपीलालगोस्वामिभ्यः श्रुतवन्तश्च ।[१]

द्वितीय स्कन्ध के आरम्भ में श्रीधर स्वामी ने द्वितीय स्कन्ध का वर्ण्य विषय की कारिका में उद्देश-लक्षण शब्द का उल्लेख किया है--

द्वितीये तु दशाध्यायैः श्रीभागवतमादितः
उद्देश लक्षणोक्तभ्यां संक्षेपेणोपवर्ण्यते ।।[२]

यहां उद्देश्य, लक्षण शब्द का क्या अर्थ है, सहसा ज्ञात नहीं होता । दीपनीकार ने इसे लक्ष्य में रखकर स्पष्ट किया है कि नामपत्र से संकीर्त्तन उद्देश्य है—'उद्देति नाम मात्रेण वस्तु संकीर्त्तनमुद्देशः लक्ष्यते ज्ञायतेऽनेनेदि लक्षणम् असाधारण धर्म्म कथनमितियावत् । तद् द्विविधम् इतरभेदानुमापकं व्यवहार प्रयोजकंच ।' (क्षीपिका दीपनी २।१।१)

असाधारण धर्म का नाम लक्षण है वह दो प्रकार का है–इतर भेदानुमापक, व्यवहार प्रयोजक । इसी प्रकार श्रीधर स्वामी के 'उक्तः पूर्वमुपोद्घातः'[३] की व्याख्या में उपोद्घात शब्द का अर्थ भी स्पष्ट लिखा है—संगति छः प्रकार की हीती है–१. प्रसंग, २. उपोद्घात, ६. हेतुता, ४. अवसर, ५. निर्वाहक, और ६. स्ककार्यत्व । उपोद्घात प्रकृत सिद्धयर्थ चिन्ता का नाम है–

'उपद्घात इति-संगति स्वावत् न्यायशास्त्रे षोढानिरूपिता–
सप्रसंग उपोद्घातोहेतुतावसरस्तथा
निर्व्वाहकेककार्यत्वंषोढासंगतिरिष्यते ।।

इतिवचनात् । तत्रस्मृतस्यो पेक्षणानर्हत्वं प्रसंगत्वम् । चिन्तां प्रकृत सिद्धयर्थामुपोद्धातं विदुर्बुधाः, हेतुता–कारणता, शिष्यजिज्ञासानिवृत्युत्तरावश्यकत्वमवसारः । निर्वाहकं कारणतानिर्वाहकं कार्यत्वम् । एक कार्यत्वम्–एककार्यस्वानुकूलत्वम्. तथाहि प्रकृति प्रस्तावे उपीद्घातत्वं प्रसंगत्वं वा कथमस्तीति पाठकैः स्वयमेव चिन्त्यम् ।'

तत्रतावत् स्वाविक क्रियाणामनर्थ हेतुतां वदन् ब्रूहि, यद्वाविपर्ययम् इत्यस्योत्तरमाह श्रोतव्यादीनि इति त्रिमिः ।[४]

उक्त गद्य 'श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्त्रः' पर श्रीधरः स्वामी ने लिखा है । इसका अर्थ है—स्वाभाविक क्रियाओं की अनर्थ हेतुता बतलाकर 'ब्रूहि यद्वाविपर्ययम्' इस श्लोक का उत्तर 'श्रोतव्यादीनि' आदि

---

[१] दीपिका दीपनी १।१।१ टिप्पणी नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी कृत ।

[२] भावार्थ दीपिका २।१ उपक्रम २.

[३] भावार्थ दीपिका २।१ कारिका ४.

[४] वही, २।१ कारिका २.

तीन श्लोकों से दिया गया है। 'ब्रूहियद्वा०' श्लोक कहां किस प्रसंग में आया है—इसका स्पष्ट उल्लेख श्रीधर ने नहीं किया, राधारमणदास ने उसकी संख्या आदि का भी निर्देश किया है कि यह प्रथम स्कन्ध के १९ वें अध्याय का ३८ वां श्लोक है—

'ब्रूहीति प्रथम स्कन्धीयेकोनविंशाध्यायस्याष्टंत्रिशत्तम श्लोक।"[1]

भावार्थ दीपिका के 'पंच सूनापराणाम' की व्याख्या अस्पष्ट है, दीपनीकार का कथन है कि चुल्ली, पेषणी, उपस्कर, कण्डनी, उदकुम्मी द्वारा पांच पाप गृहस्थ को प्रतिदिन लगते हैं—–

'पंच सूना गृहस्थस्यचुल्ली पेषण्युपस्करः
कण्डनी चोदकुम्भश्च वध्यते याश्च वाहयन ।।इति शुद्धितत्वम्।।

तस्य प्रायश्चित्तं वैश्वदेव––

लौकिके वैदिके वापि हुतोच्छिष्टं जले क्षितौ
वैश्वदेवन्तु कुर्वीत पंचसूनाऽपनुत्तये ।। (आन्हिक तत्वं)

पापों के परिहार के लिए वैश्वदेव किया जाता है। उक्त मीमांसा में टीकाकार ने स्मृति वाक्यों का भी निर्देश किया है। इस प्रकार प्रायः सर्वत्र श्रीधर के अस्पष्ट एवं अनुक्त भाव इस टीका में स्पष्ट रूप से व्याख्यात है। सिद्धान्त विवेचन के स्थलों पर वे श्रीधर स्वामी के मत से सहमत नहीं होते, वहाँ वे स्पष्ट या अस्पष्ट रूप में अचिन्त्य भेदाभेद का ही समर्थन करते हैं, अद्वैत का नहीं। वीरराघव, विजयध्वज की टीकाओं की आलोचना भी की है। यथा 'नृ जन्मनि तुष्येत'[2] के सम्बन्ध में लिखा है कि ये दो श्लोक बहुत से संस्करणों में उपलब्ध नहीं हैं किन्तु वीरराघव ने इनकी व्याख्या की है, उन्होंने लिखा है कि भगवन्माहात्म्य प्रतिपादक होने के कारण इन श्लोकों की व्याख्या करता हूँ––

'अत्र श्लोकद्वयं…………तच्चवीरराघवेण व्याख्यातम्।

(दीपिका दीपनी २।७।४२)

अपनी टीका अनेश विशेषताओं से परिपूर्ण है। समग्र टीका की पृथक् आलोचना द्वारा ही उसका मूल्यांकन सम्भव है।

---

[1] **दीपिका दीपनी २।१।२**

[2] **भागवत २।७।५२**

६. रामनारायण मिश्र

(क) परिचय—श्रीमद्भागवत में रास पंचाध्यायी प्राणभूत है। इसकी व्याख्या अनेक विद्वानों ने की है किन्तु वे सदा अतृप्त ही रहे। रामनारायण मिश्र भी भावुक टीकाकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपकी टीका आठ टीका संस्करण वृन्दावन से प्रकाशित हुई है। आपके पिता का नाम सुचेतरामराज था।[1] उपनयन गुरु का नाम भवानीदास शर्मा था—

भवानीदास शर्माणं गायत्री व्रतदं भजे। (वही मंगला०)

रामनारायण के शास्त्र गुरु का नाम रामसिंह[2] एवं दीक्षा गुरु का नाम हरिनाथ था[3]। दीक्षा गुरु हरिनाथ, दामोदर के प्रथम पुत्र थे। दामोदर गोपीनाथ के अनुज थे तथा सहारनपुर मण्डलान्तर्गत देववन्द्य ग्राम के निवासी थे, गोपीनाथ ने सुप्रसिद्ध चैतन्य मत के विद्वान् गोपाल भट्ट से दीक्षा ग्रहण की थी। रामनारायण की विद्वता का प्रकाशन रासपंचाध्यायी द्वारा हुआ है, ये साहित्य शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् थे एवं षड्दर्शनों का मर्म भलीभांति जानते थे। समस्त विश्व हरिमय है यह इनका उद्गार था, जैसा कि इनके मंगल पद्य से स्पष्ट है इन्होंने प्रायः सभी देवता एवं आचार्यों को नमस्कार किया है—

श्रियं श्रीशं गिरां ढुण्ढिं शिवां शिवभजं सुरान्
गुरुन्विप्रानदो भक्तान् विश्वं वन्दे हरेर्वपुः।
शेषं सनत्कुमारादीन् सांख्यायन पाराशरौ
नारदं भगवद् व्यासं शुकं सूतं द्विजान् नृपम्॥

उक्त महर्षियों के अतिरिक्त शंकर, नानक, श्रीधर स्वामी, वल्लभाचार्य,

---

[1] सुचेत रामराजाख्यं भवध्न भवदं भजे।
....
भवानीदासशर्माणं शर्मकृत्कर्मवर्त्मदम्॥
(भावभाव विभाविका, मंगलाचरण)

[2] 'वोधदं रामसिंहाख्यं विद्यानन्द प्रदायकम्'
(भावभाव विभाविका, मंगलाचरण)

[3] 'हरिनाथ महं वन्दे हरि नाम प्रदं गुरुम्।'
(भावभाव विभाविका, मंगलाचरण)

मध्वाचार्य, केशव, कृष्ण चैतन्य, जीवगोस्वामी, सनातन गोस्वामी आदि की वन्दना भी की है, इससे इनका अतिशय विनम्र भाव भी द्योतित है।

(ख) **सम्प्रदाय**—ये चैतन्य के अनुयायी थे। चैतन्य सम्प्रदाय के टीकाकारों की टीका की ओर इनकी विशेष अभिरुचि थी और अपनी टीका में उन टीकाओं का अवलम्बन ग्रहण किया था।

(ग) **स्थितिकाल**—रामनारायण के जन्म सम्वत् का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता तथापि विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका प्रभाव से इन्हें उनके पश्चात् ही मानना चाहिये। विश्वनाथ चक्रवर्ती का समय १८ वीं शती है। अत: १६–२० वीं शती के मध्य इनका स्थितिकाल माना जा सकता है।

(घ) **कृतियाँ**—भावभाव विभाविका (भागवत रासपंचाध्यायी पर टीका)।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य-नाम**—रामनारायण मिश्र कृत टीका का नाम 'भावभाव विभाविका' है। जैसा कि पुष्पिका से स्पष्ट है—

'इति श्री……………………दशमस्कन्धान्तर्गत रासपंचाध्यायी व्याख्यायां श्री चन्द्र भागाख्य विष्णु सख्यापन्न श्रीरामनारायण विरचितायां भावभाव विभाविकायां प्रथमाध्याय व्याख्या समाप्ता।'

परिमाण—यह टीका दशमस्कन्ध के केवल २९ से ३३ वें अध्याय पर्यन्त ५ अध्यायों पर है किन्तु इसकी शब्द-सम्पत्ति अत्यधिक है।

उद्देश्य—श्रीराधाकृष्ण के युगल स्वरूप की सत्ता सिद्ध करना ही इस टीका का उद्देश्य है।

प्रकाशन—आठ टीका संस्करण, वृन्दावन।

शैली—भाषा में प्रवाह एवं माधुर्य गुण है। अनेकार्थ के लिये विभिन्न कोशों का प्रश्रय लिया है। पाठक एक बार पढ़ना प्रारम्भ कर छोड़ना नही चाहता, यह इसकी सर्वाधिक विशेषता है—

'तत्र रासे सर्वासां गोपीनांमात्मनश्च भाविप्रेमविह्वलत्वं सम्भाव्य क्रीडा तदुपकरणादि साकल्यमापादयितुं विश्वकर्ममाययो: स्व लीला प्रवेशाभावेन तत्सर्वमुपकरणादियोजयतीति योगा तत्र योग्यावा योगा स्व योगेश्वर्यात्मिका वा योगा तत्र योग्या वा योगा स्व योगेश्वर्यात्मिका वा अघटन घटनापटीयस्त्वेन माया काचित् स्वरूपात्मिकैव शक्तिस्तामुपाश्रित:।

यद्वा तासामपि योगाय नृत्यरतिविहारादिना भगवतः संयोगाय मायाकृपायस्यास्तां राधामुपाश्रित एव रन्तुं मनश्चक्रे तत्कृपयैव भगवतस्ताभी-रमणाय प्रवृत्तिः।'[1]

शब्दों की तोड़ मरोड़ में विद्वत्ता देखते ही बनती है--

'करैः कं सुखं रान्तीति तथा भूतैः करैः स्वरश्मि रूपै...........।'

भाव का स्पष्टीकरण सर्वत्र किया है। उडुराज के भाव देखने योग्य हैं—

'अयमभिप्रायः – उडुभी राजते इत्युडुराज इत्यात्मन उडुराजत्वेन यथाऽहं वहुभिरुडुभिः स्वकान्ताभीराजमानस्तथैव मद्वंश प्रादुर्भूतेन त्वया-भाव्यमिति दर्शयति।'[2]

व्याकरण की व्युत्पत्ति भी दर्शनीय है। 'भावभाव विभाविका' यह सार्थक नाम है और यह टीका रसपक्ष की एवं अलंकार पक्ष की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट टीका है।

—*—

---

[1] भावभाव विभाविका १०।२६।१।

[2] वही १०।२६।२।

अध्याय अष्टम

टीकाकारों की दृष्टि में श्रीमद्भागवत के कतिपय विशिष्ट स्थल

टीकाकारों की दृष्टि में श्रीमद्भागवत के कतिपय विशिष्ट स्थल

प्रथम स्कन्ध

अष्टदश पुराणों में श्रीमद्भागवत सर्वोत्तम पुराण है, यह न केवल शब्द सम्पत्ति के कारण महान् है, अपितु अपने अर्थगाम्भीर्य–विषय–वैविध्य एवं समस्त शास्त्रों का सार होने के कारण ही समस्त विद्वानों का उपास्य एवं मननीय ग्रन्थ रहा है। यह अगाध शास्त्र है, इस शास्त्र पर भक्ति की मुद्रा लगी हुई है, इससे यह उक्ति 'भक्त्या भागवतं ग्राह्यम्' सार्थक प्रतीत होती है। वस्तुतः इसके भक्तियुक्त कथानक, आध्यात्मिक उपाख्यान भौगोलिक विवेचन अपूर्व हैं। इसके प्रथम श्लोक पर ही मूल से भी बहुगुणी शब्द राशि लिखी जा चुकी है। यह मंगलाचरण का श्लोक अध्येता की कसौटी तो बना ही रहता है साथ ही अपने अगाध सिद्धान्तों का महत्व प्रदर्शित करता है—

प्रथम श्लोक—जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्

....

धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि ।।

उक्त श्लोक में सत्य रूप परमेश्वर का ध्यान है। श्रीधर स्वामी ने सत्य को परमेश्वर का स्वरूप लक्षण तदा 'जन्मादि' को तटस्थल लक्षण लिखा है। इसके अनुसार विश्व का कारण ब्रह्म ही है। यह श्लोक गायत्र्याख्य ब्रह्मविद्या है 'धीमहि' पद द्वारा उसका निर्देश भी है। भागवत के लक्षण में भी गायत्री का सम्बन्ध लिखा है। (भावार्थ दीपिका से)

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्म विस्तरः
वृत्रासुर कथोपेतं तद्भागवतमिष्यते ।।

ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये तीन प्रकार के मंगलाचरण किये जाने चाहिये—आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक ।[1] 'धीमहि' पद से नमस्कारात्मक मंगलाचरण माना जाता है। मम्मट ने 'जयति' पद द्वारा इसी प्रकार 'नमः' पद का आक्षेप किया है (काव्य प्रकाश कारिका १)

---

[1] 'आशीर्नमस्क्रियावापि वस्तुनिर्देश एव वा ।' (दण्डी, काव्यादर्श, का० १)

भागवत ग्रन्थ के सर्व प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी ने उक्त श्लोक से अनुप्राणित होकर श्रीराम नृसिंह, हरिहर, एवं श्रीकृष्ण की सुन्दर वन्दना की है।

श्रीधर स्वामी का प्रथम मंगलाचरण गद्य में है। इसके दो पाठ मिलते हैं, प्रथम में राम का निर्देश है, द्वितीय में कृष्ण का।

(क) श्रीमत्परमहंसास्वादितचरण कमलचिन्मकरन्दाय भक्तजन मानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय।

(ख) श्रीमत्परमहंसा·······श्रीकृष्ण चन्द्राय।

श्रीकृष्णचन्द्र पाठ बंगाक्षर लिपि के पाठों में ही उपलब्ध है, शेष पाठों में सर्वत्र 'रामचन्द्र' पाठ ही प्राप्त होता है (आठ टीका संस्करण, टिप्पणी नित्य स्वरूप ब्रह्मचारी)। श्रीराम श्रीधर स्वामी के कुलोपास्य थे। अतः राम का मंगलाचरण सर्वप्रथम किया है। भागवत दीपिका दीपनीकार १।१।१ ने इसका उपाख्यान भी लिखा है कि श्रीधर पर रामचन्द्र का प्रभाव कैसे पड़ा था (आगे कृष्ण की वन्दना है, अतः पुनरावृत्ति भी होगी)।

भावार्थ दीपिका प्रकाशकार का मत है कि भागवत एक अगाध पयोधि है उसे पार करने के लिये रामनाथ सेतु है। अतः प्रथम राम का मंगलाचरण श्रीधर स्वामी ने किया। (भावार्थ दीपिका प्रकाश उपक्रम १।१।१) नृसिंह वन्दना में वेदलक्षणावाक् तथा लक्ष्मी का ध्यान भी किया है—

वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि
यस्यास्ते हृदये संवित्तं नृसिंहमहं भजे ॥२॥

उक्त मंगलाचरण द्वारा विद्या और लक्ष्मी से त्रिवर्ग लाभ एवं नृसिंह स्मरण से सर्वोत्तम लाभ–प्राप्ति ध्वनित है। नृसिंह श्रीधर के उपास्य थे। भागवत के प्रति पाद्य श्री कृष्ण हैं अतः विद्या प्राप्ति के पश्चात् उनका ध्यान आवश्यक है—

विश्व–सर्ग–विसर्गादि–नवलक्षण–लक्षितम्
श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत् ॥३॥

श्रीकृष्ण सर्ग विसर्गादि नवलक्षणों से युक्त हैं। भागवत में तृतीय स्कन्ध में द्वादश स्कन्ध पर्यन्त सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊती, मन्वन्तर ईशानुकथा, निरोध मुक्ति एवं आश्रम का निरूपण है। हरिहर की वन्दना द्वारा उन्होंने शैव एवं वैष्णवों को एक स्थान पर प्रेम पूर्वक लाने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है—

माधवोमाधवावीशो सर्वसिद्धिविधायिनो
वन्दे परस्परात्मानो परस्पर नुति प्रियो ॥४॥

उक्त श्लोक से श्रीधर ने सिद्ध किया है कि माधम (विष्णु) तथा उमाधव (शिव) में नाम्ना भेद है वस्तुतः अभेद है—

'शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः'

यह पौराणिक वाक्य भी यहाँ उपादेय है । उमाधव–नाम बेणीमाधव से भी सम्बन्धित है । जनश्रुति है कि श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका की रचना पर्याप्त विश्वासपूर्वक की थी, उन्हें यह आशा थी कि मूलानुसारिणी इस टीका का विद्वान् आदर करेंगे । किन्तु विद्वानों को इससे सन्तोष न हुआ, तब श्रीधर स्वामी की टीका की प्रामाणिकता ज्ञात करने के लिये विद्वानों ने उसे वेणी-माधव के मन्दिर में विग्रह के समक्ष रखा । प्रातःकाल इस टीका पर भगवान का हस्तचिह्न देखा गया । तब से विद्वानों ने इसे प्रामाणिक मान लिया । श्रीधर ने यह टीका सम्प्रदाय के अनुरोध पर की थी—

सम्प्रदायानुरोधेन पौर्वापर्यानुसारतः
श्री भागवत भावार्थ दीपिकेयं प्रतन्यते ।। (मंगला०)

'सम्प्रदायानुरोध' शब्द के विभिन्न तात्पर्य विद्वानों ने लिखे हैं । दीपिका दीपनीकार (१।१।१) ने भरत का उल्लेख करते हुए 'सम्प्रदाय' की परिभाषा लिखी है कि 'गुरुपरम्परागत सदुपदेश का नाम सम्प्रदाय है । 'सम्प्रदाय' शब्द अद्वैत सम्प्रदाय से भी सम्बन्धित माना जाता है । 'पौर्वापर्यानुसारतः' पद यह सिद्ध करता है कि भागवत में विभिन्न उल्लेख एक ही वस्तु के हैं उनका यथार्थ ज्ञान पूर्वापर प्रसंग से ही सम्भव हैं । यथा—'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्' कृष्ण स्वयम् भगवान् हैं तथा 'अथाहमंशभागेनदेवक्याः पुत्रतां शुभे । (भाग १०।२।९) में अंश भाग से देवकी का पुत्र बनूँगा आदि की संगति पूर्वापर संगति द्वारा ही ठीक बैठती है । श्रीधर स्वामी ने भागवत ग्रन्थ की महिमा के लिये 'क्वाहं मन्दमतिः' श्लोक लिखा है तथा गुरु की महिमा प्रदर्शन के लिये निम्न श्लोक लिखा है ।

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम् ।

मूक का उदाहरण 'ध्रुव' एवं पंगु का उदाहरण 'अरुण' है । भगवत्कृपा से ध्रुव वाचाल हुआ और अरुण पंगु होने पर भी पर्वतों के शिखरों पर भ्रमण करता है । भागवत एक कल्प वृक्ष है जो ओंकार रूपी अंकुर से उत्पन्न है । द्वादश स्कन्ध ही जिसके स्कन्ध हैं, भक्ति ही जिसका आलवाल है, ३३५ अध्याय ही जिसकी शाखा है तथा १८००० श्लोक ही एक कल्प वृक्ष के पत्र हैं—

श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्तारांकुरः सज्जनिः
स्कन्धैर्द्वादशभिस्ततः प्रविलसद्भक्त्यालवालोदयः ।

द्वात्रिंशत् त्रिशतं च यस्यविलसच्छाखासहस्राण्यलम्
पर्णान्यिष्टदशेष्टदोऽति सुलभो वर्वर्ति सर्वोपरि ।।

इस प्रकार भागवत के अन्य टीकाकार वीर राघवाचार्य, विजयध्वज, वल्लभाचार्य, शुकसुधी, जीवगोस्वामी आदि सभी ने मंगलाचरण किये हैं इनमें वीरराघव ने श्रीराम की, विजयध्वज ने नारायण की एवं अन्य टीकाकारों ने श्रीकृष्ण की वन्दना की है। भागवत के दश लक्षण प्रसिद्ध हैं–सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय। 'जन्माद्यस्य' श्लोक में ये निम्न रूप से घटित किये गये हैं। (क्रमसन्दर्भ १।१।१)––

जन्माद्यस्य यतः — सर्ग, विसर्ग, स्थान, निरोध, मन्वन्तरे-शानुकथा।
तेने ब्रह्म० — पोषण
मुह्यन्ति० — ऊति
धाम्नास्वेन० — मुक्ति
सत्यं परं धीमहि — आश्रय का निरूपण है।

जीवगोस्वामी ने अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण एवं राधिका के पक्ष में भी इस श्लोक की व्याख्या लिखी है। कृष्ण का उल्लेख 'सत्य' शब्द से किया है 'स्वेनधाम्ना' पद द्वारा मथुरा का ग्रहण है, अर्थात् जो 'कृष्ण' कंसादि का विनाश कर मथुरावासियों से शोभायमान हैं, जिन्होंने ब्रह्मा को भी मोहित किया जिस कृष्ण की वेणु से जल भी कठोर हो जाता है, मृत्पाषाण भी द्रवित हो उठते हैं उनका हम ध्यान करते हैं। यह अर्थ कृष्ण पक्ष में किया है। तथा—आद्यस्य=शृंगार रसस्य, अर्थात् शृंगार रस का जन्म श्री राधिका जी से है, इस प्रकार उन्होंने राधापरक व्याख्या बड़े चमत्कारपूर्ण ढंग से लिखी है।

आचार्य वल्लभ ने गायत्र्यर्थ के अनुसार टीका लिखकर अपने शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का निरूपण किया है। उन्होंने लिखा है कि ब्रह्म में देहेन्द्रिय की कल्पना व्यर्थ है—'………सर्वेषां तेषाँ बुद्धिरैव भ्रान्ता न ब्रह्माणि शरीरेन्द्रिय सम्बन्धः।' (सुबोधिनी १।१।१)

इस प्रकार अनेक विसम्वाद हैं, यथा—

(१) चिदानन्द में देह तथा इन्द्रिय कल्पना।
(२) चल कृष्ण में जड़ जीव की कल्पना।
(३) जड़ जीव विशेष में सामर्थ्य की कल्पना।
(४) मायायुक्त अध्यास आदि की कल्पना।

उक्त सभी कल्पनायें व्यर्थ हैं। वल्लभ का यह आशय नहीं कि ब्रह्म निर्विशेष है अपितु सविशेष का सम्बन्ध भिन्न प्रकार से है। वह स्वरूप स्फूर्ति द्वारा सब की अविद्या का नाश करने में समर्थ है, वह श्रेष्ठ पुरुषोत्तम है।

अद्वैतवाद के उद्भट विद्वान् श्री मधुसूदन सरस्वती ने इस श्लोक की व्याख्या में ब्रह्मसूत्रों का समन्वय किया है--

जन्माद्यस्य यतः	जन्माद्यस्य यतः
अन्वयात्	तत्तु समन्वयात्
अर्थेष्वभिज्ञः	ईक्षतेनशिब्दम्
तेनब्रह्म हृदा	शास्त्रयोनित्वात्
मुह्यन्ति यत्सूरयः	एतेन सर्वेव्याख्याता
तेजो वारि मृदां	अविरोधाध्याय
धीमहि	साधनाध्याय
धाम्नास्वेन	फलाध्याय

मधुसूदन सरस्वती ने भागवत के प्रचलित नाम 'पारम हंस्यां संहितायाम्' की व्याख्या भी की है। उनका कथन हैं कि इसके उपाख्यानों का वेदान्तपरक तात्पर्य है अतः 'पारमहंस' पद का प्रयोग किया गया है। गायत्री के अक्षर निम्नलिखित पद्यों से गृहीत किये हैं--

स्वराट्	तत्सवितुर्वरेण्यं
जन्माद्यस्य यतः	भर्गोदेवस्यधीमहि
तेने ब्रह्म हृदा य आदि	धियो योनः प्रचोदयात्

गायत्री के जाप की भांति भागवत का भी अहर्निश आवर्तन होना चाहिये। सर्गादि दश लक्षणों का निर्वचन श्रीधर से साम्य रखता है। मधुसूदन सरस्वती ने चतुर्व्यूहपक्ष तथा रसिक पक्ष में भी सुन्दर व्याख्या की है। 'जन्माद्यस्य' श्लोक के महत्व ज्ञान के लिये टीकावलोकन आवश्यक है। निम्न तालिका में अन्वयानुसार उक्त श्लोक के अर्थ सहित पद लिखे गये हैं। विभिन्न अर्थ सम्प्रदाय भावों से परिपूर्ण है।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवये मुह्यन्ति यत्सूरयः
तेजो वारि मृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा
धाम्नास्वेन सदानिरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

अन्वय—अस्य जन्मादि आद्यस्य आदिकवये ब्रह्म हृदा तेने यत् सूरयः मुह्यन्ति तेजो वारि मृदां यथा विनिमयः यत्र त्रिसर्गः मृषा (अमृषा) स्वेन धाम्ना निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि।

अस्य[1] = विश्व (क) श्रीकृष्ण (च) जगत् (छ) चिद्-चिद्मयजगत (ख) प्रत्यक्ष जगत् (ग)

जन्मादि = जन्मस्थिति भंग (क) प्रणवार्थ (ङ) जन्मैश्वर्यप्रकटन पूर्व वृत्तकथनादि (क)

आद्यस्य = आकाश (च) मथुरा, गोकुल, द्वारका में विराजमान गोविन्द (ज) शृंगार रस (झ)

यतः = परमेश्वर (क) वसुदेवगृह (ज-झ)

अर्थेषु = कारणकार्य (क) देवमनुष्य (ख) सर्व पदार्थ (घ-झ) कंसवंचनादि लक्षण (ज) विचित्र प्रकाश (ञ)

अन्वयात् = मृत् या सुवर्ण (क) अनुवृत्ति का उपादान (ख) तात्पर्य लिंग (ङ) समवायिकारण (च) कारणकार्यावस्था में अनुवृत्त (ज)

इतरतः = पुष्पादि (क) प्रकृति पुरुष से विलक्षण (ख) स्मृति तर्क (घ) इतरतर्क (ङ) निमित्तकारण (च) असत् (छ, ञ) कार्य कारण में व्यावृत्त (ज) सर्ग विभाग (झ)

अभिज्ञः = सर्वज्ञ (घ) ज्ञातृत्व (ज) विदग्ध (झ)

स्वराट् = अकर्मवश्य, स्वतन्त्र (ख) अन्यापेक्षा रहित (घ) स्वयं नृप (ङ) गोकुलवासियों से शोभित (ज) स्वरूप से शोभित (झ)

आदिकवये = ब्रह्मा (क, ञ, ज) सत्यव्रतमनु (झ)

ब्रह्म = वेद (क, घ) रसमूर्ति (ज, झ)

---

[1] उपर्युक्त तालिका में टीकाओं के नाम क, ख, ग आदि संकेतों द्वारा दिये गये हैं—

१. भावार्थ दीपिका (क)
२. शुक पक्षीया (ख)
३. भागवत चन्द्रचन्द्रिका (ग)
४. तात्पर्य निर्णय (घ)
५. पदरत्नावली (ङ)
६. सुबोधिनी (च)
७. मधुसूदन सरस्वती (छ)
८. जीव गोस्वामी कृत [वैष्णवतोषिणी, क्रमसन्दर्भ] (ज)
९. सारार्थ दर्शिनी (झ)
१०. सिद्धान्तप्रदीप (ञ)

ह्रदा = मन (क) संकल्प (ख, ग, ज, झ) स्नेह (घ, ङ)

तेने = प्रकाश (क, झ) विस्तार (ज)

यत् = ब्रह्म (क) चिन्मात्रलक्षण (छ) लीलाहेतु (ज) भक्तियोग (झ)

सूरयः = ज्ञानवन्त उपासक (ख, ग) कपिलादि (ङ) तार्किक (छ) श्रीकृष्ण भक्त (ज) नारद या वशिष्ठादि (झ)

मुह्यन्ति = व्याकुल (ख, ग) आवरण-विक्षेपरूपमोह (छ) विवशता (ज) आनन्द मूर्छा (झ)

तेजो वारिमृदाम् = वारि बुद्धि मरीचिका—प्रायः सब

विनिमय = व्यत्यास (क) विकार (ञ)

यन = उपाधि सम्बन्ध शून्य (क) ब्रह्म (छ) पूर्ण चिन्मयाकार (झ)

त्रिसर्गः = माया गुण (क) जीव, ईश्वर, जड़ सर्ग (घ, ङ) भू भुंवः स्वः या गोकुल मथुरा द्वारका (ज) बुद्धि (झ)

मृषा = मिथ्या (प्रायः सभी)

अमृषा = सत्यवत् (क, च) जगत् सत्य है (ज, झ, ञ)

स्वेन = निरुपधिक (ज) असाधारणतया (झ)

धाम्ना = तेज (क) स्वरूप ज्ञान महिमा (ङ) अखण्डानन्दा द्वितीय चैतन्य रूप (छ) श्री मथुरा (ज) स्वरूप शक्ति (झ)

कुहकम् = कपट (क) माया (ङ) मायोपाधिकृत भ्रम पराभव (ज) जीवों की अविद्या (झ)

सत्यम् = परमेश्वर का स्वरूप लक्षण (क) सत्यं ज्ञानमनन्त रूप ब्रह्म लक्षण (ज) सर्व काल देशवर्ति परमेश्वर (झ)

परम् = परमेश्वर (क) सम्पूर्ण गुण (घ) सर्वोत्कृष्ट (झ) विश्वकारण (ञ) किन्तु अभेदवादियों का सा नहीं (ज)

धीमहि = ध्यान करते हैं (प्रायः सभी)

द्वितीय श्लोक—'धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र परमो॰' (भाग॰ १।१।२)

रामानुज सम्प्रदाय के प्रसिद्ध टीकाकार वीरराघव ने इस श्लोक में—अनुबन्ध चतुष्ट्य, अधिकारी-सम्बन्ध, विषय-प्रयोजन की व्याख्या की है।[1] भागवत का प्रधान प्रतिपाद्य धर्म है। मुमुक्षु भागवत के पाठ का अधिकारी है। तापत्रय निवृत्ति ही प्रयोजन है। प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावरूप सम्बन्ध हैं। भागवतनाम अन्वर्थ नाम मानते हुए—'भगवत इदं भागवतम्' बनाया गया है। विजयध्वज ने भी अनुबन्ध चतुष्टय का उल्लेख किया है। (पद॰ र॰ १।१।१ उपक्रम)

उक्त श्लोक द्वारा त्रिकाण्ड से भागवत की श्रेष्ठता क्रमसन्दर्भकार ने लिखी है। इस श्लोक में तीन बार अत्र का प्रयोग हुआ है, यह प्रयोग निर्धारणार्थी है। श्री वल्लभाचार्य ने 'श्री' शब्द से दशविध रसों का उल्लेख किया है। श्रीधर स्वामी का कथन है कि तीनों काण्डों से श्रेष्ठ होने के कारण इसे नित्य पढ़ना चाहिये। (भा. दी॰ १।१।२)

तापत्रयोन्मूलन॰	ज्ञानकाण्ड विषयों से श्रेष्ठता
महा मुनि॰	कर्मकाण्ड से श्रेष्ठता
सद्योहृद्यवरुध्यते॰	उपासना काण्ड से श्रेष्ठता है।

इस श्लोक के भी विभिन्नार्थ किये हैं तथापि उनमें अत्यन्त वैमत्य नहीं है। यद्यपि प्रतिपाद्य श्रवण कीर्तनादि लक्षण धर्म अनेक है तथापि भगवत्स्वरूप प्राप्ति लक्षण फलैक्य के कारण 'धर्मः' एक वचन का प्रयोग है (बाल प्रबो॰ १।१।२)। वंशीधर ने 'श्री' शब्द से राधा का उल्लेख माना है और तदनुसार व्याख्या भी की है। (भा॰ दी॰ प्र॰)

तृतीय श्लोक—'निगम कल्पतरोर्गलितंफलम् शुक मुखादमृतद्रव संयुतम्'
(भागवत १।१।३)

श्रीमद्भागवत निगम रूपी तरु का गलित फल है, गलित का अर्थ शनैः शनैः भूमिपर अवतरित होना है। फलपान भी सम्भव नहीं है तथा फल में त्याज्य अंश भी होते हैं अतः इस 'पिवत' क्रिया द्वारा रसरूप सिद्ध किया है। 'आलयं' का अर्थ है मोक्षपर्यन्त अर्थात् इसका पान (श्रवण) सदा करो। आचार्य विजयध्वज ने 'पिवत' का अर्थ आस्वाद्य किया है (पद॰ १।१।२)। वीर राघवाचार्य ने प्रामाण्य निश्चय के लिये इस श्लोक का अवतरण साभिप्राय स्वीकार किया है। आचार्य वल्लभ का कथन है कि—व्यापि वैकुण्ठ अक्षरा-

---

१. **'विषयोनाम प्रतिपाद्य वस्तु रूपः धर्मः'** **(भा॰ चं॰ चं॰ १।१।१ उपक्रम)**

त्मक में प्रणव बीज, वेद तरु है वहाँ से व्यासाख्य भगवदवतार मूर्तीभूत देवतात्मक उस फल को लाये । (सुबो० १।१।२ एवं वाल प्रवोधिनी १।१।२)

निगम = विष्णु, गलित = नारद

'कंठ माधुर्यमस्यास्तीति गली गायन शीलत्वान्नारद मुनिः''[१]

रसमालयं = रसमाल नाम विष्णु (भक्ति ज्ञान वैराग्य दयावीर)

श्रृंगारादि रसानां कवितालंकाराणाँ माला पक्तिर्यस्मात् ।

स रस मालो विष्णुः तस्मा यति निर्गच्छति तत् ।

इसी प्रकार शुक मुखादमृत द्रवसंयुतम्—शु – शीघ्र, कं – सुख, उखादः – तक्षकः, मृत – मरण, तक्षक से मरने वाले राजा परीक्षत को जिससे सुख है

(उ ना शंकरेण खाद्यते तत् उखादं=विषं तदस्यास्तीति उखादः तक्षकः तस्मान्मृतमं मरणं यस्य स उखाद मृतः परोक्षिद्राजा सः द्रवो ज्ञानं 'शुक मुखादं' ऋतद्रव संयुत'' यह पदच्छेद भी किया है।)

भागवत टिप्पणी प्रवोधिनीकार के अनुसार शुक अहंकारात्मक हैं, अहंकार तत्व का अभिमानी रुद्र है अतः शुक रुद्र ही है। (भा०प्र०टि १।१।३ एवं पद रत्नावली)

चतुर्थ श्लोक—'नेमिषेऽनिमिष क्षेत्रो' (भा० १।१।४)

इस श्लोक से भागवत शास्त्र का आरम्भ माना गया है। नेमिषारण्य में श्रीमद्भागवत की कथा शौनकादि ने सूत द्वारा श्रवण की थी । एक समय ऋषियों ने दीर्घकालीन सत्र प्रारम्भ करना चाहा, इसके लिये उन्हें विघ्न रहित भूमि का निर्वाचन आवश्यक था अतः वे ब्रह्मा जी के समीप इस कार्य में सहयोग प्राप्त करने के लिये पहुँचे। ब्रह्मा जी ने उन्हें एक मनोमय चक्र देते हुए कहा कि 'जहां इस चक्र की नेमि गढ़ जाय वह स्थल आपके दीर्घ सत्र के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।' ऋषियों ने उस चक्र का अनुसरण किया और उसकी नेमि जहाँ शीर्ण हुई वह स्थल नैमिषारण्य नाम से विख्यात हुआ। वाराह पुराण के अनुसार नैमिश दानव का वध इस स्थल पर हुआ था तब से यह नैमिशारण्य के नाम से विख्यात हुआ।

पंचम श्लोक—नारायणं नमस्कृतत्य नरं चैन नरोत्ततम्
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।
(भा० १।२।४)

---

[१] भाग० टि० वि० उ० १।१।२ पांधरी श्री निवासाचार्य कृत ।

द्वितीय श्लोक—'धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र परमो०' (भाग० १।१।२)

रामानुज सम्प्रदाय के प्रसिद्ध टीकाकार वीरराघव ने इस श्लोक में—अनुवन्ध चतुष्ट्य, अधिकारी-सम्वन्ध, विषय-प्रयोजन की व्याख्या की है।[१] भागवत का प्रधान प्रतिपाद्य धर्म है। मुमुक्षु भागवत के पाठ का अधिकारी है। तापत्रय निवृत्ति ही प्रयोजन है। प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावरूप सम्वन्ध हैं। भागवतनाम अन्वर्थ नाम मानते हुए—'भगवत इदं भागवतम्' वनाया गया है। विजयध्वज ने भी अनुवन्ध चतुष्ट्य का उल्लेख किया है। (पद० र० १।१।१ उपक्रम)

उक्त श्लोक द्वारा त्रिकाण्ड से भागवत की श्रेष्ठता क्रमसन्दर्भकार ने लिखी है। इस श्लोक में तीन बार अत्र का प्रयोग हुआ है, यह प्रयोग निर्धारणार्थ है। श्री वल्लभाचार्य ने 'श्री' शव्द से दशविध रसों का उल्लेख किया है। श्रीधर स्वामी का कथन है कि तीनों काण्डों से श्रेष्ठ होने के कारण इसे नित्य पढ़ना चाहिये। (भा. दी० १।१।२)

तापत्रयोन्मूलन०	ज्ञानकाण्ड विषयों से श्रेष्ठता
महा मुनि०	कर्मकाण्ड से श्रेष्ठता
सद्योहृद्यवरुध्यते०	उपासना काण्ड से श्रेष्ठता है।

इस श्लोक के भी विभिन्नार्थ किये हैं तथापि उनमें अत्यन्त वैमत्य नहीं है। यद्यपि प्रतिपाद्य श्रवण कीर्तनादि लक्षण धर्म अनेक है तथापि भगवत्स्वरूप प्राप्ति लक्षण फलैक्य के कारण 'धर्मः' एक वचन का प्रयोग है (बाल प्रबो० १।१।२)। वंशीधर ने 'श्री' शव्द से राधा का उल्लेख माना है और तदनुसार व्याख्या भी की है। (भा० दी० प्र०)

तृतीय श्लोक—'निगम कल्पतरोर्गलितंफलम् शुक मुखादमृतद्रव संयुतम्' (भागवत १।१।३)

श्रीमद्भागवत निगम रूपी तरु का गलित फल है, गलित का अर्थ शनैः शनैः भूमिपर अवतरित होना है। फलपान भी सम्भव नहीं है तथा फल में त्याज्य अंश भी होते हैं अतः इस 'पिवत' क्रिया द्वारा रसरूप सिद्ध किया है। 'आलयं' का अर्थ है मोक्षपर्यन्त अर्थात् इसका पान (श्रवण) सदा करो। आचार्य विजयध्वज ने 'पिवत' का अर्थ आस्वाद्य किया है (पद० १।१।२)। वीर राघवाचार्य ने प्रामाण्य निश्चय के लिये इस श्लोक का अवतरण साभिप्राय स्वीकार किया है। आचार्य वल्लभ का कथन है कि—व्यापि वैकुण्ठ अक्षरा-

---

[१] 'विषयोनाम प्रतिपाद्य वस्तु रूपः धर्मः' (भा० चं० चं० १।१।१ उपक्रम)

त्मक में प्रणव बीज, वेद तरु है वहाँ से व्यासाख्य भगवदवतार मूर्तीभूत देवतात्मक उस फल को लाये । (सुबो० १।१।२ एवं बाल प्रबोधिनी १।१।२)

निगम = विष्णु, गलित = नारद

'कंठ माधुर्यमस्यास्तीति गली गायन शीलत्वान्नारद मुनिः"[१]

रसमालयं = रसमाल नाम विष्णु (भक्ति ज्ञान वैराग्य दयावीर)

श्रृंगारादि रसानां कवितालंकाराणाँ माला पक्तिर्यस्मात् ।
स रस मालो विष्णुः तस्मा यति निर्गच्छति तत् ।

इसी प्रकार शुक मुखादमृत द्रवसंयुतम्—शु – शीघ्र, कं – सुख, उखादः – तक्षकः, मृत – मरण, तक्षक से मरने वाले राजा परीक्षत को जिससे सुख है

(उ ना शंकरेण खाद्यते तत् उखादं=विषं तदस्यास्तीति उखादः तक्षकः तस्मान्मृतमं मरणं यस्य स उखाद मृतः परोक्षिद्राजा सः द्रवो ज्ञानं 'शुक मुखादं' ऋतद्रव संयुतं" यह पदच्छेद भी किया है।)

भागवत टिप्पणी प्रबोधिनीकार के अनुसार शुक अहंकारात्मक हैं, अहंकार तत्व का अभिमानी रुद्र है अतः शुक रुद्र ही है। (भा०प्र०टि १।१।३ एवं पद रत्नावली)

चतुर्थं श्लोक—'नेमिषेऽनिमिष क्षेत्रो' (भा० १।१।४)

इस श्लोक से भागवत शास्त्र का आरम्भ माना गया है। नेमिषारण्य में श्रीमद्भागवत की कथा शौनकादि ने सूत द्वारा श्रवण की थी । एक समय ऋषियों ने दीर्घकालीन सत्र प्रारम्भ करना चाहा, इसके लिये उन्हें विघ्न रहित भूमि का निर्वाचन आवश्यक था अतः वे ब्रह्मा जी के समीप इस कार्य में सहयोग प्राप्त करने के लिये पहुँचे। ब्रह्मा जी ने उन्हें एक मनोमय चक्र देते हुए कहा कि 'जहां इस चक्र की नेमि गढ़ जाय वह स्थल आपके दीर्घ सत्र के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।' ऋषियों ने उस चक्र का अनुसरण किया और उसकी नेमि जहाँ शीर्ण हुई वह स्थल नैमिषारण्य नाम से विख्यात हुआ। वाराह पुराण के अनुसार नैमिश दानव का वध इस स्थल पर हुआ था तब से यह नैमिशारण्य के नाम से विख्यात हुआ।

पंचम श्लोक—नारायणं नमस्कृतत्य नरं चैन नरोत्ततम्
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।
(भा० १।२।४)

---

[१] **भाग० टि० वि० उ० १।१।२ पांधरी श्री निवासाचार्य कृत ।**

इस मंगलाचरण में 'व्यास' शब्द आ जाने से इसे व्यास कृत मानने में संकोच होना स्वाभाविक है। द्वितीय पाठ में व्यास के स्थान पर 'चैव' पाठ भी प्राप्त होता है। अतः इनमें प्रामाणिक पाठ कौन-सा है यह संदिग्ध है। आचार्य वल्लभ का कथन है कि ये दोनों पाठ ही ठीक हैं—

'नारायणो व्यास इति वाच्य वक्तृ स्वरूपकः
एक एव परो ह्यात्मा आदावन्ते निवेशितः ।। (सु० १।२।४)

आचार्य विश्वनाथ ने उक्त श्लोक में श्रीकृष्ण देवता, सरस्वती शक्ति, व्यास ऋषि, प्रणव वीज, गायत्री छन्द का उल्लेख किया है।(सा०द० १।२।४)

षष्ठ श्लोक—'जगृहे पौरुषं रूपम्' (भागवत १।३।१)

भगवान् ने पौरुष रूप ग्रहण किया था। पौरुष रूप से बढ़कर कोई दूसरा देव अवश्य है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार तो यह परम व्योमाधिनाथ हैं। यह जब १६ कला का रूप धारण करता है तब महाविष्णु नाम से अभिहित किया जाता है। प्रकृति का ईक्षणकारी संकर्षण तथा कारणार्णवशायी प्रथम पुरुष कहलाता है—

एकन्तु महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्ड संस्थितम्
तृतीयं सर्व भूतस्थं तानि ज्ञात्वाविमुच्यत ।। (सा०द० १।३।१)

सप्तम श्लोक—'द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युग पर्यये ।। (भा० १।४।१४)

दीपिका दीपनीकार ने व्यास का जन्म त्रेता के अवसान में स्वीकार करते हुए व्याख्यालेश (भागवत टीकाकार) के मत को उद्धृत किया है। 'युगपर्यये' के आधार पर कलयुग, द्वापर, त्रेता में त्रेता तृतीय युग हुआ, उसके अवसान पर द्वापर के प्रारम्भ में व्यास का जन्म माना है। (दी० दीपनी १।४।१४) वीरराघवाचार्य का भी यही अभिमत है। (भा० चं० चं० १।४।१४)

अष्टम् श्लोक—'हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः' (भा० १।७।११)

श्रीमद्भागवत व्यासजी ने शुकदेव को कहाँ पढ़ाई–इस शंका का समाधान करते हुए विश्वनाथ ने ब्रह्मवैवर्त पुराण के उद्धरण द्वारा यह स्वीकार किया है कि जिस समय शुकदेव समाधिनिष्ठ थे तब व्यास ने अपने शिष्यों को भागवत के श्लोक कंठ करवाकर उनके समीप उच्च स्वर पूर्वक गान करने को भेजे। उन श्लोकों के माधुर्य से शुकदेव की समाधि भग्न हो गई और वे उन

श्लोकों के रचियता अपने पिता का नाम सुनकर उनके पास चले आये और उनसे भागवतशास्त्र पढ़ा था। (सारार्थ दर्शिनी १।७।११)।

नवम श्लोक—**'धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये०** (**भा० १।९।३९**)

भीष्मकृत स्तुति में यह युद्ध का वर्णन है। कृष्ण अर्जुन के घोड़ों की बल्गा पकड़े हुए हैं। यहाँ श्रीधर स्वामी ने अनकारान्त 'रश्मि' शब्द से भी 'व्रीह्यादि गण में' 'रश्मि' शब्द को मानकर 'इनि' प्रत्यय से 'रश्मिनि' शब्द को साधु माना है (भा० दी० १।९।३९)। दीपिका दीपनीकार ने इस पर आपत्ति की है। उनके अनुसार यह श्रीधर स्वामी की भूल है क्योंकि 'व्रीह्यादिभ्यश्च' (अष्टाध्यायी ५।२।११६) का प्रमाण देना संगत जब माना जा सकता था जबकि उसमें 'रश्मि' शब्द पठित होता किन्तु इस व्रीहि आदि गण में 'रश्मि' शब्द क्वचित उपलब्ध नहीं होता—

'यद्यप्यत्र रश्मिशब्दो न दृश्यते तथाप्याकृतिगणं मत्वा ऊहनीयः, यद्वालेखक प्रभादात् रश्मि शब्दस्यादर्शनमनुमेयम्।' (दी० दीपनी १।९।३९)

सम्भव है 'रश्मि' शब्द श्रीधर के समय में व्रीह्यादि गण में पठित हो पश्चात् लेखक के प्रमाद से वह छूट गया हो क्योंकि श्रीधर स्वामी अत्यन्त सावधान होकर टीका लिखते थे और साथ ही व्याकरण के मर्मज्ञ विद्वान् थे। अतः उनसे भूल होना मानना उचित न होगा।

दशम् श्लोक—**'मृदंगशंख...............।'** (**भागवत १।१०।१५**)

भीष्म के भूतल वियोग के समय अनेक वाद्य सुनाई दिये थे। श्रीधर स्वामी ने यहाँ मृदंगादि दशविध वाद्य माने हैं (भा० दी० १।१०।१५)। आचार्य विजयध्वज ने मृदंग, शंख, भेरी, वीणा, पणव, गोमुख, धुन्धरी, दुन्दुभी आदि की सुन्दर व्याख्या भी की है (पद रत्ना० १।१०।१५)। आचार्स वल्लभ ने चतुर्विध वाद्यों का उल्लेख किया है तथा मृदंग, भेरी, पणव, आनक दुन्दुभी को नद्ध का भेद; शंख, गोमुख को शुषिर का भेद, वीणा, तंतरूप, घंटा-धुंधुरी को धन भेद में लिखा है। (सुबो० ११।१०।१५)

एकादश श्लोक—**'कुरु जांगल पंचालान्०'** (**भागवत १।१०।३४**)

श्रीकृष्ण भीष्म निर्याण के पश्चात् हस्तिनापुर से द्वारका जाने को जब उद्यत हुए तब पाण्डवों ने उन्हें भावभरी विदाई दी। द्वारका के मार्ग में ग्यारह देशों का उल्लेख मिलता है—कुरुजांगल, पंचाल, शूरसेन, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, सारस्वत, मरुधन्व, सौवीर, आभीर और आनर्त (भा० दी० १।१०।३४)। इन देशों में क्रम की विवक्षा पर ध्यान नहीं दिया गया, अन्यथा शूरसेन के पश्चात् कुरुक्षेत्र का उल्लेख असंगत है। जीवगोस्वामी ने लिखा है

कि यह व्युत्क्रम अपने व्यक्तियों के मिलने के कारण कृष्ण ने किया था और उसी दिन द्वारका पहुँचना रथ की शीघ्रता का द्योतक है। (क्रम सन्दर्भ १।१०।३४)

द्वादश श्लोक—**'अथाजगाम भगवान्नारदः सहतुम्बुरुः०'** (भा० १।१३।३७)

श्रीधर स्वामी ने इस प्रसंग में पाठान्तर स्वीकार करते हुए भी उसकी उपेक्षा की है और सम्प्रदाय के अनुसार पाठ मानकर व्याख्या की है (भा. दी. १।१३।३७)—

'अत्रास्ति क्वचित् पुस्तके पाठान्तरं तदुल्लंघ्य यथा सम्प्रदायं व्याख्यायते' इससे श्रीधर स्वामी के समय भी इसके पाठान्तरों में मतभेद था, यह स्पष्ट है।

त्रयोदश श्लोक—**'तस्यान्तरायो…………।'** (भागवत १।१३।५६)

धृतराष्ट्र विदुर के साथ हिमाचल में चले गये थे तथा वहाँ श्वास अवरोधनपूर्वक स्थित थे। नारद ने युधिष्ठिर को उपदेश दिया कि तुम उसके संन्यास में विघ्न स्वरूप मत बनो। अन्तराय ६ प्रकार का योग शास्त्र में वर्णित है।[1] व्याधि, स्तयान, संशय, प्रमाद, आलस्य, विरति, भ्रान्ति, दर्शन, अलब्ध भूमिका, अनवस्थिति, चित्तविक्षेप। दीपिका दीपनीकार ने इन्हें ही यहां विघ्न माना है। (दी. दीपनी १।१३।५६)

चतुर्दश श्लोक—**'व्यतीताः कतिचिन्मासाः०'** (भागवत १।१४।२)

अर्जुन श्रीकृष्ण के साथ द्वारका गये थे। हस्तिनापुर में युधिष्ठिर को अनेक अपशकुन दिखलाई दे रहे थे, अतः उन्हें अर्जुन की चिन्ता हो गई और उन्होने भीम से कहा कि तुम्हारे भाई को गये कुछ मास व्यतीत हो गये हैं किन्तु कोई समाचार नहीं मिला (पद रत्ना. १।१४।२)। पद रत्नावलीकार ने 'मास' शब्द का अर्थ दिवस माना है। और यह सिद्ध किया है कि जहाँ चिन्ताभाव प्राधान्य होता है वहाँ दिन के लिये 'मास' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है।[2] आचार्य वल्लभ एवं विश्वनाथ ने भागवत के प्रमाणानुसार अर्जुन को द्वारका प्रस्थान किये ७ मास का समय ही स्वीकार किया है किन्तु विजयध्वज ने दिवस माना है। यहाँ विजयध्वज का अर्थ समीचीन प्रतीत नहीं होता क्योंकि इतना दीर्घ मार्ग तय कर द्वारका में पहुँचना एवं तत्क्षण ही भगवान

---

[1] पातंजलदर्शन समाधिपाद, सूत्र ३०।

[2] 'अहस्तु मास शब्दोक्तं यत्र चिन्तायुतं व्रजेत्' इत्यभिधानम्
(पदरत्नावली १।१४।२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्रीकृष्ण से मिलकर परावर्तित होना ठीक प्रतीत नहीं होता । साथ ही युधिष्ठिर ने जिन अपशकुनों की भीमसेन से चर्चा की है वे भी एक दिन में ही हो गये हों, असंगत है । उनमें श्रृंगाल की ध्वनि, गौमुख में अश्रु दर्शन, प्रतिमा भग्न, विद्युत् गर्जन, रुधिर वृष्टिवत् काल प्रतीति आदि भी हैं । एवं यात्रा में हिरणी का दक्षिण की ओर से वाम ओर प्रस्थान, मृत्यु दूत कपोत तथा उलूक के उच्चारण आदि भी सम्मिलित हैं । अतः सात मास का समय ही चिन्ता का विषय सम्भव है—सात दिवस नहीं ।

पंचदश श्लोक—'मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन्मनः०' (भा.१।१४।१४)

विजयध्वज ने कपोतदर्शन स्वप्न में माना है, वीरराघवाचार्य ने अयम् शब्द को उलूक के साथ सम्बद्ध किया है ।[1] इस श्लोक का अन्वय क्लिष्ट है अतः सभी टीकाकारों ने उसका समाधान किया है । शंका का स्थल—'शून्यमिच्छतः' यह द्विवचन प्रयोग है जब कि श्लोक में कपोत, उलूक, प्रत्युलूक तीन वर्णित हैं । शुकसुधी[2] ने 'अयं' शब्द का कपोत से वीरराघव ने 'अयं' का सम्बन्ध ऊलूक से स्थिर किया है । द्विवचन का सम्बन्ध उलूक, श्वान से बिठाया है । यहां अन्य किसी टीकाकार ने श्वान का उल्लेख नहीं किया ।

षोडष श्लोक—'यो नो जुगोप वनमेत्य०' (भागवत १।१५।११)

अर्जुन ने युधिष्ठिर के समक्ष कृष्ण की महिमा का गान करते हुए दुर्वासा से अपनी रक्षा की वार्ता का स्मरण किया—'एक बार दुर्योधन ने दुर्वासा ऋषि को अपने आतिथ्य से सन्तुष्ट कर युधिष्ठिर के समीप भोजन के लिये भेजा और यह समझा दिया था कि जब वे भोजन कर चुकें तब आप पधारें, उसका लक्ष्य था कि ऐसा करने से पाण्डवों को दुर्वासा की क्रोधाग्नि में दग्ध होना पड़ेगा ।[3] श्रीधर स्वामी की गद्य शैली का यह सरस उदाहरण है । वीर राघवाचार्य ने भारत के श्लोक ज्यों के त्यों रख दिये हैं । श्रीधर

---

[1] 'अयमुलूको मृत्योर्दूतः…………स च प्रत्युलूकश्च मदभिमुखमन्यश्च उलूकश्वानावेतो अनिद्रो कुहूवानैः कु कु इत्येवं विधैः शब्दैः इमं देशं शून्यमिच्छतः सूचयतः ।' (भाग. चं. चं, १।:४।७)

[2] सिद्धान्त प्रदीप १।१४।१४ ।

[3] 'कदाचिद्दुर्वाससो दुर्योधनेनातिथ्यं कृतम् तेन च परितुष्टेन वरं वृणीष्वेत्युक्तं, दुर्वाससः शापात् पाण्डवा नश्येयुरिति मनसि निधाय उक्तम् ।' (भा. दी. १।१५।११)

स्वामी ने श्रीमद्भागवत में प्राय: गद्य के माध्यम से ही अन्तर्कथाऐं लिखी हैं। अन्य टीकाकारों ने प्राय: पद्य रखे हैं।

सप्तदश श्लोक—'पृथाप्यनुश्रुत्य धनंजयोदितं।' (भागवत १।१५।३३)

कुन्ती ने भगवान के भूतल त्याग की बात सुनी। इस प्रसंग में श्रीकृष्ण का देहत्याग कर जाना टीकाकार स्वीकार नहीं करते। दीपिका दीपनीकार का मत तो यह है कि श्रीकृष्ण ने नराकृति का परित्याग कर दिया था। वे चतुर्भुज रूप प्रकट कर अन्तर्हित हुए थे, देह त्याग कर नहीं गये थे। ऐसा न मानने से एकादश स्कन्ध से भी विरोध प्राप्त होगा (दी दी. १।१५।३३)। जीवगोस्वामी का मत है कि 'तनु' शब्द से शरीर का ग्रहण नहीं अपितु भू-भार जिहीर्षालक्षण रूप भाव का ग्रहण होना चाहिये—

(यथा क्रम सन्दर्भ १।१५।३६)

'त्यागः स्वतनुकरणकमेव नतु स्व तन्वा सह इति व्याख्येयम्'

शुकसुधी ने यादवों को नित्य मानते हुए लिखा है कि 'शान्त यादव तनु' अशान्त भूभार तनु दोनों ही संहार्यत्व में सम थे—(सिद्धान्त प्रदीप १।१५।३५) से

'शान्त यादव तनु अशान्त भूभार तनुश्चेति द्वयमपि ईशितुर्भौतिकतया संहार्यत्वे समम् यादवानामपि भगवल्लीलादर्शनव्यतिरिक्तं भौतिकदेहैर्न किमपि कृत्यम्।

अष्टादश श्लोक—'वेपमानः पदैकेन०' (भागवत १।१७।२)

एक बार राजा परीक्षित वन में गये। वहाँ उन्होने एक वृषभ और एक गाय को शोचनीय अवस्था में देखा। उनके पीछे एक कृष्णवर्ण का पुरुष लौहदण्ड लिये गर्जना करता दौड़ा आ रहा था। उस कलि रूप पुरुष ने धर्म-रूपी वृष के तीन पैर नष्ट कर दिये थे। वह वृषभ काँप रहा था। यहाँ एक पैर से वृष का चलना संगत नहीं। धर्म के चार चरण हैं—तप, शौच, दया, सत्य। इनमें तप, शौच, दया को अधर्म के अंश—स्मय, संग, मद ने नष्ट कर दिया था किन्तु तीन चरणों के नष्ट होने की अपेक्षा प्रत्येक चरण का तृतीय अंश नष्ट हुआ था, चतुर्थांश (चारों पादों का) मिलकर एक पाद पूर्ण हो गया। दीपिका दीपनीकार ने यह भी लिखा है कि इस प्रकार की व्याख्या से—

'वेपमानः पदैकेन (भागवत १।१७।२), पादैर्न्यूनः पदाचरन् (१।१७।७), कोऽवृश्चत्तवपादास्त्रीन् (१।१७।१२), इदानीं धर्मपादस्ते (१।१७।२५), वृषस्य नष्टान् त्रीन्पादान् (१।१७।४२)।

आदि में जो विभिन्न पाद के उल्लेख हैं उनसे द्वादश स्कन्ध के तृतीया-

ध्यायोक्त श्लोकों की संगति हो जाती है। (दीपिका दी० १।१७।२४-२६) क्रमसन्दर्भकार ने इसे स्पष्ट रूपेण प्रत्येक के चतुर्थ अंश से एक पाद की स्थिति मानी है। (क्र. सं. १।१७।२४) सुबोधिनीकार ने अधर्म को गर्दभाकार मानते हुए उसके 'गर्व संग–मद–अनृत' नामक चार चरण माने हैं। (सु० १।१७।२४) गर्व से तपस्या का नाश ही, तप चरण का भग्न होना कहा गया है। इसी प्रकार संग, मद, अनृत से अन्य चरणों का विनाश वर्णित है।

प्रथम स्कन्ध में टीकाकारों ने प्राधान्यतः उन स्थलों का विवेचन अधिक उत्साह के साथ किया है जिनमें उन्हें अपनी सम्प्रदाय की अनुकूलता दिखलाई पड़ी है। मध्व सम्प्रदाय के सभी टीकाकारों ने शुकदेव को रुद्र स्वरूप लिखा है। (भाग. तात्पर्य टि. प्रबो.) तथा जीवात्मा एवं परमात्मा में भेद का स्पष्टीकरण किया है और उसके प्रमाण के लिये 'ऋतं पिवन्तो' आदि श्रुति वाक्य भी उद्धृत किये हैं।[1] व्यास को धर्म का रक्षक भी माना है और उनका आश्रम 'शभ्याप्रास' लिखा है। शभ्या नामक यज्ञ सम्बन्धि काष्ठ विशेष पर जहां यज्ञशाला वनाई गई थी वह आश्रम शभ्याप्रास था। (ता. टि. प्र. १।७।१) यह व्युत्पत्ति मध्व कृत तात्पर्य के पश्चात् उनके अनुगामी टीकाकारों ने भी स्वीकार की है।

व्यास का जन्म प्रकरण टीकाकारों का विवेच्य विषय रहा है। द्वापरादौ की व्याख्या में कोई द्वापरान्त कोई त्रेता का अन्त मानते हैं किन्तु 'व्यासः षट् शतवर्षीयो धृतराष्ट्मजीजंनत' के प्रमाणनुसार श्री मध्वाचार्य द्वापर के अन्तिम चरण में व्यास जन्म मानते हैं। ब्रह्म कल्प के प्रथम मन्वन्तर के तृतीय युग द्वापर में व्यास जन्म 'गिरिधर गोस्वामी' ने लिखा है (बाल प्रबो. १।४।१४। पं० रामप्रताप ने अपनी सुबोधिनी टीका में 'अष्टाविंशतिमे द्वापरे' २८ वें द्वापर में व्यास जन्म माना है। यह पक्ष अन्य मतों की अपेक्षा अधिक सशक्त हैं एवं हमें युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

द्वितीय स्कन्ध

द्वितीय स्कन्ध में प्रायः सभी टीकाकार दस अध्याय मानते हैं। कतिपय श्लोकों के पदों का अर्थ टीकाकारों ने अपनी स्वेच्छा से भी किया है। उदाहरण स्वरूप—

श्लोक १—'आत्मवित् सम्मतः पुंसाम्' (भागवत २।१।१)

---

[1] **'छायातपाविति वाक्यंजीवेश्वरयोरज्ञानाश्रयत्वानाश्रयत्वाभ्यां भेद प्रतिपादकं शाखान्तरस्थं ज्ञेयम्।' (भागवत तात्पर्य टिप्पणी प्रबोधिनी १।१।२)**

शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि 'तुम्हारा प्रश्न अत्यन्त लोकोपकारी है तथा आत्म ज्ञानियों की भी सम्मत है। श्रीधर स्वामी नें आत्मवित् का अर्थ मुक्त किया है, (भा. दी. २।१।१), वीरराघव ने आत्मज्ञान (भा. चं. चं. २।१।१) एवं विजयध्यज ने ब्रह्मादि देव (पद रत्ना. २।१।१)। यहां हम यह कह सकते हैं कि केवल विजयाध्वजाचार्य ने अपनी सम्प्रदाय भावना से यहां ब्रह्मा का उल्लेख किया है। अन्य टीकाकारों के अर्थ परिवर्तन में कोई गहरा मतभेद नहीं है।

श्लोक २–'अधीतवान् द्वापरादो पितुर्द्वैपायनादहम्' (भा० २।१।८)

शुकदेव ने परीक्षित से कहा कि यह भागवत पुराण द्वापरादि में मैंने अपने पिता के द्वैपायन से पढ़ा था। इस श्लोक में 'द्वापरादो' पद टीकाकारों के विवाद का विषय रहा है। द्वापरादौ का अर्थ कलियुग, त्रेता भी किया गया है। वीर राघवाचार्य ने कलियुग का आरम्भ माना है उन्होंने इस पद शा समास निम्नलिखित प्रकार से किया है––

'द्वापर आदिर्यस्य स द्वापरादिः कलियुगादिः' (भा. चं. चं. २।१।८)

आचार्य बल्लभ ने त्रेता युग माना है। षष्ठी तत्पुरुष के द्वारा वे अपने मत की पुष्टि करते हैं। (सुबो. २।१।८) विश्वनाथ चक्रवर्ती 'द्वापर के आस-पास' अर्थ संगत मानते हैं। (सा. द. २।१।८) विश्वनाथ का 'द्वापरोपान्त' अर्थ करने का अभिप्राय स्पष्ट है कि वे न तो 'द्वापरस्यादौ' अर्थ के पक्षपाती हैं न कलियुगारम्भ के। एक प्रकार से इन्होंने आचार्यवल्लभ तथा वीरराघवाचार्य के अर्थ का खण्डन किया है। राधारमणदास ने 'द्वापरान्त' अर्थ किया है। (दी. दी. २।१।८) यह वीरराघव के मत से मिलता हैं। वर्तमान अष्टादश सहस्त्र श्लोकात्मक भागवत का निर्माण द्वापर के अन्त में ही मानना चाहिये। 'द्वापर के आदि में' यह अर्थ चतुः श्लोकी भागवत जो नारद को प्राप्त हुई थी उसके सम्बन्ध में भले ही युक्त बैठता हो, वर्तमान भागवत महापुराण से नहीं। क्योंकि व्यास एवं शुकदेव का जन्म भी द्वापर के अन्तिम चरण में पाण्डवों से सम्बधित है। अतः लाखों वर्ष पूर्व का अर्थ कथमपि सु-संगत न होगा।

श्लोक ३—'प्रादेश मात्रं पुरुषं वसन्तम् (भागवत २।२।७)

शुकदेव जी ने परीक्षित को ध्यान विधि का उपदेश दिया था, इसमें चतुर्भुज और चतुरायुधधारी परमात्मा का प्रादेश मात्र हृदय में ध्यान करना सर्वोत्तम सिद्ध किया है। इस श्लोक की टीका में वल्लभाचार्य ने चार प्रकार के स्वरूप की कल्पना की है (सुबो. २।२।७) तथा श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने

चार प्रकार के योगियों की (सा. द. २।२।७)। वल्लभाचार्योक्त चार रूप निम्न हैं—

१. अंगुष्ठ मात्र, २. प्रादेश मात्र, ३. पुरुष मात्र, ४. चतुर्भुज।

उक्त श्लोक की व्याख्या में किशोराकार भगवान की उपासना पर विश्वनाथ ने अधिक बल दिया है, वे वल्लभाचार्य के मत से सहमत नहीं है। गौड़ीय वैष्णव किशोरोपासक हैं, यह प्रसिद्ध है।

श्लोक ४—'स्वपार्ष्णिनापीड्य गुदं ततोऽनिलं
स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः ।।' (भागवत ३।२।१९)

उक्त श्लोक में अपने पैर की एड़ी से गुदा द्वार की वायु रोककर छः स्थानों में उसे चढ़ाने की विधि वर्णित है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा नामक चक्र क्रमशः गुदा, मूत्रेन्द्रिय, नाभि, हृदय, कण्ठ एवं भृकुटि स्थानों में स्थित हैं।

चक्र	स्थान	दल	वर्ण
मूलाधार	गुदा	चतुर्दल	व श ष स
स्वाधिष्ठान	लिंग	षड्दल	ब भ म य र ल
मणिपूर	नाभि	दशदल	ड ढ ण त थ द ध न प फ
अनाहत	हृदय	द्वादश	क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ
विशुद्ध	कण्ठ	षोडश	अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः
आज्ञा	भृकुटि	द्विदल	हं क्षं

प्राणाकर्षण की विधि में कतिपय टीकाकार नाभि से वायु का उत्क्रमण मानते हैं तथा आचार्य वल्लभ नाभि में अष्टदल मानते हैं किन्तु अष्टदल मानने से ४८ हजार अक्षर ही तत्तत् स्थानों में स्थित किये जा सकेंगे। तंत्रशास्त्र में 'पंचाशद्वर्ण भेदैः' द्वारा ५० वर्ण ही मातृका न्यास में गिनाये गये हैं।[1]

श्लोक ५—'तस्मै नमो भगवते' (भागवत २।५।१२)

उक्त श्लोक में विजयध्वजाचार्य ने अपने सम्प्रदाय के मूल मन्त्र का

---

[1] षट्चक्र निरूपण—ले० पूर्णानन्द यति, कालिबादेवी बम्बई सं० १९५९।

उल्लेख किया है, वह है—'नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्'
इसे विष्णु गायत्री भी कहा गया है।

श्लोक ६—'द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च०' (भा. २।५।१४)

उक्त श्लोक में आचार्य वल्लभ ने शुद्धाद्वैत के तत्वों का निरूपण बड़े विस्तार के साथ किया है। वल्लभाचार्य ने इसे तत्व गणना का मूल स्रोत भी स्वीकार किया है। अन्य टीकाकारों ने उक्त दोनों श्लोकों पर अपना कोई अभिमत प्रकट नही किया है।

श्लोक ७—ऋचाओं का साधर्म्य' (भागवत २।५–६।३०-२८)

श्रीमद्भागवत के इस स्कन्ध में ऋग्वेद के पुरुष सूक्त की ऋचाओं का अर्थ प्रकट किया है। अर्थ के साथ-साथ शब्द सम्पत्ति में अत्यधिक साम्य है, ऐसा प्रतीत होता है कि भागवतकार ने वेद के वाक्य ही यहाँ मूल रूप में रखना उचित माना था। किन्तु सूक्त की ऋचाओं के क्रम में और भागवत के श्लोकों के क्रम में व्युत्क्रम है। टीकाकारों के अनुसार भागवत में निम्नलिखित ऋचाओं को माना जा सकता है—

भागवत के श्लोक		**वेद की ऋचा**
वैकारिकान्मनो०	(२।५।३०)	चन्द्रमा मनसो जातः०
स एव पुरुषः०	(२।५।३५)	सहस्र शीर्षा पुरुषः०
पुरुषस्य मुखं ब्रह्म०	(२।५।३७)	ब्राह्मणोऽस्य मुखं०
सर्वं पुरुष एवेदं०	(२।६।१६)	सभूमिं विश्वतो०
पादेषु सर्वभूतानि०	(२।६।१८)	उतामृतत्वस्ये०
पादास्त्रयो०	(२।६।२०)	त्रिपादूर्ध्वं०
सृती विचक्रमे०	(२।६।२१)	ततो विष्वङ्०
यस्मादण्डं विराड्०	(२।६।२२)	तस्माद्विराड्०
तेषु यज्ञस्य०	(२।६।२३)	यत्पुरुषेण हविषा०
वस्तून्योषधयः	(२।६।२४)	त यज्ञं०
नामधेयानि०	(२।६।२५)	तेनदेवा०
गतयो मतयः०	(२।६।२६)	तस्मायज्ञात्०
इति सम्मृत०	(२।६।२७)	तस्माद्यज्ञात्० तस्मादश्वा०
ततस्ते भ्रातर०	(२।६।२८)	यज्ञेन यज्ञम्०

टीकाकारों ने उक्त वैदिक भाग की व्याख्या स्व-सम्प्रदायानुसार की है।

श्लोक ८—'अघ्यर्हणीयासनमास्थितंपरं वृतं चतुः षोडष पंच शक्तिभिः'
(भागवत २।६।१६)

उक्त श्लोक में भगवान को चार-पाँच तथा सोलह शक्तियों से आवृत माना है किन्तु उन शक्तियों के नाम का स्पष्टीकरण नहीं किया गया। फलतः टीकाकारों ने अपनी विचारधारा के अनुसार उनके नाम मान लिये हैं। श्रीधर स्वामी एवं वल्लभाचार्य ने चार शक्तियों में प्रकृति, पुरुष, महान्, अहंकार की गणना की है। विजयध्वज ने 'इच्छा, ज्ञान, क्रिया तथा बल' लिखे हैं एवं जीवगोस्वामी ने उक्त दोनों पक्षों से पृथक्—धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य को ही चार शक्तियों में गिना है। इसी प्रकार श्रीधर एवं वल्लभ ने षोडश शक्तियों में ११ इन्द्रिय एवं ५ महाभूत मिलाकर १६ संख्या उचित मानी है जबकि विजयध्वज ने वायु पुराणोक्त १६ शक्तियों के नाम लिखे हैं, जो निम्न हैं—

१. मोचिका, २. सूक्ष्मा, ३. असूक्ष्मा, ४. अमृता, ५. ज्ञानामृता, ६. लाप्यायिनी, ७. व्यापिनी, ८. व्योमरूपणी, ९. अनन्ता, १०. अणिमा ११. महिमा, १२. लघिमा, १३. प्राप्ति १३. प्राकाम्य, १५. इशित्व १६. वशित्व :

भागवतकार को यहाँ षोडश शब्द से अभीष्ट क्या था यह निश्चित नहीं कहा जा सकता किन्तु उक्त दोनों पक्ष के विद्वानों ने अपना मत किस प्रमाण से पुष्ट माना है— स्पष्ट नहीं है। विजयध्वज ने जिन सोलह शक्तियों का उल्लेख किया है उनमें अणिमा, महिमा आदि आठ सिद्धियाँ भी हैं। श्रीधर स्वामी, आचार्य वल्लभ एवं विजयध्वज ने ग्यारह इन्द्रिय एवं पाँच भूतों को ही भगवान् की शक्ति माना है।[1] इसमें किसी हेतु का उल्लेख नहीं किया है। अतः इसे स्वेच्छया मान लिया गया है, कहा जा सकता है, क्योंकि जीव गोस्वामी ने पद्म पुराणोक्त सोलह शक्तियां लिखी हैं[2]—

चण्ड, प्रचण्ड, भद्र, सुभद्रक, जय, विजय, धाता, विधाता, कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरी, वामन, शंकुकर्ण, सर्व नेत्र, सुमुख तथा सुप्रतिष्ठित।

इसी प्रकार पांच शक्तियों के नाम में भी ऐक्य नहीं है। श्रीधर ने

---

[1] (क) भावार्थ दीपिका, २।६।१६। (ख) सुबोधिनी २।६।१६।
(ग) पदरत्नावली २।६।१६।

[2] क्रम सन्दर्भ २।६।१३।

पांच तन्मात्राओं के नाम लिखे हैं[1]—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। जीव गोस्वामी ने कूर्म, नागराज, वैनतेय, छन्दः मन्त्र का उल्लेख किया है।

श्लोक ९—'अहमेवासमेवाग्रे०' (भागवत २।९।३२)

उक्त श्लोक से चतुः श्लोकी भागवतारम्भ में किसी टीकाकार को आपत्ति नहीं है किन्तु 'अहमेवासमेवाग्रे' के 'अहं' पद से उनका कर्त्ता मूर्त सिद्ध करते हुए तथा 'आसम्' क्रिया से वर्तमानता मानते हुए वैष्णव टीकाकारों ने निर्विशेष वाद का खन्डन किया है।

इस स्कन्ध में प्रायः सभी टीकाकारों को अपने मत की पुष्टि की सामग्री प्राप्त हुई है, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत आदि सभी सम्प्रदाय के टीकाकारों ने विभिन्न श्लोकों पर अपने मतवाद की स्थापना की है। शुकसुधी ने अपनी व्याख्या में स्पष्ट रूप से भेदाभेद वाद सिद्ध किया है। विश्व कार्य हैं अतः परमेश्वर से भिन्न है तथा निरपेक्ष स्थिति-प्रवृत्ति आदि के अभाव से अभिन्न है, जैसे पृथिवी से औषधी भिन्न स्वरूप भी है अभिन्न भी।

'एवं तावद्भगवतः उत्पन्नं विश्वं कार्यत्वेन भिन्नमपि कारण निरपेक्ष स्थिति प्रवृत्याद्यभावात्तदभिन्नं यथा पृथिव्याः औषधयः भिन्न स्वरूपा अप्यभिन्नाः।' (सिद्धान्त प्रदीप २।९ ३२)

जीवगोस्वामी ने 'कथा हरि कथोदर्काः' की व्याख्या में गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के तत्व एवं सिद्धान्तों की मीमांसा प्रस्तुत की है, शिव एवं विष्णु में कोई भेद नहीं है इस पर दोनों के ऐक्य के लिए पठनीय सामग्री प्रस्तुत की है—(क्रम सन्दर्भ २।१।११)

सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते
यतः ख्याति यातं कथमुसहते तद्विगर्हां।
शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुण नामादि सकलं
धियाभिन्नं पश्येत् स खलु हरिनामामृतकरः॥

तृतीय स्कन्ध

श्लोक १—अयाजयद्धर्मं सुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः
सोऽपि क्ष्मामनुजै रक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रतः॥ (भा० ३।३।१८)

उक्त श्लोक में युधिष्ठर द्वारा तीन अश्वमेध यज्ञ करने एवं भाइयों की सहायता से पृथ्वी सुख से निवास करने का संकेत है। श्री वल्लभाचार्य ने इस

---

[1] भावार्थ दीपिका २।९।१६।

श्लोक में मर्यादा मार्ग, पुष्टि मार्ग का विवेचन किया है एवं पुष्टिमार्ग का वैशिष्ट्य सिद्ध किया है। यहाँ उनका पुष्टिमत नाम्ना निर्दिष्ट है (सु० ३।३।१८)। इसके पूर्व सोलहवें श्लोक में उन्होंने 'प्रवाह मर्यादा' की स्थापना पर बल दिया था। 'अनेन प्रवाह मर्यादां च स्थिरा कृतवानित्युक्तम्' (सु० ३।३।१६) आचार्य ने यादवों को भी पुष्टि मार्गीय भक्त लिखा है (सु० ३।३।२०)। यद्यपि नवधा भक्ति का निरूपण श्रीमद्भागवत में किया गया है तथापि वल्लभ नवधा भक्ति का अन्तर्भाव पुष्टिमार्गीय 'तनुजा' सेवा में करते हैं। 'पुष्टि मार्गे हरेर्दास्यम्' पुष्टिमार्ग में हरि के हास्य भाव का ही विशेष समादर है। जीवभेद, देहभेद एवं क्रियाभेद के कारण पुष्टिमार्ग, प्रवाह मार्ग एवं मर्यादा मार्ग की स्थापना की गयी थी—(पुष्टि प्रवाह एवं मर्यादा पृष्ठ ३७ पर—हस्तलिखित प्रति)

पुष्टि प्रवाह मर्यादा विशेषेण पृथक् पृथक्
जीवदेह क्रियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च ॥

उक्त स्थल पर वल्लभाचार्य ने जो स्वसिद्धान्तों का दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन किया है उसकी संगति मूल से कितने अंश में संगत है यह विचार करने पर ही ज्ञात होगा। स्थूल रूपेण मूल से इस विवेचन का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार 'भगवानेक आसेदम्' (भा. ३।५।२३) में वीर राघव ने चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का प्रतिपादन (भा. चं. चं. ३।५।२३) तथा जीवगोस्वामी ने अंश अंशी का विवेचन स्वसिद्धान्त परक किया है—

'इदं विश्वं पुरुषादि पार्थिव पर्यन्तं तदानीमेकाकिना स्थितेन भगवता सहैकी भूयासीदित्यर्थः इति तत्र स्वांशानामप्यंशित्वं दर्शितं ब्रह्माभिन्न- त्वंच। (क्रम सन्दर्भ ३।५।२३)

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने सिद्धान्त विवेचन में जीवगोस्वामी का अन्धानुकरण नहीं किया है।

श्लोक २–'पुरामयाप्रोक्तमजायनाभ्ये' (भागवत ३।४।१३)

उक्त श्लोक के 'पुरा', पद का अर्थ जीवगोस्वामी ने पद्मकल्प (क्र. स. ३।४।१३) तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती ने ब्राह्मकल्प (सा. द. ३।४।१३) किया है। तथा चतुःश्लोकी भागवत की ओर यह वाक्य संगत माना है।

श्लोक ३–'कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्यते' (भागवत ३।४।१६)

उक्त श्लोक की व्याख्या में १६ विशेषण हैं इन्हें वल्लभाचार्य १६

कलाओं का प्रतीक मानते हैं। (सु० ३।४।१६) मुक्ति के चातुर्विध्य का विवेचन भी अत्यन्त सुन्दर है।

श्लोक ४–'भगवानेक आसेदमग्रआत्माऽऽत्मनां विभुः (भा० ३।५।२३)

सृष्टि से पूर्व केवल भगवान ही थे। यहां 'आत्मनां का अर्थ श्रीधर ने (भा. दी. ३।५।२३) जीव एवं आत्मा का = आत्मस्वरूप, विजयध्वज ने आत्मा का अर्थ आदानादिकर्ता (पद रत्ना. ३।५।२३) वल्लभाचार्य ने चिद्रूप, (सु. ३।५।२३), शुकसुधी ने आत्मात्मनां का अर्थ = प्रकृति पुरुष किया है (सि. प्र. ३।५।२३)

श्लोक ५–'साध्यात्मः साधिदैवश्च' (भागवत ३।६।६)

उक्त अध्याय में आचार्य वल्लभ ने अनाधिकरणारम्भ माना है तथा उक्त श्लोक में अविकृत परिणामवाद को सिद्ध किया है।

श्लोक ६–'सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो' (भागवत ३।८।१)

उक्त श्लोक में वीरराघव ने भागवत की दो परम्पराओं का उल्लेख किया है—इस व्याख्यान में पराशर को पुलस्त्य द्वारा 'पुराणकर्ता' को वरदान देना भी लिखा है, पाराशर के पिता की मृत्यु राक्षसों ने की थी। पराशर यज्ञ द्वारा उन्हे नष्ट करना चाहते थे किन्तु वशिष्ट के आदेश से यज्ञ बन्द किया इस पर पुलस्त्य ने अपने वंशजों की रक्षा के कारण उन्हें वर दिया था (भा. चं. चं. ३।८।६) वल्लभाचार्य ने वीरराघव की भांति अन्तर्कथा नहीं दी किन्तु यह अवश्य लिखा है कि प्रारम्भ में पराशर अपढ़ थे, वरदान प्राप्ति के पश्चात् वे विद्वान बने थे।

श्लोक ७–'विद्या दानं तपः सत्यम्' (भागवत ३।१२।४१)

उक्त श्लोक में धर्म के चार चरणों का वर्णन है—विद्या, दान, तप, और सत्य। प्रथम स्कन्ध में तप, शौच, दया तथा सत्य का उल्लेख किया गया है। इनके समाधान में वीरराघव की अवस्था देखने योग्य है, उनका कथन है कि दया, शोक, विद्या ये दान के कार्य हैं। कारण शब्द कार्य में व्यवहृत किया जा सकता है अतः न दोष का प्रश्न है न विरोध का।

(भा० चं० चं० ३।१२।४१)

श्लोक ८—'वराहतोको निरगात्' (भागवत ३।१३।१८)

वाराहावतार दो बार मानना उचित है, प्रथम स्वायम्भुव मन्वन्तर में द्वितीय चाक्षुष मन्वन्तर में। विश्वनाथ का कथन है कि स्वायम्भुव में प्राचेतस दक्ष की सत्ता नहीं थी तब हिरण्याक्ष जन्म भी संगत नहीं है। अतः स्वाय-

म्भुव तथा चाक्षुष मन्वन्तर के वाराहों की कथा मिलकर मैत्रेय ने वर्णित की है। वस्तुतः विश्वनाथ का समाधान बुद्धिगम्य है।

श्लोक ९—'आहैन मेह्यंग……सुराधमासादित सूकराकृते।'

(भा० ३।१८।३)

श्रीधर ने उक्त श्लोक में हिरण्याक्ष की उक्ति के २ अर्थ किये हैं, प्रथम अधिक्षेप एवं द्वितीय स्तुति पक्ष। अधिक्षेप पक्ष में–अरे अज्ञ। इस पृथ्वी को छोड़ दे, ब्रह्मा ने यह पृथ्वी रसातल वासियों को दे दी है, सूकर रूपधारी सुराधम। मेरे स्थित तू इस पृथ्वी को सकुशल नहीं ले जा सकता। स्तुति पक्ष में, अज्ञ का अर्थ, सर्वज्ञ तथा सुरधाम का अर्थ–देवश्रेष्ठ होगा।

श्लोक १०–'करेण कर्ण मूलेऽहन्' **(भागवत ३।१९।२५)**

उक्त श्लोक में वाराह द्वारा हिण्याक्ष के कर्णमूल में घूंसा मारने का उल्लेख है किन्तु २८ वें श्लोक में वाराह के चरण द्वारा मारने का। अतः मूल में ही पूर्वापर विरुद्ध व्याख्यान है। इसके समाधान में श्रीधर ने युक्तिपूर्वक पाद शब्द का अर्थ हाथ किया है। उनका कथन है कि पशु के अगले पाद, कर ही कहे जाते हैं, अतः कोई विरोध नहीं है– (भा० दी० ३।१९।२५)

'पूर्व पादयोरेव करत्वात् करेणाहन्निति पदाहत इति चाविरुद्धम्।

श्लोक ११–'गतिरंग श्रृण्वताम' (भागवत ३।१९।३८)

उक्त श्लोक के अंग पद पर विवाद है कि यह सम्बोधन विदुर के लिये है अथवा परीक्षत या शौनक के लिए। अंग का अर्थ–श्रीधर स्वामी ने (भा० दी० ३।१९।३८) 'विदुर' रधारमण दास ने (दी० दी० ३।१९।३८) 'शौनक', वीरराघव ने (भा० चं० चं० ३।१९।३८) 'परीक्षित' माना है। राधारमणदास ने वर्तमान श्रीधरी के पाठ विदुर को प्रामादिक माना है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है, 'टीकायाभंग हे शौनक इत्येव पाठः विदुर इति तु प्रामादिकः।' जीवगोस्वामी जी ने अंग का अर्थ 'शौनक' ही माना है। (क्र० स० ३।१९।३८)

उक्त श्लोक में 'शुक उवाच' है अतः अंग का अर्थ परीक्षित करना उचित है जैसा कि वीरराघव मानते हैं किन्तु द्विज पाठ जहाँ है वहाँ अंग का अर्थ 'शौनक' उपयुक्त है। ३३ वें श्लोक में सूत उवाच से इसकी संगति भी बैठती है।[1] वर्तमान भागवत में 'सूत' 'शौनक उवाच' का उल्लेख है, अतः यह विचार किया जाता है कि व्यास जी के पश्चात् इसकी रचना पुनः की गयी

---

[1] **गीताप्रेस हिन्दी टीका के संस्करण में 'अंग' शब्द का उल्लेख ही नहीं किया है।**

होगी। किन्तु वीरराघवाचार्य का मत है कि सूत-शौनक के वार्तालाप को व्यास से पुनः उपनिबद्ध किया था, अथवा व्यास त्रिकालज्ञ थे, अतः अपने तपोबल के द्वारा सूत-शौनकों के सम्वाद को भागवत निर्माण के समय ही वे लिख चुके थे। व्यास के त्रिकालज्ञ होने में सन्देह नहीं किया जा सकता। वीरराघव का मत अत्यन्त समीचीन है एवं इसके अतिरिक्त अन्य कोई समाधान भी ऐसा प्राप्त नहीं जिसके आधार पर सूत-शौनक उवाच की संगति बैठायी जा सके।

श्लोक १२—'तां क्वणच्चरणाम्भोजां मद विह्‌्वल लोचनाम्
कांची कलाप विलसद्दुकूलच्छन्न रोधसम्॥ (भा. ३।२०।२९)

ब्रह्मा का शरीर सुन्दरी सन्ध्या देवी के रूप में परिवर्तित हो गया, उनके चरणों में पायजेब, मदभरे नेत्र, कटिसूत्र नद्ध कटि भाग, उन्नत स्तन मण्डल, हावपूर्ण दृष्टी, नीली अलकावली को देखकर असुर मोहित हो गये थे। विश्वनाथ ने सारसों के कलरव को कांची, मेघ खण्डों को नितम्ब, लालिमा को दुकूल, सूर्य किरणों का मेघच्छिद्रों से निःसरण ही हावावलोकन, तथा काले मेघ खण्डों को भी नीलालक माना है। सन्ध्या का यह वर्णन एक सुन्दरी स्त्री के रूप में वर्णित किया गया है (सा. द. ३।२०।२९)। यह स्त्री सूर्य रूपी गेंद से कन्दुक क्रीड़ा कर रही है। विश्वनाथ ने अपनी टीका में मूल से अधिक चमत्कार डालने का सफल प्रयत्न किया है। राधारमणदास ने कतिपय श्लोकों की व्याख्या जीवगोस्वामी के क्रमसन्दर्भ की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए की है। कहीं तो ज्यों के त्यों उद्धरण लिखे हैं—

'भूतेषु वक्ष्यमाणरीत्या अप्राणभृज्जीव मारभ्य भगवदर्पितात्म जीव पर्यन्तेषु भूतात्म तत्तदन्तर्यामीतमवज्ञाय मां तेषामेवाज्ञयातदधिष्ठानकस्य ममैवाज्ञा कृत्वेत्यर्थः' (क्र. स. ३।२९।२२)

'भूतेषु वक्ष्यमाणानुसारादप्राणभृज्जीव मारभ्य मदर्पिता जीव पर्यन्तेषु भूतात्मतत्तदन्तर्यामी अहं सद्रावस्थितः तमवज्ञायमदधिष्ठानस्यावजानने ममैवाज्ञां कृत्वेत्यर्थः।' (दीपिका दीपनी ३।२९।२२)

जीवगोस्वामी ने पूज्य विष्णु भगवान् में पाषाण बुद्धि करने वाले, गुरु में मनुष्यत्व, वैष्णव में जाति, विष्णुचरणोदक में जल, मन्त्र में शब्द, एवं विष्णु में इतर बुद्धि वाले व्यक्तियों की घोर निन्दा की है—(क्र स. ३।२९।२२)

'अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जाति बुद्धिः।
विष्णोर्वा वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बु बुद्धिः॥

शुद्धे तन्नाम्नि मन्त्रे सकल कलुषहे शब्द सामान्य बुद्धिः
विष्णो सर्वेश्वरेशे तदितर समधीर्यस्य वा नारकीसः ।।'

इस व्याख्यान में जीवगोस्वामी ने छः श्लोक उद्धृत किये हैं उनमें से पाँच श्लोक राधारमणदास ने उद्धृत किये हैं। भक्तिपरक स्थलों की व्याख्या में जीवगोस्वामी ने बड़े स्पष्टरूप से सम्प्रदाय के अनुसार व्याख्या की है।

चतुर्थ स्कन्ध

श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के प्रथमाध्याय में वर्णित दक्षिणा और यज्ञ का विवाह एक अद्भुत घटना है। बहिन भाई के विवाह की घटना भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल कही जा सकती है किन्तु भागवत में इस विवाह को वैध माना गया है।

श्लोक १—अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् (भा० ४।१।२)

स्वायम्भुव मनु की कन्या अकूति थी। इसके विवाह के समय अपने दामाद से यह शपथ ग्रहण करायी गयी थी कि 'यह कन्या भ्रातृ रहित है इसमें उत्पन्न पुत्र मेरा पुत्र बनेगा।' किन्तु भागवत में ही आकूति के प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक भाइयों का उल्लेख है। अतः यह कथन अयुक्त सिद्ध होता है। इसमें टीकाकारों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। वीरराघव का कथन है कि यह शपथ पुत्र बाहुल्य भावना से की गयी थी (भा. चं. चं. ४।१।२)। विजयध्वज का कथन है कि मनु जानते थे कि उनका दौहित्र भगवदंश होगा, अतः ऐसा किया गया (पदरत्ना. ४।१।२)। जीवगोस्वामी ने 'अभ्रातृ कां' का अर्थ भ्रातृ विहीन न मान कर स्वल्प भ्रातृ वाली माना है (क्रम सन्दर्भ ४।१।२)। वे अभ्रातृ कां में 'नञ्' प्रत्यय का अर्थ स्वल्प मानते हैं। 'अल्पार्थे नञ्' व्याकरण शास्त्र में प्रसिद्ध है। वीरराघव तथा विजयध्वज की अपेक्षा जीवगोस्वामी का अर्थ संगत प्रतीत होता है। पुत्रिका धर्म में कन्या से उत्पन्न पुत्र का विधिवत् पालन मातामह के गृह में वैध था। जीवगोस्वामी के मत की इसके द्वारा पुष्टि होती है। वर्तमान गीता प्रेस के मूल पाठ में 'अभ्रातृ कां' के स्थान पर 'अपि भ्रातृमतीं नृप' पाठ लिखा है। यह अभ्रातृ कां से विपरीत है। इसमें नञ् के अर्थ के द्वारा अल्पार्थ की क्लिष्ट कल्पना नहीं करनी पड़ती। किन्तु वह प्राचीन पाठ है, अन्यथा टीकाकार भी सरलतापूर्वक इस पाठ को मान्यता देते।

श्लोक २—'यस्तयोः पुरुषः' (भागवत ४।१।४)

श्रीधरस्वामी का मत है कि 'दक्षिणा' लक्ष्मी का अंश एवं 'यज्ञ'

विष्णु का अंश था। अतः दोनों ही भगवदंश थे। अतः इनका विवाह वैध है तथा यज्ञ-दक्षिणा की उत्पत्ति रज-वीर्य द्वारा नही हुई थी अतः वहिन भाई का औरस सम्बन्ध भी नहीं है। विवाह में औरस सम्बन्ध ही त्याज्य है।

श्लोक ३—'लुप्तक्रियायाशुचयेऽमानिनेऽभिन्नसेतवे' (भा ४।२।१३)

इस प्रसंग में दक्ष ने शिवज़ी की भर्त्सना की है एवं उन्हें लुप्त क्रिया, अशुचि आदि शब्दों से सम्वोधित किया है। श्रीधर स्वामी ने भर्त्सना पक्ष के साथ शिव के स्तुति पक्ष पर अधिक बल दिया है। पूर्ण प्रसंग के अवलोकन से शिव की निन्दा का पक्ष अधिक सशक्त है क्योंकि दक्ष ने यह स्पष्ट कहा है कि—'यह शिव लोकपालों की कीर्ति धूल में मिला रहा है।' इसने सत्पुरुषों के आचरण को कलंकित किया है। यह शिव मेरे पुत्र के समान है इसने लोक-व्यवहार की उपेक्षा करते हुए मुझे प्रणाम भी नहीं किया। पागलों की भाँति कभी हँसता, कभी रोता है, सत्कर्म को लुप्त कर यह घमण्डी बन गया है। यह नाम मात्र का शिव है आदि।

श्रीधर स्वामी का कथन है कि परब्रह्म में सभी क्रिया लुप्त हो जाती है।

'अशुचये' का अर्थ शिव से बढ़कर कोई पवित्र नहीं है।
'अमानिने' वह गर्व रहित है।
'प्रेतावास' आदि विडम्बना मात्र हैं।
'अशिव' जिससे बढ़कर कोई शिव नहीं।
'अमत्तः' प्रमाद रहित है।
'नष्टशौचाय' जिससे नष्टों की भी शुद्धि होती है।
'देवगणाधमः' देवगण जिससे अधम हैं।
'सहभागं नलमतां' यह देवगणों से पूर्व भाग ग्रहण करें साथ नहीं।

इससे स्पष्ट है कि मानिने आदि में—'अकार' का पदच्छेद किया है। श्रीधर का पक्ष वीरराघव ने अस्वीकार किया है एवं यह तर्क प्रस्तुत किया है कि यहाँ यह स्तुति पक्ष-दक्ष को अभीष्ट नहीं, भागवतकार को भी अभीष्ट नहीं केवल तुम जैसे व्यक्ति को है।" वीरराघव ने यह भी लिखा है कि यदि दक्ष को स्तुति पक्ष अभीष्ट होता तो वह यह वाक्य न कहता कि 'मैं न तो अज्ञान से ही कुछ कह रहा हूँ न मत्सर से'। साथ ही—

दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापं
तस्माद्विनिक्रम्य विवृद्ध मन्युः। (भा. ४।२।१६)

वाक्य भी संगत नहीं होगा। वेदव्यास को भी यह अभीष्ट नहीं, वे सर्वत्र कर्मवश्यता का प्रतिपादन करते रहे हैं। श्रीधर स्वामी का पक्ष भी उचित नहीं क्योंकि यह आग्रह मूलक है। जहां जहां भागवत में शिव की निन्दा की है वहाँ सर्वत्र उनकी प्रशंसापरक व्याख्या की जायेगी। 'अमानिने' आदि में जो पदच्छेद किये गये हैं वे उचित नहीं हैं। सती को मानषी कन्या कहना भी उचित नही क्योकि दक्ष तथा शिव दोनों ही ब्रह्मा के पुत्र हैं। तमोगुणी पर कभी कृपा नहीं की जा सकती। स्वयं भगवान ने कहा है—

> 'तानहं द्विषतः कूरान् संसारेषु नराधमान्
> क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।' (भा. चं. चं. ४।२।१३)

अतः स्तुति पक्ष कथमपि उचित नहीं है। श्रीधर के इस स्तुति पक्ष में वीरराघव को उनके द्वारा लिखित 'शिव के परब्रह्मत्व' शब्द पर विशेष आपत्ति है। वीरराघव शिव को परब्रह्म नहीं भगवदावेशावतार मानते हैं। जीवगोस्वामी ने दक्ष की उक्ति का स्तुतिपरक अभिप्राय भी संगत माना है (क्र. सं. ४।२।१३) श्रीधर स्वामी काशी में विश्वेश्वर की शरण में निवास करते थे। प्रारम्भ में उन्होंने माधव और उमाधव की वन्दना भी की (भा. दी. १।१।१ मंगलाचरण) है। अतः स्थान या सम्प्रदाय की इस प्रेरणा द्वारा स्तुति पक्ष किया गया हो यह स्वाभाविक है।

श्लोक ४—'काशिष्णुना कनक····अष्टायुधैरनुचरै····।' (भा. ४।३०।६)

पुरंजन चरित में विष्णु के आठ आयुधों में पद्म का भी उल्लेख है किन्तु पद्म के स्थान पर 'परशु, पाश, अंकुश में से कोई मानना उचित होगा। आचार्य विजयध्वज ने इसकी पुष्टि की है (पदरत्नावली ४।३०।६)। पुरंजन चरित में अध्यात्मवाद का निरूपण प्रायः स्पष्ट ही है अतः टीकाकार विशेष खण्डन-मण्डन में प्रवृत्त नहीं हुए।

पंचम स्कन्ध

श्लोक १—'ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकम्' (भागवत ५।१२।११)

उक्त श्लोक की व्याख्या में विश्वनाथ चक्रवर्ती ने 'ब्रह्म-परमात्मा भगवान' का विवेचन बड़े विस्तार पूर्वक किया है। ६० पंक्तियों की इस व्याख्या में निर्विशेषवाद का खण्डन भी किया गया है। ब्रह्म, परमात्मा आदि का वर्णन द्वितीय स्कन्ध में पर्याप्त हो चुका है। विश्वनाथ ने राम का ब्रह्मत्व सिद्ध करते हुए लिखा है कि इस अवतार के विषय में किसी को शंका भले ही हो किन्तु मैं तो राम को निश्चित परब्रह्म मानता हूँ(सारार्थ दर्शिनी ५।१८।३६)—

'अवतारस्यास्य ब्रह्मत्वे केचित् संशेरते तत्रये संशेरते ते संशेरतां नाम अहन्तु साक्षामिदं परब्रह्म रूपमेवानुभवामि इत्याह यत्तद्विशुद्धम् ।'

वीरराघवाचार्य ने राम की व्युत्पत्ति लिखते हुए उन्हें ब्रह्म नाम से अभिहित किया है—(भा. चं. चं. ५।१८।४०)

'रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि
इति राम पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ।'

श्लोक २—'योऽन्तर्विस्तार एतेन·······विशुद्धामुदाहरन्ति ।'

(भा. ५।२०।४२)

उक्त श्लोक की टीका में भूमण्डल का विवेचन करते हुए वीरराघव । अपने अगाध पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है। ये 'पचास कोटि योजन' भूमण्डल के मध्य भाग में मेरु पर्वत मानते हैं। मेरु से चारों दिशाओं में दक्षिण से उत्तर २५ कोटि, तथा पूर्व से पश्चिम २५ कोटि भू-भाग है । मेरु से अण्ड. भित्ति पर्यन्त २५ कोटि योजनात्मक भू-भाग में जम्बू द्वीप पचास हजार योजनात्मक है। सप्त द्वीप के भू-भाग का परिणाम २ कोटि ५० लक्ष्य, ५० सहस्र योजन माना है। वीरराघव ने शुद्रोदधि के वाह्य भाग में भी एक कोटि सार्द्ध सत्तावन लक्ष योजन भूमि मानी है। इसके आगे आदर्श भूमि है जिसका विस्तार आठ कोटि ३६ लक्ष योजन है। इस प्रकार कुल योग १२ करोड़ ५० लाख योजन है। लोका-लोक से आगे–अलोक भूमि भी १२ करोड़ ५० लाख योजन है। यहां लोकों का संचार नहीं है अतएव भागवत में 'ततः परस्तात्' लिखा गया है (भा. चं. चं. ५।२०।४२) पुराण में भी इसे काँचनी भूमि कहा है (विष्णु पुराण अंश २।४।६३)—

'स्वादूदकस्य पुरतः दृश्यते लोक संस्थितिः
द्वि गुणा कांचनी भूमिः सर्वजन्तु विवर्जिताः ।।'

भागवत में लोकालोक के अन्तर्विस्तार के साथ वाह्य परिमाण का वर्णन भी किया गया है।[1] समीकरण की प्रक्रिया द्वारा टीकाकार ने इस गहन विषय का सरलतम रूप लिखने का सफल प्रयास किया है। अन्य टीकाकारों ने इस विषय पर विशेष विवेचन नहीं किया। वस्तुतः यह अत्यन्त कठिन स्थल है, यहाँ साहित्य का वाग्जाल नहीं चल सकता था ज्योतिष का

---

[1] **योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोक परिमाणं च व्याख्यातं यद् वहिर्लोकालोकाचलात् ततः परस्तात् योगेश्वर गतिं विशुद्धामुदाहरन्ति '**

(भा० चं०चं० ५।२०।४२)

सम्यक् स्वाध्याय ही इस विवेचन में सहायक सिद्ध हो सकता है, इस दिशा में वीरराघव सबसे आगे हैं।

षष्ठ स्कन्ध

श्लोक १—'नाम व्याहरणं विष्णोः' (भागवत ६।१।१०)

उक्त श्लोक की २०० पंक्तियों की व्याख्या में विश्वनाथ ने विष्णु भगवान के नामोच्चारण का माहात्म्य लिखा है। (सा. द. ६।२।१०) विस्तार से यह टीका पृथक् प्रवन्ध जैसी लगती है। अनेक पुराण वाक्य इसमें लिखे गये हैं। चैतन्य के अनुयायी नाम महात्म्य के प्रवल समर्थक हुए हैं। विश्वनाथ ने उक्त श्लोक में इस भावना का सफल प्रदर्शन किया है।

श्लोक २—'यस्मिन यतो येन च यस्य यस्मै' (भागवत ६।४।३०)

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए श्रीधर स्वामी ने केवल सात विभक्तियों का अर्थ ही लिखा है। (सा. दी. ६।४।३०) वीरराघव ने यहां विशिष्टाद्वैत मत की स्थापना करते हुए ब्रह्म को चिदचिद्विशिष्ट माना है—

(भा. चं. चं. चं. ६।४।३०)

'कार्यावस्थकारणावस्थयोस्तस्य चिदचिच्छरीरकत्वादेव विश्व रूपत्व मप्युपपन्नम्, कार्यावस्थायां कारणावस्थास्यां च चिदचिच्छरीरकत्वाद्विश्वरूपत्वमपि तस्योपपन्नम्।'

इस विवेचन में वीर राघवाचार्य ने व्याकरण का कोशल प्रदर्शित किया है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ने तो सप्त विभक्तियों का कारण भी ब्रह्म माना है। (सा. द. ६।४।३०) विजयध्वज ने लिखा है कि यस्मिन् का अर्थ यह नहीं कि विष्णु उसमें अवस्थित है अपितु इन सबका आधार विष्णु है यह मानना चाहिये (प. र. ६।४।३०) शुक सुधी ने तो भेदाभेद का सम्बन्ध स्थापित किया है।

'स्वगतभेदस्तु अस्ति, अतोह स्वभावत एव द्वैताद्वैतभित्यर्थः।'

स्पष्ट है कि श्रीधर के अतिरिक्त सभी टीकाकारों ने विभिन्न अर्थ करते हुए स्वकीय सम्प्रदाय भावना को प्राधान्य दिया है।

श्लोक ३—'अस्तीति नास्तीति वस्तु निष्ठयोः' (भागवत ६।४।३२)

वीरराघव ने उक्त श्लोक की टीका में अद्वैतवाद का खण्डन किया है – 'निर्गुणवादो निरीश्वर वादश्च भ्रम मूलक एव'। (६।४।३२) टीकाकार का कथन है कि भिन्न वस्तुओं का अधिकरण एक नहीं हो सकता।

श्लोक ४—'अहमेवासमेवाग्रे' (भागवत ६।४।४७)

आचार्य विजयध्वज ने उक्त श्लोक में अद्वैतवादियों की आलोचना की है।

'अत्राद्वैतवादिनो निर्गुणं वाङ्मनसागोचरं जगत्कारणं सगुणमिति द्विविधं कल्पयन्ति तन्मत निराकरणायाह' (पद रत्नावली ६।४।४७)

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अचिन्त्य शक्ति का उल्लेख किया है 'परिच्छिन्नस्यापि मत् स्वरूपस्य व्यापकत्वादित्यचिन्त्य शक्ति मत्वंच दर्शितम्।
(सारार्थ दर्शिनी ६।४।४७)

श्लोक ५—'ओं नमस्ते स्तु भगवन्नारायण········'(भा० ६।९।३३)

उक्त स्थल पर गद्य भाग अकस्मात् ही दिखलाई पड़ता है। श्रीधर स्वामी का कथन है कि पद्य में परिमित अक्षर होते हैं अतः गद्य में स्तुति की गयी है। हरि के अपरिमित गुण पद्य में नहीं आ सकते (भा. दी. ६।९।३३)——

'मिताक्षराणि पद्यानि नमीयन्ते हरेर्गुणाः
इतिपद्यैरतुष्यन्तः सद्योगद्येन तुष्टुवुः ।।'

श्रीधर स्वामी की इस तर्कपूर्ण युक्ति में कोई चमत्कार नहीं है। हरि के अपरिमित गुण उक्त स्वल्पाक्षर गद्य में आ गये हों यह भी तो प्रमाणित नहीं हैं। वीरराघवाचार्य ने गद्यस्थ भगवन्नामों की निरुक्ति करते हुए चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का प्रतिपादन किया है। सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट आत्मा ही स्थूल चिदचिद्विशिष्ट विश्वाकार में परिणित है—

'········चिदचिद्विशिष्टमात्मानं स्वेनैव सृजसि पासि रक्षसि च सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्टमात्मानमेव स्थूल चिदचिद्विशिष्टावस्थ विश्वाकारेण परिणमयसीत्यर्थः। (भा. चं. चं. ६।९।३३)

श्लोक ६——'तमेव देवं वयमात्म दैवतं०' (भागवत ६।९।२७)

उक्त श्लोक की व्याख्या में ब्रह्म तथा प्रकृति का स्वाभाविक अभेद मानने वाले विजयध्वजाचार्य के मत का खण्डन शुकसुधी कृत 'सिद्धान्त प्रदीप' में किया गया है। शुकसुधी ने भेदाभेद सम्बन्ध की स्थापना की पुष्टि के लिये ब्रह्म सूत्र का प्रमाण भी लिखा है—

'प्रधानं प्रकृत्याख्यं शक्ति रूपं पुरुषं, जीवात्मकांश रूपं विश्वं तदुभयात्मकं प्रपंच रूपं शक्तितद्वतो अंशांशिनोश्च स्वभाविकं भेदाभेद सम्बन्धात्' 'उभयव्यपदेशात्वहिकुण्डलवत्' इति सूत्रात् प्रकृति पुरुष तदुभयात्मक जगद्विलक्षणस्वरूपमित्यर्थः।' (सिद्धान्त प्रदीप ६।९।३३)

सप्तम स्कन्ध

श्लोक १—'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।' (भा. ७।५।२३)

उक्त श्लोक द्वारा प्रहलाद ने नवधाभक्ति का उल्लेख किया है। वृहत्क्रमसन्दर्भ में नव भक्तों का भी उल्लेख किया गया है।[1] यथा—श्रवण में परीक्षित, कीर्तन में शुकदेव, स्मरण में प्रल्हाद, पादसेवन में लक्ष्मी, पूजन में पृथ्, वन्दन में अक्रूर, दास्य में हनुमान, सख्य में अर्जुन, आत्मनिवेदन में राजा वलि के नाम उल्लेखनीय हैं। भावों के मिश्रण से दास्य पूर्वक निवेदन भक्ति अम्वरीष में थीं। प्रेयसी भाव से आत्मनिवेदन रुक्मिणी ने किया था। जीवगोस्वामी ने श्रवण भक्ति में भागवत का प्राधान्य स्वीकार किया है, तथा स्मरण भक्ति में—स्मरण, धारणा, ध्यान, स्मृति, समाधि का उल्लेख किया है। पादसेवन का अर्थ चरणस्पर्श मात्र नहीं अपितु मूर्तिदर्शन, मूर्ति स्पर्श, मूर्ति परिक्रमण, मूर्ति अनुव्रजन है। यह अनुव्रजन गंगादि तीर्थों में पुरुषोत्तमादि क्षेत्रों में एवं द्वारका, मथुरा आदि पुण्य तीर्थों में किया जाना चाहिये। अर्जन भी दो प्रकार का होता है—केवल कर्म, मिश्र। जन्माष्टमी व्रत, कार्तिक व्रत, एकादशी व्रत आदि मिश्र के अन्तर्गत हैं। जीवगोस्वामी ने लगभग ३०० पंक्तियों में भक्तिरस की गंगा प्रवाहित की है।

श्लोक २—'आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धः' (भागवत ७।७।१९)

भागवत के उक्त श्लोक में स्पष्ट है कि आत्मा नित्य, अव्यय तथा शुद्ध है। अद्वैतवाद की पुष्टि उक्त श्लोक द्वारा की जा सकती है। श्रीधर स्वामी ने इस श्लोक में प्रत्येक शब्द के साथ अद्वैतानुसारी एक श्रुति वाक्य को उद्धृत किया है, यथा—

नित्यः	अविनाशी वारेऽयमात्मा
एकः	एकमेवाद्वितीयं

वीरराघवाचार्य ने श्रीधर स्वामी के मत का खण्डन करते हुए नित्य का अर्थ—उत्पत्ति विनाश रहित, अद्वितीय का सब देहों में एक रूप किया है

---

[1] **'श्री विष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवत् वैयासकिः कीर्तने**
प्रल्हादः स्मरणे तदंघ्रि भजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने ।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्यतेऽथ सख्येर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषापरम् ।।' (बृ. क्र. स. ७।५।२३)

(भा. चं. चं ७।७।१६) । उक्त श्लोक में आत्मा के द्वादश लक्षण गिनाये गये हैं ।

श्लोक ३—'विप्राद्द्विषड् गुण युतादरविन्द नेत्रात्' (भागवत ७।६।१०)

भक्ति शून्य द्वादश गुण वाले ब्राह्मण से भी भगवद्भक्त श्वपच श्रेष्ठ है । द्वादश गुण निम्न हैं—धन, अभिजन, रूप, तप, श्रुत, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि, योग ।

श्रीधर स्वामी ने ब्राह्मण के द्वादश गुणों का उल्लेख किया है—धर्म, सत्य, दम, तप, अमात्सर्य, ह्री, तितिक्षा, अनसूया, यज्ञ, दान, धृति, पाडित्य । अथवा—शम, दम, तप, शौच, शान्ति, आर्जव, विरक्तता, ज्ञान, विज्ञान, सन्तोष, सत्य और आस्तिक्य । (भा. दी. ७।६।१०)

श्लोक ४—'यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्मात्' (भा. ७।६।२०)

वीरराघवाचार्य ने उक्त श्लोक की टीका में अपनी व्याकरण पटुता का प्रदर्शन किया है । छः कारकों का अन्तर्भाव भगवान में सिद्ध किया है—

'सप्रकारक कारक षट्करूप: सम्वन्धि रूप: काल रूपश्च यो पदार्थः ……………धातुपात्र व्यापार जन्य फलाव्यवहित पूर्व व्यापाराश्रयत्वं करणत्वम् ।' (भा. चं. चं. ७।६।२०)

श्लोक ५—'एकस्त्वमेव' (भागवत ७।६।३१)

शुक सुधी ने उक्त श्लोक की व्याख्या में जगत् का कार्यत्व ब्रह्म का कारणत्व सिद्ध करते हुए जगत् को ब्रह्म से भिन्न तथा अभिन्न भी सिद्ध किया है—

कार्यकारणयोर्जगद्ब्रह्मणो भेदाभेद सम्बन्धं दृष्टान्तेनोपपादयति ।' (सि. प्र. ७।६।३१)

श्लोक ६—'तत् तेऽर्हत्तम नमः स्तुति कर्मपूजा' (भागवत ७।६।५०)

उक्त श्लोक की टीका में श्रीधर स्वामी ने भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया है । उन्होंने यह भी लिखा है कि भक्ति के बिना मोक्ष सुलभ नहीं है, अतः दास्य योग की इच्छा करनी चाहिये—

'यस्मादेवं भक्तिं बिना नमोक्षो न च भक्तिः संसेवयाविना अतः प्राक् प्रार्थितं त्वद्दास्य योगमेव देहीति ।' (भा. दी. ७।६।५०)

उक्त श्लोक में सेवा के छः अंग लिखे हैं—नमस्कार, स्तुति, कर्मार्पण, सेवापूजा, चरण चिन्तन, लीलाकथा और श्रवण ।

श्लोक ७—'सारांसि पुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत' (भा. ७।१४।३०)

पुण्य क्षेत्र, पुण्य सरोवर आदि का संकेत मात्र इस पद्य में उपलब्ध है,

टीकाकारों ने इनके अर्थ अपनी देश भावना के अनुसार किये हैं। वीरराघव ने क्षेत्र का अर्थ चित्रकूट (भा. चं. चं. ७।१४।३३) माना है, विजयध्वज ने पुरुषोत्तम क्षेत्र (प. र. ७।१४।३३)। जीव गोस्वामी ने गोवर्धन पर्वत (क्र. स. ७।१४।३३) को ही क्षेत्र माना है। जीव गोस्वामी एवं विश्वनाथ ने 'सरांसि' का अर्थ 'राधाकुन्ड' (सा. द. ७।१४।३३) माना है, विजयध्वज ने कृष्णावेणी आदि नदियों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार फाल्गुन का अर्थ वीरराघव ने गयादेश, विजयध्वज ने कन्यातीर्थ माना है तथा अभिधान कोश का उद्धरण भी दिया है—

'कन्यापुरं फाल्गुनं स्यात् स्थानं हरपुरं चतत्'

इस श्लोक की व्याख्या में विजयध्वज ने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि भागवतोक्त सरोवर, क्षेत्र, पुण्यदेश, कृष्णावेणी आदि नदियां दक्षिण देश में ही हैं। वीरराघव ने सम्प्रदाय के प्रभाव से चित्रकूट आदि के उल्लेख किए हैं। केवल गौड़ीय वैष्णवों ने ब्रज प्रदेश को उत्तम सिद्ध करने का प्रयास किया है। विश्वनाथ ने फलगुन का अर्थ 'गया' देश किया है किन्तु हरपुर मानना चाहिए क्योंकि गया दो बार प्रयुक्त है, अतः विश्वनाथ के कथन में पुनरावृत्ति दोष प्राप्त है। यहाँ किसी भी टीकाकार का मत सर्वथा ग्राह्य है नहीं कहा जा सकता, भागवत का ब्रज से अधिक सम्बन्ध मानते हुए जीवगोस्वामी ने जो स्थानों का संकेत दिया है वह उचित ही है। सम्प्रदायानुयायी व्यक्ति अपने सम्प्रदाय के टीकाकारों के अर्थ को ग्रहण करने में स्वतन्त्र हैं।

श्लोक ८—'स्यात सादृश्य भ्रमस्तावत्' (भागवत ७।१५।६१)

उक्त श्लोक की व्याख्या में प्रायः सभी टीकाकारों ने तार्किक एवं मीमांसकों के पक्ष की समालोचना की है। किन्तु विश्वनाथ ने विवर्तवादियों का खण्डन बड़े ओजपूर्ण शब्दों से किया है—

"अन्ध परम्परयैव विवर्ते मिथ्याभूतस्येव सादृश्य भ्रम मात्र क्षणाविगीयन्त।"

विवर्तवादी अन्ध परम्परा का अनुसरण कर रहे हैं।

अष्टम स्कन्ध

श्लोक १—'मुखानि पंचोपनिषदस्तवेश' (भागवत ८।७।२९)

यहाँ शिव की स्तुति में उन्हें ५ मुख वाला कहा है। पांच उपनिषद् ही मुख हैं—

१. तत्पुरुषाय विद्महे०
२. अघोरेभ्योऽधघोरेभ्य:०
३. सद्यो जातं प्रपद्यामि०   आदि

भागवत में यह एक ही स्थल है जिसमें पंचमुखी शिव का उल्लेख उपलब्ध है।

उक्त श्लोक में यह कहा गया है कि शिवजी के वीर्य से चाँदी एवं सुवर्ण के आकार बन गये थे। विश्वनाथ का कथन है कि सुवर्ण प्राप्ति के लिए शिव की उपासना करनी चाहिए। यहां विश्वनाथ ने संगति बैठाने को भले ही उक्त मत लिख दिया हो किन्तु द्वितीय स्कन्ध के 'विद्याकामस्तु गिरिशं' (भा० २।३।७) के अनुसार विद्याकामना के लिए शिव की उपसना का विधान है, सुवर्ण प्राप्ति के लिए नहीं।

श्लोक ३—'ओदंचनोदके' (भागवत ८।२४।१९)

'एक बार सत्यव्रत अर्घ दे रहे थे तब उनकी अंजलि में एक मत्स्य आया और उसने कहा कि मुझे कूपोदक में डाल दो।'

औदंचन का अर्थ–मटका का जल है। श्रीधर ने मणिकस्थ जल (भा. टी. ८।२४।१९) वीरराघव ने बड़ी कढ़ाई (भा. चं. चं. ८।२४।१९) एवं विश्वनाथ ने कूप जल माना है (सा. द. ८।२४।१९)।

अष्टम स्कन्ध में मन्वन्तर तथा अवतारों का वर्णन है। सिद्धान्त भेद के स्थल अधिक नहीं है। इस स्कन्ध पर टीका भी अधिक विस्तार पूर्वक नहीं लखी गई।

विजयध्वज का लक्ष्मी स्वयंवर का एक उद्धहरण सुन्दर है—

(प. र. ८।८।२३)

'एव ब्रह्मातिवृद्धस्तपति दिनपतिश्चंलोमातरिश्वा
दिग्वासानीलकंठस्त्रिदशपतिरसौ गर्वित क्षीयतेऽञ्ज:।
इत्थं देव्या विचिन्त्य भ्रमर कुल कलागीत शब्दप्रफुल्ला
दत्ता माला मुरारे: सुरतरु कुसुमालंकृता पातु युष्मान्॥'

इस श्लोक में कहा गया है कि—ब्रह्मा अत्यन्त वृद्ध है, सूर्य में उष्णता एवं वायु में चंचलता है, शिव नग्न है इन्द्र अभिमानी तथा चन्द्रमा क्षयी है। अत: लक्ष्मी ने विष्णु भगवान की ग्रीवा में माला डाल दी।

इस स्कन्ध में सर्वाधिक विचार का विषय मत्स्यावतार है। विष्णु

भगवान ने सत्यव्रत की अंजलि में स्थित होकर कहा था कि तुम 'ब्राह्मी निशा पर्यन्त, जल में भ्रमण करोगे।' इसे कतिपय विद्वान महाप्रलय मानते हैं कतिपय मायिक प्रलय। महाप्रलय मानने में एक आपत्ति है। इस प्रलय में पृथ्वी आदि के अवशेष नहीं रहते, किन्तु 'योऽसावस्मिन् महाकल्पे' वाक्य में स्पष्ट महाप्रलय का उल्लेख है। दैनन्दिन प्रलय यदि मानी जाय तो सांवर्तक मेघों का जल-वर्षण उपयुक्त नहीं है। चाक्षुष मन्वन्तर में यदि यह प्रलय होती तो वैवस्वत-मन्वन्तर की स्थिति ही आगे न आती।

श्रीधर स्वामी इसे वास्तविक प्रलय नहीं मानते। वे इसे एक प्रदर्शन मानते हैं, जिस प्रकार मार्कण्डेय के लिए भी प्रदर्शन किया गया था।

वीर राघव का कथन है कि यदि इसे प्रदर्शन मात्र समझा जाय तो अवतार का प्रयोजन ही क्या शेष रहेगा? साथ ही––

आसीदतीत कल्पान्ते	(८।२४।७)
कालेनागत निद्रग्य	(८।२४।८)
योऽसौ सत्यव्रतो नाम	(८।२४।११)
रूपं स जगृहे मात्स्यं	(१।३।१५)

आदि भागवत वाक्य भी मायिक कहे जायंगे। अतः इसे प्रदर्शन मात्र न मान कर दैनन्दिन कल्पावसानिक प्रलय मानना उपयुक्त होगा। (भा. चं. चं. ८।२४।४६)

विश्वनाथ का मत है कि यह आकस्मिक प्रलय चाक्षुष मन्वन्तर में ही हुई थी एवं ईश्वर की लीला ही इसमें कारण है। उन्होंने भागवतामृत के प्रमाण से उक्त कथन की पुष्टि की है (सा. द. ८।२४।४६)। यथा भागवतामृत का श्लोक ५—

'मध्ये मन्वन्तरस्यैव मुनेः शापान्मनुं प्रति
प्रलयोऽसौ बभूवेति पुराणे क्वचिदीर्यते ॥
अयमाकस्मिको जातश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः
प्रलयः पद्मनाभस्य लीलयैवेति कुत्रचित् ॥'

मत्स्य पुराण में इस प्रलय का उल्लेख चाक्षुष मन्वन्तर के मध्य में किया गया है। नियम विरुद्ध घटित होने वाली प्रलय में एक प्रमाण दिया है कि–स्वायम्भुव मनु को अगस्त्य मुनि का शाप लग गया था, इस कारण यह प्रलय हुई थी। शुक सुधी ने अपना मत देते हुए सिद्ध किया है कि मत्स्यावतार दो बार मानना चाहिये—एक तो स्वायम्भुव मन्वन्तर में, द्वितीय चाक्षुष

मन्वन्तर में। प्रथमावतार ग्रहण कर हयग्रीव का बध तथा वेदों की रक्षा की गई। द्वितीय अवतार सत्यव्रत के दर्शनार्थ हुआ—

> 'मत्स्योऽपि प्रादुरभवद्विः कल्पेऽस्मिन् वराहवत्।
> आदौ स्वायम्भुवीयस्य दैत्यंघ्नन्नाहरच्छ्रुतीः
> अन्ते तु चाक्षुषीयस्य कृपां सत्यव्रतेऽकरोत् ॥'

शुक सुधी कृत समाधान अन्य सभी समाधानों में श्रेष्ठ है। श्रीधर की मायिक कल्पना का सप्रमाण खण्डन भी किया है एवं युक्ति भी दी है। अतः यह समाधान उचित है।

नवम स्कन्ध

श्लोक १—'श्रीनिवासः श्रिया सह' (भागवत ९।४।६०)

उक्त श्लोक में भगवान के नाम के पूर्व ही जब श्री शब्द का प्रयोग है तब 'श्रिया सह' कथन पुनरुक्ति मात्र है। वीरराघव ने इसे अनेक शंकाओं के समाधान के लिए आवश्यक माना है। इस श्लोक की टीका विशिष्टाद्वैत पक्ष की दृढ़ता से पुष्टि करती है। आश्चर्य है इस श्लोक पर किसी भी टीकाकार ने टीका नहीं की। टीकाकार यदि चाहते तो अर्थ परिवर्तन ही कर देते। श्रीनिवास से उनका एकान्त द्वेष हो यह भी नही कहा जा सकता क्योंकि वे शिव के पक्ष में अभिरुचि रखते हैं। इस श्लोक की टीका अवश्य करनी चाहिये थी या इसे प्रक्षिप्त लिखते। अतः उक्त श्लोक निश्चित ही विशिष्टाद्वैत मतवाद का मूल स्तम्भ माना जा सकता है। सम्प्रदायज्ञ आचार्यों ने भी इसी प्रकार के श्लोकों के पाठ से टीका की प्रेरणा ग्रहण की हो इसमें आश्चर्य ही क्या है। विश्वनाथ ने मान्धाता का राज्य मथुरा में सिद्ध किया है। (सारार्थ दर्शिनी ९।६।४०)

दशम स्कन्ध

श्लोक १—'कथितो वंश विस्तारो भवता सोमसूर्ययोः' (भागवत १०।१।१)

'राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से कहा कि आपने सोम वंश तथा सूर्य वंश के राजाओं की परम्परा सुनाई।' इस श्लोक में 'सोम' शब्द सूर्य के पश्चात् होना चाहिये, क्योंकि नवम स्कन्ध में प्रथम सूर्य वंश का वर्णन किया है तदनन्तर सोम वंश का। टीकाकारों का कथन है कि दशम स्कन्ध में कृष्ण चरित्र है एवं श्रीकृष्ण का जन्म चन्द्रवंश में हुआ था। अतः राजा ने प्रथम सोम शब्द का उल्लेख किया हे। सिद्धान्त प्रदीपकार का मत है कि 'सोम'

सूर्य का पितृव्य था अतः सोम का प्रथम उल्लेख उचित ही है। (सिद्धान्त प्रदीप १०।१।१)

श्लोक २—'यदोश्च धर्म शीलस्य नितरां मुनि सत्तम' (भागवत १०।१।२)

उक्त श्लोक में धर्मशील यदु को कहा गया है किन्तु पिता की आज्ञा न मानने के कारण उसे अधर्मी कहना चाहिये था। टीकाकारों ने उसे धर्मशील इस कारण माना है कि यदु ने अनुचित मार्ग पर जाने वाले अपने पिता को रोका था।

'तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणिशंसनः' राजा ने प्रश्न किया था कि यदु कुल में अंश से अवतीर्ण विष्णु के चरित आप सुनावें।' यह व्याख्या उपयुक्त नहीं है क्योंकि कृष्ण का अवतार अंश से नहीं माना जाता। भागवत में स्पष्ट संकेत है—

'एते चांश कला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' (भा० १।३।२८)

श्रीधर स्वामी ने 'अंशेन' यह पद प्रतीति के अभिप्राय से माना है (भा. दी. १०।१।२)। जीवगोस्वामी ने इसमें केवल इतना अंश और सम्बद्ध किया है कि 'प्रति व्यक्ति को असाधारण प्रतीति नहीं होती' (क्रम सन्दर्भ १०।१।२)। अथवा अंश अर्थात् बलदेव। वीरराघवाचार्य अंश का अर्थ बलदेव को मानते हैं।' साथ ही अंश के दो अर्थ और किये हैं—१. संकल्प रूप ज्ञान २. दिव्य विग्रह अंश। यह भी विचारणीय है कि यदि भगवान स्वयं ही इस धरातल पर आजायें तो समस्त संसार नष्ट हो जायगा। आचार्य वल्लभ ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है कि जितने देश में माया अप्रविष्ट है उतने देश का नाम अंश है। यथा सुबोधिनी १०।१।२ का श्लोक—

'तावति देशे तेन प्रकारेण माया दूरी कृतवान् इति अंश एव स भवति।'

अंश का सरल अभिप्राय है माया रहित शुद्ध ब्रह्म का अवतीर्ण होना। अथवा अंश का अर्थ प्रद्युम्न भी है। शुकसुधी का मत है कि यहां अंश शब्द से राजा परीक्षित 'बलदेव' के चरित्र सुनने की इच्छा प्रकट करता है (सि. प्र. १०।१।२)। यहाँ राजा परीक्षित की बलदेव के साथ अवतीर्ण कृष्ण चरित श्रवणेच्छा ही अधिक संगत है।

श्लोक ३—'अवतीर्य..........विस्तरात् (भागवत १०।१।३)

इस श्लोक में 'विस्तर' शब्द का उल्लेख द्वितीय स्कन्ध के संक्षिप्त कृष्ण चरित वर्णन के कारण किया गया है। यह आचार्य वल्लभ का मत है (सु. १०।१।३)।

श्लोक ४—'निवृत्ततर्षैः··········बिना पशुघ्नात्' (भागवत १०।१।१४)

पशुघ्न का मन हरि कथा में नहीं लगता। पशुघ्न का अर्थ है घातक किन्तु श्रीधर स्वामी ने शोक रहित आत्मा का 'घातक' अर्थ (भा. दी. १६:१।३) किया है। जीव गोस्वामी ने इसे 'गाली' माना है। पशु को लोकद्वय सुख विवेक की सिद्धि नहीं होती, उन्होंने एक उदाहरण (क्रम सन्दर्भ १०।१।३) का यहां दिया है—

> 'राजपुत्र चिरंजीव माजीव ऋषि पुत्रक
> जीव वा मर वा साधो व्याध माजीव मा मर ॥'

श्लोक ५—'पितामहामे समरे' (भागवत १०।।१।६)

उक्त श्लोक में वल्लभाचार्य ने श्रुत माहात्म्य लिखा है क्योंकि परीक्षित ने अपने पूर्वजों के वृत्तान्त श्रवण में अभिरुचि प्रकट की थी। अग्रिम श्लोक 'द्रोण्यस्त्रविप्लुष्ट' में दृष्ट माहात्म्य माना है। क्योंकि परीक्षित ने गर्भावस्था में अपने नेत्रों से भगवान् का दर्शन किया था।

श्लोक ६—'वीर्याणि तस्याखिल········ ·· मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन्' (भागवत १०।१।७)

भगवान् को मृत्यु तथा अमृत प्रदान करने वाला कहा गया है। विश्वनाथ ने 'मारक' समझने वालों को मृत्यु देने वाला व अन्यों को अमृत प्रदान करने वाला लिखा है (सा. द. १०।१।७) तथा मत्स्यण्डिका खण्ड का उदाहरण भी यहाँ दिया है, कि वह पित्त दूषित रसना वाले व्यक्तियों को तिक्त स्वाद देती है। 'प्रयच्छतः' वर्तमान काल का प्रयोग भगवान् की लीला की नित्यता सिद्ध करता है। 'माया मनुष्यस्य' का उचित समाधान करने का प्रयास टीकाकारों ने यथामति किया है किन्तु वे कहाँ तक सफल हुए हैं नहीं कहा जा सकता। माया का अर्थ ज्ञान भी किया है (सि. प्र. १०।१।७) तथा स्वरूप भी (प. र. १०।१।७)। विजयध्वज ने स्पष्ट लिखा है कि 'मनुष्य शब्द' से भयभीत नहीं होना चाहिये और विभिन्न व्याख्याओं के फेर में भी नहीं पड़ना चाहिये। कृष्ण मनुष्य ही थे—'गूढं परं ब्रह्म , मनुष्य लिंगम्' आदि में उन्हें छिपा हुआ ब्रह्म कहा गया है। विजयध्वज का कथन उचित ही है क्योंकि कृष्ण की लीलाऐं मनुष्य रूप में ही अधिक आकर्षक हैं।

श्लोक ७—'एवं निशम्य···········कलिकल्मषघ्नं·······' (भा. १०।१।१४)

इसके अनेक अर्थ किये गये हैं—कलि में कल्मष, कलि का भी कल्मष, कलह की कल्मष, संसार दुःख, विष्णुरात का विशेषण। यह विशेषण कलि रूपी कल्मष को जीतने के कारण ही लिखा गया है।

श्लोक ८—'मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः' (भा. १०।१।२८)

जीवगोस्वामी ने मथुरा पुरी की अत्यधिक महिमा लिखी है—'ब्रह्म ज्ञान से मथा हुआ सार जिस पुरी में रहता हो वह मधुरा है'—

'मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा
तत्सार भूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते ।।'

तथा (क्रम सन्दर्भ १०।१।२८) द्वारा स्पष्ट है—

'अहो न जानन्ति नरादुराशया पुरीमदीयांपरमां सनातनीम्
सुरेन्द्र नागेन्द्र मुनीन्द्र संस्तुताम् मनोरमां तां मथुरां पराकृतिम् ।।'

मथुरा और गोलोक में अभेद है—

'तदेवमेकस्य स्वयं भगवत आस्पदत्वात् गोलोकादीनामेकात्मकतैव ज्ञेया ।'

श्लोक ९—'कीर्तिमन्तं प्रथमजम्' (भागवत १०।१।५७)

देवकी का प्रथम पुत्र कीर्तिमान् था। आचार्य वल्लभ का मत है (सु. १०।१।५७) कि विवाह के समय देवकी की अवस्था ८ वर्ष की थी। विवाहोपरान्त प्रतिवर्ष एक वालक उत्पन्न होता था। यह शीघ्रता भगवान् के शीघ्र जन्म लेने के कारण हुई थी। जीवगोस्वामी नामकरण होना उचित नहीं मानते, उनका मत है कि कृष्ण के भाइयों का नामकरण बलि राजा के समीप जब उन भाइयों को स्वय श्रीकृष्ण लेने गये थे तब किया गया था। यह भी उल्लेख उपलब्ध है कि कृष्ण के अग्रज जन्म लेते ही मार दिये गये थे (सु. १०।९।६६)। ऐसी परिस्थिति में नामकरण का प्रश्न ही नहीं उठता। जीव गोस्वामी के उक्त मत में आपत्ति है, भगवान् के ज्येष्ठ भ्राता का नाम भागवत में लिखा गया है। वल्लभाचार्य ने यह सिद्ध किया है कि वसुदेव जी का प्रथम पुत्र पाच वर्ष की अवस्था में मारा गया था। किन्तु 'जातं जातमहन् पुत्रं' को प्रामाणिक मानकर एवं 'कन्यां चैवानुवत्सरं' के साथ युक्त करें तो जन्म ग्रहण के साथ ही उनके भाइयों का वध सिद्ध नहीं होता। कीर्तिमान् नामक भाई जब पाँच वर्ष का होगा तो प्रतिवर्ष क्रम से चार भाई और जन्म ग्रहण कर चुके होंगे और उनका नामकरण भी किया गया होगा। अतः यहाँ आचार्योक्त मत गूढ़ प्रतीत होता है, यदि इसे स्वीकार करें तो भागवत के विरोध के साथ जीवगोस्वामी के मत का खण्डन भी होता है। अतः कृष्ण के भाइयों का जन्म लेते ही वध एवं पश्चात् कृष्ण द्वारा उनका नामकरण उपयुक्त प्रतीत होता है।

श्लोक १०—'दुर्गेति भद्रकालीति……' (भागवत १०।२।११)

योगमाया के जन्म ग्रहण के अनन्तर उनके अनेक नामों का उल्लेख भागवतकार ने किया है। उन नामों की निरुक्ति विश्वनाथ ने बड़ी युक्ति के साथ की है--

दुर्गा	दुःख से प्राप्त
कुमुदा	पृथ्वी में प्रसन्न
चण्डिका	शत्रु पर कुपित
कृष्णा	आनन्द रूपा
माधवी	मधु कुल में उत्पन्न
नारायणी	नर समुदाय की आश्रयभूता
ईशानी	सब की इष्ट देवी
शारदा	संसार से मुक्त करने वाली
अम्बिका	सब की मां

काशी में दुर्गा, उज्जैन में भद्रकाली, उत्कल में विजया, कोल्हापुर में वैष्णवी, कामरूप में चण्डिका, उत्तर प्रदेश में शारदा, अम्बिका वन में अम्बिका, कन्याकुमारी में कन्या का निवास है (सा. द. १०।२।१२)। जीवगोस्वामी योगमाया की सत्तामात्र स्वीकार करते हैं, पुत्री रूप नहीं। 'नन्द पत्न्याँ भविष्यसि' में भू धातु का प्रयोग केवल सत्तावाची है।

श्लोक ११—'अहो विस्रंसितो गर्भो'० (भा. १०।२।१५)

यहां जीव गोस्वामी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कृष्ण और बलराम में केवल ४ मास का अन्तर था। भागवत में—'तावंघ्रि युग्म मनुकृष्यसरीसृपन्तौ' आदि में उनका एक साथ रिंगण, क्रीड़न आदि वर्णित है। देवकी के गर्भ में जब सात मास का शिशु था तब उसे योगमाया ने स्व शक्ति से बाहर निकाल कर रोहिणी के गर्भ में प्रविष्ट किया था। रोहिणी भी गर्भवती थी और इस प्रक्रिया को लक्षित नहीं कर सकी थी। इस घटना के उपरान्त देवकी के पुनः गर्भ स्थापित हुआ। यह कृष्ण सम्बन्धी गर्भ था। जीवगोस्वामी ने बलभद्र का जन्म वैशाख में माना है (क्र. सं. १०।२।१५)। अतः कृष्ण उनसे चार मास लघु थे।

श्लोक १२—'सत्यव्रतं सत्यपरम·······" (भागवत १०।२।२६)

देवकी के गर्भ में श्रीकृष्ण के अवस्थित होने का समय जानकर देवगण उनकी स्तुति करने कारागार में गये जहाँ देवकी वसुदेव बन्दी थे। यह स्तुति १६ श्लोकों में की गई है। भगवान् कालात्मा है, काल पंचदशात्मा है अतः

सोलह श्लोकों में यह स्तुति की गई है । आचार्य वल्लभ ने इसे (सु. १०।२।२६) पक्षपात स्तुति कहा है--

पक्षपात स्तुति ह्‌र्येषा देवानां हितकारिणी
ध्रुवा तुषोडषी प्रोक्ता बृद्धौ वा तादृशोभवेत् ।।

काल कृत पक्षपात चार प्रकार का होता है–१. लोक कृत, २. स्मृति कृत, ३. वेद कृत, ४ भगवन्मार्ग कृत । यह चार प्रकार का पक्षपात—प्रमाण, प्रमेय, साधन, फलभेद के कारण भी है । यदि सत्य प्रमाण है तो परिदृश्यमान जगत् प्रमेय है । गुणाभिमानी देव साधन है, क्षेम ही फल है । विश्वनाथ ने (सा. द. १०।२।२६) एक सुन्दर रूपक में स्तुति का वर्णन किया है, 'कृष्ण मेघ हैं, ब्रह्मा कृषीवल तथा शिव मयूर हैं । कंस जरासन्धादि रूपी दावानल से आक्रान्त महामतंगज रूपी देवगण हैं—

'वृष्णं लीलामृत वर्षिणं कृष्णाम्बुदं, ब्रह्मा धुवन चतुर्दश केदार महाकृषीवल इव, भवश्च उल्लासित साधुपक्षो नृत्य बिनोदी महा नीलकन्ठ इव, नारदादिभिस्तदेक जीवनैर्महासोत्कण्ठेरिव देवैः कंस जरासन्धादि दावानलावृत्तैर्महामतंगजैरिव सह ऐडयन् तुष्टुवुः ।'

'सत्यव्रतं सत्य परं त्रिसत्यं' की व्याख्या में प्रायः सभी टीकाकारों ने विभिन्न अर्थ किये हैं । यथा—

त्रिसत्यम्	तीनों कालों में वर्तमान (शु. प. १०।२।२६)
	तीनों वेदों में सत्य (प. र. १०।२।२६)
	प्रकृति, पुरुष, काल तीनों सत्य हैं
सत्यस्ययोनिम्	पाँच भूतों के कारण (भा. दी, १०।२।२६)
	चिदचिज्जगत् के कारण (शु, प, (१०।२।२६)
	मत्स्य कूर्मादि के उद्गम् स्थान । (सा.द. १०।२।२६)
	प्राकृत लोक के उपादान कारण । (सि.प्र. १०।२।२६)
निहितं च सत्ये	अन्तर्यामितया अवस्थित (भा.दी. १०।२।२६)
	मुख्यप्राण में निहित (प. र. १०।२।२६)
	सत्य के रक्षक (सु. १०।२।२६)
	नित्य धाम वाले (भा. चं. चं. १०।२।२६)

सभी टीकाकारों ने उक्त श्लोक की व्याख्या सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुसार की है, यह स्पष्ट है ।

श्लोक 'स्वयं समुत्तीर्य मुदुस्तरं०' (भा. १०।२।३१)

इस श्लोक में श्रीधर स्वामी ने भक्ति मार्ग का अच्छा विवेचन किया है ।

श्लोक १४—'न ते भवस्येश भवस्य कारणम् (१०।२।३९)

उक्त श्लोक में आचार्य वल्लभ ने, न त + इभ = गजः, तस्येशः विनीत गज के मोक्षदाता' आदि अर्थों द्वारा कृष्ण की महिमा का गान किया है ।

श्लोक १५—'मत्स्याश्व कच्छप नृसिंह०' (भा. १०।२।४०)

उक्त श्लोक में त्रिविध अवतारों का अन्तर्भाव कृष्ण में किया है । तीन अवतार जल के हैं—मत्स्य, अश्व, कच्छप, तीन अवतार वन के हैं—नृसिंह, वराह, हंस, तीन अवतार लोक के हैं—राम, परशुराम, वामन ।

'मत्स्य' हीन जाति का था । कृष्ण का भीम के साथ युद्ध की भिक्षा के लिये जरासन्ध के समीप जाना हीनता सिद्ध करता है ।

'हयग्रीव' ने असुर हनन कार्य किया था । कृष्ण ने शिशुपाल (असुर) का वध किया था ।

'कच्छप' ने मन्दराचल धारण कर देवों को अमृतपान कराया था । कृष्ण ने गोवर्द्धन धारण कर स्वरूपामृत की वृष्टि की थी ।

'नृसिंह' ने प्रह्लाद रक्षार्थ अवतार ग्रहण किया था । कृष्ण ने पाण्डवों की रक्षा हेतु अवतार लिया ।

'वाराह' ने पृथ्वी (गन्धगुण) का उद्धार किया था । कृष्ण ने विदुर के यहां शाक ग्रहण किया था ।

'हंस' ने ब्रह्मादि देवों को उपदेश दिया था । कृष्ण ने अर्जुन, उद्धवादि को ज्ञान दिया ।

राम ने एक भक्त के लिए राक्षसों का वध किया । कृष्ण ने एक भूमि की रक्षा के लिए असुरों का वध किया ।

'परशुराम' ने ब्रह्म वृत्ति होने पर भी क्षत्रियों का वध किया था । कृष्ण ने 'ब्रह्म' रूप से समान होने पर भी क्षत्रियों का वध किया था ।

'वामन' ने अदिति की प्रार्थना से अवतार लिया था । कृष्ण ने देवकी की प्रार्थना से अवतार लिया । दशमावतार कृष्ण स्वयं हैं और वे अवतारी हैं । अतः कृष्ण चरित में दशावतारों का चरित समाविष्ट है । (सु० १०।२।३०)

श्लोक १६—'प्रति दिवं ययुः' (भा. १०।२।४२)

उक्त श्लोक में देवगण स्तुति कर अपने २ स्वर्ग गये—यह वर्णित हैं । आचार्य वल्लभ ने २१ या १०० स्वरों का उल्लेख किया है परन्तु कोई

प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया । प्रमाणाभाव में सन्देह बना रहता है । क्योंकि अन्यत्र कहीं इस प्रकार की संख्या उपलब्ध नहीं है ।

श्लोक १७—'अथ सर्व गुणोपेतः' (भा. १०।३।१)

तृतीयाध्याय के प्रथम श्लोक से 'आवि रासीत् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कल:' (भा. १०।३।१–८) पर्यन्त के श्लोकों का अन्वय एक साथ किया गया है, इस एक वाक्य में अनेक विरोध दिखलाई पड़ते हैं, यथा–कृष्ण के जन्म के समय रोहिणी नक्षत्र उदित हुआ, दिशायें प्रसन्न हो उठीं, पृथ्वी में सर्वत्र मंगलारम्भ होने लगे, नदियों का जल निर्मल हो गया, सरोवरों में कमलश्री विकसित होने लगे । भ्रमर वृन्दों का गुंजन एवं पक्षियों का कलरव सुहावना लगने लगा । अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी, अप्सरागण नृत्य में व्यस्त होने लगीं, बादल गरजकर बरसने लगे । उस अर्द्धरात्री के समय कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ । प्रथम श्लोक में वर्णित शान्त वातावरण अष्टम श्लोक के वर्णन से विरुद्ध है, किन्तु टीकाकारों ने इसे समस्त ऋतु गुणों का परिचायक सिद्ध किया है, इस प्रकार यह वर्णन अनेक हेतु तथा शंकाओं के निराकरण के लिये यहां लिखा गया है । इन श्लोकों के आधार पर ही अष्टमी तिथि, भाद्रपद मास, कृष्णपक्ष, बुधवार आदि को प्रमाणित माना हैं अन्यथा भागवत में स्पष्ट रूप से कहीं भी कृष्ण के जन्म समय के वार-तिथि आदि के उल्लेख उपलब्ध नहीं हैं ।

'निशीथेऽतम उद्भूते' इस पदच्छेद द्वारा अतम अर्थात् चन्द्रमा, उद्भूत-उससे उत्पन्न 'बुध' अर्थात् बुधवार आने पर तथा चन्द्रमा का उदय कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि के दिन अर्द्धरात्री में होता है, अतः कृष्णपक्ष अष्टमी तिथि का ग्रहण किया जाता है । (भा. दी. प्र. १०।३।८)

श्लोक १८–'तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणम् चतुर्भुजं शंख गदाद्युदायुधम् ।'
(भा. १०।३।१०)

उक्त श्लोक में 'बालक' शब्द के अनेक अर्थ किए है–(सु. १०।३।१०)

१—ब्रह्मा जिसका बालक है । (कः बालः यस्य)

२—जिसके रोम-रोम में ब्रह्मा है (कः 'ब्रह्मा' रोमे यस्य)

३—जिसका 'शिव' बालक है (कः बालः यस्य) आदि

इसी प्रकार 'अम्बुजेक्षण' शब्द के विभिन्नार्थ किये हैं—

१—लक्ष्मी में कामसुख प्राप्त करने वाला

२—जिसे लक्ष्मी में सुख प्राप्त है

३—ब्रह्माण्ड पालन दृष्टि वाला

४—पृथिवी में दत्त दृष्टि वाला

'चतुर्भुजम्' पद ज्ञान के प्रकाश के लिए अथवा 'धर्म, अर्थ,काम, मोक्ष, पुरुषार्थ के लिए, अथवा दिक्पालों की संख्या द्योतन कराने के लिए है (सु. १०।३।१०) ।

शंख	जल तत्व है ।
कमल	पृथ्वी तत्व (यह भुवनात्मक)
गदा-	-वायु तत्व (प्राणात्मक)
चक्र	तेज तत्व है ।

आचार्य वल्लभ ने योगमाया का जन्म अष्टमी तिथि के व्यतीत होने पर नवमी तिथि में माना है । विश्वनाथ चक्रवर्ती का कथन है कि यशोदा के गर्भ से एक बालक तथा एक कन्या की उत्पत्ति हुई थी । वसुदेव पुत्र कृष्ण यशोदा पुत्र कृष्ण में समाकर एकरूप हो गए थें (सा. द. १०।३।३१) । भागवत में कृष्ण को यशोदानन्दन तथा देवकीनन्दन दोनों नामों से अभिहित किया गया है । योगमाया को यशोदा की शैया से उठाकर वसुदेव मथुरा लाये, कंस ने उसे मारना चाहा किन्तु वह कंस के हाथों से छूटकर अष्टभुजी देवी बन गयी । वाम भाग की चार भुजाओं में धनुष, चर्म, शंख तथा गदा, दक्षिण कर में शूल, वाण तलवार एवं चक्र धारण कर उसने कंस को कृष्ण जन्म का संकेत दिया था ।

श्लोक १९–'विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः'
(भागवत १०।६।८)

कृष्ण जन्म सुनकर कंस ने अनेक असुरों को ब्रज में बाल-हत्या करने के लिए प्रेरित किया था । उनमें पूतना सम्मिलित हुई और सर्व प्रथम एक सुन्दरी के वेश में नन्दोत्सव में सम्मिलित होने गोकुल गयी । कृष्ण ने पूतना को देखकर अपने नेत्र बन्द कर लिए । इस पर टीकाकारों ने कल्पनायें की हैं ।[1]

१. कृष्ण ने पूतना को देखकर निज बालत्व ज्ञापनार्थ नेत्र बन्द किए ।
२. भीरुत्व प्रदर्शन के लिए नेत्र बन्द किये । (सा. द. १०।६।८)
३. अमंगल रूप के कारण नेत्र बन्द किए ।

---

[1] पूतना बलि राजा की कन्या थी जो बामन भगवान को देखकर मुग्ध हो गई थी एवं उसने वामन को स्तनपान कराने की इच्छा की थी, भगवान के वरदान से उसने यह इच्छा पूतना बनकर पूर्ण की । (गर्ग संहिता, गोलोक खण्ड)

४. कृष्ण की दृष्टि के समक्ष ग्रह डट नहीं सकते, अतः कहीं ये भाग न जाय इसलिये नेत्र बन्द किए।

५. मातृ भाव से समागत का वध होगा इस लज्जा से नेत्र बन्द किए।

६. कपटपूर्ण स्नेह का देखना उचित नहीं इस कारण नेत्र बन्द किए। (सि. प्र. १०।६।८)

७. कृष्ण जगत्कर्त्ता हैं, ज्ञान छिप नहीं सकता, अतः उसके गोपन के लिए नेत्र बन्द किए। (सु. १०।६।८)

८. चराचरात्मा थे वे पूतना के हृद्‌गत को जान गए अतः नेत्र बन्द किए।

९. पवित्र बालकों के अपहरण करने वाली का मुखदर्शन उचित नही, इस कारण नेत्र बन्द किए। (भा. दी. १०।६।८)

१०. क्या पूतना ने कोई साधन किए हैं जो मुझे स्तनपान कराने आई है। इस कारण को जानने के लिए नेत्र बन्द किए।

११. उदर स्थित असंख्य जीव, कृष्ण के हालाहल पान से घबड़ा गए थे मानों उन्हें शान्त करने हेतु नेत्र बन्द किए।

१२. कृष्ण के नेत्रों ने विचार किया कि ईश्वर इसे चाहें गति दे दें हम (सूर्यलोक, चन्द्रलोक) नही देंगे। अतः नेत्र बन्द किए।

१३. हलाहल पान का मैं अभ्यस्त नहीं, अतः शंकर के ध्यान में नेत्र बन्द किए।

१४. कड़वे जहर को आंख मींचकर पीया जाता है, अतः नेत्र बन्द किये।

१५. योगसाधना से विष का प्रभाव नष्ट किया जाता है अतः नेत्र बन्द किये।

१६. नेत्रों में धार्मिक निमि राजा का निवास है वे उस दुष्टा का मुख भी नहीं देखना चाहते, अतः नेत्र बन्द किये।

१७. पूतना के देखते ही नेत्र बन्द हो जाते हैं यदि मैंने न किये तो यह लौटकर चली जायगी मेरे साथियों का नाश करेगी, अतः नेत्र बन्द किये।

१८. कृष्ण सोचते हैं मेरी दो दृष्टि हैं उग्र तथा करुण, यदि उग्र से इसे देखूँगा तो तत्काल भस्म हो जायेगी (फिर स्तनपान भी तो करना है) यदि करुण से देखूँगा तो मारना असम्भव हो जायगा, अतः नेत्र बन्द किये।

१६. कृष्ण सोचते हैं कि धात्री वेश में यह आई है अतः मारण उचित नहीं इस चिन्तन में नेत्र बन्द किये ।

२०. मेरे नेत्रों से इसका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जायगा और उसे देखकर यशोदा आदि गोपी अपने प्राणों का परित्याग कर देंगी अतः नेत्र बन्द करना ही उचित है ।

२१. असुर भी तो पुत्र हैं उनकी भी मृत्यु पीड़ा देखने में संकोच हुआ अतः नेत्र वन्द किये ।

२२. छोटे बालकों का स्वभाव है वे अपरिचित को देखकर नेत्र वन्द कर लेते हैं अतः नेत्र बन्द किये ।[1]

श्लोक २०—'गोप्यः संस्पृष्ट सलिला अंगेषु करयोःपृथक्
न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यास मकुर्वंत ॥' (भा. १०।६।२१)

पूतना के शरीर पर क्रीड़ा करते हुए कृष्ण को अंक में उठाकर गोपियों ने गोपुच्छादि से उनके दोषों का अपसारण किया । यहाँ 'न्यास' शब्द का उल्लेख किया है, प्रथम बार गोपियों ने शीघ्रता में भगवान के केशवादि नामों का उल्लेख किया तदनन्तर साविधि न्यास किया । आचमनादि करके अंगन्यास करन्यास करके बालक के अंगों में भी बीजन्यास किये । इस श्लोक के आगे भगवान के अज, मणिमान्, यज्ञ, अच्युत, हयग्रीव, केशव, ईश, इन, विष्णु, उरुक्रम तथा ईश्वर नामों का उल्लेख विभिन्न अवयवों की रक्षार्थ किया गया है । अज के प्रथमाक्षर पर अनुस्वार लगाने से 'अं' बीज बनता है, इस प्रकार श्लोक में समागत नामों के प्रथमाक्षरों से जो बीज बने हैं उन्हें कृष्ण के अंशों में स्थापित किया—यह 'अव्यादजोंध्रि मणिमान्' श्लोक से स्पष्ट है ।

सानुस्वार अंगन्यास–करन्यास का संकेत श्रीधर स्वामी ने भा. दी. १०।६।२१ में दिया है—

'गोप्यः आत्मनि (आत्मनः) अंगेषु करयोः च पृथक् न्यस्य अंगन्यास करन्यासौ कृत्वा बालस्य अंध्र्यादि अंगेषु बीजस्य अजादि नामाद्यैकैकाक्षरस्य सानुस्वारस्य नमः शब्दान्तस्यन्यासमकुर्वंत ।'

उक्त गद्यांश से यह स्पष्ट है कि गोपियों ने अंगन्यास, करन्यास अपने अंगों में किये तथा 'अं नमः' आदि बीजन्यास बालक कृष्ण के अंगों में किये

---

[1] संकेतिक टीकाओं को छोड़कर शेष सभी अर्थ पं० श्रीधर बन्नाजी मथुरा कृत भागवत की हस्तलिखित टिप्पणी से उद्धृत किये गये हैं ।

थे। श्रीधर ने इसका उल्लेख नहीं किया कि इन नामों का न्यास किस विधि से किया जाना चाहिये।

राघवाचार्य ने अकारादि, क्षकारान्त ५० वर्णों के न्यास को वैध मानते हुए श्रीधरोक्त मत से विपरीत विधान प्रस्तुत किया है—

'अकारादि क्षकारान्तानि मातृका बीजानि विन्यस्य अथ बालस्य आत्मनि करयोः अंगेषु च बीजन्यासमकुर्वत।' (भा. चं. चं. १०।६।२१)

विजयध्वजाचार्य ने 'बीजन्यास' शब्द से अष्टाक्षर न्यास का उल्लेख किया है। 'अथान्तरं मंगल करं वा बालस्य बीज न्यासं अष्टाक्षरन्यासमुकुर्वत।' (प. र. १०।६।२१।

वल्लभाचार्य ने ११ बीज मन्त्रों का न्यास ही माना है। यह ११ बीज अजादि नामों के अद्यक्षर हैं। वल्लभाचार्य ने चार अंगुलियों के पर्वत्रय में यह न्यास माना है और षष्ठ स्कन्ध के नारायण कवच के वाक्य 'प्रणवादियकारान्तमंगुल्यंगुष्ठ पर्वसु' (भा. ६।८।७) को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है।

'तेनांगुली चतुष्टये पर्वत्रये न्यासो भवति।'

इससे दोनों करों की चार-चार अंगुलियों का ग्रहण भी किया जा सकता है—८ अंगुलि, ४ अंगुष्ठ पर्व=१२ होते हैं। नाम केवल ग्यारह हैं। फलतः एक पर्व के लिए एक नाम कम पड़ेगा। वे आगे दशन्यास की चर्चा भी करते हैं।

'मदशन्यासा वा निरूपिता मातृकान्यासादयः। एवमात्मनिन्यस्य सर्वा देवनाधार भूताः सत्यः अथ भिन्न प्रकारेण देवताः सर्वा वहि स्थिता विधाय बालस्य भगवतः बीजैरेकादशभिः न्यास मकुर्वत।' (सु. १०।६।११)

वल्लभ ने मातृकान्यास गोपियों के लिये, अजादि एकादशाक्षर बीजन्यास कृष्ण के लिये माना है और इस बीजन्यास को अत्यन्त गोप्य लिखा है—

'बीजानि स्थानानि च गोप्यानि इति भंग्यन्तरेण देवता प्रार्थना रूपेण रक्षां स्तोत्र रूपां वदन्नाह 'अव्यादिति'।'

आचार्य वल्लभ उक्त भगवन्नामों को वैष्णव तन्त्र में प्रसिद्ध मानते हैं—

'भगवतः एकादशरूपाणि मूलतः प्रसिद्धानि वैष्णव तन्त्रे, अन्यानि तु न समर्थानि उपठौकनेनारोपित सामर्थ्यानि वा भवन्ति, तंत्रप्रथमभजः न जायत इति अविकृतः मूलभूत इतिपावत्।'

विश्वनाथ ने अंगन्यास करन्यास गोपियों के अंग में, बीजन्यास कृष्ण के अंग में माना है। (सा द. १०।६।२१) किन्तु अजादि नामों के आद्यक्षर

के साथ अजादि नामों को भी साथ में रखा है, जैसे—'अं नमो अजः तवांध्री अव्यात्' ।

बलदेव विद्याभूषण ने यह रक्षा 'विधान पूर्वक' स्वीकार की है ।[1]

इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रथम पक्ष में—श्रीधर स्वामी, जीव गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, शुकदेव, बलदेव विद्याभूषण, बंशीधर आदि हैं । द्वितीय पक्ष में—वीरराघव और वल्लभाचार्य हैं । तृतीय पक्ष में—विजयध्वजाचार्य हैं ।

प्रथम पक्ष के टीकाकारों ने, करशुद्धि में तीन वर्ण, कर-सन्धि में चार वर्ण माने हैं । आचार्य वल्लभ ने दशांगुलि में व अंगुष्ठ में भी न्यास करना स्वीकार किया है । अंग द्वादश हैं[2], बीजाक्षर ग्यारह । अतः एक अंग अवशिष्ट रहता है, उस पर किस वर्ण का न्यास किया जाय यह स्पष्ट नहीं । वीरराघव के पाठानुसार १० नाम ही रह जाते हैं—वे 'हृत्, केश, वस्ति, उदर' चार अवयव मानते हैं । अतः केशव नाम कम पड़ जायगा । वीरराघवाचार्य तथा वल्लभाचार्य ने मातृकान्यास का उल्लेख किया है जो मूल से संगत नहीं बैठता । वीरराघव ने 'अंगन्यास करन्यास' बालक (कृष्ण) के स्वीकार किये हैं, गोपियों के नहीं—

'बालस्य आत्मनि करयोः अंगेषु च'

विजयध्वज ने मातृकान्यास की चर्चा नहीं की और न बीजन्यास में अजादि नामों के आद्यक्षर ही ग्रहण किये हैं । इन्होंने 'अष्टाक्षर नारायण' मन्त्र के न्यास की विधि लिखी है । यह विधि मूल से दूर है । अन्वितार्थ प्रकाशिका टीकाकार का मत अधिक संगत है (१०।६।२१)—

	नाम	अंगन्यास	करन्यास
(अं)	अज	पाद	दक्षिण करतल
(अं)	अणिमान्	जानु	वाम करतल
(यं)	यज्ञ	ऊरू	करपृष्ठ
(अं)	अच्युत	कटि	दक्षिणांगुल सन्धि
(हं)	हयग्रीव	जठर	दक्षिणमणि बन्ध

---

[1] वैष्णवानन्दिनी १०।६।२१ ।

[2] ललाटं बाहुमूले च हृदयं नाभि पार्श्वकम्
कण्ठः स्कन्धौ कटिमूर्द्धास्तनोचेति विदुर्बुधा ॥

(कें)	केशव	हृदय	दक्षिणकूर्पर
(ईं)	ईश	उर	दक्षिण बाहुमूल
(इं)	इन	कण्ठ	वामांगुल सन्धि
(विं)	विष्णु	भुज	वाममणि बन्ध
(उं)	उरुक्रम	मुख	वामकूर्पर
(ईं)	ईश्वर	शिर	वामबाहु मूल ।

एकादश नाम तथा एकादश अंग एवं करादि का उल्लेख अन्यत्र उपलब्ध नहीं । हमें यह अधिक उचित जान पड़ता है कि गोपियों ने अपने देह में अंगन्यास करन्यास भगवन्नामों से किये और उनके बीजमन्त्रों का कृष्ण के देह में किया ।

श्लोक २१—'कदाचिदौत्थानिक०' (भा. १०।७।४)

कृष्ण के निष्क्रमण उत्सव के समय शकटासुर नामक असुर ने उन्हें मारने की योजना बनाई, वह एक दुग्ध-दशिभाण्ड पूरित शकट में आकर बैठ गया जो नन्द के द्वार पर स्थित था । कृष्ण ने अपने पाद प्रहार से उसे उलटा कर दिया फलतः वह असुर बड़े बड़े मृण्मयपात्रों के भार से नीचे दबकर मर गया । जीवगोस्वामी के अनुसार यह निष्क्रमण महोत्सव चतुर्थमास (पौष मास) में मनाया गया था । धर्मशास्त्र में 'चतुर्थे मासि निष्क्रमः' प्रमाण भी मिलता है । (क्र. स. १०।७।४) । श्रीधर स्वामी ने इसे अंग परिवर्तन उत्सव (भा. दी. १०।७।४) तथा सुदर्शन सूरी ने इसे 'उत्थापन मंगल' लिखा है (शु. प. १०।७।४) । वीरराघव, विजयध्वज तथा वल्लभाचार्य शकट स्पर्श उत्सव निष्क्रमण के अन्तर ही मानते हैं ।

गोपगणों का शकट अधिदेव है, इसका पलट जाना शुभ नहीं । इस अपशकुन से भयभीत होकर उन्हें वृन्दावन जाना पड़ा ।

श्लोक २२—'तमश्मानं मन्यमानः' (भा. १०।७।२७)

ज्यों ही तृणावर्त ने श्री कृष्ण को अपने बाहुपाश में जकड़ कर गले लगाया था त्यों ही कृष्ण ने उसकी ग्रीवा को जोर से पकड़ कर दबाया । तृणावर्त ने उस समय कृष्ण को 'शिला' के समान माना । अश्मा के तीन अर्थ हैं—१. श्वेतपाषाण, २. नीलमणि-पर्वत, ३. हीरक । प्रथम अर्थ विजय-

ध्वज, द्वितीय जीवगोस्वामी एवं तृतीया वल्लभाचार्य ने किया है।[1] 'हीरक' श्वेत वर्ण का होता है अतः यह उपमा उचित प्रतीत नहीं होती, नीलमणि से उपमा देना अधिक उचित है। गर्ग संहिता में तृणावर्त के पूर्व जन्म का प्रसंग भी भी लिखा है—

'तृणावर्त पूर्व जन्म का 'सहस्त्राक्ष नामक' पाण्डुदेश का राजा था। एक सहस्र स्त्रियों से आवृत यह नृपति रेवा के तट पर विहार में रत था, दुर्वासा मुनि को नमस्कार न करने पर उन्होंने शाप दिया कि तुम राक्षस बनो। उसकी अनुनय से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने कृष्ण के चरण स्पर्श से मुक्ति का वरदान दिया था।'[2]

कृष्णजन्म के १०० वें दिवस गर्गाचार्य ने गोकुल में प्रवेश किया। वसुदेव ने इन्हें नामकरण के व्याज से कृष्ण का समाचार लेने भेजा था।

(क्र. स. १०।८।१)

गोकुल में प्रतिदिन उत्पात बढ़ने लगे थे, अतः सब गोपों ने वृन्दावन में आने का निश्चय किया। यह भूमि सात्विक-राजस-तामसों को भी सुख कर है। वृन्दावन प्रवेश के समय कृष्ण की २ वर्ष ३ मास की अवस्था थी। गोकुल लीला में पूतना वध, शकट भंजन, नामकरण, रिंगण, तृणावर्त, प्रथम विश्व दर्शन, उपालम्भ, वत्सपुच्छ ग्रहण, मृत्तिका भक्षण, द्वितीय विश्वदर्शन, चौर्य-तथा उलूखल बन्धन—ये १६ लीलाएं प्रमुख हैं।

जीवगोस्वामी का कथन है कि कृष्ण जव वृन्दावन में पधारे थे तब वृन्दावन कालिय ह्रद से दक्षिण भाग में आठ कोश लम्बा तथा चार कोश विस्तृत था। वृन्दावन पहुँचकर गोपों ने शकटों को अर्ध चन्द्र की भांति खड़ा किया था। विश्वनाथ ने अर्धचन्द्र शिवजी का चिन्ह लिखा है। (सा. द. १०। १३।५६) किन्तु यहाँ इसका तात्पर्य क्या है, यह स्पष्ट नहीं लिखा है।

श्लोक २३—'अत्र भोक्तव्यम्० (भागवत १०।१३।६)

वृन्दावन में कृष्ण ने वत्स चारण प्रारम्भ किया। एक बार वे गोपग्वालों के साथ रमणीक शिला पर बैठ कर भोजन कर रहे थे। ब्रह्मा ने इसे ईश्वरोचित कार्य न मान कर परीक्षार्थ उनके वत्सों का अपहरण किया और जव कृष्ण उन्हें ढूंढ़ने गये तो बालकों का भी अपहरण किया। विश्वनाथ चक्रवर्ती भगवान के निज सखाओं का अपहरण नहीं मानते। उनका मत है

---

[1] **(क) पद्यरत्नावली १०।७।२७ (ख) क्रमसन्दर्भ १०।७।२७ (ग) सुबोधिनी १०।७।२७।**

[2] **गर्ग संहिता गोलोक खंड, अध्याय १४।**

कि मायिक वत्स तथा मायिक बालकों का अपहरण हुआ था, भगवत्सखाओं का अपहरण सम्भव नहीं ।

श्लोक २४—'ततोति…………पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका' (भा. १०।१३।५६)

कृष्णा ने ब्रह्मा को जब गोप और वत्सों को चतुर्भुज रूप में दिखलाया तब वह कृष्ण की शरण में आया । वह ग्रामदेवता के समीप पुत्रिका की भाँति कृष्ण के समीप शोभित हुआ । श्रीधर का कथन है कि पूर्देवी ब्रज की अधिष्ठात्री देवी थी । (भा. दी. १०।१३।५६) वीरराघवाचार्य ने पूर्देवी के समीप सुवर्ण की प्रतिमा की उपमा ब्रह्मा की दी है । आचार्य वल्लभ ने इस उपमा द्वारा ब्रह्मा की निष्प्रभता स्वीकार की है । (सु. १०।१३।५६) 'पुत्रिका' सेव्य देवता के सनीप रखी जाया करती थी तथा यह अपूज्य होती थी । विश्वनाथ आचार्य पुत्रिका का अर्थ मिट्टी की पूतरी मानता है—

'…………अत्र दृष्टान्तः पूर्देवी बहुलोकैः पूज्यमाना ग्रामदेवता तस्या अन्ति निकटे पुत्रिका बालकेन खेल्यमाना अपूजिता क्षुद्रा मृण्मयी पंचालिकेव ।'

(सा. द. १०।१३।५६)

श्लोक २५—'शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने ।' (भा. १०।१३।६४)

ब्रह्मा कृष्ण के चरणों पर गिर पड़े एवं आंखों में आसू भर लाये । यहां लोचने में द्विवचन का प्रयोग है । परन्तु ब्रह्मा चतुर्मुख है अतः उसके नेत्रों की संख्या आठ होनी चाहिये तथा लोचने में बहुवचन का प्रयोग करना चाहिऐ । विश्वनाथ का कथन है कि पाणिद्वय से लोचनद्वय का मार्जन सम्भव है अतः द्विवचन का प्रयोग है । यद्यपि ब्रह्मा के चार मुख चारों दिशाओं में थे तथापि कृष्ण के चरणों में गिरते समय वे एक ओर ही आ गये थे ।

(सा. द. १०।१३।६४)

श्लोक २६—'नौमीडयतेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुंजावतंस परिपिच्छ लसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय ।।'
(भा. १०।१४।१)

'नौमी' यह क्रिया है, शेष चतुर्थ्यन्त विशेषण हैं । यद्यपि 'अभ्रवपुषे' का अर्थ मेघवत् श्याम शरीर है तथापि जीवगोस्वामी के अनुसार 'नारायण का भी भरण करने वाला' अर्थ है ।[1] इसी प्रकार गुंजावतंस का अर्थ श्रुति शिरोऽवतंस परिपिच्छल का अर्थ चतुर्दिक् मायाधारी, सन्मुखाय का अर्थ भक्तों के सन्मुख किया है । भगवान् के वस्त्राभरण भी प्रतीकमात्र हैं । कर्म जड़ पशुओं

---

१. **'अं नारायणं विभर्तीति अभ्रहे कृष्ण'** (बृहत् क्रम सन्दर्भ १०।१४।१.)

के ताडनार्थ वेत्र, उनके स्वत्व ज्ञापन के लिये 'विषाण' हृदय शून्य भक्तों के नेत्रों को चन्द्रिका रूप में देखने के उद्देश्य से चन्द्रिका एवं स्वरूपभूत प्रिय नित्य वर्ग में स्वाभिप्राय व्यंजक शब्द वेणु है तथा 'श्रीवत्स चिन्ह' नित्य संश्लेष का व्यंजक है।

ब्रह्म स्तुति भागवत की विशेष स्तुतियों में परिगणित है। इसमें भक्ति की महिमा का गान स्पष्ट शब्दों में हुआ है। 'श्रेयःसृतिं०' श्लोक की व्याख्या में श्रीधर स्वामी ने भी भक्ति के बिना मोक्ष की असिद्धि का प्रतिपादन किया है। उक्त श्लोक की व्याख्या में सुदर्शनाचार्य तथा वीरराघव ने विशिष्टाद्वैतवाद की सिद्धि की है।

श्लोक २७—'तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपम्' (भा. १०।१४।२३)

उक्त श्लोक की व्याख्या में जीवगोस्वामी ने अचिन्त्य भेदभाव की पुष्टि की है।

श्लोक २८—'एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराण०:' (भा० १०।१४।२३)

उक्त श्लोक की व्याख्या में श्रीधर स्वामी ने 'एकः' पद का अर्थ, सजातीय विजातीय, भेदशून्य माना है। वीरराघव (भा. चं. चं. १०।१४।२३) तथा वल्लभ (सु. १०।१४।२३) ने मुख्य अर्थ माना है।

श्लोक २९—'ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे०' (भा. १०।१५।१)

इस श्लोक से पौगण्डावस्था की लीलाओं का प्रारम्भ है। इस अवस्था में कृष्ण गोपाल बने, इसके पूर्व वत्सपाल थे। जीवगोस्वामी ने (क्र. स. १०।१५।१) पद्मपुराण का वाक्य भी उद्धृत किया है—

शुक्लाष्टमी कार्तिकेतु स्मृतागोपाष्टमी बुधैः
तद्दिनाद्वासुदेवोऽभूद्गोपः पुर्वंतु वत्सपः।'

पौगण्डावस्था में पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) साधक कालाभिमानी देव भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। यहाँ (सु. १०।१५।१) में आचार्य वल्लभ ने ब्रह्मानन्द की अपेक्षा भजनानन्द श्रेष्ठ माना है। प्रथम धर्म का निरूपण है (सु. १०।१५।६)।

धर्म—सन्तुष्ट मन द्वारा पशुओं का चारण धर्म है।

अर्थ—मदान्ध भ्रमरों के गान के साथ निज भक्तों के द्वारा गान श्रवण अर्थ है। यहाँ वल्लभाचार्य ने एक श्रुति भी उद्धृत की है—'यदा खलु वै पुरुषः श्रियमश्नुते वीणाऽस्मै वाद्यते' वीणा अनुकरण स्थानीय भ्रमर हैं, वे अर्थ भोग से गीत गाते हैं।

काम—हंस के द्वारा कूजन काम के अन्तर्गत है। मयूर का मयूरी के

साथ सम्बन्ध होते ही मद आता है, मद में वह नृत्य करता है। नृत्य में गात्र विक्षेप क्रिया करता है, गात्र चालन से मयूर का रस एकत्रित होकर नेत्रों से बाहर निकलता है, वह मयूरी के मुख में पड़ता है। नेत्रगत रस रेत है। ज्ञान द्वारा अन्य सब कार्यों में प्राकृत ही रस है।

मोक्ष—कृष्ण मेघ के समान वाणी से गायों को बुलाते हैं, वाणी के उच्चारण को मोक्ष रूप में वर्णित किया गया है। भगवत्सायुज्य और मुक्ति दोनों के दाता भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

दशरस लीला—आचार्य वल्लभ ने अध्याय पन्द्रह में दशरस लीलाओं का निरूपण किया है—

'चकोरक्रौंचचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः०' श्लोक में समागत चकोर, क्रोंच आदि से रस का सम्बन्ध घटित किया है। यथा—चकोर शृंगार का, क्रोंच वीररस का, चक्रवाक करुणा का, भारद्वाज अद्भुत् का, मयूर हास्य रस का प्रतीक है तथा व्याघ्र भयानक रस का प्रतीक हैं। भयानक रस सब रसों का उपमर्दक है अतः उसे पृथक् रखा गया है। उक्त छः रसों का अधिक विवेचन वल्लभ ने नहीं किया किन्तु निम्न चार रसों की व्याख्या अधिक विस्तार के साथ की है—

बीभत्स रस—हीन से हीन भाव उत्तम का बीभत्स होता है। भक्तों को भगवान् कृष्ण में अपार श्रद्धा है, उन्हें कृष्ण द्वारा बलदेव के अंग परिचालनादि कार्य बीभत्स प्रतीत होते हैं।

रौद्र रस—मल्ल लीला रौद्र रस के अन्तर्गत आती है तथा इसके चार भेद हैं—'चतुर्विधा मल्ललीला स्तूयते हरिणामुदा'। इन चार लीलाओं में कायिकी लीला, वाचिकी लीला, मानसिकी लीला—तीन ही स्पष्ट हैं। चतुर्थ लीला का अन्तर्भाव कायिकी लीला में है।

कायिकी लीला–नृत्य करने की लीला कायिकी है।
वाचिकी लीला–गायन लीला वाचिकी है।
मानसिकी लीला–वल्गन करना मानसिकी लीला है।

शान्त रस—वृक्ष तल में विश्राम शान्ति रस हे। 'वृक्ष मूल' शब्द परम हंसों के लिये सांकेतिक है। भगवान परम हंसों का आश्रय लेते हैं, अतः वृक्षों के तल में उन स्थानों में अतीन्द्रियत्व से स्थित परम ऋषियों को कृतार्थ करने के लिए ही भगवान् वृक्ष मूल में विराजते थे। गोपों के गोद में शिर रखकर शयन करके वे सिद्ध करते थे कि गोप ऋषियों से भी अधिक भाग्यशाली हैं। यहाँ 'तल्पेपु' में बहुवचन का प्रयोग है। गोप वन में वृक्षों के मूल में पत्रों की शय्या बनाते थे और कृष्ण अनेक रूप बनकर उन पर शयन करते थे, प्रत्येक बालक उन्हें अपने सभीप मानता था। यह बहुवचन का अभिप्राय है।

भक्ति रस—'पादसम्वाहनं चक्रुः' श्लोक में गोपों द्वारा भगवान् के पाद-सेवन का उल्लेख है। आचार्य वल्लभ का मत है कि कर्म मार्गानुसार भक्ति करने वालों को पाप की सम्भावना रहती है, अनन्य उपासकों को नहीं। पाद सम्वाहन तथा व्यजन चालन, उभयविध भगवत्-सेवा लक्षण भक्ति रस है जो भगवत्सन्निधान में ही उपलब्ध हो सकता है। अतः यह भक्ति रस सहित भगवान् की लीला है।

श्लोक ३०—'यद्वांछया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तमो०' (भा. १०।१६।२८)

वीरराघव (भा. चं. चं. १०।१६।२८) में तथा सुदर्शन ने (शु. प. १०।१६।२८) में श्री शब्द से वेदवती के उस प्रसंग की ओर संकेत किया है जिसका वर्णन रामायण में प्रसिद्ध है। वल्लभाचार्य (सु.१०।१६।२८), विश्वनाथ (सा. द. १०।१६।२८) का कथन तो यह है कि लक्ष्मी ने गोपाल की चरण रज प्राप्ति के लिये तपस्या की थी। शुकदेव (सि. प्र. १०।१६।२८) का भी यही मत है। यद्यपि श्री का वियोग क्षणिक भी नहीं माना जाता तथापि रुक्मिणी, सीता आदि के व्यावहारिक रूप लक्ष्मी के पृथक्त्व को सिद्ध कर ही देते हैं।

श्लोक ३१—'**नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च**
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥' (भा. १०।१६।४५)

इस श्लोक में पाँचरात्र सम्मत चतुर्व्यूह के अतिरिक्त पंचम संख्या भी है—कृष्ण, राम, वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। वीरराघव (भा. चं. चं. १०।१६।४५) ने वासुदेव को पृथक् माना है। विजयध्वज ने कृष्ण शब्द के कई अर्थ किये हैं—

उत्कृष्टानन्द रूप,
भक्तजन दुरित कर्षणशील,
शत्रुओं को अग्निस्वरूप अथवा नीलवर्ण वाले।

श्लोक ३२—'दिव्याम्बरस्रङ् मणिभिः' (भागवत् १०।१६।६५)

उक्त श्लोक में मणि का उल्लेख है, यह कौस्तुभ मणि थी। यह मणि कृष्ण को कालिय नाग के दमन के पश्चात् नाग-कन्याओं ने भेंट की थी। यद्यपि यह मणि कृष्ण के जन्म के समय उनके गले में थी। भागवत के 'गलशोभिकौस्तुभम्' श्लोक में स्पष्ट है तथापि बालकों के गले में मणि को तत्काल उचित न मानकर हृद में पहुँचा दी गई थी। कृष्ण ने कालिय दमन लीला के पश्चात् उसे पुनः प्राप्त किया था। नाग-कन्याओं ने यह मणि रत्न-विशेष के ज्ञान से दी (सा. द. १०।१६।६५)—

'कौस्तुभाख्योमणिर्येन प्रविश्य ह्रदमौरणं ।
कालिय प्रेयसी वृन्द हस्तैरात्मोपहारितः ।।'

आचार्य वल्लभ ने इस अध्याय में तत्कालीन अनेक क्रीड़ाओं का उल्लेख किया है जिनमें कतिपय के नाम इस प्रकार हैं—मुष्टिभ्रामण, धावन, अस्पृश्य, वरवर्तिका, नेत्रबन्ध, निलायन, आरोह, एकपद, हरिण एवं दोला । इस अध्याय में आचार्य विश्वनाथ ने 'प्रसाद्य गरुडध्वजम्०' (सा. द. १०।१६।६५) में इस श्लोक पर एक अन्तःकथा लिखी है—'एक बार कालिय नाग ने भगवान् से प्रार्थना की कि कभी मुझ पर भी विराजने की कृपा करें । एक निमेष में ही आपको शतकोटि योजन पहुँचा दूँगा ।' अतः कंस मारणार्थ कालिय पर बैठ कर ही कृष्ण मथुरा गये थे । यह पुराणान्तर की कथा है ।

श्लोक ३३—'नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण०' (भा. १०।१६।१०)

आचार्य वल्लभ ने उक्त श्लोक में पुष्टि मार्ग की रक्षा का उल्लेख किया है ।

श्लोक ३४—'…… ……ब्रह्मेव सगुणं बभौ' (भा. १०।२०।४)

उक्त श्लोक की टीका में प्रायः सभी टीकाकारों ने अपनी सम्प्रदाय के अनुसार व्याख्या लिखी है । इसका अर्थ है 'आकाश' सगुण ब्रह्म की भाँति सुशोभित हुआ । श्रीधर स्वामी ने गुणों से आवृत जीव की शोभा तथा 'विद्युत्-गर्जन-मेघ' को क्रमशः सत्व, रज, तम माना है । अर्थात् गुणावृत जीव की उपमा व्योम को दी गयी है (भा. दी. १०।२०।४) । जीवगोस्वामी ने (क्र. स. १०।२०।४) ब्रह्मांश जीव से अलंकृत व्योम माना है । विजयध्वज ने सगुण से ब्रह्मा का अर्थ लिया है (प. र. १०।२०।४) तथा ब्रह्मा की भाँति शोभित आकाश माना है । वल्लभ ने आदित्यवत प्रकाशमान सगुण ब्रह्म दृष्टान्त से प्रावृट् का निरूपण किया है (सु. १०।२०।४) । 'आकाश शरीरं ब्रह्म' वाक्य से आकाश का भी शरीर सिद्ध किया है परन्तु वह कृष्ण सदृश रूपवान् है । इसे प्रत्यक्ष दर्शी स्वीकार करने में संकुचित होगा अतः विद्यमान गुण साम्य ही यहाँ अपेक्षित है । सान्द्र जलद नील वर्ण हैं, विद्युत् पीताम्बर एवं गर्जन नाना वाद्य संवलित शब्द रूप है ।

प्रावृट्, आकाश और कृष्ण—

प्रावृट्, आकाश में ज्योति अस्पष्ट है ।
कृष्ण अनेक विध आभरण से अलंकृत हैं ।
आकाश मेघों से आच्छन्न हैं ।

कृष्ण भी आच्छन्न हैं क्योंकि गृह के मध्य में निवास कर रहे हैं ।

आकाश में तमोगुणभूत अन्धकार है ।

कृष्ण में लोक व्यामोहन शक्ति तमोवत है ।

वल्लभ ने सूर्य के त्रिविध रूपों का भी उल्लेख किया है——

सूर्य का आध्यात्मिक रूप 'पर्जन्य' है ।

सूर्य का आधिभौतिक रूप 'आदित्य' है ।

सूर्य का आधिदैविक रूप 'सम्वत्सर' है । अतः सूर्य ही पर्जन्य है ।

श्लोक ३५—'श्रुत्वापर्जन्यनिनदं मण्डूकाव्यसृजन् गिरः' (भा. १०।२०।९)

'जिस प्रकार प्रथम मौन धारण करने वाले ब्राह्मण नियम व्यतीत होने पर ध्वनि करते हैं उसी प्रकार पर्जन्य के निनाद से मण्डूकों ने ध्वनि की ।'

वीरराघव का कथन है कि आचार्य के समीप छात्र को मौन रहना चाहिये । वल्लभ का कथन है कि कलियुगी ब्राह्मण मुख्यर्तु वसन्त की अनभिज्ञता के कारण मौन रहते हैं (सु. १०।२०।९)-

"पूर्वं कलिस्थाः ब्राह्मणाः प्राक् शयानाः एव भवन्ति ।"

कलियुगी ब्राह्मणों ने सम्वत्सर के मध्य प्रावृट् आने पर धर्म किये थे, वेदाध्ययन नहीं किया । मण्डूकोपजीवी ब्राह्मणों से वेद रक्षा कथमपि सम्भव नहीं है । उन्होंने इस अर्थ की पुष्टि के लिये 'गोमायुरदात्' श्रुति को उद्धृत किया है । अर्थ तथा शब्द द्वारा वेद निराकरण का तात्पर्य वेद-निन्दा नहीं है । उन्होंने यह भी लिखा है कि पुष्टिमार्गीय सभी व्यक्ति सुखी हैं—

'जीवाः नद्यः पर्वताश्च मार्गाः कामिन्य एव च
विद्यावान् चन्द्रमा बर्ही भक्ता वातापसास्तथा ।
गृहिणो वैदिका मार्गा राजानश्चेति कीर्तिता
त्रिविधाः सर्व एवैते मास भोग्याः प्रकीर्तिताः ।।'
सर्वेप्येते वृष्टि काले सुखं दुःखं च लेभिरे
पुष्टिमार्गस्थिताः सर्वे सुखं प्रापुर्न चापरे ।।

'गिरयोवर्षधाराश्च' का अभिप्राय है कि अन्तः सार व्यक्ति बाह्य आक्रमणों से भयभीत नहीं होता । 'लोकबन्धुषु मेघेषु' का तात्पर्य है कि विद्युत् कामिनी के समान है । जो लोक सेवा निरत पुरुष में स्थिर नही रहती ।

श्लोक ३६—'धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ।'

(भा. १०।२०।१८)

'महेन्द्र धनु निर्गुण होने पर भी शोभित होता है। अतः विजातीय भी विजातीयों में शोभा प्राप्त करता है। मेघागम से मयूरों का प्रसन्न होना स्वाभाविक है, भगवज्जन भी त्रिविध ताप सन्तप्त मानवों की वेदनाओं के निवारणार्थ गृहस्थों के आश्रमों में जाते हैं।

श्लोक ३७—**'तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्०'**

(भा. १०।२१।३)

उक्त श्लोक में सनातन गोस्वामी ने काश्चित् पद से राधा का उल्लेख किया है (वृ. तो. १०।२१।३)। उन्होंने यह भी लिखा है कि राधा ने ललितादि सखियों के समक्ष वेणुगीत का वर्णन किया था। यह वेणुगीत 'बर्हापीडं' श्लोक से प्रारम्भ होता है। विजयध्वजाचार्य ने 'बर्हापीडं' के साथ एक अन्य श्लोक भी उद्धृत किया है जिसे अन्य टीकाकारो ने स्वीकार नहीं किया है—

बर्हापिच्छो वनचर वपुः कर्णयोः कर्णिकारः
सव्ये बाहौ निहितवदनः सज्जमन्यत्र हस्ते
भ्रू विन्यासांगुलिभिरणयन् गापयन् गोपवृन्दान्
भूत ग्रामन्तर्हि रमयन् ब्रह्म गान्धर्वमेव ॥ (प. र. १०।२१।५)

बर्हापीडं की विविध व्याख्याएँ की गई हैं।

श्लोक ३८ —**बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं**
बिभ्रद् वासः-कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥

(भा. १०।२१।५)

जीवगोस्वामी ने नटवर के कई अर्थ किये हैं (क्र. स. १०।२१।५)—नट जैसे शरीर वाला, वर की तरह शरीर वाला, नट से भी श्रेष्ठ तथा जिसे देखकर सब प्रसन्न हों। श्रीधर स्वामी ने नट-वर को पृथक् मानकर 'नटवद्वरं वपुः बिभ्रत्' नट की तरह 'श्रेष्ठ वपु धारण करने वाला' अर्थ किया है (भा. दी. १०।२१।५)। वीरराघव ने 'नटात्मक वर की भाँति वपु धारण किये' अर्थ किया है। वल्लभाचार्य ने कृष्ण का दो प्रकार का शरीर माना है—वरप्रत्यग्र भोक्ता है, भगवान् हृदय में भी स्थित है (सु. १०।२१।५)। विश्वनाथ ने श्रीधर का ही अनुकरण किया है (सा. दी. १०।२१।५)। शुक सुधी ने शिव उपास्य वपु भी माना है। शुक सुधी का अर्थ अधिक संगत है, क्योंकि नटराज शिव कहा जाता है। पाणिनि को भी नटराज ने १४ सूत्र दिये थे।

वर्हापीडं--(मयूर पंख का मुकुट) यह राधिका के ईक्षण साम्य के कारण है, राधिका का ईक्षण मेरे शिर पर हो, अतः मोरमुकुट धारण किया है—

'राधाप्रियमयूरस्य पत्रं राधेक्षणं प्रभम्
विर्भात शिरसा कृष्णस्तस्याश्चूडानिभं यतः ।'

जैसे नट सामाजिकों के विनोदार्थ अनेक वेषों को धारण करता है, वैसे ही कृष्ण भी स्वकीयों के विनोदार्थ नट बनते हैं ।

कर्णयोः कर्णिकारम्—'कर्णिकारं' में एकवचन का प्रयोग किया गया है, तथापि दो कान होने से दोनों में ही इसे सम्बद्ध मानना चाहिये । यह पीत रङ्ग का पुष्प होता है, भाषा में इसे कन्हेर कहते हैं । यह शृंगार रस का उद्बोधक है, शृंगार के दो भेद होते हैं--संयोग, विप्रयोग । परन्तु श्रोत्र से दोनों का सम्बन्ध है । अतः कर्णिकार शब्द से शृंगाररस का उच्छलित होना स्पष्ट है । इस पुष्प को 'कर्ण फूल' अलंकार की भाँति धारण करने का उल्लेख भी प्राप्त होता है । ब्रज में आज भी ग्रामीण समुदाय कानों के ऊपर एक इंच लम्बे पीत पुष्प को शोभा की अतिशयता धारण करते हैं । एक टीकाकार ने इस पुष्प को 'सूर्यमुखी' लिखा है—

'यत्र यत्र सूर्यो भवति तत्र तत्र तत्सम्मुखं भवति ।'[1]

इस पुष्प को कभी वाम कभी दक्षिण कर्ण में भी धारण किया जाता था । यह जीवगोस्वामी का मत है ।[2] कुछ ने इसे गुलाब का पुष्प माना है और इससे अपनी नायक शालीनता का विज्ञापन किया है—

'जलस्थल कमलयोर्मध्ये स्थल कमलत्वेन 'गुलाब' पुष्पमिति लक्ष्यते सौरभ्यधिकत्वात् । एकमेव गुलाब पुष्पं स्वहस्तेधृत्वा नासिकोपान्ते नीत्वा तमाघ्राय स्वनेत्रापांगे ब्रजनागरी मनोरंजयन् पुनस्तमेव कर्णोपान्ते नीत्वा स्वस्य नायकशालि प्रकृतिमनुकुर्वन् वर्तते । एवमत्र द्वयोः कर्णयोरेक पुष्प धारणे तात्पर्यं रसज्ञा प्राहुः । अनेन पुष्प धारणेन वाण धारित्वं सूचितम् ।'[3]

यह अर्थ अधिक संगत है क्योंकि गुलाब में सुन्दर गन्ध भी होती है । 'कन्हैर' में सुगन्ध नहीं होती ।

---

१. रामकृष्ण कृत प्रेममंजरी १०।२१।५ । २ वृहत्क्रमसन्दर्भ १०।२१।५ ।
३. पं. बन्ना जी कृत संग्रह (मथुरा) ।

विभ्रदास—कर्णिकार वाण है, पीतवस्त्र धनुष स्थानीय हैं और प्रतिदायक हैं। आचार्य वल्लभ ने पीतवस्त्र को माया संज्ञा दी है। यह भी लिखा है कि जब गोपिकाओं को रसोद्‌वोध होगा तब वे इस माया को नहीं गिनेंगीं।

वैजयन्तीं च मालाम्—वैजयन्ती माला में मेघमुक्ता, गजमुक्ता, मत्स्य मुक्ता, शंख मुक्ता, वंश मुक्ता तथा सूकर मुक्ता ग्रथित होते थे।[1] ये 'पाँच रत्न' पांच तत्व के भी प्रतीक हैं—भूमि का प्रतीक हीरा, जल का मुक्ता, अग्नि का मूंगा, पवन का पुष्पक, आकाश का नीलम—

भूमौ वज्रं जले मुक्ता वन्हौ विद्रुमको मणिः
पवने पुष्पकं ज्ञेयं नीलमाकाश एव च।
पंचतत्वात्मिका शुद्धा ज्ञान सूत्रेण गुम्फिता
एतद्रत्नमयी माला वैजयन्ती प्रकीर्तिता॥'[2]

वैजयन्ती तथा वनमाला में भेद है। वनमाला पांच पुष्पों की बनी होती थी—तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात और कमल। यह माला आपाद लम्बिनी होती थी—

तुलसी कुन्द मन्दार पारिजात सरोरुहैः
पंचभिः पुष्पैरेतैर्वनमाला प्रकीर्तिता।[3]

आचार्य वल्लभ ने वैजयन्ती माला को सर्वजय प्रकाशिका माना है।[4]

रन्ध्रान् वेणोरधर सुधया पूरयन्—'वेणु छिद्रों को अधर सुधा से परिपूर्ण करते हुए।' अधर सुधा से यद्यपि एक छिद्र पूर्ण होता है तथापि वह उच्छलित होकर सभी छिद्रों में भर जाती थी। आचार्य वल्लभ ने सुधा के तीन भेद किये हैं—देवभोग्या, भगवद्‌भोग्या, सर्वभोग्या। लोभात्मक अधर पर सुधा विराजमान है, उसका साक्षात् अनुभव उच्छिष्टता से सम्भव नहीं, अतः वह श्रोत्रपेया है एवं वह ब्रह्मानन्द से भी बढ़कर है। कृष्ण के अधर वेणु को निश्छिद्र करना चाहते थे, अतः कृष्ण के अधर संस्पर्श से वेणु चेतना युक्त हुआ उससे तीनों जगत् उन्माद मुक्त बन गये। तदनन्तर सुधा ने वेणु को कठोर और अचेतन स्वभाव, अधिकारी जानकर उसी के छिद्रों से बाहर निकल कर, व्रजबालाओं के कर्ण द्वार से उनके मन में घुस कर अपने को सफल बनाकर पराक्रम प्रदर्शन में लग गई। वेणु एवं मुरली में भेद निम्न प्रकार से है—
(सारार्थ दर्शिनी १०।२१।५)

---

[1] जीमूतश्च करीमत्स्य शंख वंश वराहजा.......प्रेममंजरी १०।२१।५

[2] प्रेम मंजरी १०।२१।५ [3] वही [4] सुबोधिनी १०।२१।५

वेणु– १२ अंगुल दीर्घ, अंगुष्ठ तुल्य स्थूल एवं छः छिद्रों का होता था––

द्वादशांगुल दीर्घस्तु स्थौल्येंगुष्ठ मितस्तथा
षड्मीरन्ध्रे सुसंवृत्तो वेणुरित्यमिधीयते ॥

मुरली—दो हाथ की तथा ४ छिद्र की होती थी—

हस्तद्वय मितायाम मुखरन्ध्र समन्विता
चतुः स्वर समायुक्ता मुरली चारुवादिनी ॥

वंशी—यह १७ अंगुल दीर्घ तथा ६ छिद्र युक्त होती थी––

नवच्छिद्रान्विता वंशी तार घोर प्रवर्तिनी
अंगुलैः सप्तदशभिः परिच्छिन्ना वुधैर्मता ॥

भगवान अधमों का उद्धार करने के लिये वेणु धारण करते थे, यह आचार्य वल्लभ का मत है—

वेणुर्गर्जति हर्षेण मुकुन्द वदनाश्रितः
कुर्वन्तु मा भयं लोका अधमोद्धारको हरिः ॥ (सु. १०।२१।५)

गोपवृन्दैः गीत कीर्तिः—वृन्दावनं प्राविशत् ।

'गोप वृन्दों द्वारा गाई गई कीर्ति वाले भगवान् वृन्दावन में प्रविष्ट हुए।' 'गोपवृन्दैः पद के अनेक अर्थ किए गए हैं—

१. गोपालों द्वारा गीतकीर्ति––(गोपानां वृन्दास्तैः स्वसखिभिः)

२. देवों द्वारा गीत कीर्ति––(गां = पृथ्वीं वृष्ट्यादिना पान्तिगोपाः = देवाः)

३. एकादश रुद्रों द्वारा गीत कीर्ति—(गां = वृषभंपान्तीति गोपाः = एकादशरुद्राः तैः)

४. ब्रह्मसमूह द्वारा गीत कीर्ति–(गां = वेदलक्षणां गिरंपांतीति गोपाः = ब्रह्मसमूहाः)

५. सूर्यों द्वारा गीत कीर्ति (गां = पृथ्वी तद्गत प्रजासर्वाः पान्तीति गोपाः = सूर्याः तैः)

६. इन्द्रों द्वारा गीत कीर्ति—(गां = स्वर्गं पान्तीति गोपाः = १४ इन्द्राः तैः)

७. मनुओं द्वारा गीत कीर्ति––(गां=पृथ्वीं सद्धर्म प्रवृत्यादिना पान्तीतिमनवः तैः ।

८. चन्द्र तारादिद्वारा गीत कीर्ति––(गां = पृथ्वीं तद्गतौषधीनामं-

कुर जनकत्वात् रात्रावंधकार निरसनेन ताप हरणादिना च तद्गतप्रजा अपि पान्तीति चन्द्र तारकादयः तैः)

९. शेष मुख द्वारा गीत कीर्ति–(गां=पृथ्वीं फणैकदेश धारणेनपातीति गोपः=शेषः तस्य वृन्दैः=मुख समूहैः)

१०. सनकादि द्वारा गीत कीर्ति–(गां=पृथ्वीं पंचभूतोप लक्षितं द्वन्द्वं पान्तीति गोपाः=सनकादयो मुनयस्तेषां वृन्दैः परम भागवतैः)

११. हरिभक्तों द्वारा गीत कीर्ति–(गा=पशवः ज्ञानहीना प्राणिनः तान् भक्ति मार्ग संप्रदाये प्रवर्तनेन पान्तीति गोपाः=हरिभक्ताः तेषां वृन्दैः)

१२. दिग्गजों द्वारा गीत कीर्ति–(गां=पृथ्वीं स्वस्थितया चतुर्दिशं पान्तीति गोपाः=दिग्गजास्तैः)

१३. सखि समूह द्वारा गीत कीर्ति-(गोभिः=इन्द्रियैः स्वदर्शन स्पर्शनादिना सर्वजीवान् पापहरणादिना च पान्ति रक्षन्ति स्वसखि समूहाः=पार्षदास्तैः)

उपर्युक्त अर्थ पं० बन्नाजी पौराणिक के संग्रह से उपलब्ध किये गये हैं। गोपवृन्दै की भाँति 'गीत कीर्तिः' पद के भी अनेकार्थ किये हैं––

१. ब्रज नारियों द्वारा गीत कीर्ति–(गीता ब्रजनागरीभिः कीर्तिस्य)

२. गीत=वेणुनाद में जिसका यश है। (गीते वेणुनादे कीर्तिर्यशोयस्य स)

३. शास्त्रों में जिसका गान है। (गीता शास्त्रेषु कीर्तिर्यस्य)

४. गीतों द्वारा जिसकी कीर्ति गाई गई है। (गीतैरपि मिलित्वा गीता कीर्तिर्यस्य)

५. वेणुनाद कीर्ति वाले–(गीतं–वेणुनादं लक्षणमेव कीर्तिर्यस्य)

गीत लक्षणम्–

तालस्वरसमायुक्तं राग रागांग भूषितं
संस्कृतं प्राकृतं वापि गीतं गीत विदोविदुः ॥

वृन्दारण्य के भी तीन अर्थ प्रसिद्ध हैं––वृन्दा सखी के वन में, वृन्दा देवी के वन में तथा राधा के वन में।

मत्स्य पुराण में लिखा है कि राधा वृन्दावन में है–

वाराणस्यां विशालाक्षी विमलापुरुषोत्तमे
रुक्मिणी द्वारवत्यां च राधा वृन्दावने वने ॥
वृन्दावनाधि पत्यं च दत्तं कृष्णेन तुष्यता ॥

कृष्ण ने सन्तुष्ट होकर वृन्दावन का स्वामित्व राधा को दिया था।

श्लोक ३९—'वक्त्रं ब्रजेश सुतयोरनुवेणु जुष्ट'' (भा. १०।२१।७)

ब्रजेश सुतयोः का अर्थ है–कृष्ण और बलराम। अथवा ब्रजेश सुत 'राधा और कृष्ण' इनके अधर पर जिसने वेणु को स्थापित देख लिया उनका जीवन धन्य है-–

'ब्रजेशश्च ब्रजेशश्च ब्रजेशौ एक शेषः पुनः सुतश्च सुता च सुतौ, पुनः षष्ठी तत्पुरुषः यथा संख्यतया ब्रजेश सुतयोरिति राधाकृष्णयोरिति कृष्णराधयोर्वक्त्रं निपीतं, एकत्वं जातिविवक्षया।' (वृ, क्र. स. १०।२१।१०)

श्लोक ४०—'वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्ति' (भा. १०।२१।१०)

सनातन गोस्वामी का कथन है कि गोपियों ने 'सखि' शब्द राधा के लिये प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार इस अध्याय के सत्रहवें श्लोक में समागत 'दयितोरु गायः' पद से राधा का अर्थ ही किया है–(सा. द. १०।२१।१७)

'उरुः काम बीजादि रूपेण श्रीराधेति गायो गानं वैण्वादौ यस्याः'

उक्त श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण को देवकी का पुत्र कहा है, किन्तु प्रसंग में यशोदा का ही उल्लेख चला आ रहा है। विश्वनाथ चक्रवर्ती का मत है कि नन्द पत्नी यशोदा का नाम भी देवकी था—

द्वे नाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीत्यपि
अतः सख्यमभूत्तस्या देवक्या शौरिजायया ॥' (सा. द. १०।२१।३०)

उक्त प्रमाण में यह स्पष्ट निर्देश है कि यशोदा का देवकी नाम होने के कारण ही वसुदेव पत्नी देवकी से सख्य भाव था। अतः जहाँ भी देवकी शब्द आने के कारण यशोदानन्दन के बारे में संशय हो वहाँ देवकी का अर्थ यशोदा ही करना उपयुक्त है।

वेणुनाद पर सर्वाधिक सामग्री शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में उपलब्ध होती है। आचार्य वल्लभ ने वेणुनाद को अलौकिक माना है अन्यथा वह सभी गोपी एवं ग्वालों को सुनाई पड़ता। (सु. १०।२१।१०)

श्लोक ४१—'हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः।
चेरुहंविष्यं भुंजानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्॥ (भा. १०।२२।१)

चीर लीला का वर्णन २२ वें अध्याय में है आचार्य वल्लभ ने गोपियों को २ वर्गों में रखा है–अन्यपूर्वा, अनन्य पूर्वा। अन्य पूर्वाओं का त्याग एवं अनन्यपूर्वा वर्ग की गोपियों का संस्कार कृष्ण ने किया था। ऋषि रूपा गोपियों ने हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में कात्यायनी का व्रत किया था। कात्यायनी आधिदैविकी तामसी शक्ति है और दुर्गा राजसी। गोपियाँ यमुनातट पर एवं घर पर भी कात्यायनी का पूजन किया करती थीं (सु. १०।२२।२)।

सनातन गोस्वामी का कथन है कि 'कात्यायनी' कात्य मुनि के वंश की प्रकाशिका थीं अतः यह नाम सार्थक है। यह गोकुलेश्वरी भी है इसके द्वारा अखिलेश्वर की प्राप्ति भी सरल है। अतः इसका पूजन आवश्यक था—(वै. तो. १०।२२।४)

एकेयं प्रेमसर्वस्व स्वभावा गोकुलेश्वरी
अनया सुलभो ज्ञेय आदिदेवोऽखिलेश्वरः।
अस्या आवरिका शक्तिर्महामायाखिलेश्वरी
यया मुग्धं जगत्सर्वं सर्वे देहाभिमानिनः।।'

वीरराघव कात्यायनी को भद्रकाली की अवस्था विशेष मानते हैं (भा. चं. चं. १०।२२।४)। आचार्य वल्लभ ने भद्रकाली पद की व्याखया 'भद्र कालः' की है, स्पष्ट है कि वे शक्तिपरक न मानकर 'कालपरक' भद्रकाली पद को मानते हैं (सु १०।२२।२)। 'चीर लीला' प्रसंग में विश्वनाथ चक्रवर्ती ने आलाप लिखे हैं वे बड़े ही मनोरम हैं (सा. द. १०।२२।१४)।

श्लोक ४२—प्रयात देवयजनं…………सत्रमांगिरसं नाम०'

(भागवत १०।२३।३)

यह अंगिरस सत्र माथुर ब्राह्मणों द्वारा एकान्त में किया जा रहा था, उस समय कंस के भय से यागादि प्रत्यक्ष रूप में नहीं किये जाते थे। कर्मकाण्ड के वैभव पर इस प्रसंग द्वारा पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। कृष्ण के ओदन याचा करने पर भी ब्राह्मणों ने अस्वीकार कर दिया था। यह सत्र स्वर्ग कामना से किया जाता था एवं इसके सम्पादन के लिए ४० दिवस का अनुष्ठान आवश्यक होता था। आचार्य विश्वनाथ ने उक्त प्रसंग में 'द्विजाः' शब्द की व्युत्पत्ति बड़ी विचित्र की हैं। कृष्ण ने 'द्विजाः' पद द्वारा उनकी भर्त्सना की है—यह अर्थ किया है तथा विपरीत लक्षणा से 'धर्मवित्तमाः' अर्थ निकलता है--

'अतो यूयं द्विजाः पितृद्वय जाता एवेत्याक्षेपश्च धर्मविद्वमा इतिविपरीत लक्षणया।' (सा. द. १०।२३।७)

हमें यह उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि कृष्ण उनकी भर्त्सना 'पितृद्वय' से उत्पन्न शब्द द्वारा नहीं कर सकते क्योंकि वे 'न ब्राह्मणान्भेदयितं' इत्यादि के द्वारा सर्वत्र ब्राह्मण पूज्यता के पोषक रहे हैं।

'दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सोत्रामण्याश्च सतमाः' की व्याख्या किसी टीकाकार ने स्पष्ट नहीं की।

श्लोक ४३—'मेवं विभोर्हति भवान् गदितुं नृशंसं०' (भा. १०।२३।२६)

उक्त श्लोक उस समय वर्णित है जब ऋषि-पत्नियां भगवान् का वन समागमन सुनकर उनकी शरण में नाना पकवानों को लेकर आईं थीं और कृष्ण ने उन्हें लौटकर चले जाने को कहा, तब उन्होंने अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा था––'मेवं विभो' (अर्थात् आप ऐसा न कहें)। आचार्य वल्लभ ने यहां अपनी सम्प्रदाय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि भगवान पुष्टिमार्ग का प्रवर्तन करने के हेतु ही अवतार कारण करते हैं(सु. १०।२३।२६)—

'आदौ पुष्टिमार्ग प्रवर्तनार्थं भगवानवतीर्णः'

श्लोक ४४—'भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः
वीक्ष्यरन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः (भागवत १०।२६।१)

'खिले हुए मल्लिका के पुष्पों वाली उन शरद् ऋतु की रात्रियों को देखकर भगवान ने योगमाया का आश्रय लेकर रमण करने की इच्छा की।'

यद्यपि परीक्षित भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन सुन रहे थे तथापि शुकदेव जी द्वारा रासलीला का वर्णन उनकी अहैतुकी कृपा थी। भगवान् शब्द द्वारा ऐश्वर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य इन षड् गुणों में सम्पन्न लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही अभिप्रेत हैं। अपि शब्द गोपियों के पूर्वानुराग का द्योतक है। 'रात्रीः' के बहुवचन से उनकी ओर संकेत है जिनमें कात्यायनी व्रत के पश्चात् रमण करने के लिए भगवान गोपियों को वचन दे चुके थे। 'ताः' पद भगवान के मन की चमत्कृति को प्रकट करता है। 'ताः गोपीः' का अर्थ है––उन गोपियों को देखकर कृष्ण भगवान ने रमण की इच्छा प्रकट की। शरदोत्फुल्लमल्लिका द्वारा वृन्दावन की अनिर्वचनीय शोभा कही गई है। मल्लिका केवल उपलक्षण है, प्रायः समस्त पुष्प जातियों का विकसित होना अभीष्ट है। रासलीला के लिये उन्हें योगमाया का आश्रय लेना पड़ा था। जीवों को जगत् से सम्बद्ध करने वाली शक्ति का नाम माया है। इसे अविद्या तथा अज्ञान शब्दों द्वारा भी व्यवहृत किया गया है। यहाँ माया शब्द का अर्थ कृपा भी है। अतः कृपापूर्वक रमणेच्छा का यह अर्थ भी किया जाता है। इसके विभिन्न अर्थ किये गये हैं––

१. योगमाया—नाम 'संकल्प' का है अर्थात् भगवान ने सकल्प किया। (भा. चं. चं. १०।२६।१)

२. योगमाया—स्वरूप सामर्थ्य का ही नाम है। (प.र. १०।२६।१)

३. योगमाया—दुर्घट घटना घटीयसी शक्ति है। (क्र.सं. ,,)

४. योगमाया—सच्चिदानन्द की शक्ति विशेष है। (वृ. तो. ,,)

५. योगमाया—-ऐश्वर्य युक्त माया का नाम है। (वही)

६. योगमाया—योग=आत्मारामता, माया=आवरणात्मिका, कापट्य का सामीप्य होंने पर भी स्वस्वरूपाभिव्यक्ति। (वृ. तो. १०।२६।१)

७. व्रज सुन्दरियों को, योग=संयोग होंने पर भी वंचना ग्रहण कराकर सिधि प्रदान करना। (वही)

८. नित्य वक्षः स्थल संयुक्त जो, मा=लक्ष्मी उसके द्वारा सेव्यमान।

९. संयोग के लिये जो माय (शब्द) युक्त है अर्थात् वंशी। (वही)

१०. सम्भोग के लिये माय=मानयुक्त अर्थात् राधा। (वही)

११. योग=सम्भोग, मा=लक्ष्मी (सम्पत्तिः) उसे जो प्राप्त करे, अर्थात श्रीराधा। (सा. द. १०।२६।१)

१२. स्वीयाचिन्त्य चित् शक्तिवृत्ति ही योगमाया है।[1]

१३. निश्चल कृपा ही योगमाया शब्द व्यपदेश्य है।[2]

१४. अयोगमाया—पदच्छेद द्वारा, अर्थात् ब्रह्मविचार शून्यों पर जो कृपा, उसका आश्रय लेकर – 'अयोगेषु चित्तनिरोधादियोगशून्येषु स्वस्मिन्नयुज्यमानेषुवा या माया=कृपा।[3]

१५. गोपियों की स्वरूप विच्छित्ति के लिये प्रवृत्त जो माया—'तासामयोगाय=स्वस्वरूप विच्छेदाय प्रवृतायामाया।[4]

१६. उन गोपियों को मनोहर लीला आदि द्वारा अपनी ओर आकर्षित करने वाली जो माया—'तासां योगाय स्व मनोहरलीला श्रवण गानादिना स्वस्मिन् योजनाय या माया=कृपा।[5]

१७. कूटस्थ स्वरूप में जो मा=प्रभा (साक्षात्कार रूपा) उसमें स्वरूप सम्पादन के लिए वृत्तियों द्वारा उपाश्रित।[6]

१८. निः संग आत्माविषक प्रभा।[7]

१९. चित्त वृत्ति निरोध से अन्वित प्रभा।[8]

२०. गोपिकाओं की अंग शोभा में संलग्न मन होकर।[9]

२१. अचिन्त्य शक्ति।[10]

२२. जिसका आश्रय लेकर रमण करना चाहा वह दुर्ज्ञेया है।[11]

२३. योगमाया=श्रीराधा।[12]

---

१ से ९. भावभाव विभाविका १०।२९।१

१० से १२. विशुद्ध रसदीपिका १०।२९।१

२४. योगमाया–श्रीराधा। (सि. प्र. १०।२६।१)

२५. गोपियों के इष्ट योग के लिए कपट आश्रय करने वाले।[1]

२६. योगमाया=अपनी असाधारण शक्ति (अन्यया इतने व्रजवासी जनों का मोहन सम्भव नहीं)।[2]

२७. योगमाया=मुरली।[3]

रासलीला का विचार करते ही चन्द्रोदय हुआ। इस पर अनेक उत्प्रेक्षाऐं की गई हैं (पं. श्रीवर बन्ना जी संग्रह, मथुरा)–

१. मानों चन्द्रमा पूर्व दिशा रूपी स्त्री का मुख है।
२. शरद रूपी स्त्री के कंठ का जुगनू है।
३. गोपियों के अनुराग की गठरी।
४. मानों चन्द्रमा श्रृङ्गार दर्पण या विराट् का नेत्र है।
५. मानों चन्द्रमा सत्व गुण की गठरी है।
६. मानों चन्द्रमा आकाश ब्रह्म का कमल हृदय है।
७. मानों चन्द्रमा अमृत पात्र या भूषण पात्र या सुदर्शन चक्र है।
८. मानों चन्द्रमा काम चिह्न या संसार वृक्ष का पुष्प है।
९. मानों चन्द्रमा पृथ्वी के चरण का अनवट है।
१०. मानों चन्द्रमा मन आकर्षण यन्त्र है।
११. मानों चन्द्रमा आनन्द सरोवर का कमल है।
१२. मानों चन्द्रमा वाराह की डाढा या सन्ध्यांगना की गेंद है।
१३. मानों चन्द्रमा तारागण रखने का टिपारा है।

चन्द्रोदय से अनेक अभिप्राय लिखे हैं (पं. श्रीवर बन्ना जी संग्रह)—

१. मैं अनेक कान्ताओं द्वारा शोभित हूँ वैसे ही तुम भी बनो।
२. मेरी प्रभा जैसे पृथ्वी स्वर्ग दोनों में दीप्ति है ऐसे ही तुम्हारी भी होगी।
३. मुझ से 'बुध' की उत्पत्ति हुई थी, तुमसे बोधोत्पत्ति होगी।
४. मेरी भांति तुम भी प्रिया मुख का चुम्बन करो।
५. उडुराज होंने पर भी मेरा पूर्व सिद्धा से अनुराग है, तुम्हारा भी अनुराग बना रहे।
६. मैं कुल वृद्ध होने पर भी विलासी हूँ, तुम तो किशोर हो।

---

१ से ३. सिद्धान्तार्थ दीपिका १०।२६।१

७. मैं आशा (दिशा) का मनोरथ पूर्ण कर रहा हूँ, तुम भी भक्तों के मनोरथ को पूर्ण करोगे।

८. मैं तो तुम्हारा श्यालक हूँ, अतः मुझसे संकोच का प्रश्न ही नहीं।

धनपति सूरी ने रासलीला का अर्थ भजनानन्द पक्ष में भी घटित किया है, उनका कथन है कि भगवद्विरह संयोगोत्थ सुख दुःख से प्रारब्ध पाप-पुण्य नष्ट हो जाते हैं (गूढ़ार्थ दीपिका १०।२६।१०)।

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इसका खण्डन करते हुए लिखा है–यह व्याख्या वैष्णवों के मत से युक्त नहीं (सा. द. १०।२६।१०)––

'भगवद्विरह संयोगोत्थ दुःखसुखाभ्यां प्रारब्ध पापपुण्यानि नष्टानि तेषां स्वफलभोगैक नाश्यत्वादिति व्याख्यातु वैष्णवानां मतेन युज्यते।'

आचार्य वल्लभ ने 'न चैवं विस्मयः कार्यों' की टीका में भी पुष्टि मार्ग अंगीकार करने पर अधिक बल दिया है (सु. १०।२६।१६)।

श्लोक ४५—'कृत्वा मुखान्यव शुचः..............चरणेन भुवं लिखन्त्य०।'

(भागवत १०।१६।२६)

'गोपियाँ कृष्ण की वंशी की तान से खिंची हुई चलीं आईं उन्हें भगवान ने लौटकर जाने के लिये कहा, तो उन्होंने पैरों के अंगुष्ठ से भूमि का स्पर्श किया। काम बाण से प्रविद्धांग होंने पर वरांगना भूमि का पादांगुष्ठ से घर्षण करती हैं—

'कामबाण प्रविद्धांग खिन्नयोनिर्वरांगना
पादांगुष्ठ नखेनाधोपदेनालिखती क्षितिम्।'[1]

सनातन गोस्वामी का कथन है कि भूमि की ओर देखना उसमें समा जाने के हेतु से था[2]—

धनपति सूरि ने 'भुवं लिखन्त्यः' के अन्य भाव भी लिखे हैं[3]––

१. हमारा ही अपराध है (कृष्ण से) तुम्हारा नहीं।

२. वचन साक्षी वसुन्धरा है क्योंकि सबकी आधारभूता है।

३. किसी भुननेक सुन्दर ने चित्त ग्रहण कर लिया है, अतः अपने में जारवती लक्षण घटित करने के लिये।

४. अब मुख की शोभा अलंकारों से नहीं मृत्तिका लेप से करेंगी।

---

[1] **भावभाव विभाविका १०।२६।२६**

[2] **वृहद् वैष्णव तोषिणी १०।२६।२६**

[3] **गूढ़ार्थ दीपिका १०।२६।३०**

५. हम से श्रेष्ठ तो यह भूमि है क्योंकि यह कृष्ण के पाद स्पर्श सुख का अनुभव तो करती है ।

६. इसने हमें कष्ट दिया है वैसे ही भूमि भाव प्राप्त कर स्वांग संस्पर्श से कृष्ण को पीड़ित करेंगी ।

७. व्रजभूमि में ऐसा कठोर चित्त कोई नहीं है अतः भूमिस्पर्श किया ।

८. क्या हमारे स्तन, भूमि, रज, तृण से भी कठिन हैं मानों इसे सूचित कर रही हैं ।

९. जो तुमने हमारे साथ व्यवहार किया वह अमिट हो गया, कहते भी हैं कि अमुक बात धरती पर लिख गई ।

१०. मिथ्या प्रतिज्ञ को भूमि कब तक धारण करेगी कहीं विदीर्ण न हो जाय ।

११. अथवा भूमि को सम्बोधित कर रही हैं--मात वसुन्धरे ! हमारा सहायक यहां कोई नहीं अतः सहायता करो, कृष्ण को बोध कराओ ।

१२. भूमि स्पर्श द्वारा मानों कृष्ण के हृदय की कठोरता का परिचय दे रही हैं कि वह हमारे प्रेमोद्रेक को देखकर भी द्रवित नहीं हो रहा है ।

१३. हमारा हृदय ही कठोर है जो विदीर्ण नहीं हो रहा ।

१४. मात वसुन्धरे ! अब कुछ कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं तुम में समा जाने की अभिलाषा है ।

१५. (भामिनी पक्ष में) हमारी पदधूलि भी दुर्लभ है ।

१६. धरती में समा जांय पर कृष्ण तेरे हाथ न आवेंगीं ।

१७. हठ की बात भूमिपति नन्द से कह देंगी ।

गोपियों के नीचे मुख के भाव[1]—

१८. कृष्ण के नेत्र कमल हैं गोपियों का मुख चन्द्र है, 'कमल' चन्द्रदर्शन से मलिन हो जाता है । अतः मुख नीचा किया ।

१९. अथवा मौन ग्रहण करो, इस चेष्टा ज्ञापनार्थ मुख नीचा किया ।

२०. अथवा कठोर वाक्य सुनकर भी हम जीवित हैं । अतः अपने देखने को मुख नीचा किया ।

---

[1] विशुद्ध रस दीपिका, १०।२६।२६ ।

२१. कृष्णवचन से कहीं हृदय तो विदीर्ण नहीं हो गये। अतः मुख नीचा किया।

२२. कटूक्ति कृष्ण की है या किसी अन्य की क्योंकि ये उन्मत्त प्रलाप कर रहे हैं। इस कारण की जिज्ञासा में मुख नीचा किया।

२३. गोपियों की धारणा है कि हमें रूठा देखकर अवश्य ही यह मनायेगा। अतः मुख नीचा किया।

२४. गोपियों के नेत्र कुमुद हैं, कृष्ण के वचन परुष होने से सूर्य के समान है, इस कारण मुख नीचा किया।

२५. गोपियों ने अपनी चेष्टा द्वारा ही कटु वचन वारण का उपाय ढूँढ़ निकाला। अतः मुख नीचा किया।

२६. कृष्ण हमसे इस प्रकार का व्यवहार नहीं करते अतः हम में कोई अन्य तो प्रविष्ट नहीं हुआ। इस विचार से मुख नीचा किया।

२७. आत्मा से पूछती हैं हमने क्या पाप किया? अतः मुख नीचा किया।

२८. क्या विधाता ने हमारे भाल में यही लिखा था, अतः उसे वांचने के लिये मुख नीचा किया।

२९. ज्ञात होता है कि अब भी प्रेमोद्रेक नहीं हुआ है अन्यथा कृष्ण ऐसे वचन न कहते। अतः मुख नीचा किया।

३०. कृष्ण कथनानुसार हम कहीं की न रहीं। इस विचार से मुख नीचा किया।

३१. ये वचन मन्द भाग्य के कारण है अतः मुख नीचा किया।

३२. गोपिका कहती हैं कि हमारा जन्म भूमि में व्यर्थ हुआ। अतः मुख नीचा किया।

३३. कृष्ण से सम्मान प्राप्त न करने पर मानों लज्जा सागर में डूब गयीं। अतः मुख नीचा किया।

३४. पति आदि की शंका से व्याकुल होकर मुख नीचा किया।

३५. वंशीनाद सुनकर अपनी सुध न रखकर आना मूर्खता है, इस विचार से मुख नीचा किया।

३६. लौटकर सखियों को मुख कैसे दिखलायेंगी। अतः मुख नीचा किया।

३७. हम अनेक अलंकार धारण करके आईं थीं किन्तु कृष्ण को भली नहीं लगीं। इस विचार से मुख नीचा किया।

३८. कुछ ने विचार किया था कि हमें देखकर कृष्ण आनन्दित होंगे किन्तु विपरीत बात हुई, अतः मुख नीचा किया ।

३९. हमारा प्रेम कृष्ण ने नहीं पहचाना अतः मुख नीचा किया ।

४०. सर्वदा 'नेति नेति' कथन उचित नहीं । अतः मुख नीचा किया ।

४१. मार्ग की स्त्रियों के प्रश्न से लज्जित होने के कारण मुख नीचा किया ।

४२. कृष्ण के मुख की अनल से हमारा बदन झुलस न जाय अतः मुख नीचा किया ।

४३. हमारे अन्तःकरण की ज्वाला नेत्र से निकलेगी अतः मुख नीचा किया ।

४४. कृष्ण की मोहन शक्ति नेत्र मार्ग से अन्दर चली गई है अब और अधिक न जाय इस भाव से मुख नीचा किया ।

४५. कोई गोपी विचार करती है कि मेरा शोकाक्रान्त मुख है, कृष्ण का कोपाक्रान्त अतः अब अधिक औदासीन्य न बढ़े इस भाव से मुख नीचा किया ।

४६. कृष्णोक्ति जन्य शोक से 'समुद्र कल्प' अश्रुधारा धारण करना सहज नहीं । अतः उसके भार न सह सकने के कारण मुख स्वतः नीचा हो गया ।

४७. प्रियचित्त में प्रीति उत्पन्न करने वाले स्त्री चांचल्य को धिक्कार है जो प्रीति लेश मात्र से पाषाण हृदय वाले के पास आयीं । अतः मुख नीचा किया ।

४८. विधात ! जब तुम अत्यन्त दुःख देने को प्रवृत्त हो तो जो और भी दारुण दुःख तुम्हारे पास हों दे दो । यह शिर तुम्हारे समक्ष है । (यह कोपावेश की उक्ति है)

४९. परस्पर नेत्र संयोग से परस्पर स्वभाव विपर्यास हो गया है, इस कान्त का दाक्षिण्य रूप हम में और हमारा अवहित्था लक्षण स्वभाव इसमें चला गया है । अतः अब ऐसा न हो, इस आशय से मुख नीचा किया ।

५०. कृष्ण ! अच्छे वचन कहे । और भी कहना हो कहो—शिर तुम्हारे आगे है ।

५१. नाराच धारा से क्यों मारते हो तीक्ष्ण तलवार से शिर काट दो । अतः मुख नीचा किया ।

५२. देव ! ऐसा मुख ही क्यों बनाया जो गोपाल बाल को भी अच्छा न लगा । अतः मुख नीचा किया ।

५३. देवियां कहेंगी कि मानरहित स्त्रियों को धिक्कार है । अतः मुख नीचा किया ।

५४. मानों कोई गोपी यह कह रही है कि हमें क्या उपदेश दे रहे हो, विषसम्पृक्त तुम्हारा मुख भी न देखेंगी । इस आशय से मुख नीचा किया ।

५५. प्रभो ! गोवर्द्धन धारण कर इन्द्रकोप से रक्षा इसीलिये की थी क्या' कि अपने हाथों ही गोपिकाओं का वध करूँगा ? अतः मुख नीचा किया ।

५६. अब कृष्ण अधिक न कहो इस आशय से मुख नीचा किया ।

५७. किसी पर पुरुष का मुख देखना उचित नही इस आशय से मुख नीचा किया ।

५८. हमारा मुखावलोकन भी दुर्लभ है । अतः मुख नीचा किया ।

५९. कृष्ण तुम धूर्त हो । परस्त्रियों को चाहते हुए भी लज्जा लेश शून्य हो, हम तो लज्जा समुद्र में निमग्न हो गईं ।

६०. औपपत्य अधोगति सम्पादक है, अतः परलोक भय से मुख नीचा किया ।

६१. लोकमर्यादा जानकर अधो मुख करने वाले कर्म नहीं कर सकतीं अतः अपनी अपकीर्ति भय आदि ज्ञापन के लिये ही मानों मुख नीचा किया है ।

६२. अन्तःकरण की उत्कण्ठ मुख विकास को देखकर ही न चली जाय- इस आशय से मुख नीचा किया ।

६३. हमारे अधर स्वप्न में भी दुर्लभ हैं, इसे द्योतित करने हेतु ही मुख नीचा किया ।

रास होने के पूर्व भगवान् कृष्ण के अन्तर्द्धान हो जाने पर गोपियों ने वृक्षों से भी उनका पता पूछा । आचार्य वल्लभ ने वृक्षों की व्युत्पति भी लिखी है । पीपल वृक्ष के हिलते पत्रों को देखकर निषेध की अभिव्यंजना व्यक्त कराते हुए विशुद्धरस दीपिकाकार ने एक सुन्दर श्लोक उद्धृत किया है—

'रे वृक्ष, तेरी शाखा दश दिशाओं में व्याप्त हैं, मस्तक आकाश में

लगा है, कोई तमाल कोमल रुचि वाला गोप तुमने देखा है क्या ? इस प्रकार गोपियों के पूछने पर उसने अपने पत्र संचालन से मानों निषेध कर दिया ।'

भो भो भूरुह ते दिशा दशगता शाखाशिरश्चाम्बरम्
गोपः कोऽपि तमाल कोमल रुचिः कच्चिन्नदृष्टस्त्वया ।
एवं ताभि रुद्राहृदे वत मुहुर्वक्तुं वचोऽनीश्वरः
पत्रैरेव निसर्ग चंचलतरुः प्रत्युत्तरं दत्तवान् ॥[1]

गोपियों ने मालती एवं जाती पुष्प के वृक्षों से भी पूछा, किन्तु 'मालत्यदर्शि' श्लोक में भी जाती उल्लेख है, जाति का पर्याय होता तो पुनरुक्ति न होती । वीरराघव को भी इनके भेद का ठीक पता नहीं था, अतः उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है कि—

'अत्र मालती जात्यो रवान्तर विशेषो द्रष्टव्यः ।'[2]

श्रीधर स्वामी ने—'जाति यूथि के' पर्यन्त भाग को सम्बोधन माना है ।[3] आचार्य वल्लभ ने इन चारों को लता माना है, और इनमें सुगन्धि पुष्पों का उद्‌गम भी माना है ।[4] यह अर्थ विशुद्ध रस दीपिकाकार को भी अभीष्ट है तथा उन्होंने इन्हें गोपियों का नाम भी माना है ।[5] आचार्य वल्लभ का पक्ष अधिक उपयुक्त है । व्रज में मालती जाति आदि को अब भी 'लता' के नाम से व्यवहृत करते हैं ।

श्लोक ४६–'जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥'
(भागवत १०।३१।१)

गोपिका गीत में प्रत्येक श्लोक में द्वितीयाक्षर की आवृत्ति श्लोक के चारों चरणों में है । यथा 'य' काराक्षर की आवृत्ति जयति, श्रयत, दयित तथा त्वयि में है । इस प्रकार अन्य श्लोकों में भी यह क्रम है, तथा प्रथमाक्षर एवं सप्तमाक्षर का साम्य चारों चरणों में है । यथा—'जयति' के प्रथमाक्षर में 'ज', 'जन्मना व्रजः' द्वितीय चरण में 'जकार' है । यह क्रम कतिपय श्लोकों में पूर्ण घटित है । इसे अलंकारिक समय सिद्ध क्रम माना है—

'एषु पद्येषु पाद द्वितीयाक्षरं हलेक्यं, केषुचित् पादेषु प्रथमा सप्तमाक्षरं हलैक्यं, आलंकारिक समय सिद्ध सावर्ण्यात्, क्वचिदैक्यमिति द्रष्टव्यम् ।'

---

[1] विशुद्ध रस दीपिका १०।३०।५
[2] भागवत चं. चं. १०।३०।७
[3] भावार्थ दीपिका १०।३०।७
[4] सुबोधिनी १०।३०।७
[5] विशुद्ध रस दीपिका १०।३०।७

इस गोपिका गीत में अनेक चित्रकाव्य भी भरे पड़े हैं ।[१]

३३ वें अध्याय में रास का वर्णन है ।

श्लोक ४७—'अक्रूर स्तुति' (भागवत १०।४०।८)

श्रीधर स्वामी ने 'अक्रूर स्तुति' के प्रारम्भ के छः श्लोकों द्वारा सांख्य योग के मार्ग का निर्देश भी किया है (भा. दी. १०।३६।५५) । श्रीधर ने जहाँ-जहाँ शिव की प्रशंसा की है, वीर राघव ने वहाँ शिव की निन्दा की है । आचार्य वल्लभ का कथन है कि शिव रूप में विष्णु ही आते हैं, किन्तु तामस कल्प में ही ऐसा होता है, प्रत्येक कल्प में नहीं (सु. १०।४०।८) । यह विवाद 'अक्रूर स्तुति' के 'बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते' (भा. १०।४०।८) श्लोक में उठाया गया है । श्रीधर स्वामी ने उक्त श्लोक में शैव तथा पाशुपत आदि मार्गों का उल्लेख किया था । इस पर वीरराघवाचार्य ने खण्डन करते हुए लिखा कि शिवादि देवों की उपासना करने वाले अज्ञ हैं । श्री शुक सुधी ने अपनी टीका में ऊर्ध्व पुंड् (तिलक) की प्रशंसा की है एवं कृष्ण के आयुध धारण करने की विधि भी विस्तारपूर्वक लिखी है—

'धृतोर्ध्व पुंड्: कृत चक्रधारी विष्णुम्वरं ध्यायतियो महात्मा०'[२]

किन्तु यह चिन्ह धारण रामानुज सम्प्रदाय से भिन्न है । शुक सुधी ने गोपीचन्दन के चिन्ह धारण का प्रमाण दिया है, तप्तशलाका से चर्म पर अंकित होने का नहीं—

'कृष्णायुधांकितो देहोगोपीचन्दन मृत्सया
प्रयागादिषुतीर्थेषु स गत्वा किं करिप्यति ।।'

सुदर्शन चक्र स्वयं अग्नि है, अतः उसका धारण ही पर्याप्त है । निम्बार्क सम्प्रदाय में सुदर्शन का बड़ा महत्व है । अतः यहाँ यह व्याख्या स्पष्टतः सम्प्रदाय के आधार पर है तथा मन्त्र में अष्टादशाक्षर, याग में भगवन्मूर्ति पूजन एवं ध्यान की विधि का वर्णन है और इनके विशेष विवेचन के लिये टीकाकार ने स्वरचित 'स्वधर्मामृत सिन्धु' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है । उक्त स्थल पर वीर राघवाचार्य ने विशिष्टाद्वैत पक्ष का प्रबल समर्थन किया है ।

श्लोक ४८–'नमस्ते·······वामनाय नमस्तुभ्यं·······(भा. १०।४०।१६)

---

[१] **रासपंचाध्यायी–डा० रसिक विहारी जोशी ।**

[२] **सिद्धान्त प्रदीप १०।४०।८ ।**

उक्त श्लोक में आचार्य वल्लभ ने 'वामन' को अवतार न मानकर इन्द्र का अनुज ही लिखा है—

'यद्यपि वामनोऽपि नावतार रूपं किन्तूपेन्द्र एव तथापि कार्यं तेन रूपेण कृतमिति वामनायेत्युक्तम् ।' (सु. १०।४०।१९)

श्लोक ४९–'अधापराह्णे·········मथुरां प्राविशद्·····' (भा. १०।४१।१९–२०)

मथुरा की शोभा पाँच प्रकार से थी—द्वार, प्राकार, परिखा, फल तथा पुष्प—

द्वार प्राकार परिखा फलपुष्पैः सुशोभिता
पंचधा नगरी रम्या सालंकारा च रूपिता ।।

'आपूर्ण कुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः' (भा. दी. १०।४१।२३) की टीका श्रीधर ने जिस प्रकार स्पष्ट लिखी है और उसके लिये 'अत्रेयं रीति' शब्द का प्रयोग किया है, थोड़े-थोड़े अन्तर में–वीरराघव, विजयध्वज, विश्वनाथ, शुकदेव ने ज्यों की त्यों ग्रहण की है ।

श्लोक ५०—'एवं······रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ।'

(भागवत १०।४०।३७)

उक्त श्लोक की व्याख्या में जीवगोस्वामी ने तलवार सदृश हाथ से रजक का शिर काटना लिखा है । वल्लभाचार्य ने नखों से रजक का शिरश्छेद माना है । किन्तु कृष्ण के नखों से रजक का शिर पृथक् हो जाय यह अस्पष्ट है । (सुबोधिनी १०।४१।३७)

श्लोक ५१––'दास्यस्म्यहं·······त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ।'

(भागवत १०।४२।३)

कुब्जा के ग्रीवा, उर, कटि तीन भाग वक्र थे अतः उसका त्रिवक्रा नाम सार्थक है (भा. दी. १०।४२।३) । वीरराघव ने यही माना है (भा. चं. चं. १० ४२।३) आचार्य विश्वनाथ का कथन है कि कुब्जा भूमि थी, असुरों के भार के कारण अपनी वक्रता का प्रदर्शन किया है । पृथ्वी पर गुणगन्ध है उसने चन्दन के रूप में वही समर्पित किया था । (सारार्थ दर्शिनी १०।४२।१)

कृष्ण के मथुरा आगवन के पश्चात् कंस को स्वप्न दिखलाई दिये । स्वप्न में स्वर्ण के वृक्ष, प्रेतों के साथ आलिगन, दक्षिण दिशा की ओर गमन आदि । आचार्य वल्लभ ने इन अपशकुनों के द्वारा उनका कारण भी प्रदर्शित किया है कि इन्हें अपशकुन क्यों माना जाय ? यथा स्वर्ण अग्नि का रेत है, अतः यह नाश का सूचक है (सु. १०।४२।२९–३०' । प्राण घोषाश्रवण–प्राण-

क्रिया भाव का सूचक है। छाया में छिद्रप्रतीति तेज के अभाव की परिचायिका है। भूमि में अपने ही पद न देखना–भूमि द्वारा परित्याग की सूचना है। दिगम्बर का होना भी अपशकुन है क्योंकि वस्त्र देवमय हैं, उनके चले जाने पर कंस को नग्न स्वरूप दिखलाई पड़ा।

श्लोक ५२–'मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनो सतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंग गतः साग्रजः ॥'

(भागवत १०।४३।१७)

'भगवान कृष्ण मल्लों को व्रज के समान कठोर, मनुष्यों को सुन्दर, स्त्रियों को कामदेव, गोपों को बन्धु, दुष्ट राजाओं को शास्ता, माता पिता को बालक, कंस को मृत्यु, अज्ञानियों को विराट्, योगियों को परम तत्व दिखलाई पड़े थे।'

उक्त श्लोक में दश रस माने गये हैं, यथा मल्लानां–से रौद्र, क्योंकि रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। निम्न तालिका से दश रस स्पष्ट देखे जा सकते हैं—(क्र. स. १०।४३।१७)।

रस	**स्थायी भाव**	**श्लोक के पद**
रौद्र	क्रोध	मल्लानाम्
अद्भुत	विस्मय	नृणां
शृङ्गार	रति	स्त्रीणाम्
हास्य	हास	गोपानाम्
वीर	उत्साह	असतांक्षितिभुजाम्
करुण	शोक	स्वपित्रोः शिशुः
भयानक	भय	भोजपतेः
वीभत्स	जुगुप्सा	अविदुषां
शान्त	शान्ति	योगिनाम्
भक्तिरस	प्रेम	वृष्णीनाम्

इस क्रम को आचार्य वल्लभ ने भी स्वीकार किया था (सु. १०।४३।१७) यह रसक्रम मनुष्यों के दृष्टिक्रम के कारण ही रखा गया है। यहाँ वल्लभ ने यह भी लिखा है कि पुष्टि मार्ग में स्त्रियों का स्थान सर्वोत्तम है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ने नृणाम् का अर्थ माथुर किया है (सा. द. १०।४३।१७)—

'द्वेषादिराहित्यादुत्पत्त्यैव प्रेम सामान्यवतां तैः शुद्धसत्वमयान्तः करणैस्तस्य नरवरत्वं स्वरूपेणैवास्वादितम् ।'

उक्त श्लोक की व्याख्या में जीव गोस्वामी ने श्रीकृष्ण की अवस्था का विचार भी किया है।

प्रथम वर्ष में पूतना-बध तथा शकटासुर-बध।

द्वितीय वर्षारम्भ में तृणावर्त का वध।

तृतीय वर्षारम्भ में दामोदर लीला तथा मार्गशीर्ष मास में वृन्दावन में प्रवेश एवं माघ में वत्स चारण आरम्भ।

चतुर्थ वर्ष के शरद ऋतु में ब्रह्मा द्वारा वत्स हरण, एक वर्ष पर्यन्त उसी रूप से व्रज में निवास।

पंचारम्भ में (पोगण्डावस्था में) कार्तिक शुक्लाष्टमी से गौचारण आरम्भ तथा ग्रीष्म ऋतु में कालियदमन लीला।

षष्ठवर्षारम्भ में गौचारण कौतुक लीला, मंजुवन दाह आदि।

सप्तमवर्षारम्भ में धेनुकासुर बध। (किशोरावस्थारम्भ)

अष्टम वर्ष के आश्विन मास में वेणु गीत, कार्तिक में गोवर्द्धन धारण। कार्तिक शुक्ल तृतीया से दशमी पर्यन्त गोवर्द्धन धारण, एकादशी को कृष्ण का अभिषेक, द्वादशी का वरुण लोक गमन, पूर्णिमा को ब्रह्म हृदावगाहन, तथा हेमन्तारम्भ (मार्गशीर्ष में) चीर-हरण लीला, ग्रीष्म में यज्ञपत्नी प्रसाद ग्रहण ग्रीष्म में प्रलम्ब बध।

नवम वर्षारम्भ में शरद ऋतु में रासलीला आरम्भ। फाल्गुन में शिव रात्री को अम्बा बन यात्रा। पूर्णिमा को शंखचूड बध।

दशम वर्षारम्भ में स्वैर लीला।

एकादश वर्षारम्भ में चैत्र पूर्णिमा को अरिष्टासुर-बध।

द्वादश वर्ष की फाल्गुन द्वादशी को केशि बध एवं चतुर्दशी को कंस वध।

कृष्ण सदा किशोरावस्था में ही रहते थे। विश्वनाथ चक्रवर्ती का कथन है कि प्रद्युम्न जब किशोर रूप में शम्बर के चंगुल से बचकर आये तब कृष्ण की पत्नियों ने उन्हें कृष्ण ही समझा।

कृष्ण नन्द वियोग—कृष्ण ने मथुरा से नन्द को अकेला ही ब्रज भेज दिया और वे बलराम सहित मथुरा ही रहे। सहसा नन्द का परित्याग यह सिद्ध करता है कि या तो नन्द या कृष्ण को परस्पर स्नेह नाममात्र का था। किन्तु नन्द द्वारा स्नेह न्यूनता का प्रश्न ही नहीं उठता। उनका वात्सल्य स्पष्ट वर्णित है, वे कृष्ण को प्राण से भी अधिक प्यार करते थे। कृष्ण ने भी उनके मनो

रंजन के लिए अनेक लीलायें की थीं। अतः दोनों के स्नेह में कमी नहीं थी।

चक्रवर्ती का कथन है कि नन्द और कृष्ण का वियोग नहीं हुआ। वे एक रूप से नन्द के साथ ही गये थे। प्रकाशाप्रकाश लीला में नन्द के भी दो रूप हैं। यदि उनका दर्शन व्रज में न होता तो व्रज में अवश्य ही गोप-गोपिकाओं की दुर्दशा हो जाती। कतिपय कारणों से उनका व्रजगमन सिद्ध है।

१. यशोदा का प्राण त्याग न करना।
२. भागकर मथुरा में न आना।
३. गोपिकाओं का मथुरा में न आना।
४. नन्दादि अन्य गोपों का मथुरा न आना।

इसके साथ व्रज की समृद्धि से उनका वियोग पुष्ट नहीं होता। भागवत के अनुसार जब उद्धव व्रज में कृष्ण का सन्देश लाये तब वृषभ गायों के मध्य शोभायमान थे। गायों के दुग्ध से परिपूरित स्तन थे। स्वलंकृत गोपियां, गोप बालकृष्ण के चरितगान में व्यस्त थे। गो-विप्र अतिथियों का पूजन हो रहा था। हंस-चक्रवाक् कमलवी से विराजित सरोवर थे, पुष्पों की समृद्धि से वनों की सुषमा बढ़ रही थी, आदि (भा. १०।४६।११-१३)।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि व्रजवासियों को कोई कष्ट न था, किन्तु कृष्ण के वियोग से यह प्रतिकूल वर्णन है। द्वारका लीला में कृष्ण एक भवन में देवकी के द्वारा दत्त भोजन कर रहे हैं, द्वितीय में देवकी कृष्ण की प्रतीक्षा में अत्यन्त दुःखी हैं। यहाँ भी एक पक्ष वियोग में एक पक्ष संयोग में दिखाया गया है, अतः इनका वास्तविक वियोग नही है। इस व्रज के प्रकाशाप्रकाश में समस्त गोपियाँ, समस्त गोप, एवं पशु भी थे। गोप-गोपा, पशु सभी एक दूसरे से लक्षित एवं अलक्षित थे। यह सब योगमाया का प्रभाव था।

'वस्तुतस्तु उद्धवेनादृष्टस्तत्रैव ताभ्यालालितः सप्रकाशान्तरेण वर्तत एवेत्युद्धव मुखात् सत्यैव वाग्देवी निरगात्—'यदाहवः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तन्। (सारार्थ दर्शिनी १०।४६।३५)

नन्द का कृष्णाबलराम से संयोग अचिन्त्य भेदाभेद के सिद्धान्तों के आधार पर सिद्ध किया है। अतः विश्वनाथ चक्रवर्ती का कथन अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। कृष्ण अवश्य नन्द के समीप एक रूप से व्रज में रहे होंगे।

श्लोक ५३—'अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयतौ……।' (भा. १०।४५।३६)

कृष्ण का यज्ञोपवीत मथुरा में हुआ और वे विद्याध्ययन हेतु उज्जयिनी

में सान्दीपन गुरु के समीप गये । सान्दीपन काश्य थे । जीवगोस्वामी ने उन्हें काशी निवासी माना है (वै. तो. १०।४५।२६) । वीरराघवाचार्य ने उन्हें कश्यप गोत्री लिखा है (भा. चं. चं १०।४५।२६) । कृष्ण ने ६४ दिन में ६४ कला प्राप्त कीं । श्रीधर स्वामी ने ६४ कलाओं का उल्लेख किया है--

गीत, वाद्य, नृत्य, नाट्य, आलेख्य, विशेषकच्छेप तिलकों में विशेष रचना). तण्डुल कुमुम बलिविकार, पुष्पास्तरण, दशनवसनांग राग (रंगने की कला), मणिभूमिका कर्म, शयन रचना, उदक वाद्य, चित्रयोग (अद्भुत दर्शनोपाय), माल्यग्रथन, शेखरापीड, नेपथ्ययोग, कर्णपत्रभंग, सुगन्ध युक्ति, भूषण-योजन, ऐन्द्रजाल, कौचुमार योग (कुचुमार द्वारा बहुरूपिया-सुबोधिनी), हस्त-लाघव, चित्रशाकापूप क्रिया, पानक रस, सूचीवायकर्म, सूत्रक्रीड़ा (कठपुतली), वीणावाद्य, प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वचक योग (गाली), पुस्तकवाचन, नाटकाख्यायिका दर्शन, काव्य समस्या पूरण, पट्टिका वेत्र वाण विकल्प, तर्क-कर्म, तक्षण, वास्तुविद्या, रूप्यरत्नपरीक्षा, धातुवाद, मणिराग ज्ञान, आकर ज्ञान, वृक्षायुर्वेद, मेषादियुद्ध, शुकसारिका प्रलापन, उत्सादन (उच्चाटन), केशमार्जन कौशल, अक्षर मुष्टिका (मुट्ठी में क्या है-बतलाना), म्लेच्छितकुतर्कविकल्प, देशभाषा ज्ञान, पुष्पशकटिका निर्मिति ज्ञान (यह कोई विद्या है—जीवगोस्वामी, विमान बनाने की विद्या-वल्लभाचार्य), यन्त्रमातृका सम्पाट्य (हीरा आदि रत्नों को तोड़ना), मानसीकाव्य क्रिया (पराये मन की बात जानना), अभिधान छन्दोज्ञान, क्रिया विकल्प, छलितक योग, वस्त्र गोपन, द्यूत, आकर्ष क्रीड़ा, बालक्रीड़ा, वैनायिकी, वैतालिकी क्रिया ।

कृष्ण ने गुरुकुल में भी अपनी अलौकिकता का परिचय दिया था । एक बार गुरुआनी ने कृष्ण से गोदोहन पात्र लाने के लिये कहा, किन्तु कृष्ण उस समय सन्ध्यावन्दन के लिये बैठ चुके थे, उधर गुरुआनी की अवज्ञा का पाप भी निकट था । अतः आसन पर बैठे ही बैठे अपना हाथ लम्बा किया एवं उसे उठा कर गुरुआनी जहाँ मंगवा रही थीं वहां पहुँचा दिया, गुरुआनी इस घटना को देखकर विस्मित हो गईं । (सुबोधिनी १०।४५।४३)

श्लोक ५४—'तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः……।' (भा १०।४७।१)

भ्रमरगीत की सर्वोत्कृष्ट टीका सनातन गोस्वामी की है । उनका कथन है कि भ्रमरगीत उपनिषद का सार है, काचित् पद द्वारा राधा का स्पष्ट उल्लेख

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यहाँ भी इन्होंने किया है ।[1] भ्रमर गीत दिव्योन्माद है । इसके अन्तिम पद को छोड़कर शेष सर्वत्र रोष की अभिव्यक्ति है । वल्लभाचार्य ने 'मधुप कितव बन्धो' आदि की विचित्र व्याख्या की है, उनका कथन है कि काल सम्वत्सरात्मक है और वही मधु की रक्षा करता है । कितव=ग्रीष्म का वंचन करके–सर्व संहारक का वन्धु भी बनता है । धनपति ने जिस प्रकार रासपंचाध्यायी की व्याख्या वेदान्तानुसारी की है, वैसे ही भ्रमरगीत की भी । एक श्लोक की वेदान्तानुसारी व्याख्या देखिये—

'मधुप कितव बन्धो मास्पृशांध्रि सपत्न्याः' (भा. १०।४७।१२)

मधुप—हे मधु तुल्य विषय रसपान परायण, यद्यपि तुम कृत्तृत्व, भोक्त्रत्व से मुक्त हो तथापि जिसके सम्पर्क से अनर्थ परम्परा को प्राप्त हुये हो उसे नही जानते हो, अतः समझाती हूँ, कितव बन्धु—चित्त बन्धु । इस चित्त ने ही तुम्हें जन्म मरणादि लक्षण वाले संसार की ज्वाल माला में फेंकने का विचार किया है । 'सपत्नि' तुमने माया का स्पर्श किया है, अतः दूर रहो, मैं ही ब्रह्म हूँ, इस प्रकार का प्रसाद धारण करो । उस परब्रह्म का तू अनुकरण-मात्र से दूत है वस्तुतः नहीं । (गूढ़ार्थ दीपिका १०।४७।१२)

वृहत्तोषिणीकार का मत है कि कृष्ण का सर्वत्र प्राक्ट्य देखकर उद्धव कतिपय दिवस ब्रज में रहे थे (वृहत्तोषिणी १०।४७।५४)

श्लोक ५५—क्वेमास्त्रियो वनचरीर्व्यभिचार दुष्टा' (भा. १०।४७।५६)

आचार्य वल्लभ ने इस श्लोक की ३०० पंक्ति की व्याख्या में पुष्टिमार्ग की स्थापना की है । अर्जुन भी पुष्टिमार्गीय भक्त था (सु. १०।४७।५६) । वल्लभाचार्य ने भेदाभेद सिद्धान्त का खण्डन करते हुए लिखा है—

'भेदाभेदपक्षपरिहाराय—आत्म सृष्टभिति ।' (सु. १०।४८।१८)

जीवगोस्वामी ने अभिन्नत्व साधन के लिये उक्त श्लोक निर्वचन माना है—

---

१. **(क) काचित् के=प्रेमसुखे आसमन्तात् चित् विज्ञानं यस्याः सा राधा ।**
(ख) कं सर्वेषां प्रेम सुखमाचिनोति क्षणे-क्षणे वर्द्धयति या सा राधा-जीव गोस्वामी, विश्वनाथ ।
(ग) काचित्–तत्वमस्यादिश्रुति—धनपति ।

'तादृशतत्कार्यस्यविश्वस्य तदव्यतिरेकेण तदभिन्नत्वं साधयन्………… आत्मेति ।' (वै. तो. १०।४८।१८)

सिद्धान्त प्रदीपकार ने इस श्लोक की व्याख्या में भेदाभेद की पुष्टि बड़े विस्तार से की है—

१. अचेतन से जगत् की उत्पत्ति नहीं हुई है ।
२. घट-रथादि की उत्पत्ति चेतन से ही है ।
३. कारण सदृश कार्य नहीं भी होता गोमय से विच्छू की उत्पत्ति विसदृश है (सि. प्र. १०।४८।१८) । कृष्ण स्वरूपतः निर्विकार है, जगत् के अभिन्न निमित्तोपादन हेतु हैं । 'तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्' अतः भेदाभेद सम्बन्ध युक्त है ।

श्लोक ५६—सत्वं प्रभोऽद्य…………(भागवत १०।४८।२४)

केवल भागवत् चन्द्र चन्द्रिकाकार ने 'सत्वं' का अर्थ 'रामादिरूपेणावतीर्णः स त्वं' 'रामादिरूप में अवतीर्ण आप' किया है । अन्य किसी टीकाकार ने ऐसा उल्लेख नहीं किया, स्पष्ट है कि रामानुज सम्प्रदाय प्रभाव के कारण यह अर्थ किया गया है ।

श्लोक ५७—'न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ।।' (भा. १०।४८।३१)

'जलपूर्ण तीर्थ एवं मृत्तिका शिलामय देव भी किंचित् कालान्तर ही पवित्र करते हैं किन्तु साधु दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं ।' श्रीधर स्वामी ने काकु ध्वनि के द्वारा यह अर्थ किया है—

'अम्मयानि तीर्थानि मृच्छिलामयाश्च देवा न भवन्ति इति न अपितु भवन्त्येवेत्यर्थः तथापि साधूनां तेषां च महदन्तरम् इत्याह ते पुनन्तीति । (भावार्थ दीपिका १०।४८।३१)

वीरराघवाचार्य ने श्रीधर स्वामी का खण्डन किया है, प्रारम्भ में उनकी पंक्तियों को अविकल रखा है और 'चिन्त्यं' लिखकर अपना मत दिया है—

'अत्र केचिदेवं व्याचक्षते किं देवादयो न सेव्या एवेत्याह । नहीति ।'
(वही)

'तच्चिन्त्यम् देवाः स्वार्था न साधय इत्तनेनैवासेव्यत्वस्योक्तत्वात् ।'
(भा. चं. चं. १०।४८।३१)

गंगादि तीर्थ आपकी भाँति शीघ्र पवित्र नहीं करते तथा देवगण भी स्वार्थ के कारण हित करते हैं । अतः साधु ही वस्तुतः परोपकारी है ।

श्लोक ५८—'पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुखिताः
आनीताः स्व पुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ।'

(भागवत १०।४१।३३)

'पिता की मृत्यु के पश्चात् पाण्डव माता सहित ऋषियों द्वारा धृतराष्ट्र के समीप लाये गये हैं, यह हमने सुना है ।'

श्रीधर स्वामी ने वसन्ते=निवसन्ति अर्थ किया है, और वीरराघव ने भी इस अर्थ का अनुमोदन किया है, किन्तु विजयध्वज ने 'आत्मने' पद का हेतु भी लिखा है । पाण्डव राजा धृतराष्ट्र के साथ अपनी महिमा को आच्छादित करके रहे हैं (प. र. १०।४८।३३)—

'शतश्रृंगगिरि निवासिभिः ऋषिभि रानीता राज्ञा सह वसन्ते वसन्ति, स्व महिमानमाच्छाद्यति शेषः इत्यत आत्मने पदम् ।'

केवल विजयध्वज ने ही सर्वप्रथम शतश्रृंग गिरि निवासी ऋषियों का उल्लेख किया है । शुक सुधी ने ही विजयध्वजोक्त वाक्य का समर्थन करते हुए यह भी लिखा है कि पाण्डवों का इस पर्वत पर ही जन्म हुआ था और यहीं पाण्डु का स्वर्गवास हुआ था । (सि. प्र. १०।४८।३३)

उत्तरार्द्ध के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण-जरासन्ध के युद्ध का वर्णन है । पद रत्नावलीकार ने इसे एक रूपक माना है । कृष्ण धर्म स्वरूप हैं, जरासन्ध असच्छास्त्र तथा कंस अधर्म । जरासन्ध की दो कन्याऐं अस्ति और प्राप्ति भी अविद्या के रूप हैं ।

श्लोक ५९—'स तदप्रियामाकर्ण्य·······अयादवीं महीं···········।'

(भागवत १०।५०।१)

'जरासन्ध ने यादव रहित भूमि करने की प्रतिज्ञा की ।' यादव वैष्णव हैं । 'य' का अर्थ विष्णु है तथा 'अदो' का अर्थ दुष्ट रक्षक, 'वा' का अर्थ जो उसकी शरण में जाँय ।

'यः विष्णुः स एव अदो दुष्ट रक्षकस्तं वान्ति शरणं गच्छन्तीति यादवाः'

'नृप' का अर्थ शिव शास्त्रोक्त अनुसरण करने वाला माना है, यह एक आश्चर्य की बात है कि विजयध्वज मध्व सम्प्रदाय अनुयायी थे तथापि 'नृप' का अर्थ शिवपरक माना है । (प. र. १०।५०।१)

जरासन्ध ने कृष्ण को गाली प्रदान की । श्रीधर ने उन गालियों का का अर्थ अच्छे अर्थ में किया है, किन्तु वीरराघवाचार्य ने श्रीधर का अर्थ उचित नहीं माना (भा. चं. चं. १०।५०।१) ।

श्लोक ६०—'अष्टादशम·······यवनः प्रत्यदृश्यत ।' (भा. १०।५०।४४)

नारद के भेजे हुए कालयवन ने मथुरा को चारों ओर से घेर लिया था। शुक सुधी ने एक अन्तर्कथा लिखी है। 'कालयवन गार्ग्य का पुत्र था। एक बार यादवों ने गार्ग्य से उपहास में षण्ढ कह दिया। गार्ग्व ने रुष्ट होकर शिवजी की आराधना प्रारम्भ की। शिवजी ने उससे यादवनाशक पुत्र होने का वरदान दिया। यवनाधिपति ने जब इस वृत्तान्त को सुना तो उसने गोपाली को गोप स्त्री बनाकर गार्ग्य के समीप भेज दिया। गार्ग्य से तेज धारण कर उसने कालयवन को जन्म दिया एवं इसी कारण यादव उससे भयभीत हुए।' (सि. प्र. १०।५०।४४)

द्वितीय अन्तर्कथा जीवगोस्वामी ने लिखी है—'वृद्ध गर्ग का पुत्र महायवन था, इसके कोई सन्तान नहीं थी उसने पिता से सन्तानोत्पत्ति के लिए आग्रह किया, और पिता ने उसे पूर्ण किया। गर्ग से कालयवन उत्पन्न हुआ और उसे अजेय होने का वरदान दिया। कालान्तर में यादवों ने जब वृद्ध गर्ग का उपहास किया था तब उसने कालयवन को प्रतिशोध लेने के लिए प्रेरित किया।' (वै. तो. तथा सु. १०।५०।४०)

श्लोक ६१—'भगवान् भीष्मसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम्०'

(भागवत १०।५२।१८)

रुक्मिणी को गोपी मानते हुए जीवगोस्वामी ने लिखा है कि किशोरावस्था में गोपकन्या योवन में राजकन्या, द्वारका में रुक्मिणी वृन्दावन में राधा—यह सब एक ही हैं (वै. तो. १०।५१।५५)—

'कैशोरेगोपकन्यास्ता यौवनेराज कन्यका:
रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने।'

आचार्य वल्लभ तो रामावतार में सीता, कृष्णावतार में रुक्मिणी को लक्ष्मी का ही स्वरूप स्वीकार करते है-- (सु० १०।५१।५५)

'राघवत्वेऽभवत्सीता कृष्णजन्मे च रुक्मिणी'

रुक्मिणी ने एकान्त में पत्र लिखकर ब्राह्मण के द्वारा कृष्ण के समीप पहुँचवाया था-(भा. दी. १०।५२।३७)

'रुक्मिण्यास्वयमेकान्ते लिखित्वा दत्तपत्रिकाम्
मुद्रामुन्मुच्य कृष्णाय प्रेमचिन्हामदर्शयत् ॥'

'रुक्मी' अपनी बहिन का सम्बन्ध कृष्ण से नहीं करना चाहता था,

अतः उसने अभिचार कर्म भी करवाये थे (सु. १०।५३।१२)। आचार्य वल्लभ ने यह अभिचार अर्थ भागवत के 'अथर्व वित्' पद से निकाला है। देवीपूजन, रुक्मिणी ने अपने कुलक्रमागत धर्मपालन करते हुए किया था। भगवान के आविर्भाव के लिये देवी का पूजन अत्यन्त आवश्यक है।

श्लोक ६२—'गाण्डीवं धनुरादाय..........।' (भागवत १०।५८।२४)

उक्त श्लोक में गाण्डीव धनुष का उल्लेख करना उचित नहीं क्योंकि गाण्डीव की प्राप्ति खाण्डव दाह के पश्चात् हुई थी। सारार्थ दर्शिनी के अनुसार—नगर रचना, खाण्डवदाह, सभाहरण तथा कालिन्दी लाभ का क्रम उचित माना गया है। (सा. द. १०।५८।२४)

क्रम सन्दर्भ में प्रथम खाण्डव दाह, कालिन्दीलाभ, नगर निर्माण एवं सभा उपहार को उचित माना गया है (क्र. स. १०।५८।२४)। स्पष्ट है कि यहाँ विश्वनाथ ने जीवगोस्वामी के पक्ष को प्राधान्य नहीं दिया। आचार्य वल्लभ ने गाण्डीव प्राप्ति अग्नि द्वारा हुई थी यह सिद्ध किया है। विश्वनाथ नगर रचना प्रथम मानते हैं, जीवगोस्वामी खाण्डव दाह को। वल्लभाचार्य का मत स्वीकार करें तो मूल से कोई विरोध आकर नहीं पड़ता।

कृष्ण की स्वर्ग यात्रा का वर्णन केवल विजयध्वज ने अधिक पाठ मान कर किया है अन्य टीकाकारों ने नहीं।

श्लोक ६३—'रुक्मिणी परिहासः" (भागवत १०।६०।५४)

एक बार भगवान् ने रुक्मिणी से परिहास किया था। इसे अनिरुद्ध विवाह के पश्चात् मानना चाहिये। क्योंकि 'भ्रातुर्विरूप करणम्' श्लोक में रुक्मिणी के भाई के विरूप होने की वार्ता भी लिखी है। किन्तु मूल में प्रथम परिहास का निरूपण है (भा, १०।६०।५६)। अतः यह व्युत्क्रम है।

भगवान की एक पत्नी का नाम शैव्या था। श्रीधर स्वामी मुद्रा को ही शैव्या मानते हैं। अन्य टीकाकार शैव्या नाम मित्रवृन्दा का मानते हैं। विष्णु पुराण में भी इसकी पुष्टि की गई है—

'शैव्यायां मित्र वृन्दायां..........।' (वि. पुराण ८३।६)

अतः श्रीधर कथन चिन्त्य है। ज्वर स्तोत्र की व्याख्या में सम्प्रदाय के दृष्टिकोण की प्रधानता है। ६४ वें अध्याय में प्रद्युम्न को बालकों के साथ क्रीड़ा करते देखा जाता है, किन्तु प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का भी इसमें उल्लेख प्राप्त है। अतः इस लीला को अनिरुद्ध जन्म के पूर्व होना चाहिये था।

उत्तरार्द्ध में कई कथाओं में व्युत्क्रम है जिनका उचित समाधान नहीं

मिलता। केवल आचार्य वल्लभ का समाधान उपादेय है, उनका कथन है कि निरोध लीला में पूर्वापर प्रसंग व्युत्क्रम उपयुक्त ही है। (सुबोधिनी १०।६४)

श्लोक ६४—'ददौ..........अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वं बद्वं दिने दिने।'
(भागवत १०।७०।८)

कृष्ण 'बद्व' संख्या गोओं का दान करते थे। बद्व संख्या का प्रमाण श्रीधर के अनुसार तेरह सहस्त्र चौरासी (१३,०८४) संख्या है।

'चतुर्दशानां लक्षाणां सप्ताधिक शतां शकः
बद्वं चतुरशीत्यग्र महस्त्राणि त्रयोदश ॥' (भा. दी. १०।७०।८)

आचार्य वल्लभ इसे समुदायवाची संख्या मानते हैं। (सु. १०।७०।८)

श्लोक ६५—'दन्तवक्त्र..........वध' (भागवत १०।७८।१३)

वैष्णव तोषिणीकार के अनुसार दन्तवक्त्र का वध (आधुनिक दतिया) नामक स्थान में हुआ था (वै. तो. १०।७८।१३)। किन्तु पद्मपुराण के अनुसार दन्तवक्त्र मथुरा में मारा गया था (प. पुराण ३०)। सूर्योपराग तथा दन्तवक्त्र कथा में भी व्युत्क्रम है। टीकाकारों का कथन है कि शुकदेव जी कथारस में लीन हो जाते थे अतः कथाओं में व्युत्क्रम आ गया है—'तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः' यह वाक्य ही प्रमाण है।

श्लोक ६६—'वेद स्तुति' (भागवत १०।८७।१)

भागवत में स्तुति साहित्य का अपना एक पृथक् महत्व है, स्तुतियाँ यद्यपि विभिन्न देवीं देवता आदि की वर्णित की गई हैं तथापि समस्त स्तुतियों में वेद स्तुति का अपना वैशिष्ट्य, भाषा की प्रौढ़ता, गूढ़ता, तत्वसारता, श्रुति सम्मतता आदि के कारण अत्यधिक हैं।

श्रीधर स्वामी के अनुसार यह स्तुति निर्गुणपरक है उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि (भा. दी. १०।८७।१)—

'वेदैः स्तुतिर्गुणालम्बा तिर्गुणावधि वर्ण्यते।'

चूड़ामणि चक्रवर्ती नामक टीकाकार ने श्रीधर स्वामी की टीका के आधार पर, शंकर भाष्य से अनुमोदित व्याख्या की है। इसमें अद्वैतवाद की थसापना की गई है। इस टीका का क्रम सुन्दर है एवं अन्य टीकाओं से इसकी शैली सर्वथा पृथक् है। टीका के आरम्भ में श्लोक का आभास, मूल श्लोक, अन्वय, अर्थ, पूर्ण श्रुति का अर्थ एवं सिद्धान्त भी लिखा गया है।

श्रीनिवास सूरी ने रामानुज सिद्धान्तों की स्थापना हेतु इस स्थल पर भी टीका लिखी है। इनकी टीका का आधार सुदर्शन सूरी कृत 'शुक-पक्षीय' ग्रन्थ है।

निर्गुण शब्द से प्राकृतोपाधिक गुण का निषेध प्रायः सभी टीकाकारों ने स्वीकार किया है। श्रीधर स्वामी के मत को भी अपने अर्थ में खींचा गया है। वृन्दावन वास्तव्य श्री रामानुज योगी ने इस स्तुति पर 'सरला' नामक टीका लिखी है। इन्होंने श्रीधर स्वामी के पाठ में दोष भी प्रदर्शित किया है।

'सदसतः परंत्वमथ' में 'त्वं' अनावश्यक है। 'श्रीधर्यान्तु एतत् वाक्यस्य क्लिष्टान्वयः।' (सरला १०।८७।१७)

भक्तिशास्त्र के परम रसिक श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस स्तुति द्वारा श्रीकृष्ण के स्वरूप का निर्णय स्वीकार किया है। सिद्धान्त प्रदीपकार ने केशव काश्मीरी भट्ट की व्याख्या ज्यों की त्यों रख दी है। वीर राघव ने 'अत्र केचित्' से श्रीधर स्वामी प्रोक्त—'ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा' का खण्डन किया है।

'भक्ति रल्प साधनम्' (भा दी. १०.८७।२१) में अल्प शब्द के प्रयोग पर राधारमणदास ने आपत्ति की है किन्तु श्रीधर स्वामी के सम्मान के लिये लेखक की भ्रान्ति मानी है क्योंकि उक्त वाक्य श्रीधर कृत है। राधारमणदास के अनुसार यहाँ 'महान्' शब्द का प्रयोग होना आवश्यक था। क्योंकि सालोक्यादि मुक्तियों का अन्तर्भाव भी भक्ति में है (दी दी. १०।८७।२१)।

विजयध्वज ने द्वैतपक्ष के अनुसार व्याख्या करते हुए 'चैतन्य विवेक' ग्रन्थ का उल्लेख भी किया है (प. र. १०।८७।२७)।

एकादश स्कन्ध

श्लोक १—'शरच्छतं व्यतीताय पंचविंशाधिकं प्रभो।' **(भा. ११।६।२७)**

भगवान् कृष्ण से देवताओं ने प्रार्थना की कि आपको भूतल में पधारे हुए १२५ वर्ष व्यतीत हो गये। विजयध्वज ने १२७ वर्ष ४ माह भूतल निवास माना है—

'सम्वत्सर द्वयं चैव पश्चात् स्थित्वा जनार्दनः
अभि पेदे परं स्थानं चतुर्मासाधिकं पुनः॥' (प. र. ११।६।२७)

बन्ध मोक्ष के बारे में श्रीधर स्वामी ने अपना मत देते हुए लिखा है कि—आत्मा न बद्ध है न मुक्त वह भगवान के सत्व, रज, तम आदि गुणों से बद्ध है। गुण माया के कारण ही प्रतिभासित होते हैं। अतः बन्ध और मोक्ष कुछ भी नहीं है। जैसे 'स्वप्न' बुद्धि की ख्याति या विवर्त है उसी प्रकार कारण (गुणों) से उत्पन्न कार्य भी माया है (भा. दी. ११।११।१)। जब तक अविद्या है तभी तक बन्धन है, जब विद्या देता हूँ तब मोक्ष का स्फुरण होता है। स्कन्दपुराण में विष्णु ही बन्ध मोक्ष दाता है, यह लिखा है—

'बन्धको भवपाशेन भवपाशाच्च मोचकः
कैवल्यदः परं ब्रह्म विष्णुरेव न संशयः ॥'

श्लोक २—एकस्यैवममांशस्य जीवस्यैव महामते' (भा. ११।११।४)

बन्ध मोक्ष मेरे अंश जीव के ही हैं। जैसे एक 'चन्द्र' जल उपाधि से प्रतिबिम्बित होकर भेद प्राप्त करता है एवं अलंकृत कम्पादि भेद 'प्रतिविम्ब' के होते हैं। प्रतिविम्ब भी उपाधिगत भेद से एक कुम्भ के भग्न हो जाने पर तद्गत प्रतिविम्ब का ही विम्बैक्य होगा। अन्य घटों में स्थित प्रतिबिम्ब का नहीं। उसी प्रकार अविधा में प्रतिबिम्ब मेरे अंश 'जीव' का ही है और यह उपाधि भेद से है। श्रीधर स्वामी ने विद्यारण्य की एक कारिका को उद्धृत किया है (भा. दी. ११।११।४)—

'यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते
त सर्वे सम्प्रयुज्यन्ते तथा जीवाः सुखादिभिः ॥'

सुदर्शन सूरीं ने वन्ध तो जींव का ही माना है, किन्तु उसे अनादि मानते हुए विद्या द्वारा उसका विनाश मान लिया है। विशिष्टे क देश विशेषण होता है इस न्याय से परमात्मा जीव विशिष्ट है (शु. प. ११।११।१)।

सुदर्शन के न केवल 'भाव' अपितु अक्षर सम्पत्ति भी वीरराघव ने ज्यों की त्यों ग्रहण की है—

शुक पक्षीया—वर्तमानस्य परमात्म भूतस्य स्वस्य जीवस्येय गुण कर्म बद्धत्व शंकां शमयितुं। (११।११।४)

भाग. चं. चं.—वर्तमानस्य परमात्म भूतस्य स्वस्य गुण कर्म बद्धत्व शंका शमयितुम्। (११।११।१)

शुक पक्षीया—"..."इत्याख्या नित्यनिर्दोषस्य मम वस्तुत एव नास्ति।

भाग. चं. चं.—इति च व्याख्या निर्दोषस्य मम वस्तुतएव नास्ति।

शुक पक्षीया—न त्वनेन........वक्ष्यमाणत्वात्।

भाग. चं. चं.—न त्वनेन........वक्ष्यमाणत्वात्।

विजयध्वज ने जीव को पृथक् सिद्ध करते हुए लिखा है कि वह ईश्वर के आधीन है। स्वप्न के दृष्टान्त से संसार को मिथ्या मानना उचित नहीं है।

'भिन्नांशस्यैव जीवस्य बन्धमोक्षौ न मे क्वचित्
अभिन्नांशास्तुमत्स्याद्यास्तेजतः काल वन्हिवत् ॥'

शुकसुधी ने मायावादी मत को निर्मूल सिद्ध किया हैं। आचार्य विश्वनाथ ने जीव को परमात्मा की शक्ति माना है।

श्लोक ३—'सुपर्णावितो सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृत नीडौ चवृक्षे
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्योनिरन्नोऽपि बलेन भूयात् ।।'
(भागवत ११।११।६)

'जीवात्मा-परमात्मा दो पक्षि की भाँति हैं इनमें एक भोग करता है द्वितीय नहीं।'

विजयध्वज ने द्वैतवाद का समर्थन स्पष्ट रूपेण किया है। किन्तु टीकाकारों ने इस श्लोक को भी अपनी सम्प्रदाय की ओर खींचने का प्रयत्न किया है।

श्लोक ४—'........विकल्पः ख्याति वादिनाम्' (भागवत ११।१६।२४)

श्रीकृष्ण ने कहा है कि—अख्याति, अन्यथा ख्याति, असत् ख्यातिवादियों का विकल्प में हूँ। (भा. दी. ११।१६।२४)

अख्यातिवादी मीमांसक हैं, परस्पर संश्लेष से स्मरणात्मक प्रत्यक्षात्मक जो ज्ञानद्वय वह अख्याति है—

'परस्पर संश्लेषेण स्मरणात्मकं प्रत्यक्षात्मकं यज्ज्ञानद्वयं तदख्यातिः'

'इदं तद्र जतम्' यहां इदं के अपरामर्श से प्रत्यक्ष से शुक्त्यादि का बोध होता है, शुक्तिवत्तापरामर्श से रजत का स्मरण होता है। अतः ज्ञान द्वय सत्य हैं, अभेदपूर्वक ग्रहण मानस दोष से होता है, शुक्त्यादि परम्परा रजतादि परम्परा भी वस्तु है।

अन्यथा ख्याति—के प्रतिष्ठापक तार्किक है —

'अतद्वतितत्प्रकारकोऽनुभवोऽन्यथा ख्यातिः'

इनके मतानुसार शुक्ति रजत में अन्यथाख्याति है अविद्या से ही सब कुछ उत्पन्न है—

'अलीकपदार्थतया भासमानत्वं शून्य ख्यातिः'

शून्यवादियों का मत है कि असत् (शून्य) ही शुक्ति रूप में और वही चांदी रूप में भासित है किन्तु 'रजतादि' जहां व्यवहार सम्पादक नहीं होते वहाँ अलीक व्यवहार है।

असत्ख्याति—यह क्षणिक विज्ञानवादी मत में प्रमुख वाद है। 'यत् सत् तत् क्षणिकम्' जो सत् है वह क्षणिक है, इस व्याप्ति से असत्तुल्य होने के कारण ही इसे असत् ख्याति या आत्म ख्याति कहते हैं—

'रजतादि विषयाकारे विज्ञाने सत्यपि अन्ततः स्वप्नवद्रजतापादक वैशिष्ट्याऽग्रहणमात्मख्यातिः ।'

रजतादि विषयाकार ज्ञान हो जाने पर भी अन्ततः स्वप्नवत् रजत प्राप्ति वैशिष्ट्य का अग्रहण आत्मख्याति है ।

अद्वैतवादी सर्वत्र अनिर्वचनीय ख्याति ही मानते हैं--सत् और असत् से भिन्न होने पर भी सदसदात्मक अनिर्वचनीय ख्शाति है--

'सदसद्भिन्नत्वे सति सदसदनात्मक मनिर्वचन ख्यातिः'

अचिन्त्य ख्याति ही भगवान को अभिप्रेत है—

'भगवन्मते विकल्पस्य स्वस्वरूप विभूतित्वात् सर्वत्राचिन्त्यख्यातित्व मेवाभिप्रेतम् ।'

जीवगोस्वामी ने ख्यातियों का उल्लेख क्र. स. ११।१६।२४ में किया है—

'आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा
तथा निर्वचन ख्यातिरित्येतत् ख्याति पंचकम् ।
विज्ञान-शून्य-मीमांसा-तर्काद्वैतविदांमतम् ।।'

अन्तर्वृत्ति रूपविज्ञान परम्परा ही तत्तद्विषयाकार रूप में भासित होती है ।

श्लोक ५—'बहिरन्र्तामदाहेतुः' (भागवत ११।२२।४१)

विजयध्वज ने अभेदवादी मत का स्पष्ट शब्दों में खण्डन करते हुए लिखा है—देह अनित्य है जीव नित्य है, अनित्य देह नित्य देही को उत्पन्न नहीं करता है अतः वह जीव से भिन्न है, असाधुजन ही जीवात्मा और परमात्मा का अभेद मानते हैं वस्तुतः उनमें भेद है ।

राधारमणदास ने प्राणायाम द्वारा अमृतमय होने की प्रक्रिया लिखी है । प्रत्येक मानव शरीर में पाप पुरुष का निवास है इसका शोषण वायु द्वारा हो जाता है । टीकाकारों ने पूजाविधि का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है (भा.दी. ११।२७ उपसंहार)—

'पयःपत्रादिमात्रेण पूजितो यः परं पदम्
प्रागेवदि शति प्रीतः स कृष्णः शरणं मम ।'

भक्तियोग का वर्णन प्रायः सभी ने मनोयोग के साथ किया है ।

द्वादश स्कन्ध

श्लोक १—'कलौ न राजन् जगतां परं गुरु' (भा. १२।३।४३)

उक्त श्लोक में कलियुगी मानवों की वृत्तियों का और उन पर पाखण्ड

के प्रभाव का निरूपण किया गया है, आचार्य विजयध्वज ने अद्वैतवाद को स्पष्टतः पाखण्ड वाद की संज्ञा देते हुए लिखा है कि, इससे लोगों का 'चित्त' भ्रम में पड़ता है—

'पाखण्ड शास्त्रेण अद्वैत विषयेण विभिन्न चेतसः व्यामोहित चित्ताः ।' (प. र. १२।३।४३)

वहां यह आरोप मात्र है, वैष्णव तथा अद्वैतपरम्परा के विद्वानों ने अनेक शास्त्रार्थ हुआ करते थे, विजयध्वज पर इस काल की परिस्थिति का प्रभाव है अन्यथा उक्त श्लोक में अद्वैत या द्वैत का कोई प्रश्न ही नहीं था ।

श्लोक २—'मास व्यत्ययः' (भागवत १२।११।३३)

इस द्वादश स्कन्ध में शुकदेव जी के चले जाने के उपरान्त सूत जी ने शौनकों को द्वादश मास के 'सूर्यों' नाम, गन्धर्व, अप्सरा आदि का वर्णन किया है । मूल में उपलब्ध मास क्रम वर्तमान मासक्रम से भिन्न है, इस पर टीकाकारों ने अपने विचार प्रकट किए हैं । चैत्र से भाद्रपद पर्यन्त का क्रम दोनों में समान है शेष निम्न मासों में भेद है—

भागवतानुसार मास	**प्रचलित मास**
माघ	आश्विन
फाल्गुन	कार्तिक
मार्गशीर्ष	मार्गशीर्ष
पौष	पौष
आश्विन	माघ
कार्तिक	फाल्गुन

श्रीधर स्वामी भागवत के मासक्रम को कूर्म पुराणेक्त क्रम से सम्बन्ध स्वीकार करते हैं (भा. दी. १२।११।३३) । 'कूर्मपुराण' के ४२ वें अध्याय में इस क्रम का निर्देश भी उपलब्ध है ।[1] 'कूर्म' में केवल आदित्य के नामों के क्रम के कारण भागवत के आदित्यों का क्रम माना जा सकता है ।

श्रीधर का यह कथन कि मास व्यत्यय कूर्मपुराण के आधार पर है अस्पष्ट है और अमान्य भी, क्योंकि कूर्म पुराण में ऐसा निर्देश उपलब्ध नहीं है । कल्पभेद से मासव्यत्यय माना जा सकता है ।

वीरराघवाचार्य का मत है कि भागवतकार को मासक्रम विवक्षित नहीं था अतः व्युत्क्रम प्रतीत होता है (भा. चं. चं. १२।११।३३) ।

---

[1] कूर्मपुराण, अ० ४२, पृष्ठ १६४, मनसुखराय प्रकाशन, कलकत्ता ।

श्लोक ३–'नमोधर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे' (भा. १२।१२।१)

उक्त श्लोक में समागत कृष्ण से कृष्ण भगवान तथा कृष्ण द्वैपायन अर्थ भी गृहीत है (भा. दी. १२।११।३३)। सूत को यदि सिद्ध रूप धर्म अभीष्ट है तो उसका तात्पर्य भगवान श्रीकृष्ण से उचित है क्योंकि धर्म फलभूत नही है। यदि यह गुरु के स्मरणार्थ भी किया गया हो तो आपत्तिजनक नहीं है।

द्वादशाध्याय में समस्त भागवत की अनुक्रमणिका दी गई है परन्तु इस में क्रम व्यत्यय है तथा अनेक प्रसिद्ध आख्यान भी छूट गये हैं।

श्रीधर स्वामी इस व्युत्क्रम का समाधान करते हुए लिखते हैं कि यह अव्यवस्था भक्तिरस के प्रवाह के कारण हुई थी। किन्तु श्रीधर स्वामी का यह कथन सर्वथा असंगत है क्योंकि कथा की परम्परा शुकदेव जी के चले जाने के उपरान्त एक प्रकार से पूर्ण ही है, तथा सूत शौनकों के सम्वाद के उपरान्त व्यास ज़ी ने इसे पुनः उपनिबद्ध किया था। ऐसी परिस्थिति में 'भक्तिरस का प्रवाह' लिखना उचित नहीं। यदि अनुक्रमणिका में कुछ भी व्यवस्थित नहीं तो उसके लिखने का तात्पर्य ही क्या है।

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने स्पष्ट लिखा है कि अनुक्रमणिका में कथाओं का निर्देश परमावश्यक है, इसके विपरीत कथन अयुक्त है (सा. द १२।१२।१)।

जन्मगुह्याध्याय, अश्वथामा दण्ड, भीष्म निर्वाण, चित्रकेतु, अम्बरीष, अघासुर बध, ब्रह्ममोहन आदि अनेक कथाओं का संकेत नहीं दिया गया है। सिद्धान्त प्रदीपकार का यह कथन भी अयुक्त है कि यहां स्कन्धों के आधार पर व्युत्क्रम हुआ है (सि. प्र. १२।१२।१)। एक तो स्कन्धों में व्युत्क्रम है ही नहीं, द्वितीय यदि स्कन्धोक्त कथानक ही लिखे जाते तो व्युत्क्रम का प्रश्न ही नहीं था। वस्तुतः यह व्युत्कम भागवत निर्माण के उपरान्त का माना जा सकता है।

सिद्धान्त प्रदीपकार ने उपसंहार में जीव ब्रह्म के द्वैताद्वैत सम्बन्ध को सर्वोत्कृष्ट माना है, तथा अभेदवादी, भेदवादी सांख्य मतानुयायी आदि सभी मतवादों की कटु आलोचना की है।

उक्त विवेचन सम्प्रदाय के आधार पर भले ही उचित सिद्ध हों किन्तु मूल से इसका विशेष सम्बन्ध नहीं हैं।

* * *

अध्याय नवम

भगवत्तत्व

१. श्रीकृष्ण
२. श्रीराधा
३. व्रज
४. गोवर्द्धन
५. वेणु
६. रास
७. भक्ति
८. ज्ञान
९. मुक्ति

भगवत्तत्व

श्री कृष्ण

श्रीमद्भागवत का वैशिष्ट्य श्रीकृष्ण चरित वर्णन के कारण ही है, यह कथन विसम्वाद रहित है। श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्ण में अभिन्न सम्बन्ध है। आचार्य वल्लभ ने भागवत के वाक्य—

'तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षावर्तते हरेः'

की सार्थकता का प्रवल शब्दों का प्रसार किया था। आज भी श्रीमद्भागवत को भगवान् श्रीकृष्ण के विग्रह के तुल्य पूजनीय माना जाता है। कृष्ण का उल्लेख न केवल भागवत में अपितु अनेक पुराणों में उपलब्ध होता है। गोपाल सहस्त्र नाम, विष्णु सहस्त्र नाम, पुरुषोत्तम सहस्त्र नाम, आदि स्तोत्र साहित्य में कृष्ण के अनेक नाम लिखे गये हैं।

यद्यपि महाभारत में कृष्ण को नारायण का अंश माना है—

'यः स नारायणो नामदेव देवः सनातनः
तस्यांशो वासुदेव स्तु कर्मणोऽन्ते विवेश ह।'[1]

तथापि भागवत (१।३।१) में नारायण को पुरुषावतार माना है। कृष्ण के नारायणत्व में सन्देहावसर नहीं है। ब्रह्मस्तुति में लिखा है कि आप अवश्य ही नारायण हैं (भा० १०।१४।१४)। इस प्रकार भागवत में, वैकुण्ठवासी, चतुर्भुज, नारायण, महाविष्णु, श्वेतद्वीपपति विष्णु, वसुदेव नन्दन तथा वृन्दावन बिहारी नन्दनन्दन एकरूप में ही वर्णित हैं।

कुन्ती कृत स्तुति में उनका स्वरूप तथा उनके येवतार का प्रयोजन भी स्पष्ट लिखा है (भागवत १।८।२१)—

---

[1] महाभारत स्वर्गारोहण पर्व। अ० ५ श्लोक २४।

'कृष्णाय वासुदेवाय देवकी नन्दनाय च
नन्द गोप कुमाराय गोविन्दाय नमोनमः ।'

भागवत में कृष्ण के निम्नलिखित रूप वर्णित हैं[1]—

१. असुर संहर्ता	२. बालकृष्ण	३. गोपिकारमण
४. राजनीतिज्ञ	५. योगीश्वर	६. परब्रह्म ।

कृष्ण भगवान् के राजनीतिज्ञ रूप का दर्शन महाभारत में, परब्रह्म रूप का गीता में विशेषतः वर्णित है। रसिकेश्वर (गोपिकारमण) रूप का वर्णन भागवत में है। भागवत दशम स्कन्ध उत्तरार्द्ध में कृष्ण के राजनीतिज्ञ एवं असुर संहारी रूप का वर्णन भी उपलब्ध होता है। किन्तु असुर संहारी रूप का वर्णन पूर्वार्ध्र में विशेषतः वर्णित है। रासलीला-गोवर्द्धन लीला आदि में उनके योगीश्वर रूप की झाँकी है। भागवत में कृष्णलीला का वर्णन तीन स्कन्धों में उपलब्ध है। द्वितीय स्कन्ध के सप्तमाध्याय के २६ वें श्लोक में कृष्ण-बलराम के अवतारों का उल्लेख मात्र है। तृतीय स्कन्ध के द्वितीयाध्याय में बाललीलाओं की सूची है। तृतीयाध्याय में अन्य लीलाओं का वर्णन है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण दशम स्कन्ध है। इसमें कृष्ण लीलाओं का जैसा सांगोपांग वर्णन हुआ है वैसा अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होता।

कृष्ण सकल कलापरिपूर्ण हैं। उज्जयिनी में विद्याध्ययन के समय उन्होंने चतुर्दश विद्या तथा ६४ कलाओं का स्वाध्याय किया था। वे वेदान्त-ज्ञाता, मुरलीवादक, नृत्यकला प्रवीण है। ब्रज का यह पौगण्डावस्था का रूप परम आकर्षक है। ८४ लाख योनि में ब्रह्म व्याप्त है तथा कृष्ण ब्रह्म ब्रह्म ८४ कोस ब्रज में व्याप्त है। कृष्ण की बाल लीलाओं में बालचरित का वर्णन भक्तिरस की परिपक्वता के साथ हुआ है। बाल लीलाओं में यशोदा का वात्सल्य कृष्ण का नटवरपन, एवं गोपिकाओं के साथ मनोविनोद के वर्णन भी हैं।

भागवतकार ने श्रीकृष्ण का स्वरूप वर्णन बड़े कौशल के साथ किया है, उन्हें मानव जन्मा बतलाते हुए, सर्वातिशायी बलशाली, महामानव देव एवं ईश्वर के साथ परब्रह्म तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के दो रूप हमारे सम्मुख आते हैं—प्रथम मानव रूप, द्वितीय परब्रह्म रूप। मानव रूप का स्पष्ट वर्णन उनकी तत्तत् लीलाओं में स्पष्ट है,

---

[1] **भागवतदर्शन—हरवंशलाल—भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़, पृष्ठ ६५ ।**

वे गर्भ में आते है, जन्म ग्रहण करते हैं, रक्षा के लिये अनेक साधन अपनाते हैं, आहार, व्यवहार, नित्यकर्म, भोगविलास आदि में संलग्न पाये जाते हैं। गोपियों के साथ वे रासक्रीड़ा करते हैं। पुनः शत्रुओं का विनाश कर द्वारका में साधारण राजकन्याओं के साथ विवाह करते हैं और पिता, पितामह, प्रपितामह आदि के नाम से अभिहित होते हैं तथा अपनी मर्त्यलीला की विविध क्रीड़ाओं के साथ यादवों के साथ ही अपना शरीर त्याग देते हैं।

यह कृष्ण का मर्त्य शरीर पक्ष उन्हें ब्रह्मपद से खींचकर धरातल के साधारण पुरुषों के समान बना देता है, और इसमें उनके राजनीतिज्ञ, कूट-नीतिज्ञ, कलाविद्, पुरुषार्थी आदि के अनेक चित्र भरे पड़े हैं।

दूसरे रूप में वे अजन्मा हैं, अवतार नहीं अवतारी हैं, सृष्टि के पालन-पोषण-संहर्ता सभी कुछ हैं वे अनेक ब्रह्माण्डों के रचयिता एवं जगन्मायक देवाधिदेव तथा साक्षात् ब्रह्म हैं।

भागवत में उनके इस ब्रह्म रूप का निरूपण अनेक स्थलों पर दृष्टि-गोचर होता है। भागवतकार मानव के साथ सम्बन्ध रखता हुआ भी उसमें ऐसी विचित्र बातें लिखता है जो मानव जन्मा के साथ घटित नही की जा सकतीं, उनमें कतिपय के उदाहरण—

१. ब्रह्मा आदि की स्तुति से विष्णु भगवान् देवकी के गर्भ में आते हैं, देव उनकी स्तुति करते हैं उन्हें वे 'सत्यात्मक' स्वरूप में देखते हैं।[1]

२. प्रकृति रूपी आलवाल में यह संसार का वृक्ष स्थित है जिसमें दो पक्षी हैं, उसके आश्रय कृष्ण ही हैं।

३. कृष्ण का जन्म चतुर्भुज रूप में हुआ था—(भा. १०।३।९)। साधारण बालक न तो चार भुजा युक्त ही होता हैं और न शंख चक्र-गदा तथा पीताम्बर धारण किये ही। थोड़े समय पश्चात् वही शिशु द्विभुज हो जाता है तथा कपाट श्रृंखला स्वतः ही टूट जाते हैं एवं वसुदेव जी उन्हे गोकुल पहुँचा आते हैं।

४. पूतना, शकटासुर, तृणावर्त आदि का भी वे विनाश कर देते हैं,

---

[1] भागवत १०।२।२६।

वृन्दावन में दावानल पान कर जाते हैं एवं सात वर्ष की अवस्था में गोवर्द्धन पर्वत धारण करते हैं, आदि।

उक्त कर्मों को यदि बुद्धि की कसौटी पर कसा जाय तो साधारण मनुष्य की शक्ति के साथ इन वर्णनों का सामंजस्य ठीक नहीं बैठ सकता। भागवतकार ने सभी अतिमर्त्य स्थलों पर देवगणों को उनके समीप स्थित रखा है वे प्रत्येक लीला के पश्चात् पुष्पवृष्टि करते हैं। कृष्ण द्वारा एक ओर असुरों का दमन प्रारम्भ दिखलाई देता है दूसरी ओर अभिमानी देवगणों का दमन भी वर्णित है। स्वयं ब्रह्मा उनके वत्सहरण द्वारा कोप का भाजन बनता है एवं क्षमा माँगता है (भागवत १०।१२ ब्रह्म स्तुति)

इन्द्र देवता का मान भंग गोवर्द्धन पर्वत के पूजन के कारण किया। (भा. १०।२४) वरुण देवता का गर्व रात्रि को स्नान करने गये हुए नन्द के पैर पकड़ कर पाताल पहुँचने के समय किया। कामदेव का गर्व रासलीला करने नष्ट किया आदि। प्रत्येक देव के मुख से उनकी महिमा का गान एवं उन्हें प्रकृति से परे ही सिद्ध किया गया है। ऐसी परिस्थिति में प्रायः सभी उनके रूप का निर्णय नहीं कर पाते। भागवत धर्म के अभ्युदय के साथ आचार्य अपनी सम्प्रदाय स्थापना में संलग्न थे। और भागवत पुराण का भी वे प्रामाण्य स्वीकार करते थे, क्योंकि भागवत में नारायण, विष्णु, कृष्ण, राम सभी नामों का माहात्म्य उपलब्ध था।

प्रमुख आचार्यों ने विष्णु स्वामी, शंकराचार्य, मध्वाचार्य आदि महानुभावों ने भागवत की समालोचना प्रारम्भ की और उसके वाक्यों को अपनी सम्प्रदाय के लिये प्रमाण रूप में उद्धृत किया तो प्रत्येक सम्प्रदाय के आचार्यों को विवश होकर भागवत का समाश्रय ग्रहण करना पड़ा। धीरे-धीरे उनके अनुगामी आचार्यों ने अपनी शब्द राशि की शक्ति से भागवत की धारा अपनी ओर आकर्षित की।

प्राप्त टीकाओं में भावार्थ दीपिका टीका सम्पूर्ण भागवत पर उपलब्ध सर्वप्राचीन टीका है इसके रचयिता श्रीधर स्वामी ने भागवतकार के वर्णन के साथ उनकी ध्वनि से ध्वनि मिलाई तथा भागवतकार का आशय संक्षेप में किन्तु गम्भीर रूप में प्रकाश में लाये। श्रीकृष्ण पर दृष्टि डालते हुए उन्होंने मूल के साथ तो उन्हें रखा अर्थात् मर्त्यभाव के स्थल पर मर्त्य एवं ब्रह्म-परमातमा भाव के स्थल पर परमात्मतत्व से निरूपित किया, किन्तु निर्विशेषवाद के स्थलों पर अथवा जहां जहां 'एकस्त्वमेव' आदि के वर्णन में हैं वहां बलात्

कृष्ण का नाम आरोपित नहीं किया किन्तु मंगलाचरण में उन्होंने श्रीकृष्ण के सम्वन्ध में जो अक्षर लिखे हैं केवल उनसे यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि वे श्रीकृष्ण को परब्रह्म के रूप में मानते थे- (भा. दी. १।१।१ मंगला.)

'विश्व सर्ग विसर्गादि नवलक्षण लक्षितम्
श्री कृष्णाख्यं परंधाम जगद्धाम नमामित्तत् ।।'

यहाँ यह कथन आवश्यक है कि रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य श्रीकृष्ण को परव्योमपति नारायण के विलास मानते हैं। सुदर्शन सूरी ने कृष्ण को नारायण का अंग लिखा है--

'अथवैवं सम्बन्धः नारायणः नरभूजलायनाद्यः प्रसिद्धस्तस्य त्वमंगं मूर्तिरवतारः किं नासीत् आनन्दस्वरूपस्यरूपत्वात्·········' (शु. प. १०।१४।१४)

वीरराघव ने नारायण और कृष्ण में अभेदत्व सिद्ध किया है--

'·········अवतार भेदेन तत्तदाकृति भेदेऽपि तत्तत्काल कार्यकर्मादि चरित्र भेदेऽपि चावतारिणस्तवाभेदः अवतारी सदा त्वमेक एव नतु नानेति दिक् ।'
(भा. चं. चं. १०।१४।१४)

रूप गोस्वामी ने इनका मत व्यक्त करते हुए खण्डन किया है—

'अथ श्रीवैष्णवाः प्रत्यवतिष्ठन्ते । ते हि मन्यते, परव्यूहविभवान्तर्याम्यर्चात्मनापरमात्मा विभाति । तत्र परः—नारायणः स्वयं प्रभुः, व्यूहाः वासुदेवादयश्चत्वारः, विभवाः—मत्स्य कूर्मादयः········· विभवेषु नृसिंहो रघुनाथः कृष्णश्च श्रेष्ठाः तेष्वैश्वर्याधिक्यात् कृष्णो नारायणान्तरो भविष्यति·········ननु मत्स्यकूर्मादिरिव कृष्णोऽप्यवतार इति चेत् ? नैवमित्याह जन्मादीति ।'[१]

रूप गोस्वामी ने सिद्ध किया है कि श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं—

'ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारण कारणम् ।।' (वही १३२ कारिका)

रूप गोस्वामी ने नारायण को भी श्रीकृष्ण का विलास माना है। यद्यपि श्रीकृष्ण द्वापर में उत्पन्न हुए थे ओर नारायण अनादि हैं—यह शंका सम्भव है तथापि श्रीकृष्ण की लीला अनादि है। (वही १३५ कारिका)

जीवगोस्वामी ने बृहत्क्रमसन्दर्भ में रूपगोस्वामी के आशय को व्यक्त किया है कि नारायण के दो अर्थ है जलों का आश्रय तथा जीवों का आश्रय, किन्तु नारायण कृष्ण के ही अंग है—(बृ. क्र. सं. १०।१४।१४)

---

१. **भागवतामृत, पृष्ठ १६८, खेमराज कृष्णदास, बंबई १६५६।**

'.......तेन सर्वे जीवा नारं तदयनात् त्वं नारायणः जलशायित्वातवांग नारायण इत्येष विशेषः ।'

श्रीधर के परवर्ती टीकाकारों में सुदर्शन वीरराघव एवं विजयध्वज विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं, उक्त विद्वानों ने भागवत की टीका करते हुए अपने मतवाद का प्रदर्शन तो किया, किन्तु श्रीकृष्ण के रूप प्रकाशन के स्थल पर विशेष अभिरुचि नहीं दिखाई, कृष्ण की माधुर्य लीलाओं का रस इन्हें अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका, कारण उन पर तत्कालीन सम्प्रदायाचार्यों की सीमा का बन्धन था यह स्पष्ट है ।

भागवत में प्रत्यक्ष रूप से कृष्ण की भू-भार हरण लीला देखने में आती है किन्तु उनका परब्रह्म रूप लीलाहरण रूप से कहीं अधिक मान्य है । आचार्य वल्लभ ने कृष्ण के इन दोनों तथ्यों का निरूपण एक कारिका में किया है—(पुरुषोत्तम सहस्रनाम) से ।

'परब्रह्मावतरणः केशवः क्लेशनाशनः
भूमि-भारावतरणो भक्तार्थाऽखिल मानसः ।

पंचभूतों पर परब्रह्म की सत्ता है वह श्रीकृष्ण के कार्य द्वारा स्पष्ट है[1]—

१. कृष्ण की पृथ्वी तत्व पर विजय का निरूपण-मृतिका भक्षण, तथा गोवर्धन क्रीड़ा द्वारा है ।

२. जलतत्व के विजय का संकेत कालिय सर्प का यमुना जल में दमन, नन्द की वरुण दूतों से रक्षा, मूसलाधार वर्षक इन्द्र का मान भंग एवं समुद्र में शंखचूड़ का वध आदि लीलाओं द्वारा स्पष्ट है ।

३. तेजतत्व—पर विजय के संकेत, खाण्डव दाह, दावानलपान आदि प्रसंगों में प्राप्त है ।

४. वायुतत्व पर विजय की सूचनाऐं तृणावर्त वध, शाल्व वध आदि द्वारा वर्णित हैं ।

५. आकाश तत्व—विजय की प्रामाणिकता 'व्योमासुर बध कथा' यशोदा के बाँधने पर न बंधना, उलूखल लीला आदि द्वारा स्पष्ट है । केनोपनिषद् में परमात्मा सर्व सामर्थ्यवान् लिखा है । भागवत में भी सब देवगण कृष्ण की स्तुति करते हैं । अतः आचार्य वल्लभ की सम्प्रदाय में कृष्ण ही परब्रह्म माने गये हैं ।[2]

---

[1] गुजराती भाषान्तर भागवत, पृष्ठ ६६८ ।

[2] १००८ श्री व्रजभूषणलाल जी महाराज, कांकरौली ।

वल्लभाचार्य के समकालीन मध्व गौड़ीय चैतन्य सम्प्रदाय के भक्तवर टीकाकार–सनातन, जीवगोस्वामी एवं विश्वनाथ चक्रवर्ती ने वल्लभाचार्य से भी एक पग आगे बढ़ाया और श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा का उल्लेख व माहात्म्य गान भी तत्परता के साथ किया ।

वल्लभाचार्य अपनी टीका में श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व सिद्ध कर चुके थे राधा के सम्वन्ध में केवल संकेत प्रस्तुत किये थे । स्पष्ट रूपेण वे राधा की स्थापना में संकोच कर गये थे । गौड़ीय वैष्णवाचार्यों ने परब्रह्म का महत्व कम कर दिया और श्रीकृष्ण का पद सर्वोच्च स्थान पर स्थिर किया । भागवत के आधार पर ही शब्दों की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जिससे उनके मर्त्य भाव के साथ ईश्वर भाव का निरुपण अविरुद्ध हो । वस्तुतः यह एक क्रान्ति हैं जिसमें श्रीकृष्ण का इतना उत्कृष्ट रूप वर्णित किया गया है । भागवत में वर्णित कृष्ण के शरीर त्याग की शंका का निराकरण करते हुए जीव गोस्वामी लिखते हैं कि भागवत प्रथम स्कन्ध में वर्णित–तनु त्याग ने का अर्थ नष्ट होना नहीं किन्तु तनु का अर्थ है भू-भार जिहीर्षा लक्षण रूपभाव, इसका परित्याग किया था न कि शरीर का(क्र. सं. १।१५।३६)—

‘त्यागः स्वतनुकरणकमेव न तु स्वतन्वासह ‘इति व्याख्येयम् ।’

यादवों को भी भगवत्लीला दर्शन के अतिरिक्त अन्य कार्य कृष्ण के भौतिक देह से नहीं था । कृष्ण नित्यतत्व हैं और वे वृन्दावन में सदा निवास करते हैं, वृन्दावन धाम भी नित्य है, इस भावना से प्रेरित होकर वे कृष्ण का नन्दराय के साथ मथुरा आगमन भी नहीं मानते । ‘नित्य कृष्ण के अभाव में नन्द जशोदा जीवित कैसे रह सकते थे ?[1]

भागवत में उद्धव के ब्रजगमन का वर्णन ब्रजवासियों की समृद्धि दशा का परिचायक है उनकी कष्टावस्था का नही, जब कि कृष्ण के वियोग में उन्हें दुःखित चितित्र करना चाहिये ? अतः कृष्ण नित्य है और वे सदा ब्रजवास करते हैं । सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि इस समुदाय के टीकाकारों ने दो कृष्णों का प्राकट्य स्वीकार किया है । एक देवकी के यहां द्वितीय यशोदा के यहां । देवकी के गर्भ से प्रकट श्रीकृष्ण यशोदानन्दन में समा जाते हैं । इस प्रकार श्रीकृष्ण अवतार होते हुए भी परात्पर तत्व है नित्य है । राधा उनकी शक्ति है, उनके साथ सदा वे रहते हैं ।[2]

---

१. **सारार्थ दर्शिनी १०।४६।११**

२. **श्रीभक्तिहृदय वनमहाराज, वृन्दावन ।**

'ब्रह्मे ति-परमात्मेति भगवानिति शव्यते' (भा. १।१२।११)

इसकी व्याख्या में 'भगवान' का पद ब्रह्म-परमात्मा से भी बढ़कर सिद्ध किया है। ब्रह्म सूत्रों का ब्रह्म, गीता का परमात्मा भागवत में भगवान है यही उसके त्रिविधि नामों का रहस्य है। यही भगवानपद रासारम्भ में प्राप्त है।

'भगवानपि ता रात्रीः' (भा. १०।२९।१)

भगवान् षडैश्वर्यशाली हैं, वे छः ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य। तभी तो कृष्ण का साक्षात् भगवान पद से व्यवहार है—

"एते चाँश कला पुंशः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (भा. १।३।२८)

निम्बार्क सम्प्रदाय के टीकाकार शुक सुधी ने भी अपनी टीका में श्री कृष्ण को परात्पर सिद्ध किया है तथा जगत्प्रसिद्ध नारायण इन्हीं श्रीकृष्ण के अंग हैं यह लिखा है—

'........तस्मात् प्रसिद्धोनारायणः सतु तवैवांगं वपुर्भवति अतः सर्वथा परम नारायणस्त्वमेवासीति फलितोऽर्थ........।' (सि. प्र. १०।१४।१४)

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि सभी टीकाकार भगवान कृष्ण का अवतारी होना मानते हैं तथा वही सर्वाधिक शक्तिशाली तत्व हैं एवं उनकी लीला भी अचिन्त्य हैं।

श्री राधा

भारतीय संस्कृति में प्रकृति पुरुष का अनादि सम्बन्ध माना जाता है। सांख्य शास्त्र में प्रकृति पुरुष शैवशास्त्र में शक्ति शिव एवं पाँचरात्र आगम में लक्ष्मी-नारायण वैष्णवों में सीता-राम, राधाकृष्ण आदि युगल का सम्बन्ध वेद से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित है। राधा के उपासकों का कथन है कि राधा का उल्लेख ऋग्वेद में है—

'अतारिषुर्भरता गव्य वः सम
भक्त विप्रः सुमति नदीनाम्
प्रपिन्वध्व भिषयन्ती सुराधा
आवक्षाणाः पृणध्वं यात शीमम्।' (ऋ. ३।३३।१२)

नीलकण्ठ विद्वान का कथन है कि 'अतारिषुर्भरता' मन्त्र में विश्वामित्र ऋषि ने नदी समुद्र के परस्पर वार्तालाप द्वारा गोपियों को अभिसार के लिए प्रेरित किया है।

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च' (शुक्ल यजुर्वेद ३१।३२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मन्त्र में समागत 'श्री' शब्द से राधा का ही उल्लेख है ।[१]

आश्चर्य है कि गत शताब्दी के विद्वानों ने राधा के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते समय स्वयं को ही प्रमाण सिद्ध करने की चेष्टा की अथवा यों कह सकते हैं कि उन्होंने अन्धानुकरण किया, क्योंकि भागवत में राधा का उल्लेख किस प्रकार गोप्य है एवं किस स्थल पर स्पष्ट है यह जानना ही उन्होंने अनावश्यक समझा । यदि वे भागवत के मर्मज्ञ टीकाकार जो असाधारण विद्वान एवं उच्चकोटि के भक्त हुए हैं उनकी टीकाओं का थोड़ा भी परिशीलन करते तो मुक्त कण्ठ से राधा का अस्तित्व असिद्ध करने का असफल यत्न न करते ।

राधा का अस्तित्व में तब शंका करना उचित होता जब कि भागवत में अन्य गोपियों के उल्लेख होंने पर भी राधा का उल्लेख न होता । किन्तु भागवत में अन्य गोपियों के उल्लेख होंने पर भी राधा का उल्लेख भी प्राप्त नहीं है तब राधा के स्पष्ट नाम निर्देश न होने पर ही इतना कौतुक क्यों ? टीकाकारों ने रास पंचाध्यायी में सैकड़ों बार राधा का उल्लेख किया है, क्या यह कम महत्व की बात है ? साथ ही राधा की जन्मकथा भी दिव्य है उससे श्रीराधा की अलौकिकता का ज्ञान सहज में ही हो जाता है ।

राधा जन्म कथा—पद्मपुराण ब्रह्म खण्ड, अध्याय ७ के अनुसार राधा का जन्म भाद्रपद शुक्ल पक्ष अष्टमी को वृषभानु की यज्ञभूमि में हुआ था । जिस समय वृषभानु गोप यज्ञ के लिये भूमि का शोधन कर रहे थे उस समय उन्हें एक कन्या (राधा) मिली । वृषभानु ने उसका कन्या के समान ही पालन किया था ।

द्वितीय कथा—ब्रह्मवैवर्त ब्रह्म खण्ड के अनुसार कल्प के आरम्भ में गोलोक में समस्त देवगण रास में दर्शन के लिये उपस्थित हुये थे । रास के पूर्व श्री कृष्ण के वाम पार्श्व में एक कम्पन हुआ और श्रीराधा प्रकट हुई । 'राधा' शब्द भी इस कथानक की सूचना देता है क्योंकि 'रा' का अर्थ है 'रास मन्डल में प्रकट हुई' तथा धा का अर्थ है 'प्रकट होते ही कृष्ण के चरणों में अर्घ्य समर्पित करने के लिये दौड़ीं'—

'रासे सम्भूय गोलोके सादधार हरेः पुरः
तेन राधा समाख्याता पुराविद्‌र्भिद्विजोत्तम ।'

---

[१] **सिद्धान्त रत्नावली—वेदान्त कामधेनु (हरिव्यास देवाचार्य कृत) ।**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक बार श्री राधिका को कृष्ण और विरजा के विहार का पता लगा तो वे मान कर बैठीं । कृष्ण के बहुशः मनाने पर भी उनका मान कम न हुआ, इस बीच 'सुदामा' नामक कृष्ण का सखा भी आ गया और राधिका की कटु शब्दों में भर्त्सना करने लगा । उन्होंने सुदामा को असुर होने का शाप दिया तथा सुदामा ने भी कोपावेश में आकर राधिका को भी कुछ काल के लिये कृष्ण से वियोग होने का शाप दिया । इस प्रकार, रासेश्वरी श्रीराधा के भारत-वर्ष में अवतरित होने की भूमिका बनी, उसके नित्य रास की नित्य निकुंज लीला की एक झाँकी जगत् में प्रकाशित होने की प्रस्तावना पूर्ण हुई ।[1] श्रीराधा वृषभानु पत्नी के गर्भ में पधारीं । तथा भाद्रपद शुक्ल पक्ष अष्टमी को प्रसव के पूर्व एक ज्योति फैल गई, उदर से केवल वायु मात्र ही निकली किन्तु उस दिव्य ज्योति से एक बालिका उनके समीप दिखलाई दी । कीर्तिका ने यही समझा कि मैंने ही इसे उत्पन्न किया है, यह बालिका श्रीराधा बनी । बाल्यावस्था में ही उन्हें एक बार कृष्ण का साक्षात्कार हुआ । नन्द ने अपनी गोद में से राधा की गोद में कृष्ण दिये । वे अन्तर्हित हो गये और एक किशोर कृष्ण प्रकट हुए । राधिका भी किशोर बनीं और ब्रह्मा ने उनका एकान्त रास स्थल के निकट पाणिग्रहण कराया, तदुपरान्त वे पुनः शिशु बने और राधिका उन्हें नन्द को दे गईं ।

राधा को वियोग का काल पूर्ण करना पड़ा । बाह्य रूप से कृष्ण द्वारका गये और राधा वृन्दावन में रहीं, उनका कुरुक्षेत्र में मिलन हुआ—

> 'प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित–
> स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः संगम सुखम्
> तथाप्यन्तःखेलन्मधुरमुरली पंचम जुषे
> मनो मे कालिन्दी पुलिन विपिनाय स्पृहयति ।'[2]

तथा– 'राधा माधव भेंट भई

> राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति ह्वै जु गई ।'

उक्त पद्यों में राधा-कृष्ण मिलाप का स्पष्ट वर्णन है । पद्म पुराण के 'पाताल खण्ड' में राधा को आद्या प्रकृति भी लिखा है । दुर्गा आदि देवियाँ राधा की कला के करोड़वें अंश के तुल्य हैं ।राधा के समान न कोई अन्य नारी है और न कृष्ण के समान अन्य कोई पुरुष—

---

[1] जगज्जननी श्रीराधा, पृष्ठ ४५० ।

[2] भारतीय वाङ्मय में राधा, पृष्ठ ४८८ ।

'न राधिका समा नारी न कृष्ण सदृशः पुमान्'[1]

देवी भागवत[2] में महाविष्णु की उत्पत्ति राधा द्वारा सिद्ध की है। उक्त पुराण में राधा के मन्त्र का स्वरूप अपविधि आदि का सुन्दर निरूपण है। 'श्रीराधायै स्वाहा' राधिका का मन्त्र है तथा इसके आदि में माया बीज ह्रीं का प्रयोग करने से श्रीराधा वांछा चिन्तामणि मन्त्र बन जाता है जिसका स्वरूप है—'ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा'। राधिका की पूजा के बिना कृष्ण की अर्चा में किसी का अधिकार नहीं है। इसलिये वैष्णवों का परम कर्तव्य है कि वे कृष्ण पूजा से पूर्व राधापूजन करें—

'कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधर्चनं बिना
वैष्णवैः सकलैस्तस्मात् कर्तव्यं राधिकार्चनम् ॥'[3]

श्रीमद्भागवत में प्रत्यक्ष रूप से राधा का नाम निर्दिष्ट नहीं हुआ फलतः राधा के अस्तित्व पर भी आधुनिक विद्वान् सशंकित हुए। सर्वथा नाम का अभाव या राधा शब्द ही भागवतकार को पता नहीं यह कथन भी अनुचित है क्योंकि भागवत में स्पष्टतः उल्लेख भी उपलब्ध है—

'नमो नमस्तेऽस्त्वृषभायसात्वतां
विदूर काष्ठाय मुहुः कुयोगिनां
निरस्त साम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥' (भा. २।४।१४)

उक्त श्लोक में ऐश्वर्यवाचक राधस् शब्द के तृतीया विभक्ति के एक वचन में राधसा बना है। 'राधा' शब्द की व्युत्पत्ति भी इसी प्रकार है। वल्लभाचार्य ने इस श्लोक में राधा का संकेत भी माना है। राधस् भगवान् की शक्ति है, इसके साथ भगवान् गृह में ही रमण करते हैं—

'काचिद् भगवतः सिद्धिरपिराधस् शब्द वाच्या…………भगवदीयो रसस्तत्रैव प्राप्तव्यः। गृहं च तस्यैव राधस् शक्ति वेष्टितो भगवान् स्वरूपानन्दे विहरति।' (सु. १।४।१४)

वीर राघवाचार्य ने 'अनयाराधितोनूनं' की टीका में लिखा है कि

---

[1] पद्म पुराण, पाताल खण्ड, अध्याय ७७, श्लोक ५१।

[2] देवी भागवत, स्कन्ध ६, अध्याय ३।

[3] भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा, पृष्ठ १७।

कृष्ण के साथ एकान्त स्थल में गई गोपी ने अवश्य ही ईश्वर की आराधना पूर्व जन्म में की है—

'अनया कृष्णेन सह यातया भगवान् हरिरीश्वरो नूनमाराधितः पूर्वजन्मनीति शेषः।' (भा. चं. चं. १०।३०।२८)

भागवतचन्द्र चन्द्रिकाकार ने कृष्ण के माहात्म्य का ही मुक्त कण्ठ से गान नहीं किया फलतः राधा के नाम की चर्चा में उनका मन नहीं रमा, इसमें आश्चर्य नहीं किन्तु पूर्व जन्म में इसने हरि का आराधन किया है इससे स्पष्ट राधा के गोलोक वास का संकेत दिया है। सनातन गोस्वामी का मत है कि राधा का नाम स्पष्ट रूप से भागवत में नहीं है इसमें आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि शुकदेव मुनि परम रहस्यमय लीला में निमग्न हो गये थे। अथवा गोपिका विरहाग्नि कणिका से दग्ध हृदय श्री 'शुकदेव' देहानुसंधान विरहित हो गये थे (भागवतामृत कारिका)—

गोपीनां वितताद्भुत स्फुटतर प्रेमानलार्चिच्छटा
दग्धानां किल नाम कीर्तन कृतात् तासां विशेषात् स्मृतेः
तत्तीक्ष्णो ज्ज्वलनच्छिखाग्र कणिकास्पर्शेन सद्यो महा
वैकल्यं स भजन् कदापि न मुखे नामानि कर्त्तुं प्रभुः।'

निम्बार्क सम्प्रदायानुवर्ती श्री शुकसुधी ने अपनी टीका में लिखा है क राधाकृष्ण विहार अत्यन्त गोप्य है अतः केवल 'विहार' शब्द का ही उल्लेख किया है—

'विशेषतस्तयासह विहारोऽतिगोप्यत्वान्नोक्तः तस्याः स्वरूपादि निर्णयः प्राचां ग्रन्थेषु द्रष्टव्यः।' (सि. प्र. १०।३०।२८)

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने भी यह माना है कि गोपियों के समक्ष राधा का नाम निर्देश शुकदेव जी ने जान बूझ कर ही नहीं किया (सा. द. १०।३०।२८)। दशम स्कन्ध में सर्वाधिक राधा का उल्लेख गौड़ीय वैष्णव टीकाकारों ने ही किया था।

'अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः। (भा. १०।३०।२८)

रासलीला में कृष्ण के अन्तर्द्धान के समय गोपियां रमण रेती में उनके पदचिन्हों का अन्वेषण कर रहीं थीं किसी गोपी का पद चिन्ह उन्हें दिखलाई पड़ा और उन्होंने कहा कि अवश्य ही इसने भगवान् हरि ईश्वर की आराधना की है। सनातन गोस्वामी ने राधा का उल्लेख इसमें माना है—

'श्रीराधादेव्यास्तानि पदानि परिचित्याश्वस्ता स्तन्नाम निरुक्ति द्वारा

तस्या भाग्यं सहर्ष माहुः। ……………अनयैवाराधितः, आराध्य वशीकृतः नत्वस्माभिः। राधयति आराधयतीति श्रीराधा नामकरणं च दर्षितम्। (वृ. वै. तो. १०।३०।२८)

जीवगोस्वामी का भी यही मत है (वै. तो. १०।३०।२८)—

'…… ……राधयति आराधयतीति राधेति नामकरणंचदर्शितं………।'

विशुद्ध रस दीपिकाकार का मत तो यह है कि अभिधाशक्ति की अपेक्षा व्यंजना का महत्व है—

'…………अत्र साक्षान्नामानुक्तिश्च विपक्षादि समुदाय गोपनीयत्वाद्रसिकानां मते व्यंजनाया एव मुख्यत्वं न तु मुख्याया इति सहचरीणामभिप्रायः।' (विशुद्ध रस दीपिका १०।३०।२८)

कृष्ण ब्रह्म है, राधा उनकी शक्ति है, वह मन वाणी से अगोचर है एवं आत्मतत्व अनिर्वचनीय है वाध्व वाल्कल का दृष्टान्त दिया है। आत्मा क्या है ? इस प्रश्न पर ऋषि मौन हो गया—

'अवचने नैव प्रोवाच' मौन द्वारा ही उत्तर हो गया कि वह अनिर्वचनीय है। 'परोक्ष प्रिया हि देवा' इस श्रुति को उद्धृत करते हुए धनपति ने लिखा है कि राधा का स्पष्ट नाम निर्देश न करने से भागवत ग्रन्थ गम्भीरार्थक सिद्ध हुआ है (गूढ़ार्थ दीपिका १०।३०।२८)—

'……………अनेन राधयत्याराधयत्याऽऽराध्यते वा राधेत्यर्थात्तन्नाम सूचितं तथा च तादृशी राधैवातस्तस्या एव पदानीति…………स्पष्टं नामाक्षरं प्रतिपक्षाणां गोपीनां राधाया वा संकोचान्मुनिना ब्रह्मवैवर्तादौ तन्नाम्नः स्पष्टमुक्तत्वात् तत एव गोपी नामानि ज्ञातव्यानीति कस्या…………एतद् ग्रन्थस्य गम्भीरार्थकत्वंच ध्वनितम्॥'

धनपति ने राधितः में 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यं' से पर रूप होना लिखा है—

'…………श्री कृष्णो राधितः राधामेवेतः प्राप्तः शकन्ध्वादित्वात् पररूपं।' (वही)

राधा कृष्ण के वाम भाग में सर्वदा स्थित हैं—

'वाम भागे स्थितां तस्य राधिकां परदेवताम्'

राधा माधव एक ही रूप हैं—

'तस्माज्ज्योति रभूदद्वेधा राधामाधव रूपकम्'

विना राधा के माधव की पूजा भी निष्फल है—

'गौर तेजो विना यस्तु श्याम तेजः समर्चयेत्'

वृन्दा राधा का ही नाम है—

'ब्रह्मवैवर्त्तोक्ते षु श्रीराधिका षोडष नाम सु वृन्देति तन्नाभोक्तेः श्रीराधा वनमित्यर्थः ।' (विशुद्ध रस दीपिका १०।२६।१६)

विशुद्ध रस दीपिकाकार ने कृष्ण के स्वाधीन पति होने का उल्लेख किया है। जीवगोस्वामी ने दाम्पत्य व्यवहार भी राधिका के साथ सिद्ध किया है (वै. तो. १०।३०)—

'अत्र वंक्ष्य माणानुसारेण श्रीराधयैव सहान्तर्द्धानं ज्ञेयम् ।'

अनेक श्लोक विभिन्न ग्रन्थों से उद्धृत किये हैं, जिनमें राधा का उल्लेख है (विशुद्ध रस दीपिका १०।२६) यथा—राधा ही सर्व मुख्या हैं—

'यथा राधा प्रिया विष्णौस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा
सर्व गोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्त वल्लभा ॥'

राधा महाभाव रूपा है—

'महाभाव स्वरूपेयं नित्यदा वार्षमानवी
सखीप्रणय सद्गन्धवरोद्वर्तन सुप्रभा ॥'

राधा हरि का अर्द्ध भाग है—

'हरेरर्द्ध तनू राधा राधिकार्द्ध तनूर्हरिः
अनयोरन्तरादर्शीमूर्त्यवच्छेदकोऽधमः ॥'

रासलीला में विभिन्न लीलाएँ वर्णित हैं उनमें राधिका के साथ अन्तर्द्धान क्रीड़ा भी है (विशुद्ध र. दी. १०।३३।१७)—

'वंशी संजल्पितमनुरतं राधयान्तर्धि केलिः
प्रादुर्भू यासनमधिपटं प्रश्न कूटोत्तरंच ।
नृत्योल्लासः पुनरपि रहः क्रीडनं वारिखेला
कृष्णारण्ये विहरणमिति श्रीमती रासलीला ॥'

राधा का विशेष विवेचन निम्नलिखित स्थलों पर सर्वाधिक है—

'............योगमाया मुपाश्रितः ।' (भागवत १०।२६।१)

योगमाया राधा का नाम है (वृहत्तोषिणी १०।२६।१)—

'योगस्य संभोगस्यमायो मानं पर्याप्तिर्यस्यां सा योगमाया श्रीराधा । अथवा योगस्य=सम्भोगस्य मा लक्ष्मीः सम्पत्तिरितियावत् तां याति प्राप्नोतीति योगमाया श्रीराधैव तां मनसा उपाश्रितः............पाद्मे प्रसिद्धमेव ।'

किशोरी प्रसाद ने 'श्री शुक उवाच' के 'श्री' शब्द से राधा का संकेत माना है—

'श्रयते आश्रयते हरिरेनामिति श्रीः तस्याः श्रियः परम रमायाः श्रीराधाया मुखकमलेन उपलक्षितः श्री शुक उवाच—श्रीरत्राति योग्यत्वच्छ्री-राधैव ।' (विशुद्ध र. दी. १०।२९।१)

इसी अभिप्राय से श्रीधर स्वामी ने––'····जयति श्रीपतिः' कारिका में 'श्री' शब्द राधा के द्योतनार्थ ही रखा था––

'एतदेवाभिप्रेत्याहुः श्रीधरस्वामिपादाः············श्रीपतिरिति दाम्पत्य-रीतिः श्रीराधा माधवयोरेवेत्यभि प्रायेणोक्तं············रासमण्डलस्य श्रीपति रूपेणैव मण्डन इत्यर्थः ।' (वही)

योगमाया का अर्थ भी राधा माना है । रामनारायण नामक टीकाकार ने योगमाया के अनेक समास कर राधा अर्थ का ही उल्लेख किया है (भावभाव विभाविका १०।२९।१ से ३) में––

'············तां राधा मुपाश्रित एव रन्तुं मनश्चक्रे ।············श्रीमत्याः राधायाः कृपाभवतीति··········मां शोभामाययति या राधा ।'

रमा का अर्थ राधा है—'नित्य प्रियायाः श्रीमत्या राधाया मुखम् ············रमाननाभम्' (वृ. तो. १०।२९।३)

सनातन गोस्वामी ने 'रमा' शब्द से राधा की ही सिद्धि की है––

'रमतीति रमा श्रीराधा ।' (वही)

जीवगोस्वामी ने रमा को महालक्ष्मी रूप भी माना है—

'महालक्ष्मी रूपत्वेन वा रमा अत्र श्रीराधा ।' (क्र. स. १०।२९।३)

वल्लभ ने स्वामिनी शब्द का प्रयोग श्रीराधा के लिये किया है—

'············तत्पोषस्तु स्वामिन्यागमनादिनाग्रे भावीति ज्ञापयितुम् ।' (सु. १०।२९।३)

विश्वनाथ ने रमा की व्युत्पत्ति भिन्न प्रकार से की है, रमा का अर्थ राधा तथा गोपी माना है—

'रमा=श्रीराधा, रमन्ते रमयन्तीति वा रमा गोप्यश्च तासामाननस्येवाभा यस्य तामिति (सा. द. १०।२९।१) । ············जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्' में श्रीराधा का मन्त्र भी गुप्त है । 'कलम' में ककार, लकार वर्ण से 'क्ल' 'वामदृशां' ईकार का वाचक है, 'मनोहरम्' से 'मनः' अनुस्वार का, 'हरम्' अर्द्ध मात्रा का द्योतक है, अतः (क्लीम्) की सिद्धि की गई है—(वि. र, दी. १०।२९।३) से

'कलमित्यादिना वाक्येन गुप्तबीजमेवोद्धतमिति ज्ञेयम् तथाहि कलं

ककारं लकारं च वामदृक् ईकारः मन अनुस्वारः हरमर्द्ध मात्रात्मकमिति ततश्च श्रीराधिकायाः स्वस्य महामन्त्रादिवीजमुभयोरेकीभाव सूचकं जगावित्यर्थः ।'

गूढ़ार्थ दीपिकाकार ने (गू. दी. १०।२९।३) में रमा का अर्थ 'राधा' तथा 'क्लीं' को कामवीज माना है— 'कलम्—कामवीजम् (क्लीम्)'

कृष्ण के अन्तर्हित होंने के उपरान्त गोपियां अत्यन्त दुखित हुईं, जव कृष्ण का दर्शन हुआ तो उनका प्रश्नोत्तर प्रारम्भ हुआ, सनातन गोस्वामी उस समय राधा की स्थति वहाँ नहीं मानते हैं उसके पश्चात् राधा का आना मानते हैं—

'..........परमसुन्दरी श्रीराधा तयाइताभिः प्राप्ताभिः एतेन प्रथम युक्ति प्रत्युक्ति समये तासां मध्ये श्रीराधा नासीत् किन्तु कृष्णस्यावहित्थावगमे जात एव सा मिलितेति ताभिर्वृतः परितो वेष्टितः सन् अच्युतः ।' (वृ. तो. १०।३२।१०) अतः राधा का रासलीला से गहरा सम्वन्ध है । रासलीला को राधा लीला भी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं –

'वस्तुतस्तु श्रीराधाया एव रासलीलेति ।'

अत्र प्रमाणं पाद्मे—

'वाल्येऽपि भगवान् कृष्णः कैशोरं रूपमाश्रितः
रेमेविहारैः विविधैः प्रियया सह राधया ।' (वि. र. दी. १०।२९।३६)

'सुधानिधि' ग्रन्थ में इसके अनुसार वर्णन भी प्राप्त होता है—

'श्रीमद् राधे ! त्वमथ मधुरं श्रीयशोदा कुमारे
प्राप्ते कैशोरकमितिरसादर्हंती साधु योगम् ।
इत्थं बाल्ये रहसि कथया नित्यलीला वयः श्रीः
जातावेशा प्रकट सहजा किन्तु दृश्या किशोरी ।।' (वही)

राधिका अनेक रूपों में शोभायमान है – (वि. र. दी. उपसंहार)

'एकं सस्यापि नो लक्षित मुरसिलसन्नित्य तादात्म्यकान्तम्
तादृश्यो दूरतोऽन्यद् व्रजतिनवगृहेऽन्यतु तन्नर्म शर्म
अन्यद् वृन्दावनान्तर्विहरदथपरं गोकुले प्राप्त योग्यम्
विच्छेयन्यत्तदेवं लसति वहु विधं राधिका कृष्ण रूपाम् ।।

उपासकों में भी तारतम्य होता है इसका निरूपण निम्नलिखित श्लोक से है—

'धन्यालोके मुमुक्षुहरिभजनपरोधन्यधन्यस्ततोऽसौ
धन्योयः कृष्णपादाम्बुज रस परमोरुक्मिगीअप्रियोऽतः ।
याशोदेयः प्रियोतः सुवल सुहृदतोगोप कान्ता प्रियोऽतः
श्रीमद्वृन्दावनेश्वर्यंति रस विवशा राधिकासर्वमूर्द्धा ।।' (वही)

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि श्रीराधा का नाम 'रमा' आदि शब्दों द्वारा स्पष्ट उल्लिखित है तथा शतशः प्रमाण टीकाकारों ने राधा के सम्बन्ध में विभिन्न प्रामाणिक ग्रन्थों से उद्धृत किये हैं जो उक्त टीकाओं के अनुशीलन से और भी अधिक सन्तोषप्रद सिद्ध होंगे । साथ ही यदि भागवत में से राधा का अस्तित्व समाप्त किया जाऐ तो भागवत की रसमयता ही लुप्त हो जायगी, परवर्ती साहित्य जो भागवत से अनुप्रमाणित है राधा के वर्णन से ही समृद्ध है, यदि उसका मूल व्यर्थ है तो उसका अस्तित्व भी कपोल कल्पित सिद्ध होगा, इस प्रकार रचयिता सिद्ध-महात्माओं की आत्मा को 'जिन्होंने अपनी आत्मिक शक्ति का केन्द्र श्रीराधा को माना था' ठेस पहुँचाने का यत्न भी करेंगे जो अत्वन्त वर्ज्य है ।

व्रज

'व्रज समुद्र मथुरा कमल वृन्दावन मकरन्द ।
व्रज वनिता सब पुष्प हैं मधुकर श्रीव्रज चन्द्र ।।'

व्रज की महिमा का गान भागवतकार ने मुक्त कण्ठ से किया है। भागवत के प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण और व्रजधाम में कोई भेद सिद्ध नहीं किया। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने देवों का मद भंग किया उसी प्रकार व्रजधाम ने न केवल भूतल के धामों का अपितु गोलोक वैकुण्ठादि धामों का भी अपकर्ष सिद्ध कर दिया है । यह अलौकिक भूमि है ब्रह्मादि देवों ने उद्धवादि ज्ञानियों ने इस धाम में अपना जन्म सार्थक माना है एवं भविष्य में इशका प्रतिक्षण संयोग वाँछनीय माना है । इस प्रकार की महिमा किसी अन्य धाम की उपलब्ध नहीं होती और यदि किसी की उपलब्ध भी हो तो उसे परब्रह्ममय नही कहा जा सकता, व्रज ब्रह्ममय है क्योंकि श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं ।

व्रज में तो यह परम्परा प्रचलित है कि व्रज भगवत्स्वरूप हैं, जिसे 'श्रुतियाँ' 'अव्यक्त' कहती हैं, 'मुनि' 'ब्रत' कहते हैं, योगी 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के अनुसार समस्त विश्व को 'ब्रह्म' कहते हैं, दार्शनिक 'सत्ता' को ब्रह्म सिद्ध करते हैं वही साक्षात् व्रजभूमि है जो धेनुपालों को अत्यन्त प्रिय है--

'अव्यक्तं श्रुतिभिर्न्यगादिमुनिभि: स्वान्तेव्यचारि व्रतम्
ब्रह्ममैतन्निखिलं जगन्निजधिया न्यध्यायि सद् योगिभि: ।
सत्तादार्शनिकैरभाणि यदहो बुद्धिश्च बौद्धादिभि–
स्तत्साक्षदवलोक्यते व्रज भुवि प्रेमास्पदं धेनुपाल् ।।'[1]

व्रज की महिमा सभी उपनिषदों में उपलब्ध है । 'व्रज' शब्द 'व्रजगतौ' धातु से वना है एवं स्कन्द पुराण में इसकी परिभाषा भी लिखी है—

'व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्याव्यापनाद् व्रज उच्यते ।।'[2]

व्रज ब्रह्म का स्वरूप है––'गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते ।।'[3]

इस व्रज में परमतत्व अप्रकट रूप में रहता है । गोलोक, वैकुण्ठादि धाम सार शून्य होने के कारण उठ गये, 'व्रज' सार युक्त होने के कारण भूतल पर ही रहा । प्रेम की विशेषता ही इस सारता में हेतु थी, वह प्रेम व्रजधाम में है अन्यत्र नहीं ।[4] व्रज के माहात्म्य का सर्व प्रथम उदाहरण भक्ति का तरुण होना है जिसे भागवत के माहात्म्य में प्रारम्भ में ही देखा जा सकता है, भले ही भक्ति कहीं उत्पन्न हुई हो किन्तु व्रज के प्रताप से वह अपनी युवावस्था प्राप्त कर सकी थी । भक्ति की आत्मा को भला यहाँ शान्ति क्यो न मिलती–– भगवान जहां स्वयं विराजमान हैं वहाँ भक्ति क्यों न रहेगी ।

समस्त जीवन को भक्ति में लगाकर भजनानन्द में मग्न सन्त, महन्तों ने अपने लौकिक भोग ऐश्वर्यों का परित्याग कर इस भूमि में शरण ली और उसका मुक्त कण्ठ से गान किया यह स्पष्ट है। स्वामी विहारिन देव ने व्रज को मथुरा से भी अधिक गौरवशाली लिखा है[5]—

'तीरथ सकल लोक वैकुण्ठ ते मधुपुरी अधिक सन्देह न सानौ ।
ताते अधिक निकट व्रज वैभव ब्रह्मावेदनि प्रगट प्रमानौ ।।' (वही)

ध्रुवदास ने लिखा है––

'वैकुण्ठ हुँ ते अधिक है मथुरामण्डल जानि ।
तामें ताहूँ ते अधिक वृजमण्डल सुख खानि ।।' (वही)

---

[1] श्री व्रजभूषणलाल जी महाराज, विरुदावली में – पं० श्रीधर जी शास्त्री कृत व्रज महिमा, श्लोक १ ।

[2] स्कन्द पुराण, भागवत माहात्म्य, अ० १, श्लोक १ ।

[3] वही अ० १, श्लोक २८ ।

[4] सर्वेश्वर-वृन्दावनांक, पृष्ठ ६ ।

[5] वही, पृष्ठ १७ ।

व्यासदेव ने वृन्दावन का स्वान होने के लिए प्रार्थना की है—

'हौ हु मन वृन्दावन को स्वान ।
जो गति तोकौं दैहैं ऐसी सोगति लहै न आन ।।' (वही)

'युगल शतक' के अनुसार वृन्दावन के बाहर हरि मिलें तो नहीं देखने, क्योंकि हरि इस धाम के बाहर हैं ही नहीं—

'रे मन वृन्दाविपिन विहार ।
विपिनराज सीमा के बाहर हरिहू कौन निहार ।
यद्यपि मिलै कोटि चिन्तामणि तदपि न हाथ पसार ।
जैसी श्री भट धूलि धूम रतन यह आसा सरधार ।।' (वही)

ब्रजवासियों के टूक में मेरा जीवन व्यतीत हो । व्यासदेव कहते हैं—

'कर करवा कामरि कांधे पर कुंजन माँझ वसेरौ
ब्रजवासिन के टूक भूख में घर घर छाँछि महेरौ ।
छुधा लगै तब माँग खाउंगो गनौ न साँझ सवेरौ ।' (वही)

व्रजवासियों में आचार-विचार का अभाव है तब भी हरि प्रसन्नता-पूर्वक उनका दिया प्रसाद पाते हैं—

'ब्रजवासिन के पावै टूक । माँग खाइ तब लगै जु भूख ।
बिनु आचार देत ब्रजवासी । हरि जेंवत तिनकें सुखरासी ।।'[१]

सन्तों की इस वाणी में ब्रज की अपार महिमा है अतः यह सम्प्रदायचार्यों के निवासकाल से है यह कथन भी अनुपयुक्त होगा क्योंकि इस धाम का महत्व तो वैदिक युग से देखा जाता है । ऋग्वेद विष्णुसूक्त से——

'ता वां वास्तून्युश्मसिगमध्ये यत्र गावो भूरि शृंगा अयासः ।'

इस मन्त्र में——राधा सर्वेश्वर के कुंजों की प्राप्ति के लिये कामना की है, जहाँ लम्बे सींग वाली गायें विचरण करती हैं । यह मन्त्र यजुर्वेद में भी उपलब्ध है । प्रायः सभी उपनिषदों में वृन्दावन धाम की महिमा उपलब्ध होती है । पुरुषार्थ बोधिनी में ब्रज के वनों का भी उल्लेख है—

'ओं कियन्ति वनानिः भद्र श्री, लोह…………।'[२]

इनमें सात वन श्री यमुना जी से पश्चिम में हैं, पाँच वन यमुना जी से पूर्व में हैं ।

---

[१] **सर्वेश्वर वृन्दावनांक, पृष्ठ १७—स्वामी रसिकदेव ।**

[२] **पद्मपुराण, उत्तर खण्ड, अध्याय २५६ ।**

१२ **वन**–वृन्दावन, मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, काम्यवन, खदिरवन, भद्रवन, भाण्डीरवन, वेलवन, लोहवन, महावन।

१२ **उपवन**–राल, राधाकुण्ड, बद्रीनारायण, वरसाना, संकेत, नन्दी, कोकिलावन, कोटवन, खैलावन, माठवन, यावट, विद्रुमवन।

४ **धाम**–आदिवद्री, सेतुवन्ध (काम्य वन में), द्वारकाधाम (कोसी में), जगन्नाथधाम (दाऊजी में)।

३ **पर्वत**–गोवर्द्धन, बरसाना, नन्दीश्वर।

७ **सरोवर**–मानसरोवर, कुसुमसरोवर, चन्द्रसरोवर, नारायण सरोवर प्रेमसरोवर, पावनसरोवर, मानसरोवर।

७ **गंगा**–कृष्ण गंगा, मानसी गंगा, अलक गंगा, पारल गंगा, गोमती गंगा, पांचाल गंगा, श्याम गंगा।

८ **वट**–वंशीवट, श्रृंगारवट, संकेतवट, किशोरीवट, अक्षयवट, भाण्डीर वट, अद्वैतवट, यतनवट।

व्रज के अन्तर्गत ८४ कोस के स्थान आते हैं, उनमें गोकुल, गोवर्द्धन, वृन्दावन, नन्दग्राम, बरसाना आदि प्रमुख स्थान हैं।

भगवत् धाम दो प्रकार का है—प्रकट और अप्रकट। जीवगोस्वामी ने कृष्ण सन्दर्भ में अप्रकट वृन्दावन को प्रकट वृन्दावन का अप्रकट लीलानुगत प्रकाश कहा है (सर्वेश्वर वृन्दावनांक, पृ० ८८)—

'श्री वृन्दावनस्य अप्रकटलीलानुगत प्रकाश एवगोलोकः।'

अप्रकट लीला भौम वृन्दावन में होती हैं। व्रज को देखते ही व्रज-चन्द्र की स्मृति नेत्रों के आगे आ जाती हैं। वत्सहरण लीलाप्रसंग में श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा का मोह विस्तार दूर करते हुए व्रज की गोपिकाओं एवं गौओं का स्तन पान कर उन्हें धन्यातिधन्य सिद्ध किया है। भागवत में ब्रह्मा द्वारा उनकी स्तुति करायी गयी है—

'अहोऽति धन्ता व्रज गोरमण्यःस्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः।
अहो भाग्य महोभाग्यं नन्द गोप व्रजौकसाम्
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥' (भा. १०।१४।३१-३२)

'मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितोहरिः' (भा. १०।१।२८)

उक्त श्लोक में जीवगोस्वामी ने भगवान का तिरोधान मानने वाले विद्वानों के मत का खण्डन भी किया है, उन्होंने लिखा है कि—

'नित्यमिति कालादि दोषेण अन्यत्रैवान्तर्धानं निरस्तम् अस्याश्चनित्यत्व मानीतम्–

'अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः
पुरीं मदीयां परमां सनातनीम्
सुरेन्द्र नागेन्द्र मुनीन्द्र संस्तुताम्
मनोरमां तां मथुरां पराकृतिम् ।।' (वै. तो. १०।१।२८)

आचार्य वल्लभ ने लिखा है कि जो सर्व तत्वों में सन्निविष्ट है एवं भूमि में भी जहाँ विद्यमान है, वह स्थान मथुरा है–

'सर्वतत्वेषु यो विष्टः स भूमावपि संगतः
स नित्यं क्वचिदेवास्ति तत् स्थानं मथुरा स्मृतः ।' (सु. १०।१।२८)

श्रीकृष्ण यही निवास करते हैं, कभी-कभी आविर्भाव द्वारा ऐसे प्रतीत होते हैं कि वैकुण्ठादि से आये हैं किन्तु यह कथन उचित नहीं। वैकुण्ठ, श्वेतद्वीपादि के अंश ही यहाँ आकर नित्य में विलीन हो जाते हैं एवं पुनः अपने-अपने धाम चले जाते हैं, तृतीय स्कन्ध में स्पष्ट निर्देश भी है (सा. द. १०।१।२८)––

'परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान् यथाग्निः ।
जयति ते धिकं जन्मनाव्रजः श्रयत इन्दिरत शश्वदत्रहि ।।'
(भा. १०।३१।१)

उक्त श्लोक में ब्रज में इन्दिरा का शश्वत् निवास माना है।

श्रीधर स्वामी ने लिखा है कि––

'हे दयित ! तेजन्मना व्रजोऽधिकं यथा भवति······इन्दिरा लक्ष्मीरत्रहि श्रयते व्रजमलं कृत्य वर्तते ।' (भा. दी. १०।३१।१)

सनातन गोस्वामी ने वैकुण्ठेश्वरी का शरणागत भाव से भी व्रज में निवास स्वीकार किया है, यहां 'ब्रज एव तज्जन्मनिश्चयाज्जन्मनाव्रज इत्युक्तम्' इस अंश से श्रीकृष्ण का जन्म भी ब्रज (गोकुल) में सिद्ध किया है। (वृ. तो. १०।३१।१)

जीव गोस्वामी ने 'जयति' पद से ब्रज का भौम, अभौम वैकुण्ठ से भी अधिक महत्व माना है एवं 'हि' शब्द का अर्थ 'निश्चयपूर्वक' माना है अतः लक्ष्मी यहाँ ही रहती है यह अर्थ किया है––

'लक्ष्मीः शश्वदेव अत्र हि अत्रैव तिष्ठतीत्यर्थः' (वृहत क्र.स. १०।३१।१)

आचार्य वल्लभ ने इस श्लोक की टीका में यह लिखा है कि यद्यपि भगवान का जन्म मथुरा में हुआ था तथापि व्रज का ही वैशिष्ट्य अधिक है। लक्ष्मी हीनभाव से यहाँ सर्वदा निवास करती है, क्योंकि वैकुण्ठ में तो वह एक ही है यहां हम अनेक (गोपियां) हैं तो लक्ष्मी विचार करती है कि मेरा भी अवसर कब आये और मैं भगवान की शरण प्राप्त करूँ—

'........त्वदवतारेण व्रजः सर्वोऽपि कृतार्थः वैकुण्ठादपि उत्कर्षः नहि वैकुण्ठे भगवानेवं लीलां करोति यद्यपि मथुरायां जन्मजातं तथापि तेन जन्मना न मथुरा सर्वोत्कर्षेणस्थिता किंतु व्रज एव।........अत्र व्रजे इन्दिरा सर्वदा श्रयते हीन भावेनाश्रयं कुरुते वैकुण्ठेतु सैव नियता भार्येति न तस्याः सर्वदाश्रयणं कर्तव्यं भवति, इह तु तादृश्योवयमनेका इतितस्या स्वास्थ्य भावात् कदावा ममावसरो भविष्यतीति निरन्तरं सेवते।' (सु० १०।३१।१)

वल्लभाचार्य की उपासना गोकुलवासी कृष्ण की है, अतः इस श्लोक की व्याख्या में अपना मनोयोग प्रकट किया है।

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने व्रज को सम्पूर्ण लोकों से उत्कृष्ट सिद्ध किया है। वैकुण्ठ से भी व्रज का अधिक महत्व है क्योंकि वैकुण्ठ में लक्ष्मी की सेवा होती है, व्रज में वह सेवा के लिए वास करती है (सा. द. १०।३१।१)। विश्वनाथ ने 'जयति ते०' श्लोक के 'अत्र' शब्द का अर्थ 'वृन्दावन' किया है गोकुल नहीं। 'अत्र वृन्दावने हि निश्चित मेव'। स्पष्ट है कि यह उनकी सम्प्रदाय की चिन्तन-धारा का प्रभाव है अन्यथा जब कृष्ण का जन्म गोकुल में है तो वृन्दावन का उल्लेख अनावश्यक है। आचार्य वल्लभ का मत समीचीन है।

रामनारायण ने लिखा है कि गोपियां भगवत् रूपा हैं, वे भी यदि व्रज की महिमा का गान करती हैं तो इससे बढ़कर व्रज की महिमा का उदाहरण क्या मिलेगा ? (भावभाव वि. १०।३१।१)

'........तथा साक्षाद् भगवद्रूपा गोप्योऽपि तदाविर्भावाय व्रजं स्तुवन्तीत्यद्‌भुतो व्रजमहिमेति भावः।'

वैकुण्ठ से अधिक होने का कारण यह है कि वैकुण्ठ में भगवान को रमणादि में संकोच होता है यहाँ नहीं, अतः यह व्रज श्रेष्ठ है।

लक्ष्मी भगवान के अवतार के कारण यहां आ गयी हो यह नहीं अपितु 'श्रयत' आत्मने पठ का प्रयोग इन्दिरा को ही फलप्रद है अतः वह अपने भाग्य की सराहना करती हुई यहां निवास करती है।

धनपति सूरी ने भी यह सिद्ध किया है कि व्रज समस्त लोकों में श्रेष्ठ है। (भा. गू. दी. १०।३१।१)

'व्रजजनार्तिहन् ! वीर योषितां' (भागवत १०।३१।६)

उक्त श्लोक में समागत 'वीर' शब्द व्रजवासियों की व्यवहार भाषा में प्रयुक्त होता है--

'........वीरेति देशीय स्निग्धसंबोधनम्वा'[1]

इससे भागवत को दक्षिण भारत की कृति सिद्ध करने वालों को एक नयी दिशा मिलेगी कि इस प्रकार की पद-रचना उत्तर भारत व व्रज के समीप का व्यक्ति ही कर सकता था दक्षिण का नहीं ।

उपर्युक्त विवेचन से यह भी सिद्ध होता है कि टीकाकारों का बहुमत व्रज भूमि को भगवत्तत्व मानता रहा है, विजयध्वज ने इस विषय में अधिक विस्तार नहीं किया और न कोई मार्मिक पक्ष ही प्रस्तुत किया है तथापि अन्य टीकाकारों में अधिकांश तो इस भूमि के निवास का सौभाग्य प्राप्त कर चुके थे, यथा आचार्य वल्लभ, सनातन गोस्वामी, जीवगोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, राधारमणदास गोस्वामी, शुकसुधी, वंशीधर आदि व्रज भाव का प्रकाशन व्रजवास के कारण ही ये अधिक रूप में कर सके, यह निश्चित है । उपर्युवत महानुभावों ने भागवत टीका के अतिरिक्त अपने ग्रन्थों में व्रजरस का सांगोपांग विवेचन किया है जो पठनीय है ।

गोवर्द्धन

गोवर्द्धन व्रज का गौरव है । भक्तवर नागरीदास जी ने कहा कि गोवर्द्धन की महिमा अपार है—

'जयति गिरिराज कृत छत्र व्रजराज सुत
सहज सुर राज गति गर्वहारी ।'
सकल रसवर्धनं देव गोवर्धनं प्रनत इन्द्रादि सुरलोकचारी ।"[2]

नारद ने भी बहुलाश्व से कहा था । गोवर्द्धन के माहात्म्य को ब्रह्मा भी वर्णित नहीं कर सकते—

'वक्तुं नालं चतुर्मुखः ।'[3]

गोवर्द्धन का नाश प्रलय में नहीं होता—

---

१. वैष्णव तोषिणी १०।३१।६ ।

२. वल्लभप्रकाश, वर्ष ५, ग्रीष्मांक, पृष्ठ ७ ।

३. गर्ग संहिता, गिरिराज खण्ड, अध्याय ७ ।

'अपरस्मिन् लये दृष्टमस्माभिः परमं पदम्
राजते यत्र तु महान् गोवर्द्धन गिरीश्वरः ।।'[१]

पद्मपुराण में इसे अनादि कहा है—

'अनादिर्हरिदासोऽयं भूधरो नात्र संशयः ।'[२]

तथा भागवत में भी इसे हरिदासवर्य लिखा है—

'हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो...........।'[३]

व्रजवासियों पर अनुग्रह के लिए ही हरि गिरिराज बने थे—

'.......व्रजवासिन हित कारने आये हरिगिर होय ।।
मोर पखौआ सिर धरैं उर राजत वनमाल ।
सब देखत भोजन करैं मानों श्री गोपाल ।।'

गोप भोजन करते समय कहते हैं कि गिरिराज तो ऐसे लगते हैं कि यह मानों गोपाल ही हों । गोपों को निश्चय नहीं हुआ कि यह नन्दकुमार ही भोजन कर रहे हैं । सूरदास ने भी कहा है—

'राधा ललिता सों कहें तेरे हिरदै समाय ।
गहें अंगुरिया नन्द की ढोढा पूजा खाय ।।

केवल राधा को ज्ञान था कि कृष्ण ही गिरिराज रूप में आये हैं—

'गोप रूप धरोऽहं वै गोविन्द इति विश्रुतः
गोवर्धनाभिधं रूपं द्वितीयं मे प्रकाशितम् ।'[४]

उक्त श्लोक में भगवान ने कहा है कि गोप रूप धारण करने में गोविन्द तथा गोवर्धन ये दो मेरे ही रूप हैं । पर्वतों का राजा गोवर्धन पर्वत श्रीकृष्ण का ही रूप है जिसके कि दर्शनमात्र से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है—

'गिरिराजो हरे रूपं श्रीमान् गोवर्द्धनो गिरिः
तस्य दर्शन मात्रेण नरो याति कृतार्थताम् ।।'[५]

शाण्डिल्य संहिता में इसके पूजन का विधान है—

'गोवर्धन शिलाभ्यर्च्य स्नानगन्धस्रगादिभिः ।[६]

---

१. **वल्लभप्रकाश, वर्ष ५, ग्रीष्मांक, पृष्ठ ७ ।**

२. **पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय ७३, श्लोक ३६ ।**

३. **भागवत १०।२१।१८ ।**

४. **वृहद् व्रह्म संहिता, पाद ३, अध्याय १, श्लोक १६२ ।**

५. **गर्ग संहिता, गिरिराज खंड, अध्याय १० ।**

६. **शाण्डिल्य संहिता, भक्ति खण्ड, अंश ६, श्लोक ४५ ।**

गिरिराज की सेवा का माहात्म्य भी स्पष्ट है—

'गिरिराज शिलासेवां यः करोति द्विजोत्तमः
सप्तद्वीप महातीर्थाऽवगाह फलमश्नुते ।।'[1]

इसकी वार्षिक पूजा का महत्व भी गर्ग संहिता में लिखा है—

'गिरिराज महापूजां वर्षे वर्षे करोतियः
इह सर्व सुखं मुक्त्वाऽमुत्र मोक्षं प्रयाति सः।।'

गोवर्धन की कथा—त्रेता में राम ने लंका पर चढ़ाई की तव समुद्र पार करने के लिए सेतु बनाया गया, वानर अनेक पर्वतों को लाये। हनूमान जव गोवर्धन पर्वत को उत्तर की ओर से ले जा रहे थे तव आकाशवाणी हुई कि सेतु का कार्य समाप्त हो गया है, अतः हनूमान ने इसे व्रज में ही रख दिया। इस पर गोवर्धन पर्वत ने कुपित होकर हनूमान से कहा कि तुमने मुझे मार्ग में ही क्यों डाल दिया। भगवान के चरण स्पर्श से मैं वंचित रह गया। तव हनूमान ने कहा कि द्वापर में भगवान अवतार लेंगे एवं तुम्हारे शिखरों पर विहरण कर तुम्हें आनन्दित करेंगे, सव देवगण भी तुम्हारा पूजन करेंगे, तुम कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोप तथा गायों की रक्षा करोगे।

हनूमान के राम के पास पहुँचने पर राम ने पूछा कि मेरे भक्त गोवर्धन को क्यों नहीं लाये ? तब हनूमान ने उत्तर दिया—मैं उसे व्रज में स्थापित कर आया हूँ। राम ने कहा—उसके लिए मैं व्रज में प्रकट होकर उसका मनोरथ पूर्ण करूँगा।[2]

द्वितीय कथा—एक समय पुलस्त्य ऋषि तीर्थयात्रा करते हुए उत्तर हिमालय में गये वहाँ पर द्रोणाचल पर्वत की यात्रा कर उसके पुत्र गोवर्धन को देखकर द्रोणाचल से कहा कि मुझे अपने पुत्र गोवर्धन को दे दो। मैं काशी में ले जाना चाहता हूँ। द्रोणाचल ने पुलस्त्य के शापभय से आज्ञा दे दी। गोवर्धन ने पूछा तुम मुझे कैसे ले चलोगे, पुलस्त्य ने हाथ पर ले चलने को कहा। गोवर्धन ने कहा आप जहाँ मुझे रख दोगे वही मैं स्थिर हो जाऊँगा। इस शपथ के साथ गोवर्धन चल दिया। मार्ग में व्रज के गौरव से प्रसन्न होकर अपना भार बढ़ा दिया। अतः पुलस्त्य थक गये और इसे व्रज में रखकर लघु-

---

[1] **गर्ग संहिता, गिरिराज खण्ड, अध्याय १, श्लोक ३१।**

[2] **व्रज भक्ति विलास, अध्याय ५।**

शंका करने चले गये फिर स्नान कर शुद्ध होकर आये तब गोवर्धन ने चलने से मना कर दिया । पुलस्त्य ने गोवर्धन को तिल-तिल घटने का शाप दिया ।[१]

तृतीय कथा—एक गोवर्धन नामक ब्राह्मण था । उसने भगवान की घोर तपस्या की । भगवान ने प्रसन्न हो वर माँगने को कहा, गोवर्धन ने अपने ऊपर बैठने को कहा । भगवान गोवर्धन के स्कन्ध पर बैठ गये । तब उसने कहा कि आप इसी तरह बैठे रहें, भगवान की कृपा से तब से वह गोवर्धन निज रूप छोड़कर भगवत् स्वरूप हो गया । अतः गिरिराज भगवत् स्वरूप है ।[२]

श्रीमद्भागवत में गोवर्द्धन पर्वत का एक महत्वपूर्ण स्थान है । उसकी महिमा का गान भागवतकार ने किया है । इसके पूजन के लिये इन्द्र के पूजन की मर्यादा का उन्मूलन भी किया गया है । गोपगण परम्परा अनुसार इन्द्र का पूजन किया करते थे । कृष्ण ने इस पूजन को देखकर नन्द बाबा से प्रश्न किया कि यह पूजन किस उद्देश्य से किया जा रहा है ?—

'किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः' (भा. १०।२४।३)

नन्द ने इस प्रश्न का समाधान करते हुए बतलाया कि—'पर्जन्य इन्द्र है, मेघ उसकी ही मूर्ति है, वे प्राणियों के जीवन हैं, क्योंकि वर्षा करके सब भूतों का उपकार करते हैं—

'पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्म मूर्त्तयः
तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ।।' (भा. १०।२४।८)

नन्द के उत्तर को सुनकर कृष्ण ने कर्मवाद का प्रश्न किया और उसकी स्थापना की—

'कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ।।' (भा. १०।२४।१३)

'कर्म से ही जीव जन्म ग्रहण करता है, कर्म से ही नष्ट होता है, तथा सुख, दुःख, भय, क्षेम, कर्म द्वारा ही प्राप्त करता है ।' यह कर्मवाद सत्पुरुषों द्वारा हेय दृष्टि से देखा गया है तथापि इन्द्र-पूजा लोप के लिये इसका आश्रय लिया गया है ।[३]

---

१. **गर्ग संहिता, वृन्दावन खण्ड, अध्याय २ ।**

२. **नारदीय पुराण, उत्तर खण्ड, अध्याय ८० ।**

३. **'''सद्भिर्विगीतमपि कर्मवादमाश्रित्य देवतां निराकरोति कर्मणेति ।'**

(सारार्थ दर्शिनी १०।२४।१३)

कृष्ण ने यह स्पष्ट किया कि अनेक प्रकार के पकवान आदि बनाकर गोवर्द्धन पर्वत को बलि दो इन्द्र को नहीं—

'यवसं च गवां दत्वा गिरये दीयतां बलिः' (भा. १०।२४।२८)

आचार्य वल्लभ ने बलि देने की प्रक्रिया लिखी है—'पर्वत के समीप समस्त पकवान आदि एकत्रित कर रखने चाहिये'—

'............ततोगिरये पर्वताय बलिर्देयः सर्वमेवानुत्तमं पर्वत समीपे राशीभूतं कर्त्तव्यम् ।' (सु. १०।२४।२८)

आचार्य विश्वनाथ ने बलि का अर्थ गन्ध पुष्पादि उपचार किया है—

'बलिः गन्ध पुष्पाद्युपचारः ।' (सा. द. १०।२८।२८)

विजयध्वज पर्वत के समीप स्थित हरि को बलि दी जाय—यह अर्थ मानते हैं—

'गिरये गिरि सन्निहिताय तन्नाम्ने हरये ।' (प. र. १०।२४।२८)

स्पष्ट है कि पर्वत जड़ है उसे बलि किस प्रकार दी जायगी अतः हरि का बोध ही इससे करना उचित है, यह स्वीकार किया गया है। वीर राघवाचार्य ने—

'अयं गोब्राह्मणाद्रीणाँ मह्यंचदयितोमखः ।' (भा. १०।२४।३०)

श्लोक की व्याख्या में यह संकेत स्पष्ट रूप में दिया है[1] कि गौ, ब्राह्मण आदि के अन्तर में भी स्थित हूँ। गोवर्द्धन की अत्यधिक महिमा का कारण कृष्ण द्वारा उस रूप में प्रवेश ही है—

'गोवर्द्धन भिषेण पृथक् स्वयं तन्मूर्तिराविर्भूय तद् बलि स्वामिनं निजदासवर्यं तं गोपाश्च सर्वानानन्दयन् बलिदानानन्तर मेव साक्षाद् तद्बलिं बुभुजुः ।' (वै. तो. १०।२४।३५)

श्रीकृष्ण ने अनेक रूप धारण कर गोप गोपियों द्वारा प्रदत्त बलि का आस्वादन किया, किन्तु कोई पहिचान नहीं सका। वस्तुतः कृष्ण एक विशाल शरीरधारी बन गये और शिखर पर बैठकर बलि ग्रहण करने लगे—

'कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोप विश्रम्मणं गतः
शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलमाद् वृहद्वपुः ॥' (भा. १०।२४।३५)

---

[1] 'अयं मदुवतोरूखो गवादीनां मह्यं मम च दयितः प्रियः गवाधन्तरात्मनो ममप्रीतिकर इतिगूढ़ोऽभिप्रायः ।' (भा. चं. चं. १०।२४।३०)

मैं ही गोवर्द्धन हूँ यह कहकर कृष्ण ने वलि ग्रहण की एवं अन्य रूप से गोपों के साथ पूजा भी की। वस्तुतः कृष्ण पर्वत के आकार के बन गये थे तथा गोपों को यह विश्वास था कि पर्वत ही इन्द्रियवान् बनकर स्थित है, कृष्ण ने गोवर्द्धन रूप में ही अपने विस्तृत करों द्वारा पूजा ग्रहण की। गोपों को यह भी आदेश दिया कि 'आज से तुम लोग मेरा पूजन करो। मैं तुम लोगों की समस्त कामनाओं को पूर्ण करूँगा, मेरे प्रभाव से गायों को अमृत तुल्य तृणादि प्राप्त होंगे—

'............बलि दूरस्थैः निकटस्थैः नन्दग्रामादि वर्तिभिर्वा व्रजवासि जनैरपरोक्षतःपरोक्षतोवाध्यानेन समर्प्यमाणं सहस्त्र कोटि हस्तस्तत्तत्स्थानादतिः दीर्घानतिदीर्घाकृत पाणिभिरादाय तांस्तानानन्दयन्नादत् भुक्तेस्म।'

'अद्यप्रभृति चेज्योऽहं गोषु चेदस्तिवोदया
अहं वः प्रथमो देवः सर्वकामकरः शुभः॥' (सा. द. १०।२४।३५)

इससे गोवर्द्धन का काम रूप होना स्पष्ट है। इन्द्र ने मरुद्गणों के साथ गोवर्द्धन पूजक गोपों का विनाश करने को करका वृष्टि प्रारम्भ की, कृष्ण ने एक हाथ से गोवर्द्धन पर्वत को धारण कर लिया—जैसे बालक छत्र धारण करता है—

'इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्द्धनाचलम्
दधार लीलया कृष्णश्छत्राक मिव बालकः॥' (भा. १०।२५।१९)

गोवर्द्धन को समूल उखाड़ने से गर्त हो गया था, उस गर्त में ही समस्त गोप-वत्स आदि को सुरक्षित रूप में रखा—

'यथोपजोयं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः। (भा. १०।२५।२०)

जीवगोस्वामी का कथन है कि गोप गोवर्द्धन की पूजा एवं परिक्रमा करके राधाकुण्ड के समीप व्रज में पहुँच गये थे किन्तु महामेघों का आगमन देखकर सब गोवर्द्धन के निकट एकत्रित हुए।[1] कृष्ण केवल बालक नहीं वे साक्षात् विष्णु हैं—

'अनिर्देश्य वपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक्।[2]

---

[1] 'महामेघारम्भादेव गोवर्द्धन निकटे सर्वेषामानयनमवगम्यते।'
(वैष्णव तोषिणी १०।२५।१९)

[2] विष्णु सहस्त्रनाम श्लोश ८३ में 'अनिर्देश्य वपुः' का उल्लेख है।

आदि सहस्त्रनाम में समागत नामों से उनकी अचिन्त्य शक्ति का बोध होता है। कृष्ण ने गोपों से कहा कि मैं तुम्हारी रक्षा करुँगा, आओ मैंने यह स्थान तुम्हारी रक्षा के लिये निर्मित किया है—

'शैलोत्पाटन भूरेषामहती निर्मिता मया
त्रैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितुं किं पुनर्व्रजम् ॥' (वै. तो. १०।२५।२०)

गोवर्द्धन के गर्त में समस्त व्रज नहीं समा सकता ? किन्तु उसकी अचिन्त्य शक्ति से सब कुछ सम्भव है। वीर राघव ने भी 'बालक' पद से शंका अपसारण के लिए उन्हें विष्णु लिखा है एवं नख पर गिरिवर धारण करने का भी उल्लेख किया है (भा. चं. चं. १०।२५।२०)—

'…………एकेन हस्तेन गोवर्द्धना चलं कृत्वा=उत्पाट्य………… सप्तवर्षः विष्णुः श्रीकृष्णः लीलया……………वामकर कनिष्ठिकानखाग्रेण दधारेत्यर्थः।'

गोवर्द्धद पर्वत वक्र एवं विस्तृत है अतः उसका धारण एक हाथ में होना उचित प्रतीत नहीं होता, इसके समाधान में आचार्य वल्लभ की उक्ति अधिक संगत प्रतीत होती है उनका कथन है कि प्रथम कृष्ण ने उस पर्वत को अपनी सामर्थ्य से हाथ पर धारण करने योग्य बनाया तदुपरान्त धारण किया था—

'…………गोवर्द्धनः लम्बो विकृतश्च तमेकेन हस्तेन यादृश उद्धर्तव्यः तादृशं कृत्वा पश्चाद्दधार।' (सु. १०।२५।१९)

यहाँ समग्र पर्वत धारण की अपेक्षा मध्य भाग में से एक शिला या समूह उठाया इसमें एक विशाल गर्त निकला उसके चारों ओर पर्वत की दीवालें वनी थीं अतः जल भी नहीं आ सका, यह उपाय श्रीकृष्ण ने ढूँढ़ लिया था——

'तथोद्धृतवान् यथामध्ये गर्तो भवति प्रान्त भागश्चोन्नतः गर्ताधिक प्रदेशे चतद्गता छाया एवं धृत्वा शरणागतानाह……।' (सु. १०।२५।२०)

आचार्य विश्वनाथ का मत यह है कि कृष्ण ने संहारिकी शक्ति से वृष्टि तथा आकाश को स्तम्भित कर दिया था। वृष्टि का प्रभाव उन पर नहीं पड़ सका और वे गोवर्द्धन के निकट पहुँच गये। विश्वनाथ ने व्रज का विस्तार ४ योजन (१६ कोस) तथा गोवर्द्धन का विस्तार ३ योजन (१२ कोस) माना है और अचिन्त्य शक्ति का ही उल्लेख किया है—

'दिथीर्षासमये योगमायांश भूतया संहारिक्या शक्त्या तावत्यपि वृष्टिराकाश एव तथा संजह्रे यथा स्वगृह्या लिन्दादतिवेगेन ।'

(सा. द. १०।२५।२०)

वेणु

वेणु में भगवान के दो रूप उपलब्ध हैं—नामात्मक, रूपात्मक। वेणु में तीन अक्षर हैं— व + इ + अणु। 'व' का अर्थ है ब्रह्मसूत्र, 'इ' का अर्थ कामसुख, 'अगु' का अथं तुच्छ। वेणु उसका नाम है जिसके आगे सांसारिक सुख एवं आध्यात्मिक सुख भी तुच्छ हैं। इसमें सात छिद्र हैं। छः छिद्र भगवान् के ऐश्वर्य, वीर्य, यश, ज्ञान, श्री, वैराग्य के द्योतक हैं, सप्तम छिद्र अप्राकृत भगवान् का ज्ञापक है। यह गीत भागवत में २० श्लोकों में हैं जो निरोध्र सिद्धि का साधन है। इस गीत के द्वारा भक्ति मार्ग की स्थापना की गयी है।

'वेणु' शब्द का भागवत से कृष्णलीला वर्णन में उल्लेख प्राप्त होता है—'क्वचिद् वादयेतो वेणु' (भा. १०।११।२८)। वादयतः प्रयोग से यह भी स्पष्ट है कि कृष्ण-बलराम दोनों ही वेणु वादन करते थे एवं 'वेणून्' बहुवचन के प्रयोग द्वारा गोप बालकों का भी वेणुवादन सुस्पष्ट है। यह वेणुवादन वृन्दावन में वत्स चारण लीला से प्रारम्भ हुआ था। वन गमन के समय गोप-ग्वाल भोजनादि सामग्री के साथ अपना वेणु भी ले जाते थे। 'सुशिग्वेत्र विषाणवेणवः'। कृष्ण अपने वेणु को कटि भाग में सन्नद्ध रखते थे—'विभ्रद्वेणु जठरपटयोः' (भा. १०।१३।११)। कृष्ण के वत्स एवं बालसखाओं का ब्रह्मा ने अपहरण कर लिया तो कृष्ण को उनका वेणु भी बनना पड़ा। '……त्रेणु दलशिक्' (भा. १०।१३।१६)। गोपियां अपने पुत्रों के वेणुनाद से भली भाँति परिचित थीं (भा. १०।१३।२२)। यद्यपि ब्रह्मा ने अपने नेत्रों से भगवान का चतुर्भुज स्वरूप देखा था तथापि उसमें वेणु नहीं था किन्तु ब्रह्म स्तुति में—'कवलवेत्रविषाणवेणु' (भा. १०।१४।१) में स्पष्टतः द्विभुज एवं वेणु का उल्लेख है। अतः द्विभुज कृष्ण का वेणु से नित्य सम्बन्ध है चतुर्भुज का नहीं।

कृष्ण अपने सखाओं को मृत अजगर का कलेवर दिखला रहे हैं किन्तु वेणुवादन उस स्थल पर भी किया गया है—

'प्रोद्दाम वेणु दल शृंगरवोत्सवाढ्यः' (भा. १०।२४।४७)

वेणु वादन के साथ गायन भी प्रारम्भ हुआ वे मीठे स्वर से वेणु के साथ गान करने लगे—

'तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो०' (भा. १०।१५।२)

तथा कृष्ण अपने गोष्ठ में वेणुवादन करते हुए प्रविष्ट होते थे—'वेणुं विरणयन् गोष्ठ मगाद् (भा. १०।१६।१५)।' कृष्ण के वेणुवादन से गोपियों के काम के वशीभूत होने का उल्लेख भी प्राप्त है—'वेणु गीतं स्मरोदयम्' (भा. १०।२१।३)। कृष्ण अपनी अधर सुधा से वेणु के छिद्र पूर्ण करते हैं, गोपियों को इससे ईर्ष्या होती है। यद्यपि वेणु सर्वभूतों को मनोहर लगता है—

'इतिवेणु रवं राजन् सर्वभूत मनोहरम्।' (भा. १०।२०।६)

वेणु का माहात्म्य और भी अधिक हुआ। गोपियों ने स्पष्ट कह दिया कि जिसने वेणु जुष्ट कृष्ण का वदनार विन्द नहीं देखा उसने अपने नेत्रों का फल प्राप्त नहीं किया (भा. १०।२१।७)। वेणु ने ऐसा क्या तप किया है जो नन्दनन्दन के मुखारविन्द से निःसृत सुधा का इकला ही पान कर जाता है, हमें तो वह दुर्लभ ही है। वेणु की ध्वनि से मत्त होकर मयूर नृत्य करते हैं, हिरणियां कर्ण उठाकर उस ध्वनि से खिची हुई सी प्रतीत होती हैं तथा वत्स दुग्धपान एवं गाय तृण चारण भूल जाती हैं, नदियाँ अपने तरङ्ग रूपी हस्तों द्वारा कमल की भेंट प्रभु के चरणों में समर्पित करने को चंचल हो उठती हैं, अचल चल हो जाते हैं और चल अचल। यह वेणु की महिमा है। पशुओं की दशा ही क्या, देवियां भी वेणुगीत श्रवण कर अपनी दशा भूल जाती हैं।[1] भागवत में वेणुगीत प्रसङ्ग वस्तुतः मूल में ही पठनीय है। रासलीला में वेणु

---

[1] (क) गैया कान उठाय पान करें पक्षी न बोलें कहूं।
बच्छे दूध न पीवते थन मुँह मुख लाय ठाड़े रहें।
ग्वाले दोहनियाँ लियें दुहतन करलाय थन मों रहें।
यद्बाजी मुरली अली रस भरी टेरी हरी कुंज में।

(ख) नाचैं हंस चकोर मोर मुनियां कोकिल परेवा अगिन।
बुलबुल तित्तिर टिट्टभीं पनण की फुदकीं सुघड़ नाचती।
तूती सारस चक्र चातक बया मैया हरैया धुने न।
यद् बाजी मुरली अली रस भरी टेरी हरी कुंज में।।

—पं० बन्नाजी संग्रह, मथुरा।

शब्द का उल्लेख नहीं है। युगल गीत में भी वेणु का उल्लेख है—'नर्मदौ यर्हि कूजित वेणुः (भा. १०।३५।२)। मथुरा प्रस्थान के समय भी गोपिकाओं ने वेणु का स्मरण किया है (भा. १०।३९।३०)। मथुरावासी भी भगवान की वेणु से परिचित थे (भा. १०।४४।१३)। सरिता, शैल, वन आदि वेणुरव से व्याप्त रहते रहते थे (भा. १०।४७।४९)।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भागवत में न मुरली शब्द का उल्लेख है न वंशी का। कालान्तर में वेणु, वंशी, मुरली में अभेद समझा गया। परवर्ती हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य सूरदास आदि भक्त कवियों ने मुरली की महिमा का ही अधिक गान किया है—

'मुरली तऊ गोपालहि भावत
सुनरी सखी जदपि नन्द नन्दहि नानाभाँति नचावत ।।'[1]

टीकाकारों में वीरराघवाचार्य ने वेणु का उल्लेख भागवत चं चं. १०।१२।५ में भी किया है। भगवान् बालकों के साथ खेल रहे हैं तथा एक दूसरे के शिक्य आदि का अपहरण कर रहे हैं। टीकाकार का कथन है कि आदि शब्द से वेणु का ग्रहण है—

'आदि शब्देत वेत्र विषाण वेणूनां संग्रहः।'

शुकसुधी का भी यही मत है। किन्तु स्पष्ट उल्लेख यहाँ नहीं है। सप्तम श्लोक में वेणु का उल्लेख है। शुकसुधी ने सर्वप्रथम वेणु का अर्थ मुरलिका लिखा है (सिद्धान्त प्रदीप १०।१३।११)। वेणु के सात छिद्रों का उल्लेख आचार्य वल्लभ ने किया है (सु. १०।२१।५)। पं० रामकृष्ण ने वेणु के स्थान पर वंशी को अधिक महत्व दिया है (गण मंजरी २०।२१।५) से—

'वेणु रपि वाद्यविशेष रूपेण वंशी प्रिय सखीति ब्रह्म संहितोक्ते।'

कृष्णदास ने अपनी टीका में वेणु के स्थान पर वंशी के उल्लेख का महत्व भी लिखा है। वेणु शब्द पुंल्लिग मे है, अतः उसे अधरपान कराने का कोई महत्व भी नहीं। अतः अधरपान वंशी की भावना से ही किया गया था। इन्होंने 'कृष्णयामल' की एक आख्यायिका भी लिखी है—

'रन्ध्रान्वेणोरिति पुंस्त्वनिर्देशात् पुं व्यक्तेरप्यधर सुधापूरणादिना चिन्त्यं। वंशी प्रेमसखी तथेति ब्रह्म संहितोक्तेर्नित्यसहचारिणीयमात्मनो गोपनायेवात्मानं पुंस्त्वेन ख्यापयति तेन च तस्या अधर पूरणं प्रियतमा भावनया अविरुद्धमेवेति ज्ञेयम्।' (गणदीपिका १०।२१।५)

---

[1] सूर सागर, का. ना. प्र., पृष्ठ १२७३।

'एक समय राधा जी के गुणगान में व्यग्र भगवान कृष्ण के वदनारविन्द से स्वयं सरस्वती प्रकट हुई, कन्दर्प कोटि लावण्य श्रीवदन को देखकर उसने रमण की इच्छा की। कृष्ण ने विचार किया कि यह मेरे ही अंग से उत्पन्न हुई और मुझसे रमण की कामना कर रही है, अतः उनकी भर्त्सना से वह जड़ हो गई। जड़ होकर वह वृन्दावन में तृण राजवंश रूप में प्राप्त हुई, अतः उसके रन्ध्रों का अधर सुधा से पूरण भावावेश में वे करते थे—

'श्रीराधानामगानेक व्यग्र गोविन्द वक्रतः
सरस्वती समुद्‌भूता पुनः सावंशिका मता ॥'

वस्तुतः वेणु-मुरली में एवं बंशी में स्वरूप भेद है। उनकी परिभाषाओं द्वारा यह भली भाँति स्पष्ट हो सकता है। प्रसिद्ध टीकाकारों में जीवगोस्वामी का ध्यान इस ओर गया।

जीव गोस्वामी ने वेणु और बंशी के भेद पर मनन किया है एवं रासलीला में गोपियों का आह्वान वेणु द्वारा ही माना है (वैष्णव तोषिणी १०।२९।३)—

'कलं मधुरमस्फुटं च यथास्यात्तथाजगौ वेणुनेति ज्ञेयम्।'

किन्तु 'वेणु गीत' सर्वभूत मनोहर था यह स्पष्ट लिखा जा चुका है, अतः रास के समय वैशिष्ट्य होना आवश्यक है, फलतः रासारम्भ में वंशी का वादन ही कृष्ण ने किया था। वंशी के कई विधान हैं—

'अर्द्धांगुलान्तरोन्मानं तारादि विवराष्टकम्।
ततों गुलान्तरे यत्र मुख रन्ध्रं तथांगुलम् ॥
शिरोवेदांगुलं पुच्छं त्र्यंगुलं सा तु वंशिका।
नव रन्ध्रा स्मृता सप्त दशांगुल मिताबुधैः ॥' (वही)

'इति वेणु रवं राजन्। सर्वभूत मनोहरम् इति सामान्य विषयकत्वात् स्वभावानु सारेण तासां मोहन मात्रं जात मधुनातु रस विशेषोद्दीपनत्वादाकर्षणमिति तत्र तत्र वंश्या अपि वैशिष्ट्य मस्ति।'

इस प्रकार जीवगोस्वामी ने वंशी के वैशिष्ट्य की चर्चा करते हुए नवरध्रं एवं सत्रह अंगुल परिमाण का उल्लेख किया है। निम्न श्लोकों में उसके महानन्दा, सम्मोहनी, आकर्षणी, आनन्दिनी, वंशुली आदि नाम लिखे हैं। 'वंशी' मणि, हैमी तथा वैणवी थी—

'दशांगुलान्तरास्याच्चेत् सा तार मुखरन्ध्रयोः
महानन्देति विख्याता तथा सम्मोहनीति च ॥

भवेत्सूर्यान्तरा सा चेत् तत् आकर्षणी मता
आनन्दिनी तथा वंशी भवेदिन्द्रान्तरा यदि ।।
गोपानां वल्लभा सेयं वंशुलीति च विश्रुता
क्रमात् मणिमयी हैमी वैणवीति त्रिधा च सा ।।'

(वै. तो. १०।२९।३)

'अतो द्वादशांगुलान्तरेतारमुखरन्ध्रा हैमीयं ज्ञेया एवं गान वैशिष्ट्यमपि ज्ञेयं, नादयुक्तत्वं तु वेणुनाद स्वाभाव्यादेवेति भावः ।' (वही)

विशुद्ध रस दीपिकाकार का कथन यह है कि कृष्ण ने गोपियों को वंशी से ही वन से बुलाया था वेणु से नहीं (विशुद्ध र. दी. १०।२९।३) । यह वंशी सुवर्ण की थी इसमें आकर्षण एवं सम्मोहनशक्ति भरी थी । 'भावभाव विभाविका' (१०।२९।१) में योगमाया द्वारा वंशी का आश्रय लेना ही लिखा है ।

परवर्ती टीकाकारों में वैष्णव शरण ने वंशी एवं मुरली को पर्यायवाचित्व सिद्ध करते हुए लिखा है कि वंशी के बिना गोप वनिताओं का आकर्षण नहीं हो सकता, अव्यक्त-मधुर वचन वंशी के बिना सम्भव नहीं (सिद्धान्तार्थ प्रदीपिका १०।२९।३)—

'यद्वा योगमायां निजप्रेयसीनां योगायमायारूपांमुरलिकां नहि विचित्र कार्य्यकरीं वंशीं विना गोपवनिताकर्षणं भवति 'जगौकलं वामदृशां मनोहरम्' इत्यव्यक्त मधुर मनोहारि स्वनस्य तद्व्यतिरेकेणासम्भवात् ।'

वंशी और वेणु में भेद करते हुए रामकृष्ण नामक विद्वान ने एक सुन्दर युक्ति दी है, उनका कथन है कि 'वेणु, एक वाद्य है और वंशी प्रिय सखी है । प्रिय सखी होने के कारण ही कृष्ण भावावेश से उसे मुख मारुत् से पूर्ण करते हैं—

'वेणुरपि वाद्य विशेषरूपेण वंशी प्रियसखीति ब्रह्म संहितोक्तेन नित्य सहचरी रूपेण चानवरतं प्रेम परतन्त्रस्तमेवानुसरतीति तथा सति तद् रन्ध्राणां मधुर सुधया पूरणमपि भाववशेनैव ।' (प्रेम मंजरी १०।२९।३)

रासलीला

भागवत में रासलीला का अपना विशिष्ट स्थान है, भागवत का अनुपम लालित्य, अनूठा साहित्य, भक्ति, ज्ञान, कर्म की त्रिवेणी दर्शन सब कुछ इस स्थल पर किये जाते हैं । साथ ही अल्पज्ञ बुद्धियों के द्वारा इसका रहस्य न

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

समझने के कारण अनेक प्रकार की शंकाऐं इस स्थल पर की जाती हैं। वस्तुतः रासलीला 'काम विलास' है। इसका निर्णय यों ही नहीं किया जा सकता। ग्रन्थ तात्पर्य निर्णय ६ वस्तुओं से किया जाता है—उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ती।

'उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्
अर्थवादोपपत्ती च हेतुस्तात्पर्य निर्णये ॥' (श्रेय, पृष्ठ २१३)

उपक्रम—इसका अर्थ है आरम्भ। मृत्यु के समय ग्राम्य कथा की चर्चा साधारण पुरुष के लिये भी असम्भाव्य है तब विष्णुरात जैसे विवेकी पुरुष के साथ घटित करना अविवेक है। श्रोता के साथ जब वक्ता का विचार करते हैं तो यह ग्राम्य कथा वाली बात कोसों दूर हट जाती है, भागवत के वक्ता है—परम विरत योगी शुक, जिन्हें वनगमन के समय नग्न दौड़ते हुए देखकर स्नान करतीं अप्सराऐं भी लज्जित नहीं होतीं। ऐसे तपस्वी 'शुक' मुमूर्षु परीक्षित की कथा सुनाते हैं और वह भी परमहंस मुनि मण्डली के समक्ष जिनमें उनके पिता, पितामह भी उपस्थित थे।

वक्ता, श्रोता, देश, काल, समाज आदि का विचार करते हुए रासलीला में विषयचर्चा का वर्णन मानना सर्वथा असंगत है। इसलिये विद्वान् लोग भागवत में अश्लीलता की चर्चा तो क्या लोकचर्चा की कल्पना भी मानना स्वीकार नहीं करते।

अट्ठाइसवें अध्याय में नन्द का वरुण लोक से उद्धार का वर्णन है। नन्द ने गोपों से आकर कहा कि मैं कृष्ण का ऐश्वर्य देखकर आया हूँ, गोपों को नन्द के वचन से दृढ़ता प्राप्त हुई तथा विचार हुआ कि कभी वे हमको भी दर्शन करायेंगे (भा. १०।२८।१७)। कृष्ण ने गोपों को अपने धाम का दर्शन कराया। वे परमानन्द में मग्न हो गये। बस यहाँ पुनुरुत्थान की चर्चा न करके रासलीला का २९ वें अध्याय से आरम्भ है। इसलिये किन्हीं महानुभावों का कथन कि यह लीला इस लोक में नहीं हुई। वस्तुस्थिति को गुप्त रखते हुए यह भगवान की नित्य लीला का वर्णन है जो कि गोपों ने उनके नित्य धाम में देखी थी।

इस पक्ष को उपर्युक्त मत पूर्वक मानने से मर्यादा लंघन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। यदि यह लीला इस लोक की मानी जाय तब भी कोई दोष नहीं क्योंकि निम्नलिखित श्लोक से यह आरम्भ होती है—

'भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः
वीक्ष्यरन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ।।' (भा. १०।२८।१)

भगवान ने शरद की विकसित मल्लिका वाली रात्रियों को देखकर योगमाया का आश्रय लेकर रमण का मन किया। यहाँ भगवान और योगमाया ये दो पद दृष्टव्य हैं। भगवान इस लीला के प्राण हैं, जिसके आलम्बन भगवान हैं, उसमें लौकिक काम की गन्ध भी कैसे मानी जाय? भगवान के अनन्य भक्त सामाजिक नियमों की परिधि का उल्लंघन कर जाते हैं, स्वयं भगवान की तो बात ही क्या है? शुकदेव ने यह बात रासलीला के उपसंहार में राजा से कही थी (भा. १०।२३।३५)—

'यत्पाद पंकज पराग निषेक तृप्ता
योग प्रभावविधुताखिल कर्म वन्धाः० ।'

अर्थात् जिनके चरण कमलों का सेवन करके सम्पूर्ण कर्मबन्धन मुक्त मुनिजन भी लोकमर्यादा में न बँधकर स्वेच्छा विचरण करते हैं। उन हरि के लिये बन्धन कैसा? उनकी लीलाऐं अनवरत भावुक भक्तों के निमित्त ही हुआ करती हैं। यह रासलीला भी मधुर भाववती व्रजांगनाओं की कामना पूर्ति के लिये है। बड़ों का आचरण सीखना उपयुक्त है, इस आधार पर भी अनेक व्यक्तियों को इन लीला पर सन्देह उत्पन्न होता है, पर राजा ने स्वयं इस प्रश्न का उत्तर शुकदेव के मुख द्वारा सुनवाया है (भा. १०।३३।३०)। उन्होंने इस प्रकार प्रश्नकर्त्ताओं को एक ही उत्तर ऐसा दिया है जिससे आगे कोई शंका का अवसर ही नहीं रह जाता 'कि तेजस्वियों को कोई दोष नहीं लगता, जैसे अग्नि'। अग्नि में सब प्रकार के पदार्थ भस्म हो जाते हैं परन्तु उनसे अग्नि की पवित्रता में कोई बाधा नहीं आती। सामर्थ्यवानों का उपदेश ही ग्रहण करना चाहिये, अनुकरण तो क्वचित् ग्राह्य है। यह कथन (तैतरीयोपनिषद् १।११) में भी प्राप्त है—

'यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नेतराणि'

ऋषभ, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि के चरित्र विभिन्न हैं परन्तु वे सबके सब प्रत्येक अधिकारी के लिये अनुकरणीय नहीं हैं। रासलीला द्वारा कृष्ण ने यह स्पष्ट घोषित किया है कि उच्च व्यक्ति विषयों की सन्निधि में भी निर्विकार रहे। अच्युत नाम का भी यही रहस्य है। कामविजय विधि उन्हीं के लिये है तभी उन्हें मन्मथ मन्मथ कहा जाता है।

उपसंहार—रास के अन्तिम श्लोक से पूर्व का श्लोक है—

'ब्रह्मरात्र उपावृत वासुदेवानुमोदितः
अनिच्छन्त्योययुर्गोप्यः स्वगृहान्भगवत्प्रियाः ।।' (भा. १०।३३।३९)

कृष्ण प्रिया गोपिका उनकी अनुमति से इच्छा न होने पर भी घर चली गईं। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि प्रारम्भ भी 'भगवानपि' पद से है और लीला का संहार भी 'भगवत्प्रियाः' पद से है। साहित्यिक द्रष्टिकोण से यह लीला उच्चकोटि की है। भगवान रसराज नायक हैं एवं भगवत्प्रिया ही नायिका।

तात्विक दृष्टिकोण से भी सर्वान्तिर्यामी पूर्ण परब्रह्म का जीवों के साथ नित्य विलास है। गोपियाँ चित्तवृत्ति हैं उनके ही रूप में उनका प्रकाशक शुद्ध चेतन कृष्ण के रूप में स्थित है। रासलीला प्रकृति-पुरुष की जड़-चेतन की क्रीड़ा की आधिदैविकी अभिव्यक्ति है। 'अनिच्छन्त्यः' पद से स्पष्ट है कि उनकी तृप्ति नहीं हुईं थी अतृप्ति ही प्रेम का भूषण है। विशुद्ध भगवत् संग होने के कारण किसी भी प्रकार के दोष की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भक्त की भावना को उसके अभीष्ट रूप में पूर्ण करना कार्य समझ कर इच्छा द्वारा पूर्ण करने में समर्थ होते हुए भी प्रत्यक्ष में करते हैं।

अभ्यास—अनेक बार की आवृत्ति को अभ्यास कहा जाता है। अर्थ के अन्यथा ग्रहण की आशंका के बाघ के लिये शुकदेव जी द्वारा प्रदत्त विशेषण बड़ ही उपयुक्त हैं—

योगेश्वरेण कृष्णेन (भागवत १०।३३।३)
भगवान्देवकी सुतः (भागवत १०।३३।७)
समं भगवता ननृतुः (भागवत १०।३३।१६)
रेमे रमेशो (भागवत १०।३३। ७)
रेमे स भगवान् (भागवत १०।३३।२०)

प्रत्येक अध्याय में शुकदेव जी ने कृष्ण की निर्विकारता का वर्णन किया है। ३० वें अध्याय में 'आत्मारामोऽप्यखण्डितः'। ३१ वें अध्याय में 'नखलु गोपिका नन्दनो भवान्०' में विशेषण मन्तव्य है। भगवान्, ईश्वर और योगेश्वर, भगवत्ता के अनूठेपन के परिचायक हैं।

अपूर्वता—जिस उक्ति से कोई नवीन वार्ता व्यक्त हो उसे अपूर्वता कहते हैं। जैसे—जो निष्क्रिय, निष्फल, निरवद्य पूर्ण परब्रह्म है तथा मन इन्द्रियादि के भी परे है वह समस्त प्राणियों की इन्द्रियों का विषय होकर विषयी जीवों का सा व्यवहार कर रहा है। काम की सैन्य वृद्धि करते हुए भी उसे पराजित करना कृष्ण की अपूर्वता है।

फल—फल उद्देश्य का परिचायक होता है। रास प्रसंग में श्रवण कीर्तन आदि का फलनिर्देश करते हुए शुकदेव ने कहा है कि 'श्रद्धा सहित व्रज सुन्दरियों के साथ भगवान् विष्णु की इस क्रीड़ा का श्रवण या मनन करने वाला हृदय के रोग रूप काम से मुक्त हो जाता है। यहाँ यह विचारणीय है है कि जिस कथा का उद्देश्य काम को पराजित करना है क्या वही काम को बढ़ाने वाली कही जा सकेगी। सभी लोगों का चित्त कामप्रधान है क्योंकि काम ही सूक्ष्म शरीर एवं स्थूल शरीरों का मूल कारण है। यह कामक्रीड़ा प्रकृत कामोपभोगों से विरत कर भगवदीय काम में आकृष्ट करने के लिये है। काम एक मनोविकार है, स्वरूपतः वह न शुभ है न अशुभ। अनित्य और बन्धनकारी नायक नायिका सम्बन्धी होने के कारण वह त्याज्य है। पर यदि अस्थिपिण्डों के स्थान पर आलम्बन स्वयं भगवान हों तो वही परम निःश्रेयस का हेतु है। इस प्रकार इस भगवदीय लीला का फल कामविजय ठीक ही है।

अर्थवाद—स्तुति वाक्यों को अर्थवाद कहते हैं। यद्यपि भगवान की भावना मानने वालों को यह रुचिकर नहीं है, तथापि उनके साथ किये गये क्रोध, काम, स्नेह सभी में चित्त वृत्ति भगवदाकार हो जाती है। शुकदेव ने कहा है—

> 'कामं क्रोधं भयं स्नेह मैक्यं सौहृदमेव च
> नित्यं हरौ विदधतौ यान्तितन्मयतां हि ते ॥' (भा. १०।२९।१५)

उपपत्ति—ग्रन्थ के तात्पर्य का निर्णायक उपपत्ति षष्ठ संख्या में परिगणित है। इसे युक्ति भी कहते हैं, आधुनिक युग में सर्वसाधारण में इसका सर्वाधिक मूल्य है। ६ दिन का बालक पूतना मारण कर सकता है? पाद प्रहार से संकट भंजन एवं मुख में माता को विश्वदर्शन करा सकता है? ७ दिन नख पर गोवर्धन धारण कर सकता है तो यह ८-१० वर्ष की अवस्था में गोपिकाओं के साथ क्रीड़ा करता हुआ भी अक्षुण्ण बना रह सकता है। जिनका शारीरिक बल ऐसा था उनका मनोबल भी बढ़ा चढ़ा था न कि पामरों जैसा। जो तर्क के आधार पर इस लीला को कसना चाहें उन्हें भगवान् की अन्य लीलाओं को भी उपपत्ति लगाने की आवश्यकता नही। ऐसे व्यक्तियों को भगवान् की लीला समझने से पूर्व भगवान को समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

रासलीला भगवान् की रमणीय लीला है। यह भक्तियोग का आरम्भ तथा व्रजरमणियों को उनकी साधना का फल प्रदान करने के हेतु अवतरित

हुई है। इसके श्रवण और कीर्तन के अधिकारी भावुक गण ही हैं। रासलीला की अद्यावधि अनेक व्याख्याएँ की गईं जिनमें भगवान के विविध रूपों का प्रदर्शन किया है. भागवत के टीकाकारों ने भी अत्यन्त भावविभोर होकर इस स्थल की व्याख्या की है।

श्रीधर स्वामी भागवत के सुप्रसिद्ध टीकाकार हैं उनके अनुसार यह लीला कामदेव का गर्व नष्ट करने के हेतु की गई थी[1], जैसा कि उनके मंगल पद्य से स्पष्ट है—

---

[1] पौराणिकों के अनुसार——एक बार कामदेव भगवान् श्रीकृष्ण के समीप पहुंचा एवं अपनी दिग्विजय के बारे में निवेदन करते हुए कृष्ण से भी युद्ध की इच्छा प्रकट की। रामावतार में जब राम सीता के वियोग में खिन्नावस्था में थे तब कामदेव ने उन्हें पराजित किया एवं उनसे स्वीकृति के लिए कहा, राम ने उसके कथन को अस्वीकार करते हुए कहा कि 'यह मेरी पराजय नहीं यह तो लीला मात्र है, साथ ही मर्यादावतार भी है, अतः यदि युद्ध की इच्छा हो तो द्वापर में मैं कृष्णावतार ग्रहण करूंगा, वहाँ तेरी इच्छा पूर्ण होगी। उसी निर्देश के अनुसार कामदेव ने द्वापर पर्यन्त प्रतीक्षा की और युद्ध हेतु कृष्ण के पास आया। कृष्ण ने काम से कहा कि युद्ध दो प्रकार का होता है, दुर्ग युद्ध, मैदान युद्ध।

यहाँ दुर्गयुद्ध है. प्राणायाम आदि योग धारण।

मैदान युद्ध का तात्पर्य है अनेक स्त्री जनों के साथ रात्री में रति, विलास, नृत्य आदि।

'काम' ने स्थल युद्ध स्वीकार किया, प्रतिज्ञानुसार श्रीकृष्ण भी अपनी प्रेयसियों के साथ वृन्दावन में पहुंचे तथा गोपियों के मध्य अन्तर्द्धान हो गये। यह काम की प्रथम पराजय थी, पश्चात् गोपियों के साथ रासलीला की प्रत्येक गोपिकायुगल के मध्य श्रीकृष्ण को देखकर काम भी मोहित हो गया कि इनमें वास्तविक कृष्ण कौन हैं, तब से काम की पराजय और भगवान का नाम 'मदन मोहन' पड़ गया।'

—पं० श्रीवर जी बन्ना जी कृत संग्रह (टिप्पणी)

'ब्रह्मादि जय संरूढ़ि दर्पकन्दर्प दर्पहा
जयति श्री पतिर्गोपी रासमण्डल मण्डनः ।।'

(भा. दी. १०।२९ मंगला०)

श्रीधर स्वामी ने कृष्ण की अवस्था पर विचार नहीं किया, किन्तु सनातन गोस्वामी इस लीला के समय भगवान् की किशोरावस्था मानते हैं। उन्होंने विष्णु पुराण का उल्लेख करते हुए लिखा है —

सोऽपि कैशोरकंवयोमानयन् मधुसूदनः
रेमे ताभिरमेयात्माक्षपासु क्षपिताहितः ।।' (वृ. तो. १०।२६।१)

हरिवंश में किशोरावस्था का उल्लेख है—

'युवतीर्गोप कन्याश्च रात्रोसंकल्प कालवित्
कैशोरकंमानयानः सह ताभिर्मुमोद ह ।।' (वही)

रासलीला प्रथम रात्री की क्रीड़ा है—

'तत्ररासारम्भे तस्य सौन्दर्यादि विशेष स्मरेण परम मोहनत्वात् ....कैशोरारम्भे प्रथमैक रात्र क्रीडेयमुच्यते ।' (वही)

सनातन गोस्वामी तो इस लीला का प्रयोजन प्रेम रस विस्तार मानते हैं। जीवगोस्वामी ने रासपंचाध्यायी के पांच अध्यायों को भगवान के पांच प्राण तुल्य मानते हुए भी इस लीला का प्राकट्य 'सर्वातिशायी प्रेमवती व्रज-सुन्दरियों को मनोरथ पूर्ति' ही माना है। विजयध्वज का कथन तो यह है कि निर्दोष भक्तिजनित ब्रह्म ज्ञान ही मुक्ति साधन है, अतः अर्थवाद का निरूपण इसमें किया गया है—

'निर्दोष भक्ति जनित ब्रह्म ज्ञानदेव मुक्ति साधानम्' (प.र. १०।२६।१)

आचार्य वल्लभ का कथन है कि स्त्रियों में अपना आनन्द स्थापित करने के हेतु कृष्ण ने रत्यर्थ इच्छा की थी। रासलीला का यही प्रयोजन है (सु. १०।२६।१)।

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने लिखा है कि कृष्ण की अष्टम वर्ष की अवस्था में यह लीला प्रारम्भ हुई। यह लीला समस्त लीलाओं की मुकुट मणि है। इस लिये कृष्ण ने किशोर अवस्था भी धारण की थी। यदि वे किशोरावस्था धारण न करते तो उस अवस्था का भी अपमान होता। (सा. द. १०।२६।१)

धनपति ने रासलीला के समय कृष्ण की नव वर्ष की अवस्था एवं श्रीधर स्वामी के अनुसार इसे निवृत्तिपरक लिखा है। धनपति ने इस रासलीला की निवृत्तिपरक व्याख्या भी की है (गू. दी. १०।२६।१)—

'निवृत्ति मार्ग संसक्त चेतसां विदुषां मुदे
व्यक्ती करोम्यहं पक्षमिमं कृष्ण प्रसादतः ।।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि रासलीला में लौकिक विषयों का कोई महत्व नहीं है तथा ईश्वर की अचिन्त्य शक्ति का ही निरूपण इस लीला द्वारा हुआ है ।

भक्ति

मानव जीवन का चरम पुरुषार्थ भगवान की प्राप्ति है और भगवान की प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन भक्ति है । भगवान की भक्ति पापराशियों को भस्म करती है—

'यथाग्निः सु समृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ।।' (भा. ११।१४।१९)

इस भक्ति के अनेक प्रकार के विश्लेषण श्रीमद्भागवत में प्राप्त हैं, उनमें कतिपय प्रसंगों का सांकेतिक विवरण ही यहाँ दिया जा रहा है । भागवत में भक्ति से रहित ज्ञान और कर्म की निन्दा की है (भा. १।५।१२)—

'नैकर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम् ।'

श्रीधर स्वामी ने 'श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो०' (भा. १०।१४।४) में स्पष्ट लिखा है कि भक्ति के बिना ज्ञान की सिद्धि नहीं होती—

'भक्ति बिना ज्ञानं तु न सिद्धयेत्'

आचार्य वल्लभ ने भी भक्ति का तिरस्कार कर स्वरूप ज्ञान चाहने वाले व्यक्तियों को सावधान करते हुए लिखा है कि वे क्लेशभागी होंगे । (सु. १०।१४।४)

श्रीधर स्वामी ने भक्ति में प्रेम भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना है—

'..........भक्त्या साधन भक्त्या संजातया प्रेमलक्षणयाभक्त्या ।' (भा. दी. ११।३।३१)

यद्यपि भागवत पुराण भक्ति पुराण है तथापि भक्ति का पृथक् लक्षण भी इसमें दिया गया है:—

'सर्वै पुंसां परो धर्मो यतोभक्तिरधोक्षजे
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति ।।' (भा. १।२।६)

मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिससे भगवान कृष्ण में भक्ति

हो, उस भक्ति में किसी प्रकार की कामना नहीं होनी चाहिए। उक्त लक्षण को आधार मानकर भक्ति को शास्त्रीय रूप देने वाले दो सम्प्रदाय प्रमुख हैं—

१. वल्लभ सम्प्रदाय, २. चैतन्य सम्प्रदाय।

वल्लभ सम्प्रदाय में आचार्य वल्लभ ने भक्ति को पुष्टि मार्गीय रूप देकर उसकी विशद व्याख्या की है, उनका भक्ति का लक्षण निम्न है—

'माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा ।।'[1]

चैतन्य सम्प्रदाय में रूप गोस्वामी ने 'भक्तिरसामृत सिन्धु' तथा 'उज्ज्वल नील मणि' नामक ग्रन्थ लिखकर भक्तिरस की स्थापना की। दोनों सम्प्रदायो में नवधा भक्ति के अतिरिक्त प्रेमाभक्ति का महत्व सर्वोपरि है।

वल्लभ प्रचारित पुष्टि मार्ग का द्वितीय नाम अनुग्रह मार्ग है। गीता के १२वें अध्याय में कहे गये भक्तों के लक्षण पुष्टिमार्ग की उत्तमता सिद्ध करते हैं। पुष्टिमार्ग के भक्त मुक्ति की भी इच्छा नहीं करते। प्रभु की प्राप्ति में होने वाला विलम्ब और उससे होने वाला विरह-ताप इस मार्ग की साधना में मुख्य माने जाते हैं। इस मार्ग में प्रभु की तनुजा, वित्तजा, और मानसी-सेवा की जाती है। इनमें मानसी सेवा श्रेष्ठ है। पुष्टि भक्ति में 'नवधा भक्ति' साधन मात्र है। 'आत्म समर्पण' नामक नवमी भक्ति के उपरान्त प्रेमलक्षणा भक्ति का उदय होता है। प्रभु के सुख के सामने अपने कष्टों को न गिनना अहंता-ममता का त्याग करना, दीनता से सर्वभावों को प्रभु में केन्द्रित करके उनके ही प्रेम में नित्य नयी सेवा में तन्मय होकर प्रेम-रस के समुद्र में डूबे रहना ही पुष्टि भक्ति का सार है।[2]

उक्त प्रकार की भक्ति से सम्पन्न पुरुष चतुर्विध-मुक्ति की इच्छा नहीं करता।[3] इस प्रकार के भक्त के लिये ही भगवान् ने—'अहं भक्त पराधीनो०'[4] आदि वाक्यों को कहा है। प्रत्येक को यह भक्ति सुलभ नहीं है—'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः' 'जिस पर प्रभु कृपा करें वही उन्हें प्राप्त करता है।'

---

१. तत्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक २६।

१. गोस्वामि श्री व्रजेशकुमार बाबा, काँकरौली।

३. 'सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः ।।' (भा. ३।२६।१३)

वाक्य ही इसमें प्रमाण है। भागवत में इस भवित का उदाहरण गोपिकाओं को सर्वोपरि माना जा सकता है। 'भागवत में पुष्टि भक्ति की पुष्टि 'पोषणं तदनुग्रहः' (भा. २।१०।४) वाक्य द्वारा की गई है। षष्ठ स्कन्ध की १९ अध्यायों की व्याख्या पुष्टि भक्ति के अनुसार ही है।

चैतन्य मत में प्रेमा भक्ति का अत्यधिक समादर है। इस भवित के ११ भेद किये गये हैं, तथा उन भक्तों के नामों का भी उल्लेख है[1]—

१. गुणमाहात्म्यासक्ति	नारद, शुकदेव, सूत, शौनक, परीक्षित, पृथु, जनमेजय आदि।
२. रूपासक्ति	ऋषि, व्रजगोपिका।
३. पूजासक्ति	पृथु, अम्बरीष, भरत।
४. स्मरणासक्ति	प्रल्हाद, ध्रुव, सनकादि।
५. दास्यासक्ति	अक्रूर, विदुर।
६. सख्यासक्ति	अर्जुन, उद्धव, श्रीदामा।
७. कान्तासक्ति	अष्ट पटरानी।
८. वात्सल्यासक्ति	कश्यप, नन्द, यशोदा, वसुदेव, देवकी।
९. निवेदनासक्ति	बलि, शिवि, अम्बरीष।
१०. तन्मयतासक्ति	शुकदेव, सनकादि।
११. परम विरहासक्ति	अर्जुन, उद्धव, व्रजनारी।

जीवगोस्वामी ने नाम संकीर्त्तन पर भी अत्यधिक बल दिया है (क्र. स. ६।३।२०-२२)—

'अत्रोच्यते—श्री भगवन्नामग्रहणं खलु द्विधा भवति केवलत्वेन संयुक्तत्वेन। ....परेण च तत्सामीप्यमपि प्रापयति............।'

नाम कीर्तन उच्च स्वर से गौड़ीय वैष्णवों में अधिक पाया जाता है, जीवगोस्वामी ने अपनी भागवत टीका में इसकी पुष्टि की है—

'नामकीर्त्तनंचेदमुच्चैरेव प्रशस्तम्।' (क्र. स. ७।५।२३)

इस प्रेमरस प्रवाह में भक्त का चित्त द्रवित हो जाता है, वह कभी रोता है कभी हँसता है—

'वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं०' (भा. ११।१४।२४)

अजामिल का कथानक भगवन्नाम की महिमा का ज्वलन्त उदाहरण

---

[1] १००८ मध्व गौडेश्वराचार्य, श्रीमद्भक्ति हृदयवन महाराज, वृन्दावन।

है। इस प्रसंग में यमराज की उक्ति भी मननीय है, उसने स्पष्ट कहा है कि--'इस जगत् में जीवों के लिये सबसे बड़ा कर्त्तव्य यही है कि वे नाम-कीर्त्तन आदि उपायों से भगवान् के चरणों में भक्ति भाव प्राप्त कर लें।'

'भक्तियोगो भगवति तन्नाम ग्रहणादिभिः।' (भा. ६।३।२२)

भावार्थ दीपिकाकार ने हरि भक्ति पर अधिक बल देते हुए एक सुन्दर श्लोक भी उद्धृत किया है (भा. दी. ६।२।१९)—

'हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तस्थितैरपि
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥'

'दुष्ट के चित्त में स्थित पापों को हरि नाम भस्म कर डालता है, बिना इच्छा के भी स्पर्श किया हुआ पावक दग्ध कर देता है।'

श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में 'उत्तम श्लोक जन' आदि शब्दों की व्याख्या में भक्तों को ही मुख्य माना है जबकि—वीरराघवादि ने दास शब्द का प्रयोग किया है (भा. दी. ६।११।२७)—

'उत्तमश्लोकस्य तवजनेषु भक्तेष्वेव सख्यं भूयात्।'

वीरराघव—'उत्तमश्लोकस्य तवजनेषु दासेषु मेसख्यं भूयात्।'

श्रीधर हरि प्रिय वैष्णवों को सम्बोधित करते हुए स्पष्ट लिखते हैं—'वैष्णवो! भोजन-आच्छादन की चिन्ता मत करो। 'विश्वम्भर' अपने भक्तों की कभी उपेक्षा नहीं करते (भा. दी. २।२।५)—

भोजनाच्छादने चिन्तां वृथां कुर्वन्ति वैष्णवाः
योऽसौ विश्वम्भरो देवः कथं भक्तानुपेक्ष्यते॥'

उक्त व्याख्यानों के आधार पर ही श्रीधर को परम वैष्णव माना जाता है।

वीरराघव ने प्रपत्ति का उल्लेख किया है। इसका कारण यह है कि रामानुज सम्प्रदाय में प्रपत्ति और भक्ति दोनों का विधान है।

प्रपत्ति—सब प्रकार से भगवान् के चरणों में जाना प्रपत्ति है। उनका भक्ति का लक्षण भी अन्य टीकाकारों से पृथक् है (भा. चं. चं. ७।५।२३-२४)—

'भक्तिर्नाम ध्यानोपामनादि शब्द वाच्याऽहरहरभ्यासाधेयातिशयाआप्रयाणादनुवर्त्तमानाविवेकादि साधन सप्तकानुगृहीता तैलधारावदविच्छिन्न-स्मृति सन्तानात्मिका प्रीत्यात्मिका प्रत्यक्षतापन्नाध्रुवानुस्मृतिः।'

इस प्रकार की भक्ति में दास्य का स्थान सर्वोपरि है—

‘न नाक पृष्ठ’’ श्लोक की व्याख्या में ‘वृत्रासुर केवल दास्य चाहता है’ इस पर बल दिया गया है—

‘त्वद्दास्यं बिना-अन्यन्न कांक्षामीत्याह ।’ (वही ६।११।२५)

निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण एवं राधा के युगल रूप की भक्ति की जाती है, स्वयं श्री निम्बार्काचार्य का मंगलाचरण राधा के वामांग भाग में स्थिति का पोषक है (दश श्लोकी २) से—

‘अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूप सौभगाम्
सखी सहस्त्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम् ’’

श्रीकृष्ण अपनी सत्यसंकल्प रूपमाया से अन्यान्य पुरुषों की भाँति देहवान् जैसे प्रतीत होते हैं । प्रेमलक्षणा भक्ति का सर्वोत्कृष्ट महत्व इस सम्प्रदाय में है । भागवत के टीकाकार शुक सुधी ने भी इस ओर भक्ति के विवेच्य स्थलों पर संकेत किया है—

‘………आश्रित पदः भवति प्रेयविशेष लक्षणां भक्तिं प्राप्नुवन्ति तथाह भगवान् पूर्वाचार्यः—(सि. प्र. २।७।४२)

कृपास्य देन्यादियुज प्रजापते यथा भवेत्प्रेमविशेष लक्षणा
भक्तिहृर्यनन्याधिपतेर्महा नः साचोत्तमासाधनरूपिका परा ।।’

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भक्तिप्रधान ग्रन्थ भागवत का भक्ति ही पर्यवसान है ।

ज्ञान

श्रीमद्भागवत की विचारधारा में ‘ज्ञान’ का अभाव नहीं है । भागवत माहात्म्य में भक्ति के साथ उसके दो पुत्रों का भी उल्लेख है—ज्ञान और वैराग्य । वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे, उनके बोध कराने के लिए नारद ने अनेक प्रयत्न किये किन्तु उन्हें युवा नहीं बनाया जा सका । तब नारद सनत्कुमार की शरण में गये । उनके उपदेश से श्रीमद्भागवत का सप्ताह यज्ञ प्रारम्भ हुआ फलतः ज्ञान-वैराग्य प्रबुद्ध होकर उस सत्र में सम्मिलित भी हुए । इस कथानक से यह तो स्पष्ट है कि भागवत वह शास्त्र है जिसे सुनकर ज्ञान का वृद्धत्व भी दूर हुआ, अतः यह ज्ञान प्रधान ग्रन्थ है । इसके उपक्रम और उपसंहार भी ज्ञान में है—

‘वदन्ति तत्तत्वविदस्त त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्’ (भा. १।२।११)

तत्ववेत्ता लोग अद्वैत ज्ञान को ही तत्व ही ब्रह्म, परमात्मा या भगवान शब्द से कहा जाता है। उपसंहार में—

'सर्व वेदान्त सारं गद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।' (भा. १२।१३।१२)

श्रीमद्भागवत समस्त उपनिषद् रूपवेदान्त का सार है जिसमें ब्रह्म और आत्मा के एकत्व (अभेद) रूप अद्वितीय वस्तु का प्रतिपादन है। इस अद्वैत ज्ञान से कैवल्य मोक्ष रूप प्रयोजन की सिद्धि होती हैं। पुरंजनोपाख्यान में जीव के अभेद ज्ञान का निरूपण है (भा. ४।२८।६२)। आत्मा ही सब कुछ है (भा. २।७।३८)। समग्र जगत् स्वप्न की भाँति असत स्वरूप है, चेतना रहित एवं महान् दुःख ही दुखरूप है (भा. १०।१४।२२)। यह जगत् अपनी उत्पत्ति से प्रथम नहीं था और प्रलय के पश्चात् भी न रहेगा, एक रस अद्वितीय परब्रह्म रूप आप में ही है (भा. १०।८७।३७)। भक्ति और ज्ञान श्रेय प्राप्ति के दो प्रमुख मार्ग हैं। ये भगवत् प्राप्ति के साधन ही नहीं अपितु भगवत् रूप ही हैं। भागवत में ज्ञान योग, कर्म योग और भक्तियोग का वर्णन है (भा. ११।२०।६) से--

'योगास्त्रयो मयाप्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ।।'

गीता में भी इनका उल्लेख है (गीता ३।३)। भागवत के ज्ञानियों की कथा तो प्रसिद्ध है ही किन्तु गोपियाँ भी ज्ञान शून्य नहीं थीं अन्यथा वे गोपिका गीत में कृष्ण को अखिल देहधारियों का अन्तरात्मा न कहतीं (भागवत १०।३१।४)।

'अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्' (भा. १२।६।११)

उक्त श्लोक में श्रीधर स्वामी प्रभृति टीकाकारों ने ज्ञान का महत्व स्वीकार किया है (भा. टी. १२।६।११)। भक्ति और ज्ञान भागवत में ओत-प्रोत हैं तथापि ज्ञान को माहात्म्य में ही भक्ति का पुत्र कह दिया है, वस्तुतः भागवत नाम ही, भक्त वृन्दों से सम्बन्धित है, अतः ज्ञान-वैराग्य के अनेक वृत्तान्त होने पर भी भक्ति का पद सर्वोत्तम है, आदि और अन्त भक्ति में ही हैं अतः भागवत पुराण भक्ति का सर्वोच्च ग्रन्थ है।

मुक्ति

भागवत में पाँच प्रकार की मुक्तियों का उल्लेख है (भा. २।२।६)--

सालोक्य—भगवान् के नित्य धाम में रहना सालोक्य है।

सार्ष्टि--भगवान् के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना सार्ष्टि है।

सामीप्य--भगवान् के सामीप रहना ही सामीप्य है।

सारूप्य--भगवान् के समान रूप प्राप्त कर लेना सारूप्य है।

सायुज्य--भगवान् के चरणों में समा जाना सायुज्य है।

यह मुक्ति भजन द्वारा ही प्राप्त होती है। साथ ही अज्ञान, कल्पित कर्त्तापन, भोक्तापन आदि भावों के परित्याग द्वारा वास्तविक स्वरूप परमात्मा में स्थिर होना ही मुक्ति है—

'मुक्तिर्हित्वाऽन्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ।' (भा. २।१०)

इसे कैवल्य मुक्ति भी कहा जाता है। भागवतकार ने आत्यन्तिक प्रलय को भी मोक्ष कहा है, किन्तु मुक्ति का स्वरूप अविधा नाश ही है, और इसका भक्त की दृष्टि में कोई महत्व नहीं है, भक्त केवल भक्ति ही चाहता है मुक्ति नहीं—

'अत्रसर्गो विसर्गश्चेत्यादौ नवमपदार्थ रूपया मुक्तेरपि पदे आश्रये दशम पदार्थ रूपे त्वयि स दायभाक् भवति भातृवण्टन इवत्वमेव तस्य दायत्वेन वर्तसे अतो वराक्या मुक्तेर्वाकावार्तेत्यर्थः ।' (क्र. स. १०।१४।८)

सुबोधिनीकार ने मुक्ति का लक्षण यह दिया है—

'निष्प्रपंचानां स्वरूप लाभो मुक्तिः ।' (सु. २।१०।२)

द्वितीय स्कन्ध में सधो मुक्ति और क्रम मुक्ति का भी वर्णन है। श्रीधर स्वामी ने द्वितीयाध्याय के इक्कीसवें श्लोक पर्यन्त सधो मुक्ति का निरूपण माना है (भा. दी. २।२।२१) ; वीरराघवाचार्य ने इसका खण्डन किया है (भा. चं. चं. २।२।२२)—

'सधोमुक्तिस्तावदप्रमाणिकं..........सधोमुक्तेरभावात् ।'

आचार्य वल्लभ ने सधो मुक्ति के 'उत्तम-मध्यम' दो भेद किये हैं (सु. २।२।२२) 'एवं सधोमुक्ति द्विधानिरूपिता–उत्तम–मध्यम भेदात्'। इस विवेचन में श्रीधर स्वामी ने ब्रह्मलोक जाने वाले प्राणियों की तीन गति लिखी है (भा. दी. २।२।२८)—

१. पुण्योत्कर्ष से गये 'जीव' कल्पान्तर में पुण्य-तारतम्य से अधिकारी बनते हैं।

२. हिरण्य गर्भादि की उपासना के बल से गये जीव ब्रह्मा के साथ मुक्त होते हैं।

३. भगवदुपासक स्वच्छा से ब्रह्माण्ड का भेदन कर वैष्णव पद जाते हैं।

टीकाकारों ने मुक्ति का निरूपण करते हुए भी भक्ति को प्राधान्य दिया है। ज्ञानी पुरुषों की मुक्ति अन्तःकरण का अत्यन्त विलय होने के बाद आत्मा की केवल रूप में स्थिति का नाम है, किन्तु भक्तों की मुक्ति इष्ट देवता की नित्य लीला में प्रवेश होना है, इसी को वल्लभाचार्य परम मुक्ति कहते हैं। विलय रूपा मुक्ति को भक्त नहीं चाहते और नित्यलीला प्रवेश रूपा मुक्ति भक्ति का फल है।[1] मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति को अन्तिम प्राप्य कहा है। वे मुक्ति प्राप्ति को भक्ति का फल नहीं मानते। भक्ति स्वयं फल रूपा है।

श्रीमद्भागवत में एकादश स्कन्ध में भक्तिज्ञान विवेचन के उपरान्त परीक्षित की मृत्यु का समय आता है, शुकदेव जी उसे कथाओं के जाल से छुड़ाते हैं एवं वास्तविक स्वरूप को पहचानने का आदेश देते हैं। वे राजा परीक्षित को निर्विशेष ब्रह्म में विलीन करने के लिए भी उपदेश देते हैं, जैसे घटाकाश घड़े के फूट जाने पर महाकाश में विलीन हो जाता है –

'घटे भिन्ने यथा काश आकाशः स्याद् यथापुरा
एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पयते पुनः ॥' (भा. १२।५।५)

भक्ति के परिणाम स्वरूप स्वतः उत्पन्न होने वाले ब्रह्म भाव को प्राप्त होने का भी उपदेश देते हैं, निर्विशेष ब्रह्म में लीन हो जाने पर परीक्षित को न तो तक्षक के दांत गड़ाने की पीड़ा होगी और न संसार ही ब्रह्म से भिन्न दिखलाई देगा (भा. १२।५।११–१२)–

'अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्या धाय निष्कले ॥
दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः
न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ।'

"जो मैं हूँ, वही परमपद रूप ब्रह्म है और जो परमपद रूप ब्रह्म है, वही मैं हूँ' यह अर्थ अद्वैत भावना से परिपूर्ण है, श्रीधर स्वामी ने यहां अद्वैत अर्थ की पुष्टि की है (भा. दी. १२।५।५–६)।

'स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्नि संयोगोयावदीयते
ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देह कृतो भवः ॥

............दीपस्य ज्योतिषः दीपत्वं ज्वाला रूपः परिणामः तत्र तैलस्थानीयं कर्म तदधिष्ठान स्थानीयं मनः वर्तिस्थानीयो देहः अग्नि संयोगस्थानी-

---

१. कल्याण, भक्ति अंक, पृष्ठ २५५ ।

यश्चैतन्याध्यासः दीपस्थानीयः संसार । इति योज्यम्....................दीपवत्संसार एव नश्यते नत्वात्मा ज्योतिर्वत्........।' (भा. दी. तथा भा. चं. चं. १२।५।७–८)

'ज्वाला का नाम दीप है। दीप में स्नेह, वर्ति, अग्नि–ये तीन वस्तु होती हैं। मन स्नेह है, देह वर्ति है, चैतन्याध्यास अग्नि संयोग है, संसार दीपस्थानीय है।'

इस स्थल पर मुक्ति के सम्बन्ध में प्रत्येक टीकाकार ने अपनी सम्प्रदाय की ओर अर्थ में खींचातानी की है, जैसे वीरराघव ने उक्त श्लोक की व्याख्या श्रीधर के समान की है तथापि अग्नि संयोग स्थानीय 'देहात्माभिमान' को माना है जब कि श्रीधर स्वामी ने 'चेतन्याध्यास' को। विजयध्वज ने चिन्मय मन की उत्पत्ति स्वीकार की है (भा. एवं प. र. १२।५।६)–

'............ततो जडमनसो जीवस्य संसारो वर्तत इतिशेषः।'

जीव गोस्वामी ने परमात्म सदृश हो जाना मुक्त लिखा है –

'............परमात्म सदृशः 'सदृशौ सखायौ' इति श्रुतेः' (क्र. स. १२।५।७–८)। 'सदृशौ सखायौ' यह द्वैतवादी श्रुति है। इसका उद्धरण यहां अप्रासंगिक है।

विश्वनाथ ने श्रीधर का ही अनुकरण किया है। (सा. दा. १२।५।७–८)–

'एतदेव सदृष्टान्तमाह–सार्द्धेन स्नेहेति। दीपस्य........योज्यम्।'

यद्यपि जीव गोस्वामी ने भी उक्त श्लोकों पर व्याख्या की है तथापि विश्वनाथ को उसमें कोई चमत्कृति दिखलाई नहीं दी। शुक सुधी ने माया मोहित जीव का अज्ञान द्वारा जीवन-मरण माना है, मनुष्यादि शरीर में स्थिति आत्मा न जन्म लेता है न मरता है –

'............माया मोहितोजीवस्त्वज्ञानात् जातोस्मिमरिष्ये इति मन्यते वस्तुतस्तु यः तत्र मनुष्यादि शरीरे आत्मा जीवः स न जायते न विनश्यति मनुष्यादि देहस्तत्प्रकाश्यः' (सि. प्र. १२।५।८)।

'अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं..............।' यह श्लोक अहम् भाव का परिचायक है। श्रीधर स्वामी ने यहाँ स्पष्ट ही 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' को पुष्ट किया है –

'............योऽहं स ब्रह्मैव यद् ब्रह्म तदहमेवेति समीक्षन् तत्राहं ब्रह्मेति भावनया जीवस्य शोकादिनिवृत्तिः ब्रह्माहमिति भावनया च ब्रह्मणः पारोक्ष्य निवृत्तिर्भवतीति व्यतिहारो दर्शितः।'

सुदर्शन सूरी ने 'अहं' और 'ब्रह्म' में विशेषण विशेष्य भाव का प्रतिपादन किया है—

'अहं ब्रह्मेति ब्रह्माहमिति च तात्पर्य भेदेन विशेषण प्रधानो विशेष्य प्रधानश्चनिर्देश भेदः परं पदं परम प्राप्यम् ।' (शुक पक्षीया १२।५।११)

वीर राघव ने इस श्लोक की व्याख्या लगभग ५० पंक्तियों में की है एवं प्रारम्भ में सुदर्शन की टीका भी रक्खी है। 'ब्रह्माहं' में षष्ठी तत्पुरुष समास किया है 'ब्रह्मण अहम्', अर्थात् मैं शेष हूँ ब्रह्म शेषी।

'............मम च शेषी ब्रह्मैव परमात्मैव नान्यः।' ....श्री स्वामिनो दास एवाहमस्मि............।' (भा. चं. चं. १२।५।११)

उक्त व्याख्या में 'श्री स्वामी' (नारायण) एवं उनके दासत्व का उल्लेख किया है न कि श्रीधर स्वामी की भाँति ब्रह्म रूप हो जाने का।

विजयध्वज ने 'अहं' पद की व्याख्या विचित्र की है—

'न हन्यत इत्यहं नहीयत इतिवाकदापि न जहातिस्व शक्तिम् एवं विधमीश्वरं विहाय कदापि न तिष्ठत्यस्वातन्त्र्यादित्यर्थः।' (प. र. १२।५।११)

विजयध्वज ने 'अहम्' के एकत्व को स्पष्ट ही उड़ा दिया है और अहं का अर्थ ही शक्ति सहित कर दिया है। द्वैतवादी टीकाकार के लिये यह व्याख्यान उपयुक्त ही है।

विश्वनाथ नें उक्त श्लोक में श्रीधर का अनुकरण करते हुये भी 'ब्रह्माहं' में षष्ठी तत्पुरुष ही किया है तथा वीरराघव से भी आगे एक पद रखा है। उन्होंने श्री स्वामी 'श्री स्वामिनि' आदि पदों का ही प्रयोग किया था। विश्वनाथ ने यहाँ कृष्ण का स्पष्ट उल्लेख किया है—

'............अतएव ब्रह्माहं ब्रह्मणः परमेश्वरस्यैवाहमिति षष्ठी-तत्पुरुषः एवं परमं पदं ब्रह्म स्वरूपं चरणारविन्दं वा समीक्ष्य आत्मानं स्वम् आत्मनि परमात्मनि कृष्णे निष्कले निष्को वक्षोऽलंकारस्तद्वति।' (सा. द. १२।५।११)

'निष्कले' का अर्थ वक्षोलंकार किया है जबकि इसे प्रपंच रहित अर्थ में प्रायः सभी टीकाकारों ने ग्रहण किया है। शुक सुधी ने यहां द्वैताद्वैत का निरूपण किया है। उन्होंने लिखा है कि 'जीव' अणु स्वरूप है एवं परमेश्वर का अंश है—

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'

यह स्मृति प्रमाण है—

'..................परंपूर्णं ब्रह्मैव अंशस्य स्वरूपतोभिन्नत्वेपि अंशि व्यतिरिक्त स्थितिप्रवृत्याद्यभावेनतदभिन्नत्वात्..................एषं एव जीव ब्रह्मणोः भिन्नाभिन्न सम्बन्धः। ....परमानन्दतादात्म्यं प्राप्तत्वात्।'

(सि. प्र. १२।५।११-१२)

परमानन्द कृष्ण की प्राप्ति का नाम ही मुक्ति है, यह इनका मत है।

'प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाण मभयं दर्शितं त्वया।' (भा. १२।६।५)

परीक्षित ने शुकदेव जी से कहा कि मुझे आपने भय रहित वस्तु दिखादी अतः ब्रह्मनिर्वाण हो गया।

श्रीधर स्वामी ने 'निर्वाण' का अर्थ कैवल्य किया है (भा. दी. १२।६।५)। सुदर्शन सूरि ने 'ब्रह्मनिर्वाणं आनन्दरूपं ब्रह्म' अर्थ किया है (शु. प. १२।६।५)।

वीरराघव ने सुदर्शन सूरि के अर्थ में 'अनुभव मग्नः इत्यर्थः' इतना अंश और बढ़ा दिया है (भा. चं. चं. १२।६।५)। विजयध्वज ने प्राकृत शरीर रहित होने का उल्लेख किया है—

'निर्वाणमानन्दं प्राकृत शरीर रहितं वा।' (प. र. १२।६।५)

जीवगोस्वामी ने ब्रह्मनिर्वाण का अर्थ वृहद् भगवत्तत्व में प्रविष्ट होना माना है—

'............निर्वाणं परमानन्द स्वरूपं ब्रह्म सर्वतो वृहद् भगवत्तत्वं प्रविष्टस्तस्मिन्नाविष्ट इत्यर्थः।' (क्र. स. १२।६।५)

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने प्रह्म निर्वाण भय सूचक माना है तथा ईर्ष्या की उक्ति है यह लिखा है। भक्तों को कहीं से भय नहीं है यह पंचम स्कन्ध में स्पष्ट लिखा जा चुका है—

'नारायण पराः सर्वे न कुतश्चन विभ्यति
स्वर्गापवर्ग नरकेष्वपितुल्यार्थ दर्शिनः'

'............भक्तानां निर्वाण मोक्षः खल्वग्रह्य एव।' परीक्षित ने प्रायोपवेश के समय ही वह प्रार्थना की थी मेरी रति भगवान् में हो—

'पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते रतिः प्रसंगश्च तदाश्रयेषु'

'…………इति प्रायोपवेशारम्भत एव प्रतिज्ञातवन्तं मामपि ब्रह्‌मनिर्वाण मुपदिशसीति श्रीमुनीन्द्रे ईर्ष्यैवध्वनिता… ……. ।' (सा. द. १२।६।५)

शुक सुधी ने भी ब्रह्‌म का अर्थ कृष्ण किया है—

'त्वयादर्शितं ब्रह्‌म श्रीकृष्णाख्यं निर्वाणं समानाति शयानन्द रूपम् ।'
(सि. प्र. १२।६।५)

वैष्णव टीकाकारों ने कृष्ण प्राप्ति ही मुक्ति का फल माना है, जीव गोस्वामी ने तो उसे 'विचारी' शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार स्थूल दृष्टि से अद्वैतवाद की झलक से ओतप्रोत अद्वैत मुक्ति को भी वैष्णव टीकाकारों ने अपने पक्ष के अनुसार लिखा है जो उचित ही है।

—*—

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ

अलंकार कौस्तुभ	कवि कर्णपूर, कलकत्ता
अणुभाण्य	वल्लभाचार्य, निर्णयसागर, मुम्बई
अणुभाष्य रश्मि	गोपेश्वर, निर्णयसागर, मुम्बई
अच्युत (पत्र)	अच्युत ग्रन्थमाला, काशी
अन्वितार्थ प्रकाशिका	गंगासहाय, गंगा विष्णु लक्ष्मी वेंकटेश्वर, मुम्बई
अष्टाध्यायी	पाणिनि, निर्णयसागर, मुम्बई
आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती	गोपाल गोस्वामी, प्राच्यवाणी, कलकत्ता (बंगाक्षर)
आचार्य शंकर	बलदेव उपाध्याय, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग
आचार्य शंकर और रामानुज	मध्वगौड़ीय परसाहित्य, कलकत्ता (बंगाक्षर)
आद्य पद्य व्याख्या	मधुसूदन सरस्वती, आठ टीका संस्करण, वृन्दावन
इण्डिया आफिस कैटलाग	(अँग्रेजी)
उत्तर गीता	गौड़पाद, वाणीविलास, श्रीरंगम् १९१०
ऋग्वेद	आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, १८६२
ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी	,, ,, ,,
कल्याण—भक्ति अंक	गीताप्रेस, गोरखपुर
कल्याण—सन्त अंक	,, ,,
क्रमसन्दर्भ	जीवगोस्वामी, आठ टीका सं०, वृन्दावन
कांकरौली का इतिहास (द्वितीय भाग)	विद्या विभाग, कांकरौली
काव्यप्रकाश	मम्मट, चौखम्बा०, काशी
कुलतत्वदर्शन	जनमेजय, यशोहर (बंगाक्षर)
कूर्मपुराण	मनसुखरायमोर, कलकत्ता
गर्ग संहिता	गर्गाचार्य, श्यामकाशी प्रेस, मथुरा

ग्राउस मथुरा	(अँग्रेजी)
गीता–शंकर भाष्य	शंकराचार्य, निर्णयसागर, बम्बई
गीता–सुबोधिनी टीका	श्रीधरस्वामी, ,, ,,
गीता	गीता प्रेस, गोरखपुर
गूढ़ार्थ दीपिका	मधुसूदन सरस्वती, चौखम्बा०, काशी
गौड़ियारतिन ठाकुर	सुन्दरानन्द, कलकत्ता (बंगाक्षर)
गौड़ीयदर्शनेर इतिहास	सुन्दरानन्द, ,, ,,
गौड़ीयवैष्णव अभिधान कोश	मध्वगौड़ीय परसाहित्य, कलकत्ता (बंगाक्षर)
चित्रमय जगत	मई १९१५ ई० (मराठी)
चैतन्य चरितामृत	कलकत्ता (बंगाक्षर)
टिप्पणी	विट्ठलनाथ, चौखम्बा०, काशी
टिप्पणी	नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी, आठ टीका सं०, वृन्दावन
तत्वदीप निबन्ध	वल्लभाचार्य, निर्णयसागर, मुम्बई
तत्वप्रदीपिका	चित्सुखाचार्य, उदासीन संस्कृत महावि० काशी
तत्वसन्दर्भ	जीवगोस्वामी, अच्युत ग्रन्थमाला, काशी
तात्पर्य टिप्पणी प्रबोधिनी	छलारी नारायण, मध्वगौ० कलकत्ता
तैत्तरीयोपनिषद्	निर्णयसागर, मुम्बई
दशश्लोकी	निम्बार्काचार्य, वृन्दावन
दीपिका दीपनी	राधारमणदास गो०, आठ टीका सं०, वृन्दावन
दुर्घट भाव दीपिका	सत्याभिनव, मध्वगौ० कलकत्ता
देवी भागवत	मनसुखरायमोर, कलकत्ता
धर्मकल्पद्रुम	स्वामी दयानन्द, भारतधर्म महामण्डल, काशी
धर्मशास्त्र का इतिहास	पी० वी० काने, राजकीय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ
धात्वर्थ संग्रह	जीवगोस्वामी, कलकत्ता
नरोत्तम विलास	कलकत्ता (बंगाक्षर)
निजवार्ता प्रसंग	द्वारकादास पारीख, कलकत्ता

पत्रावलम्बन	निर्णयसागर, बम्बई
पत्र	विद्यामान्यतीर्थ, उडुपी, १९६६ ई०
पदरत्नावली	विजयध्वजतीर्थ, आठ टीका सं०, वृन्दावन
पद मुक्तावली	लिंघेरी श्रीनिवास, मध्वगौ०, कलकत्ता
पं० बन्नाजी कृत 'संग्रह'	मथुरा
प्रवासी पत्रिका	कलकत्ता (बंगाक्षर)
पद्मपुराण	मनसुखरायमोर, कलकत्ता
पद्यावली	रूपगोस्वामी, कलकत्ता
पातंजल दर्शन	चौखम्बा० काशी
पी० के० गोभे	भाण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान, पूना
पुष्टिप्रवाह मर्यादा	वल्लभाचार्य, गोवर्द्धन ग्रन्थ माला, मथुरा
पुराण तत्व समीक्षा	कृष्णमणि त्रिपाठी, हिन्दी प्रचारक मण्डल, काशी
पुराण विमर्श	वलदेव उपाध्याय, चौखम्बा०, काशी
प्रेम मंजरी	रामकृष्ण मिश्र, आठ टीका सं० वृन्दावन
ब्रजधाम और गोस्वामीगन	गोवर्धनदास, वृन्दावन (बंगाक्षर)
बाल प्रबोधिनी	गिरधर गोस्वामी, हरिप्रसाद भगीरथ, बंबई
वृहत्क्रम सन्दर्भ	जीवगोस्वामी, आठ टीका संस्करण, वृन्दावन
वृहदभागवतामृत	सनातन गोस्वामी, रत्नलाल बेरी, वृन्दावन
वृहद्वैष्णवतोषिणी	सनातन गोस्वामी, आठ टीका सं० वृन्दावन
वृहत् स्तोत्र सरित्सागर	निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई
ब्रह्मपुराण	मनसुखरायमोर, कलकत्ता
ब्रह्मवैवर्त पुराण	,, ,,
ब्रह्मसूत्रों का तुलनात्मक अध्ययन	रामकृष्ण आचार्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
भक्तिरत्नावली	कलकत्ता
भक्तमाल	नाभादास, नवलकिशोर, लखनऊ
भक्तरन्जनी	भगवत्प्रसाद, निर्णयसागर, मुम्बई
भक्ति रसामृत सिन्धु	रूपगोस्वामी, स्वामी बी० एच० वन महाराज, कलकत्ता (अंग्रेजी)
भविष्य पुराण	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

भागवत पुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर
भागवत पुराण	इच्छाराम, बम्बई (गुजराती)
भागवत तात्पर्य दीपिका	अनन्ततीर्थ, मध्वगौ० कलकत्ता
भागवत तात्पर्य टिप्पणी	सत्यधर्म यति ,, ,,
भागवत टिप्पणी प्रबोधिनी	,, ,,
भागवत दर्शन	हरवंशलाल, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़
भागवत पत्रिका	गौड़ीयमठ, मथुरा
भागवतामृत	रूपगोस्वामी
भागवत चन्द्र चन्द्रिका	वीरराघवाचार्य, आठ टीका सं०, वृन्दावन
भावभाव विभाविका	रामनारायण, ,, ,,
भावार्थ दीपिका	श्रीधरस्वामी ,, ,,
भावार्थ दीपिका प्रकाश	वंशीधर गौड़, क्षेमराज, बम्बई
मध्वतात्पर्य निर्णय	गौड़ीय०, कलकत्ता
मन्दबोधिनी	शेषाचार्य, गौड़ीय०, कलकत्ता
मन्दनन्दिनी	व्यास तत्त्वज्ञ, गौड़ीय०, कलकत्ता
महाभारत	गीताप्रेस, गोरखपुर
मूल तात्पर्य टिप्पणी	श्रीनिवास. मध्वगौ०, कलकत्ता
राधामोहन तर्कवाचस्पतिकृत टिप्पणी	आठ टीका सं०, वृन्दावन
राधाकृष्णकुण्ड इतिहास	नवद्वीपदास, राधाकुण्ड
लघुतोषिणी	जीवगोस्वामी, आठ टीका सं०, वृन्दावन
लीलोत्सव	सनातन गोस्वामी, कलकत्ता
वल्लभ चरित्र	लल्लूभाई प्राणवल्लभ, अहमदाबाद (गुजराती)
वल्लभ प्रकाश पत्रिका	मदनमोहनजी मंदिर, मथुरा
व्रजविहार काव्य	जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता
वाराह पुराण	क्षेमराज कृष्णदास. बम्बई
वादावली	जयतीर्थ, धारवाड
विवरण	व्रजरायजी, निर्णयसागर
विरोधोद्धार	पांघरी श्रीनिवास, मध्वगौ०, कलकत्ता
विशुद्ध रस दीपिका	किशोरीप्रसाद, आठ टीका सं०, वृन्दावन

विश्वकोश	अतीन्द्रिय वेदान्त वाचस्पति, गौड़ीयमध्व०, कलकत्ता
विष्णुपुराण	निर्णयसागर, बम्बई
विष्णुपुराण टीका	चित्सुख, मध्वगौ०, कलकत्ता
विष्णु पुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर
वेदव्यास का आश्रम	बालमुकुन्द चतुर्वेदी, मथुरा
वेदान्तसार	सदानन्द, चौखम्बा०, काशी
वैदिक कोश	भगवद्दत्त (प्रथम भाग)
वैष्णव अभिधान कोश	हरिदास, नवद्वीप (बंगाक्षर)
वैष्णव ग्रन्थावली	अतीन्द्रिय वन्धोपाध्याय, कलकत्ता, (बंगाक्षर)
वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म	आर. जी. भण्डारकर (अँग्रेजी)
वैष्णवानन्दिनी	बलदेव विद्याभूषण, मध्वगौ०, कलकत्ता
षट्चक्रनिरूपण	पूर्णानन्दयति, कालकादेवी, मुम्बई
शपथ पत्र	राधारमणदास, विश्वम्भरनाथ गोस्वामी, वृन्दावन के पास सुरक्षित
शिवपुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर
शुकपक्षीया	सुदर्शन सूरी, आठ टीका सं०, वृन्दावन
शुक्ल यजुर्वेद	चौखम्बा०, काशी
शुद्धाद्वैत मार्तण्ड	गिरिधर गो०, 'विद्याविभाग काँकरौली' नि० सा० बम्बई
श्रेय-भागवतांक	वृन्दावन
सप्तगोस्वामीगण	वृन्दावन (बंगाक्षर)
सज्जनहित	चेट्टी वेंकटाद्रि, मध्वगौ०, कलकत्ता
सज्जनतोषिणी (पत्रि०)	,, ,,
सनातनाष्टक	रूपगोस्वामी, कलकत्ता
सरला	रामानुजाचार्य, वृन्दावन
सत्यार्थ प्रकाश	स्वामी दयानन्द
संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय, ज्ञानवापी, काशी
सम्प्रदाय कल्पद्रुम	विट्ठलनाथ भट्ट, लक्ष्मी वेंकटेश्वर, बम्बई
सम्प्रदाय प्रदीप	विद्याविभाग, काँकरौली
सर्वदर्शन संग्रह	माधवाचार्य, चौखम्बा०, काशी
सर्वेश्वर वृन्दावनांक	वृन्दावन

स्कन्द पुराण	मनसुखरायमोर, कलकत्ता
स्तवामृत लहरी	विश्वनाथ चक्रवर्ती, वृन्दावन
स्वधर्मामृत सिन्धु	शुकसुधी, वृन्दावन
सिद्धान्तार्थ दीपिका	धनपति सूरी, आठ टीका सं०, वृन्दावन
सिद्धान्तरत्नावली	हरिव्यासदेव, वृन्दावन
सिद्धान्तप्रदीप	शुकसुधी, आठ टीका सं०, वृन्दावन
सिद्धान्त मुक्तावली	वल्लभाचार्य, गोवर्द्धन पुस्तकालय, मथुरा
सुबोधिनी	वल्लभाचार्य, आठ टीका संग्करण, वृन्दावन
सुबोधिनी प्रकाश	पुरुषोत्तमजी गोस्वामी, तेलीवाला, बम्बई
हरि भक्ति रसायन	मधुसूदन सरस्वती, चौखम्बा०, काशी
हरिराय वचनामृत	राधेश्याम रस्तोगी, लखनऊ
हिन्दी टीका भागवत	गीताप्रेस, गोरखपुर
हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी	कैम्ब्रिज

—*—

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	अशुद्ध....शुद्ध	पृष्ठ	अशुद्ध....शुद्ध
११	कर्त्ता....कर्ता	११	मैवा....मेवा
११	धतमं....द्यतमं	१२	घम् ....धम्
१२	वैदान्....वेदान्	१४	मारत....भारत
१५	कालिन्धा....द्या	१६	वसिव्या....वासव्या
१७	व्यसि...व्यास	१७	दारुणौ....दारुणो
१९	वर्षे....वर्षै	१९	कौश....कोश
२०	तदैव....तदेव	२१	नुत्ते य....नुत्तये
२१	तदर्ध....तदर्थ	२३	पक्षोक....पक्षौक
२३	मूगी....भूः	२४	गोड....गौड़
२५	छ्च्वणान्त....च्छवणानो	२५	नमस्ये....नभस्ये
	ग्नेव....न्नेव		नवम्यां....नवम्यां
	कलो....कलौ	२६	भगवान...भगवान्
२६	माथं....माद्यं	२७	नेमि....नैमि
२७	अष्टादश....ष्टादश		उद्धत....उद्धृत
	तरू .. तरु		सिध....सिधः
	पुराणर्को....पुराणार्कोऽ	२८	शास्त्रार्थो....शास्त्रार्थो
२८	भिव....मिव	२९	त्रिशन्....त्रिशत्
३०	चाध....चाथ	३०	सर्वज्ञैं... सर्वज्ञ
३१	कौमारेः....कौमारैः	३१	ब्रजे....व्रजे
	गौणीय....गौड़ीय		विभोत....विभीत
	स्वामिमि....स्वामिभि		गंगा....वंगा
३२	कुन्जी....कुञ्जी	३२	द्वाम्या....द्वाभ्या
	उद्धहरण....उद्धरण		स्यात ...स्यात्
३३	स्तवन....स्तवनं	३४	शैलः....शैलाः
४१	सिद्धाँत....सिद्धान्त	४१	मध्य....मध्व
४२	दृशा....मादृशा	४२	महँ....महैं
४४	सुत्रा....सूत्रा	४४	दतो....वतो
	मिधः....भिधः	४५	नियुक्त....निर्युक्त

४५	प्रपति....प्रपत्ति		वेद्वित....वेष्टित
४६	नचि....सच्चि	४६	त्वक....त्मक
	उपयुक्त....उपर्युक्त		मैंति....मेति
४७	तद्रयो...तद्र्यो	४७	विद्या....ऽविद्या
४८	परवृहम् .. परब्रह्म	५१	खण्ड़न....खण्डन
५३	किमन्द....किमन्य	५६	प्त....क्त
६०	अर्धापति....अर्थापत्ति	६१	चिद्द....चिद्रू
६१	केनादि....फेनादि	६३	अवि....अनि
६३	प्युमया प्युभया		पथ....पद्य
	ख्या....रा		पाथोघौ....पाथोधौ
	चिह्....विह्	६८	वर्ति....वर्ती
६९	नवम्....नवम	६९	आचार्यैण....आचार्येण
	सख्या....संख्या	७०	शालिता....क्षालिता
७३	ध्यान्त....ध्वान्त	८०	यत्र....यज्ञ
८९	पक्षिया ...पक्षीया	८९	हृदयैन....हृदयेन
	विधया....विद्या	९०	अवेदं....क्वेदं
९०	चितं....चित्तं	९१	संचोथ....संचोद्य
९१	परशम्....परेशम्	९२	शास्त्र...शास्त्रों
९३	मृण्मपं....मृण्मयं	९३	वित्त....चित्त
९४	ब्रह्मभि....ब्रह्माभि	९५	संह....सह
९७	भागयत.... भागवत	९८	लम्य....लभ्य
९९	गोवर्द्धन....गोवर्द्धन	९९	करूणा....करुणा
१००	त्रया...त्र्यां	१००	तेनै....तेने
	वाथू....वाधू		के....ने
	ष्तुति....स्तुति [१०।१३]	१०१	तर्योयि....तयोर्निय
१०१	शुक्र....शुक		करूणा....करुणा
	घिनी....धिनी		भावुक....भावुका
	उसके....उनके		के....
१०२	चरन्तो ...चरन्ती	१०६	गुरू....गुरु
१०६	विघाय....विधाय	१०७	व्यासवतार....व्यासावतार
१०७	बहुपु....बहुपु युगेपु	१०८	सतरीम्....सत्तरीम्
१०८	विवुघा....विवुधा		कटाक्षेक....कटाक्षैक
	वन्थो...वरवन्धौ		प्रवच्पि....प्रवच्मि

११० दघि....दधि
र्धे....र्थे
रक्तौ....रक्तो
व्यामोहिम....व्यामोहित
१११ सजजन....सज्जन
थर्म....धर्म
११२ तन्य....तन्
एवं....एष
च....चं
देण्या....देव्या
११३ सुपणवि....सुपर्णावि
११४ श्रू...श्रु
चायै...चार्यै
११५ शुद्धये...शुद्धयै
११६ द्दी....ट्टी
११७ गुरुन्....गुरून्
१२० घे....ढ्धे
भिष्ट....मिष्ट
१२२ मजे....भजे
१२३ णियां....ण्या
मारम्य....मारभ्य
१२४ यतु....यत्तु
भम .. मम
१२७ दिमि....दिभि
सनेभ्यो....स्तेभ्यो
अविवाक्षित....अविवक्षित
१२९ रुद....रुद्र
चिन्ये....चिन्तये
ह्लस्ताय...हृस्ताय
१३० माक....भाक्
भिक्षो....मिक्षो
१३२ घारा....धारा
१३३ संसाथ....संसाध

११० कैघ....कैध
न....नु
वाड....वाङ्
१११ मध्य....मध्व
तीर्थो....तीर्थौ
विद्वता....विद्वत्ता
११२ घ्री....ध्री
प्र....ब्र
इत्यं...इत्थं
११२ सो...सौ
११४ श्रुत्यर्घो....श्रुत्यर्थो
सवौ....सर्वो
मन्दिनी....नन्दिनी
११५ सप्तम्....सप्तम
११६ रिच....रिव
११८ घपृ....यदु
१२० रघ्या....रथ्या
१२४ वाक....वाक्
१२२ मजामि....भजामि
१२३ विवृत्ति....निवृत्ति
अगुष्ठ....अंगुष्ठ
१२४ संपती....संपत्ती
१२५ नेव....मेव
१२७ सीतामाः....सीतायाः
श्टंगाल....श्टृगाल
१२८ गुरूश्च....गुरुश्च
१२९ शत्वात्मा....शत्वात्म
षेडशभिः....षोडशभिः
त्रिक्रिम....त्रिविक्रम
१३० निषीध...निषीथ
१३२ विरोधा....विरोधो
प्रमो....प्रभो
१३७ तुद्वेग....नुद्वेग

१४२	जगगुरु....जगद्गुरु	१४२	कौस्तुम....कौस्तुभ
	दर्म्या....दर्य्या		सांख्यवा....साँख्यवाद
	त्वतीर....त्वत्तीर		मर्हशि....मर्हनिशं
	स्यान्ये....स्यान्त्रे	१४३	व्रह्मायो....ब्राह्मयौप
१४५	वें....वैं	१४५	याय:....ध्याय:
१४५	रम्मण....रम्भण	१४७	तद्धतो....तद्वतो
१४७	इत्यारम्य....इत्यारभ्य	१४८	स्थियम्...स्थितम्
१४८	प्लय....प्लव		ग्रय....ग्य
	थेय....ध्येय		तयं....नयं
१४९	सागर....सामर:	१४९	अर्ध्व....ऊर्ध्वं
१५०	प्रकोश....प्रकाश	१५०	भामा....मामा
१५१	सवाणि....सर्वाणि	१५२	पित्रर्जित....पित्रार्जित
५ ३	सृष्टियादि....सृष्टयादि	१५४	योगे....योंगे
	दध....दथ	१५६	रुक्मिणयु....रुक्मिण्या
१५६	शष्टे....षष्ठे	१५६	चौद्धव....चोद्धव
१५८	रन्त....रत्न	१५९	तदशय....तदाशय
१६०	ईय....इय	१६१	भक्तया....भक्त्या
१६१	येस्ते....येन्ये	१६२	त्वां....तवां
१६३	गुर्वें....गुर्वं	१६३	हृद....इद
	पायूष....पीयूष	१६४	थीमहि....धीमहि
१६५	षष्ठयंत....षष्ठ्यन्त	१७०	दोष....दीश
१७१	कुम्भ....कुम्भे	१७१	षोडष....षोडश
१७९	ईसा....ईशा	१८३	पुरुषां....पुरुष
१८३	पूर्वक....पूर्वमक	१८४	वच्छ्र....वच्छ्री
१८७	थू....घू	१८९	गदां....गदा
१८९	प्रं....प्र	१९२	तधै....तथै
१९२	क्रत्य....कृत्य		प्राधं....प्राथं
	तुष्ठ....तुष्ट	१९५	प्रणोमि....प्रणौमि
१९६	निपति....निपीत		मुनिन्द्रि....मुनीन्द्र
१९६	मिव....मिय	१९९	मेच्छत्....मैच्छन्

Museum Library
Lucknow